संवर्ग–1

इकाई–1 आधुनिक काल–सामान्य परिचय

संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 सामान्य परिचय
1.3 आधुनिक काल के काव्य की परिस्थितियां
1.4 सामाजिक परिस्थिति
1.5 धार्मिक परिस्थिति
1.6 आर्थिक परिस्थिति
1.7 साहित्यिक परिस्थिति
1.8 सारांश
1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
1.10 अभ्यास प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में 'आधुनिक काल' हिंदी भाषा और साहित्य के विकास की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय काल है। इससे पूर्व के कालों आदिकाल (वीरगाथा कला), पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) में जहां हिंदी साहित्य का विकास क्षेत्रीय भाषाओं (अपभ्रंश, मैथिली, राजस्थानी, ब्रज, अवधी आदि) के माध्यम से काव्य रचना के क्षेत्र में हुआ, वहीं आधुनिककाल (गद्यकाल) में गद्य–पद्य दोनों का समान विकास हुआ, वह भी हिंदी के सर्वमान्य स्वरूप खड़ीबोली के माध्यम से। इस काल की दो महत्त्वपूर्ण घटनाएं खड़ीबोली का अपनाया जाना तथा खड़ीबोली के माध्यम से गद्य का विकास, विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त आधुनिक काल का साहित्य प्रत्येक दृष्टि से नवीनता का वाहक बनकर नवोन्मेष के कारण हमारा ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट करता है। सामाजिक–राजनैतिक परिस्थितियों में जन आकांक्षाओं के अनुरूप जन आंदोलन को प्रेरित करने के कारण इस काल को पुनर्जागरण काल की संज्ञा दी गयी है, जिसे भक्ति आंदोलन के बाद सबसे व्यापक आंदोलन के रूप में स्वीकार किया जाता है। बदलते हुए आधुनिक परिवेश में आधुनिक काल विभिन्न परिस्थितियों की देन है। इस दृष्टि से आधुनिक काल में हिंदी कविता का जो उन्नत स्वरूप दृष्टिगत होता है वह विशिष्ट एवं उल्लेखनीय कहा जा सकता है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य 'आधुनिक काल' की पृष्ठभूमि से परिचित करवाना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

हिंदी साहित्य के काल विभाजन से परिचित हो सकेंगे।

आधुनिक काल के नामकरण के साथ–साथ इस नाम का औचित्य एवं उसकी सार्थकता से अभिज्ञ हो सकेंगे।

आधुनिक काल की विभिन्न परिस्थितियों से परिचित होकर उसकी विशेषताओं को समझ सकेंगे।

इस काल खंड में साहित्य रचना को प्रेरित करनेवाले महत्त्वपूर्ण विभिन्न कारकों को भलीभांति जान सकेंगे।

1.2 सामान्य परिचय

हिंदी साहित्य का काल विभाजन करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उसे चार भागों में बांटा है –

आदिकाल (वीरगाथा काल)	1050 – 1375 टि.
पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल)	1375 – 1700 टि.
उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)	1700 – 1900 टि.
आधुनिक काल (गद्यकाल)	1900 वि. .....

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आचार्य शुक्ल ने दो आधारों पर यह विभाजन प्रस्तुत किया है – पहला ऐतिहासिक विकास का आधार तथा दूसरा प्रवृत्तिगत आधार। इस विभाजन के पीछे शुक्लजी का विशेष ध्यान संबंधित काल की प्रमुख विशेषताओं की ओर रहा है। जिस प्रवृत्ति की अधिकता जिस काल में रही, वही उनके नामकरण और विवेचन का आधार बनी। इस दृष्टि से उन्होंने आधुनिक काल को प्रवृत्ति के आधार पर गद्यकाल की संज्ञा दी। हालांकि आधुनिक काल में मात्रात्मक एवं गुणवत्ता दोनों दृष्टियों से काव्य का सर्जन भी बहुत अधिक हुआ है, पर शुक्लजी ने उसे प्रवृत्ति विशेष के आधार पर गद्यकाल कहा। इसके पीछे शुक्ल जी का आग्रह गद्य की उस नवीन प्रवृत्ति के प्रति है जो आधुनिक काल की सबसे प्रमुख घटना है। गद्य – पद्य दोनों का माध्यम खड़ीबोली होना आधुनिक काल की अतिमहत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यही कारण है कि शुक्लजी का ध्यान इस अति महत्त्वपूर्ण साहित्यिक घटना की ओर विशेष रूप से गया और उन्होंने उसे आधुनिक काल की प्रवृत्ति मानकर उसका नामकरण गद्यकाल के रूप में किया। आधुनिक काल हिंदी गद्य के आरंभ और उसके विकास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। ब्रजभाषा में शृंगारपरक काव्य रचना की जो समृद्ध परंपरा चली आ रही थी, उसमें उससे और अधिक आगे जाने की गुंजाइश नहीं थी। इसके लिए न तो वातावरण ही अनुकूल था और न तत्कालीन परिस्थितियों में ऐसा किया जाना संभव था। हालांकि आधुनिककाल के वातावरण और परिवेश दोनों में परिवर्तन हो चुका था, पर रीतिकालीन कविता का संस्कार पूरी तरह छूट जाए, यह कठिन था। यही कारण है कि नवीनता की बयार बहने के बावजूद शृंगारिक काव्य रचना का दौर भी चलता रहा और नूतन काव्य प्रवृत्तियां भी दस्तक देती रहीं। परंपरागत काव्य रचना एवं नवीन भावसंवलित काव्य सर्जन के इसी मिलन बिंदु से आधुनिक काल का अभ्युदय हुआ, जिसके लिए तत्कालीन परिस्थितियां पूरी तरह से उत्तरदायी कही जा सकती हैं। आधुनिक कालीन काव्य का विवेचन करने के क्रम में उस काल की विभिन्न परिस्थितियों का उल्लेख करना समीचीन होगा।

1.3 आधुनिक काल के काव्य की परिस्थितियां

आधुनिक काल में गद्य और पद्य दोनों की अभिव्यक्ति का माध्यम खड़ीबोली होना इस काल की उल्लेखनीय उपलब्धि है। काव्य, जो अब तक ब्रजभाषा में लिखा जा रहा था, आधुनिक काल में उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम खड़ीबोली हो गई। गद्य की भाषा भी खडीबोली हिंदी हो जाने से अभिव्यक्ति का अनुकूल एवं प्रभावी परिवेश निर्मित हुआ। खड़ीबोली के कारण आधुनिक काल की साहित्य रचना में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित हुआ।

हिंदी काव्य की जो धारा पूर्ववर्ती काल से प्रवाहित होती चली आ रही थी, आधुनिक काल में आकर उसका स्वर पूरी तरह बदल गया। हालांकि परंपरागत काव्य रचना को भी यकायक बंद कर दिया जाना संभव नहीं था, पर यह बात विशेष तौर पर उल्लेखनीय है कि इस समय विविध प्रकार की नवीन प्रवृत्तियों का अभ्युदय हो रहा था। विज्ञान का युग होने के कारण इसकाल में बौद्धिकता एवं यांत्रिकता का होना स्वाभाविक ही था। इसके साथ ही राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में भी विविधता दिखाई देने लगी थी। क्रमिक रूप से चली आ रही पूर्व की साहित्यिक परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन एवं अंतर दृष्टिगत होने लगा था। वस्तुतः सम्पूर्ण समाज में एक आमूल परिवर्तन की अनुगूंज सुनाई देने लगी थी। इसी परिवर्तन की पीठिका पर भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने हिंदी कविता को शृंगारिक परिवेश से निकाल कर उसे नूतन प्रवृत्तियों और भावभंगिमाओं से संवलित करने का स्तुत्य कार्य किया। आधुनिक काल के प्रवर्तन का श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र को दिया जाता है। यह समय देशीय एवं विदेशी सभ्यता की संधि का समय है, जिसमें विविध नवीन प्रवृत्तियां धीरे–धीरे करवट ले रही थीं।

आधुनिक काल में राष्ट्रीयता, समाज सुधार, देशप्रेम, जनजागरण, विदेशी शक्तियों के प्रति तीव्र आक्रोश, शोषण तथा अत्याचार के विरुद्ध जनाक्रोश की भावना आदि प्रवृत्तियां तत्कालीन परिस्थितियों में प्रमुखता से प्रकट हो रही थीं। आधुनिक काल से पूर्व के समय पर दृष्टिपात करें, तो स्पष्ट होगा कि वह पूरी तरह से संघर्ष का काल था। हालांकि मुस्लिम शासक आक्रमणकारी बनकर भारत में आए थे, पर इस समय तक वे यहां की सभ्यता और संस्कृति में रचबस गए थे तथा वे पूरी तरह भारतीय हो गए थे। जब अंगरेजों से लड़ाई आरंभ हुई तो उनके विरुद्ध हिंदू – मुसलमान दोनों साथ – साथ मिलकर लोहा ले रहे थे। स्वतंत्रता संघर्ष की पहली लड़ाई तत्कालीन शासक बहादुरशाह जफ़र के नेतृत्व में ही आरंभ हुई थी। उन्होंने 'पयामें आजादी' नामक समाचार पत्र द्वारा हिंदू – मुसलमान दोनों को संदेश दिया – ''हिंदुस्तान के हिंदुओं और मुसलमानो ! उठो, भाइयो उठो, खुदा ने इंसान को जितनी बरकतें अता की हैं, उनमें सबसे कीमती बरकत आजादी है।'' अंगरेजों से लोहा लेने के लिए हिंदू – मुसलमानों का एक हो जाना इस काल की महत्त्वपूर्ण घटना थी। उधर कांग्रेस की स्थापना तथा दिनोंदिन बढ़ती हुई उसकी लोकप्रियता ने एकता की भावना को और भी अधिक बल प्रदान किया। उस काल में काव्य में इसकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति दिखाई देती है। भारतेंदु और द्विवेदीयुग में राष्ट्रीयता, देशप्रेम, जनजागरण और हिंदू – मुसलमान एकता का जो स्वर सुनाई देता है, वह उसी ऐक्य भावना का परिणाम कहा जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भारतीय–अंगरेज संघर्ष की राजनैतिक दृष्टि से झकझोर देनेवाली एक और प्रमुख घटना थी। प्रथम विश्वयुद्ध। अंग्रेजों की कूटनीति ने भारतीयों को चौंकाया ही नहीं सजग और सम्बद्ध भी कर दिया था, भारतीयता की भावना को विकसित–वर्धित करने के लिए अतीत प्रेम से लेकर समाज सुधार तक सभी पर बल देना इस युग में स्वभाविक ही था। कुछ आलोचक इसका श्रेय अंगरेजों को देते हैं, जबकि सच यह है कि .... इसके लिए हम अंगरेजों के कृतज्ञ नहीं उनकी कूटनीति के कृतज्ञ हों तो हों। भारतीय नेताओं और समाज सुधारकों द्वारा संचालित अनेक प्रकार के समाज सुधारात्मक आंदोलन, समन्वयपूर्वक नीतियां, देशप्रेम, राष्ट्रप्रेम, जातिप्रेम आदि की प्रवृत्तियां प्रमुखतया इन्हीं राजनैतिक परिस्थितियों की देन थीं।

प्रथम विश्वयुद्ध की विफलता और अंगरेजों के बढ़ते हुए अत्याचारों ने भारतीयों – विशेषतः युवा वर्ग को निराश कर दिया। एक ओर इसी का परिणाम, अर्थात पलायन प्रवृत्ति छायावादी काव्य में प्रस्फुटित हुयी, तो दूसरी ओर हिंसात्मक आक्रोश और देशप्रेम राष्ट्रीयतावाली काव्यधारा में, जिसकी एक दिशा प्रगतिवाद के नाम से जानी जाती है। राष्ट्र में अंतरराष्ट्रीयता, मानव से मानवतावाद, पूंजीवाद से व्यक्तिवाद और समाजवाद, उपदेश भरे आदर्श से कटु यथार्थ, उच्चवर्ग से निम्नवर्ग और परंपराओं के विरोध से नवमान्यताओं की प्रतिष्ठा तक इसी राजनीतिक चेतना की देन हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद तक का हिंदी काव्य इन्हीं से ओत–प्रोत रहा। सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। संघर्ष काल खत्म हुआ और नवनिर्माण का श्रीगणेश हुआ। सहअस्तित्व, पंचशील, मानवतावाद, अंतरराष्ट्रीयता आदि की स्थापना की गई। इन सबके बावजूद जमीनी हकीकत ने भारतीय चेतना को यथार्थ की ओर उन्मुख किया। इस समय तक संघर्षकालीन आदर्श किताबी बन गए तो सत्य और अहिंसा के स्वर शोरगुल बनकर प्रकट होने लगे थे। भारत विभाजन और पाकिस्तान के उदय ने तो मानो क्षणमात्र में भारतीय चेतना को यथार्थ की चट्टान पर ला पटका। स्वतंत्रता के रूप में भारतीयों को मिले हथकंडे – बाज, चुनाव, दिनप्रतिदिन की बढ़ती कमरतोड़ महंगाई, भाई–भतीजावाद और सर्वव्यापी सर्वग्रासी भ्रष्टाचार। गत पांच–छः दशकों का भारत इसी का प्रमाण है। सच तो यह है कि इस समय का (भारतीय जनता) बुद्धिजीवी वर्ग और साहित्यकार का मानस सतत् रूप से संघर्ष, बेचैनी, अस्थिरता, संशय, संकल्प, विकल्प, नैराश्य, विक्षोभ, पलायन, अलगाव, संत्रास आदि की परिस्थितियों से गुजरता जा रहा है। परिणामस्वरूप आधुनिक साहित्य में कविता में भी विषय और शैलियों के नित नए प्रयोगों की अटूट श्रृंखला दृष्टिगोचर होती है। प्रयोगवाद और नई कविता के दिनप्रतिदिन बदलते हुए नए–नए प्रयोग इसी की देन हैं।

1.4 सामाजिक परिस्थिति

अंगरेजों के भारत में प्रवेश करने और धीरे–धीरे भारतीय जनजीवन के अधिक संपर्क में आने के फलस्वरूप उसने भारतीय समाज और जनमानस को अत्यधिक गहराई तक प्रभावित किया। यह प्रभाव अनुकूल भी था और प्रतिकूल भी। आंग्ल समाज के सक्रिय प्रयास, नए–नए आविष्कार और विचारधारा एवं आधुनिकता की निरंतर बढ़ती हुई चेतना अनुकूल प्रभाव के परिचायक हैं, तो राष्ट्रप्रेम समाज सुधार परंपरागत कुरीतियों और रीति – रिवाजों का विरोध आदि प्रतिकूल (प्रतिक्रियात्मक) प्रभावों के साक्षी हैं। आंग्ल संपर्क ने एक ओर तो भारतीय मानस को सजग–सक्रिय किया और दूसरी ओर, अपने अच्छे – बुरे क्रिया – कलापों से, एक नए वातावरण को जन्म दिया। इस वातावरण की नवीनता (वैज्ञानिक आविष्कार और अंग्रेजी शिक्षा एवं संस्कृति के प्रसार) से आधुनिकता की चेतना उत्पन्न हुई और युगों – युगों से चली आ रही सामाजिक नीति, आचार – विचार, आस्था और विश्वास में परिवर्तन हुए। इनमें से अधिकांश आत्महीनता की भावना से पीड़ित थे। इसीलिए उनके द्वारा पाश्चात्य जीवन प्रणाली का खूब अनुकरण हुआ। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में यह वर्ग स्वार्थवश सक्रिय रहा और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात वास्तविक सत्ता इसी अफसरशाही वर्ग के हाथ में आई। आज भी यही वर्ग सर्वाधिक शक्तिशाली किंतु कुंठित और मानसिक गुलामी से ग्रस्त है।

अंग्रेजों ने भारत का सिर्फ शोषण ही नहीं किया था अपितु अनेक वैज्ञानिक आविष्कार भी वे ही लेकर आ गए थे। भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने में वे निरंतर सक्रिय रहे थे तथा उन्होंने ही अनेक बौद्धिकवाद और विचार प्रदान किए थे। उन्होंने भारतीय समाज को मोह, निद्रा से जगाया ही नहीं झकझोर, कर उठाया भी था। इसी क्रिया – प्रतिक्रिया के फलस्वरूप भारतीयों में नई चेतना का संचार हुआ। रामकृष्ण परमहंस, राजाराममोहनराय (ब्रह्मसमाज), दयानंद सरस्वती (आर्य सनाज), विवेकानन्द, महर्षि अरविंद जैसी अनेक विभूतियों ने भारतीय समाज में आमूल – चूल क्रांतिकारी परिवर्तन किए। निःसंदेह इन सब का एक सशक्त माध्यम आधुनिक काव्य भी बना। भारतेंदुयुगीन काव्य का राष्ट्रीय राज्य प्रेम, देशभक्ति और भारतीय दुर्दशा का अंकन, द्विवेदी युगीन काव्य में समाज सुधार और स्वदेश महत्ता की प्रबलता छायावादी बौद्धिकता और प्रगति, प्रयोगवादी यथार्थक्रियता सब इसी की देन हैं। स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज और प्रबुद्ध चेतना के मूलाधार उपर्युक्त तत्त्व ही हैं। काव्य में मानव

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जीवन का अधिकाधिक यथार्थ और सूक्ष्म अंकन, व्यक्ति मानस का विश्लेषण, आम आदमी, वर्ग या समुदाय का अंकन, नित नए–नए प्रयोग तथा बेलगाम व्यवस्था के प्रति फटते हुए क्रूर कठोर स्वर आदि भी मूलतः आज की सामाजिक स्थिति और उससे बढ़ते–फूटते विस्फोटों की ही देन हैं।

1.5 धार्मिक परिस्थितियां

आंग्लसंपर्क का प्रभाव था धार्मिक उदारता, जिसने तत्कालीन भारतीय समाज (हिन्दु और मुसलमान समाज दोनों) में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिए थे। निस्संदेह मध्ययुगीन कट्टर नियमों में बद्ध और सीमित धार्मिक मनीषा ने पर्याप्त समय तक इसका विरोध भी किया, किन्तु वे अधिक समय तक विरोधी – भाव को टिका न सके। इस विवेच्य युग में सत्तासंपन्न आंग्ल – शासकों की छत्रछाया में भारत में इसाई धर्म को तेजी से फैलाया गया। धर्मांध – सांप्रदायिक कटघरों में बद्ध भारतीय समाज में यह लाभप्रद तो था, किन्तु सरल नहीं। अतएव अंग्रेजों की ''फूट डालो और राज करो'' की कुटिल नीति राजनैतिक स्तर पर सफल हो जाने पर भी धार्मिक दृष्टि से सफल न हो सकी।

आंग्ल नीति के विरोध में शीघ्र ही भारतीय समाज में खलबली मचने लगी। भारतीय धर्म की नयी बौद्धिक व्याख्या ने नए–नए विचारों तथा सक्रिय मनीषियों ने अधिकाधिक समयानुकूल व्यावहारिक और सच्चे अर्थों में ग्राह्य रूप प्रदान कर दिया। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन इसी की देन थे। इन्हीं के विचारों से प्रभावित परिचालित हिंदी काव्य में धार्मिक नवोत्थान, मानव प्रेम, नर – नारी समानता, धार्मिक कुरीतियों और आडंबरों का विरोध आदि भी इनसे ही मिले।

1.6 आर्थिक परिस्थितियां

अंग्रेज व्यापारी थे। सोने की चिड़िया (भारत) के स्वर्ण पंखों को काटनेवाले पूर्ववर्ती आक्रांताओं की भांति उन्होंने भारत को लूटा कम और अपने व्यापार कौशल से कब्जाया अधिक। ईस्ट इंडिया कंपनी से प्रारंभ किया गया उनका व्यापार, व्यवहार रबड़ की तरह फैलता ही चला गया। परिणामतः एक ओर तो भारतीय परंपरागत उद्योग धंधे ठंडे पड़ते गए और दूसरी ओर भारतीय सभ्यता इंग्लैण्ड जाती रही। औद्योगिक गिरावट भारतीय जनसाधारण को और भी गिराती चली गई। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इसी स्थिति पर रोष प्रकट किया था –

''अंग्रेज राज सुख साज सबे सुखकारी।
पर धन विदेश चलि जात, इहै अति ख्वारी ।।''

निर्धनता, अकाल, टैक्स और महंगाई इस युग की सामान्य आर्थिक कठिनाइयां थीं। महायुद्धों ने इनको और भी परवान पर चढ़ाया। इधर भारतीयों ने 'स्वदेश और स्वदेशी' के नाम पर भारतीय उद्योगों को बढ़ाने का प्रयास किया, तो साथ ही विदेशी 'बहिष्कार' की आवाज भी उठायी। इधर अंग्रेजों की कूटनीति ने भारतीय उद्योगों और कृषि आदि को पनपने से रोका, पूंजीपतियों और जमींदारों ने इसमें भरपूर सहयोग दिया। विवश भारतीय समाज में एक वर्ग का उदय नौकरीपेशा के रूप में हुआ। कुछ ही समय में इसने भी बेकारी, निराशा और दरिद्रता आदि को आसमान पर पहुंचा दिया। वर्ग संघर्ष बढ़े तो दलित – वर्ग कुचला गया और नौकरशाही पनपती गई। परिणाम ? द्वितीय महायुद्ध के पश्चात विद्रोह और प्रतिहिंसा की भावनाओं का उदय, यथार्थप्रियता की बढ़ोतरी और समाजवादी व्यवस्था पर जोर देने जैसे कार्यों में भारतीयों की प्रतिक्रिया में प्रकट हुयी। परिवर्तन के नये– नये लक्षण प्रकट हुए – स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात यद्यपि अभी तक इनसे भी कोई विशेष उल्लेखनीय सफलता नहीं मिल सकी है। कागजी आंकड़ों और नेताओं के थोथे–झूठे बयानों को छोड़ दें, तो महंगाई, बेरोजगारी और निर्धनता के तांडव आज भी चहुंओर हो रहे हैं।

1.7 साहित्यिक परिस्थिति

आधुनिक काव्य का उदय उस रीति व श्रृंगार काव्य की पृष्ठभूमि पर हुआ है जो एक ओर तो एकदम रूढ़िग्रस्त बन चुका था और दूसरी ओर जिसमें जीवन के प्रति उदार और व्यापक दृष्टिकोण का अभाव था। आधुनिक कवि की चेतना उस राग दरबारी काव्य को ग्रहण नहीं कर सकती थी। इसी चेतना ने जन्म दिया – एक प्रतिक्रिया को और यह प्रतिक्रिया ही आधुनिक काव्य के रूप में मुखरित हुई।

ध्यान से देखे तो आधुनिक काव्य के जन्म का मूल स्रोत आंग्ल संपर्क है। खड़ीबोली को काव्याभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया जो क्रमशः बढ़ता ही चला गया। काव्य प्रसार के दिन–प्रतिदिन बढ़ते जानेवाले साधनों तथा समाचार पत्रों और पत्रिकाओं एवं काव्यग्रंथों का अधिकाधिक प्रकाशन, सम्मेलन, गोष्ठियां, रंगमंच, चित्रपट, रेडियों तथा टेलीविजन आदि ने काव्य को जन–जन से जोड़ दिया। दूसरी ओर नयी–नयी परिस्थितियों और घटनाओं ने भी हिंदी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

काव्य को नए–नए वर्ण्य विषय और पत्रादि प्रदान किए। तीसरी ओर यातायात के बढ़ते साधनों वैज्ञानिक आविश्यकारों तथा बौद्धिक आदान – प्रदानों ने हिंदी काव्य को अंतरराष्ट्रीय प्रस्तावों से जोड़ा और चौथी ओर समयानुकूल नयी भाषा – शैली तथा काव्यरूप आदि प्रदान कर काव्य को समयानकूल बनाने में सहयोग दिया। इस प्रकार आधुनिक हिंदी कविता का उदय और विकास एक व्यापक पृष्ठभूमि पर हुआ। आज भी यह क्रम गतिशील है।

आधुनिक कालीन साहित्यिक परिवेश को बाबूगुलाब राय के शब्दों में इस तरह समझा जा सकता हैं ''अंग्रेजी राज्य के आने से लोगों का ध्यान जीवन की कठोर वास्तविकताओं की ओर गया। जीवन संग्राम बढ़ा साथ ही जातीय जीवन में भी जाग्रति हुई। लोग अपनी सभ्यता को महत्त्व देने लगे। हिंदू लोगों ने विदेशी धर्मों का मुकाबला करने के लिए अपने धर्म को बुद्धिवाद के आलोक में परिष्कृत करना आरंभ किया। ऐसे बुद्धिवाद और प्रतिद्वंद्विता के समय में जनता के भावों के प्रकाशन के लिए पद्य उचित माध्यम नहीं हो सकता। अतः अंग्रेजी राज्य के साथ – साथ गद्य भी आया। पद्य में ब्रज भाषा का साम्राज्य था किन्तु नवीन रूप के आ जाने से उसकी कोमल कांत पदावली संघर्षमय कठोर भूमि के लिए उपयुक्त न ठहरी।'' कहा जा सकता है कि आधुनिक काल की काव्य प्रवृत्तियां काफी हद तक अपने युग से प्रभावित हैं।

1.8 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आपने हिंदी साहित्य का इतिहास के अंतर्गत आधुनिक काल के विषय में जानकारी प्राप्त की। काल विभाजन और नामकरण के पश्चात इस काल की विभिन्न परिस्थितियों से अवगत होते हुए आपने यह भी जाना कि वे कौन – कौन से महत्त्वपूर्ण कारक हैं, जिन्होंने आधुनिक काल की काव्य रचना को प्रेरित एवं प्रभावित किया। इस दृष्टि से इस इकाई के माध्यम से आधुनिक काल के संबंध में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त हुईं –

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल अपने पूर्ववर्ती कालों से कई दृष्टियों से बिल्कुल भिन्न है।

आधुनिक काल में खड़ीबोली गद्य का विकास सबसे प्रमुख और विशिष्ट घटना है, जिसके कारण उसे प्रवृत्ति के आधार पर 'गद्य काल' कहा जाता है।

इस काल में रचित साहित्य जनजागरण का साहित्य है, जिसके कारण इसे पुनर्जागरण काल के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

इस काल में रचित साहित्य उस काल की विभिन्न परिस्थितियों की देन है।

प्रत्येक दृष्टि से नवीनता एवं आधुनिकता का समावेश इस काल को नवोन्मेष का वाहक सिद्ध करता है।

हिंदी भाषा और साहित्य का चहुंमुखी विकास इस काल की सर्वोपरि विशेषता है।

इस काल में हिंदी कविता व्यापक फलक पर स्थापित हुई।

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इस इकाई से संबंधित विशिष्ट अध्ययन के लिए निम्नलिखित कुछ पुस्तकें उपयोगी होंगी –

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (उ.प्र.)
2. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
4. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.10 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न :

आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि का उल्लेख करते हुए आधुनिक हिन्दी काव्य के स्रोतों का संक्षिप्त परिचय दीजिए ?

आधुनिक काल की हिंदी कविता की विभिन्न परिस्थितियों का स्पष्टीकरण कीजिए।

आधुनिक हिंदी कविता युगीन परिस्थितियों की देन है। इस कथन के आलोक में आधुनिक हिन्दी काव्य की विभिन्न परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए।

लघूत्तरीय प्रश्न :

हिंदी साहित्य का काल विभाजन करते हुए आधुनिक काल के नामकरण पर विचार कीजिए।

आधुनिक काल की सामाजिक परिस्थिति का उल्लेख कीजिए।

आधुनिक काल की साहित्यिक परिस्थिति का उल्लेख कीजिए।

आधुनिक काल की राजनीतिक परिस्थिति पर विचार प्रकट कीजिए।

आधुनिक काव्य का सामान्य परिचय दीजिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न :

आधुनिक काल को अन्य किस नाम से जाना जाता है?

आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल को किस रूप में बांटा ?

आचार्य शुक्ल ने प्रवृत्ति के आधार पर आधुनिक काल को क्या कहा ?

आधुनिक काल की विभिन्न परिस्थितियों के नाम बताइए ?

आधुनिक काल में काव्य सर्जन की प्रमुख भाषा क्या है ?

आधुनिक काल की दो महत्त्वपूर्ण घटनाएं क्या हैं ?

आधुनिक काल से पूर्व काव्य रचना का माध्यम कौन–सी भाषाएं थीं ?

आधुनिक काल की प्रमुख विशेषताएं क्या हैं ?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 2 आधुनिक हिंदी काव्य की विकासयात्रा

संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 सामान्य परिचय
2.3 भारतेंदुयुग
2.4 द्विवेदीयुग
2.5 छायावाद
2.6 प्रगतिवाद
2.7 प्रयोगवाद
2.8 स्वातंत्र्योत्तर युग
2.9 सारांश
2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
2.11 अभ्यास प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.0 प्रस्तावना

''नहीं होती, कहीं भी खत्म कविता नहीं होती
वह आवेग त्वरित कालयात्री है।
व मैं उसका नहीं करता
पिता – धाता
कि वह कभी दुहिता नहीं होती
परम स्वाधीन है वह विश्वयात्री''

– गजाननमाधव मुक्तिबोध

मुक्तिबोध की उपर्युक्त पंक्तियाँ कविता की निरंतर प्रवहमान धारा की ओर संकेत करती हैं। परिस्थितियों से प्रेरित होकर कविता की यह धारा निरंतर गतिशील होती रहती है। आधुनिक हिन्दी काव्य अपनी विविधता और नवीनता के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत और विशद् है। आधुनिक काल में आकर कविता में इतने परिवर्तन और इतनी विविधता दिखाई देती है कि उसमें अनेक वाद दिखाई देते हैं।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य संक्षेप में आधुनिक हिंदी कविता की विकासयात्रा को समझाना है। सौ वर्ष के लंबे अंतराल में आधुनिक हिंदी कविता अपनी विकासयात्रा में विभिन्न पड़ावों से होकर गुजरी है। इस इकाई में उन्हीं महत्त्वपूर्ण पड़ावों का सामान्य परिचय दिया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- आधुनिक हिंदी कविता के विकास की सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आधुनिक हिंदी कविता के विभिन्न चरण एवं उनके नाम से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक हिंदी – काव्य का विकास जिस तरह हुआ है, उसके अन्तर्गत विविध विशेषताओं के आधार पर कालखंडों का नामकरण किया गया है। आप को उन विभिन्न कालखंडों के नामकरण और उनके औचित्य की जानकारी मिल सकेगी।

विभिन्न कालखंडों में रचित काव्य की सामान्य विशेषताओं एवं उसके स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।

2.2 सामान्य परिचय

वादों के जटिल संघात से सम्पृक्त आधुनिक हिंदी काव्य को आलोचकों ने कई वर्गों में विभाजित किया है। काव्यभाषा का आधार ग्रहण करते हुए आचार्य रामचंद शुक्ल ने इसे दो वर्गों में विभाजित किया है–

1. पुरानी अथवा ब्रज काव्य धारा, 2. नवीन अथवा खड़ीबोली काव्यधारा

उन्होंने नवीन काव्यधारा को तीन उपवर्गों में भी रखा है – जिसे वे प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान व तृतीय उत्थान कहते हैं। कुछ आलोचकों ने आधुनिक काल के काव्य को प्रतिनिधि कवियों के नाम पर विभाजित करने का आग्रह किया। जैसे :– भारतेंदुयुग, द्विवेदीयुग आदि।

कतिपय आलोचकों ने प्रवृत्ति विशेष के आधार पर जागरण काल, सुधार काल (आदर्शवादी काव्य), छायावादी काव्य (रहस्यवादी काव्य), प्रगतिवादी काव्य को पूर्व स्वातंत्र्योत्तर काल और स्वातंत्र्योत्तर काव्य के रूप में भी विभाजित करने का प्रयास किया। निरंतर परिवर्तित एवं गतिशील होती हुई प्रवृत्तियों के आधार पर हम आधुनिक हिंदी काव्य को निम्नलिखित रूप से विभाजित कर सकते हैं –

भारतेंदुयुग अथवा जागरण काल अथवा संक्रांतियुग 1850 ई. – 1900 ई.

द्विवेदीयुग अथवा सुधार काल अथवा आदर्शवादी युग अथवा राष्ट्रवादी युग 1900 ई. – 1916 ई.

छायावाद अथवा प्रसाद युग अथवा रहस्यवादी युग अथवा रोमेंटिक युग 1916 ई. – 1936 ई.

प्रगतिवादी युग 1936 ई. – 1943 ई.

प्रयोगवादी युग 1943 ई. – 1947 ई.

स्वातंत्र्योत्तर युग / नवलेखन युग 1947 ई. से निरन्तर

2.3 भारतेंदु युग

आधुनिक हिंदी काव्य का आरंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रेरणा से हुआ। इसीलिए इस आरंभिक कालखंड को भारतेंदु के नाम पर भारतेंदु युग कहा गया। आलोचकों ने भारतेंदुयुग का आरंभ सन् 1850 से माना है। यह वर्ष भारतेंदु का जन्म वर्ष भी हैं। हिंदी में नवचेतना का विकास और भारतेंदु का उदय साथ–साथ हुआ। दूसरे शब्दों में भारतेंदु हरिश्चंद्र के माध्यम से ही आधुनिक हिंदी काव्य में नव चेतना का प्रस्फुटन हुआ। इसलिए आधुनिक काल का समय भारतेंदु के रचनाकाल से माना जाना उचित है। यही कारण है कि कुछ विद्वान् भारतेंदुयुग का आरंभ सन् 1875 से मानते हैं। हालांकि भारतेंदुयुग में काव्य की भाषा प्रमुख रूप से ब्रजभाषा ही थी, लेकिन काव्य में खड़ीबोली का आरंभ इसी युग में हो गया था। इसके प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र बने। वस्तुतः खड़ीबोली कविता का प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र को माना जाता हैं। खड़ीबोली के साथ ही लोकगीतों (लावणी, कजरी, होरी, कहरवा, चैती, गज़ल, विरहा आदि) के प्रयोग के कारण परंपरागत काव्य को परिवर्तित करने एवं तोड़ने का अवसर मिला और काव्य में नवीनता का समावेश हुआ।

रीतिकालीन काव्य प्रवृत्तियाँ एवं नवयुगीन काव्य – चेतना दोनों का मिलन इस काल की कविता में हुआ। स्वयं भारतेंदु के काव्य में इन दोनों का समन्वय एवं संगम दिखाई देता है। संभवतः इसीलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, ''वे अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो पद्माकर और द्विजदेव की परंपरा में दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी ओर वे बंगदेश के माइकेल और हेमचंद्र की श्रेणी में, एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नई भक्ति माला गूँथते हुए दिखाई देते हैं, दूसरी ओर मंदिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हँसी उड़ाते और स्त्री शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते हैं।'' इसके लिए स्वयं भारतेंदु ही नहीं वरन् उस युग का समस्त कविमंडल अपनी युग चेतना से प्रेरित, प्रभावित और संचालित था। इस युग चेतना का क्षेत्र भी एकदम यथार्थपरक, समाजोन्मुख और बहुव्यापी था। यह चेतना देशप्रेम का संदेश देती है। भारत के दुःख – दारिद्रय पर संताप प्रकट करती है। शासन संबंधी सुधारों और जनसत्तात्मक प्रणाली की माँग करती है। अंत में पारस्परिक भेदभाव भूलकर भारतवासियों को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए संगठित होने की प्रेरणा प्रदान करती है। स्वदेश प्रेम, अतीत का गुणगान और सामयिक अवस्था पर रुदन या व्यंग्य, लोकहित, सामाजिक–धार्मिक पुनर्निर्माण, स्वंतत्रता का उद्घोष जनजीवन का स्पष्ट निरूपण प्रकृति का उन्मुक्त चित्रण, राज्य, राष्ट्रभक्ति, राजनैतिक परिवर्तनों की मांग तथा शोषणवृत्ति का विरोध इसके मुख्य द्वार थे। श्रृंगार एवं भक्ति के साथ–साथ सर्वप्रथम इसी युग में आकर काव्य में उपर्युक्त सभी काव्य प्रवृत्तियों का समावेश हुआ। फलस्वरूप हिंदी कविता राजदरबारों की परिधि और श्रृंगारिक उहापरक दृश्यों से निकलकर जन साधारण के मध्य आ गई अब वह राज्याश्रित नहीं, वरन् लोकाश्रित बन गई।

कवियों का मुख्य लक्ष्य जन जाग्रति बन गया। सच तो यह है कि भारतेंदुयुगीन कविता उस मध्यम वर्ग के लिए थी जिसके अंग कवि स्वयं थे। इसमें एक नटखट चपल बालक का–सा उन्मुक्त उल्लास, खीझ एवं मस्ती थी। यहाँ बनावट के लिए स्थान नहीं था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.4 द्विवेदी युग (राष्ट्रवादी युग)

इस युग का विस्तार सन् 1900–1925 तक है। इस युग में आकर ही हिंदी कविता ने रीतिकालीन चोले को एकदम उतार फेंका और जन जागरण, देशप्रेम, समाज सुधार और उपयोगितावाद का स्थान सर्वप्रथम काव्य में महत्त्वपूर्ण बन गया। नारी का महत्त्व, राष्ट्रीय उत्थान, सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य और काव्य में जीवनोपयोगी भावना प्रथम बार खुलकर सामने आने लगी। इस काल के सभी कवि आदर्शप्रिय किंतु जनमानस के सन्निकट थे। सबसे अधिक यह युग काव्यभाषा और शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसी समय काव्य में खड़ीबोली का प्रभुत्व स्थापित हुआ। संस्कृतनिष्ठ भाषा और परंपरागत तुकांत शब्दों के स्थान पर नवछंद प्रकाश में आए। जहाँ तक प्रश्न काव्यरूप का तो डॉ. श्री कृष्णलाल के शब्दों में, ''पच्चीस वर्षों में से ही एक अद्‌भुत परिवर्तन हो गया; मुक्तकों के वनखंड के स्थान पर, खंडकाव्य, आख्यानक काव्य, प्रेमाख्यानक काव्य, प्रबंधक काव्य, गीतिकाव्य और गीतों से सुसज्जित काव्य का निर्माण होने लगा। हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त इसी काल के प्रतिनिधि कवि हैं।

2.5 प्रसाद युग (छायावादी – रहस्यवादी)

साधारणतः दो महायुद्धों के बीच का समय प्रसाद युग कहलाता है। द्विवेदीयुगीन काल की अतिशय बौद्धिकता, उपदेश प्रधानता, आदर्शमयता और दूसरी ओर विषम परिस्थितियों ने हिन्दी काव्य को परिवर्तनोन्मुख कर दिया। फलस्वरूप इनके विरुद्ध प्रतिक्रिया भी होने लगी थी। बंग्ला और आंग्ल जगत् के प्रभाव से कविता का एक सर्वथा नया रूप प्रकाश में आने लगा था, जो प्रारंभ में व्यंग्यमय, किंतु बाद में रूढ़िगत अर्थों में छायावाद कहलाया। डॉ. नगेंद्र के शब्दों में – ''राजनीति में तो ब्रिटिश साम्राज्य की अचल सत्ता और समाज में सुधारवादी दृढ़ नैतिकता संतोष और विद्रोह इन भावनाओं की बहिर्मुखी अभिव्यक्ति का अवसर नहीं देते थे। निदान अंतर्मुखी होकर धीरे–धीरे अवचेतन में जाकर बैठ रही थीं और वहाँ से क्षतिपूर्ति के लिए छायाचित्रों की सृष्टि कर रही थीं। आशा के इन स्वप्नों और निराशा के इन छायाचित्रों की काव्यगत समष्टि ही छायावाद कहलायी।''

इस छायावादी काव्य की प्रमुख विशेषतायें थीं – व्यक्ति–प्रधानता, शृंगार – प्रियता, प्रकृतिप्रेम, कल्पनाधिक्य, विरह और अवसाद की प्रधानता और नवभाषा शैली। प्रमुख कवि थे, प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा नवीन। इस कविता को आधुनिक काल की सर्वोच्च कविता तक कहा गया है। इसका महत्त्व बताते हुए डॉ. नगेन्द्र ने कहा है– ''जिसने कामायनी का समृद्ध रूपक 'पल्लव' और 'युगान्त' की कला 'नीरजा' के अश्रु भरे गीले गीत 'परिमल' और 'अनामिका' की अम्बरचुम्बी उड़ान दी, उस कविता का गौरव अक्षय है।'' उत्तरार्ध में आकर इसी के अन्तर्गत स्वच्छंदतावादी काव्य भी रचा गया, जिसमें छायावादी तत्त्व ही अपनी, अति की सीमा तक पहुँच गये थे। हमारा तात्पर्य वैयक्तिक कुण्ठा, अश्लील शृंगार, चरम निराशा और पलायन– प्रवृत्ति आदि से है। नरेन्द्र शर्मा, अंचल, बच्चन, नीरज आदि की प्रारंभिक रचनायें इसी खेमे का प्रतिनिधित्व करती हैं।

2.6 प्रगतिवादी युग

द्वितीय महायुद्ध तक छायावाद की अतिशय भावुकता, कल्पनातिरेक, निराशा और पलायन –प्रवृत्ति आदि का विरोध होने लगा था। इधर कार्लमार्क्स और फ्रायडीय प्रभाव, अंग्रेजों द्वारा किया जानेवाला दिन – प्रतिदिन का आर्थिक शोषण, भारत में बढ़ती हुई निर्धनता और महँगाई तथा पाश्चात्य जगत् की यथार्थपरक विचारधाराओं आदि कई कारणों ने इस विरोधाभास को और भी अधिक तीव्र कर दिया। फलस्वरूप हिंदी – कविता परिवर्तन की ओर उन्मुख होने लगी। उसने एक नया रूप धारण किया जिसे 'प्रगतिवादी – काव्य' की संज्ञा से अभिहित किया गया ।

इस वर्ग के अन्तर्गत दो प्रकार का साहित्य सर्जन हुआ – प्रथम साम्यवादी प्रचार – प्रसार पर आधारित और द्वितीय राजनीतिक प्रभाव से अलग पूर्णतया यथार्थवादी। पहले को प्रायः गद्य लेखकों ने अपनाया और दूसरे को कवियों ने । इसकी प्रमुख विशेषतायें हैं – शोषकों (पूंजीपति, उच्च वर्ग और भगवान्) का विरोध और शोषितों (जन – साधारण विशेषतः श्रमिक) से सहानुभूति, क्रांति और क्रांतिमार्ग का पक्ष, राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति तथा यथार्थपरक सामाजिक चित्रण की प्रधानता। प्रमुख कवित थे – निराला, पंत, नागार्जुन, केदारनाथ, शिवमंगलसिंह 'सुमन', अंचल, वीरेन्द्र मिश्र और 'दिनकर'।

2.7 प्रयोगवादी युग

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् तत्कालीन परिस्थितियों के कारण प्रगतिवादी काव्य क्षीण पड़ने लगा। यह अधिकांशतः कला – साहित्य में सिमट कर रह गया। दूसरी ओर, राजनीतिक मान्यताओं से परे, यथार्थप्रिय कवि पहले से ही प्रयोगशील काव्य–सर्जन कर रहे थे। उनका दृष्टिकोण नवीन और समसामयिक भारतीय जीवन से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संबंधित था। जीवन की बढ़ती हुई वैयक्तिक – सामाजिक विभीषिकाओं, कुण्ठाओं और समस्याओं एवं काव्य के कला – पक्ष में नवीन – प्रयोग की प्रवृत्ति आदि ने इन कवियो को नये – नये प्रयोग करने की ओर प्रेरित किया। इस प्रकार इस भयंकर युद्धीय वातावरण और नयी प्रतिक्रिया विचारणा से उत्पन्न, "पराजय , भूख और अनैतिकता के बीच में प्रयोगवाद की विद्रोही चेतना उत्पन्न हुई। .... उसमें पवित्रता की चाह थी, सच्चाई की तड़फ थी, न्याय की मांग थी, शांति की कामना थी, आत्मविश्वास की महत्त्वाकांक्षा थी।" अज्ञेय इस प्रयोगवादी काव्य के दिशापुरुष बने और उन्हीं के संपादन में प्रकाशित, सर्वथा नये सात कवियों की सम्मिलित रचनाएँ, तारसप्तक (प्रकाशन सन् 1943) से इसका श्री गणेश हुआ। दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक भी इसी शृंखला की कड़ियाँ थीं। प्रयोगवादी काव्य की प्रमुख विशेषतायें हैं – रूढ़ि का विरोध और नवीनता का समर्थन, यथार्थप्रियता, अति बौद्धिकता, काव्य का व्यक्ति जीवन से प्रत्यक्ष और निकट का संबंध, व्यक्ति की प्रधानता और सामाजिकता की अवहेलना एवं स्वच्छंद भाषा शैली आदि।

2.8 स्वातंत्र्योत्तर युग

स्वतंत्रता के पश्चात् हिंदी काव्यधारा बहुमुखी हो गई। उसमें न तो किसी वाद–विशेष का प्रभाव रहा है और न किसी प्रवृत्ति–विशेष का। यही कारण है कि इस युग में एक ओर प्रयोगवादी काव्य का ही परिवर्तित रूप 'नई कविता' विकसित–वर्धित हो रही है, तो दूसरी ओर मानवतावादी काव्य भी गतिशील है, प्रबंध काव्य भी रचे जा रहे हैं और गीति–मुक्तक काव्य भी। साथ ही साथ अन्तरप्रान्तीय भाषाओं का काव्य–साहित्य भी अनूदित हो रहा हैं। सब मिलाकर इसको प्रगतिशील और मिश्रित–युगीन काव्य कह सकते हैं।

उपर्युक्त सिंहावलोकन से स्पष्ट है कि आधुनिक काल में हिंदी कविता समयानुसार परिवर्तित – संवर्धित होती रही है। उसमें, भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से नये–नये परिवर्तनों और विशिष्टताओं का समावेश दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। आज, यह काव्य इतना विपुल वैविध्यपरक बन चुका है कि इसका सम्यक् आकलन या मूल्यांकन 'खानों' में बॉंट–बॉंट कर करना न तो संभव है और न ही उचित प्रतीत होता है। अनेक वाद–प्रतिवाद के किनारों को ढहाती हुई काव्य की यह सलिला निरंतर प्रवाह–पथ पर अग्रसर हो रही है और निःसंदेह कहा जा सकता है कि नयी–नयी संभावनाओं से परिपूर्ण होते हुए अग्रसर होती रहेगी।

2.9 सारांश

इस इकाई को सार रूप में निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है–

- आधुनिक हिंदी कविता के विकास की सामान्य जानकारी प्राप्त कर सके।
- आधुनिक हिंदी काव्य की विकासयात्रा के विभिन्न पड़ावों के नाम से परिचित हो सके।
- विभिन्न कालखंडों का संक्षिप्त परिचय आपको मिल सका।
- आधुनिक हिंदी कविता के प्रमुख कवियों के नाम से परिचित हो सके।
- प्रत्येक कालखंड की कुछ प्रमुख विशेषताओं से आप संक्षिप्त रूप से परिचित हो सके।

2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

इस इकाई से संबंधित विशिष्ट अध्ययन के लिए निम्नलिखित कुछ पुस्तकें उपयोगी होंगी –

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (उ.प्र.)
2. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेंद्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली।
4. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

2.11 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न :

आधुनिक हिंदी काव्य का विभाजन करते हुए उसके विकास क्रम को प्रमाण सहित स्पष्ट कीजिए।

आधुनिककालीन हिंदी – कविता का विभाजन कौन–कौन से आधारों पर किया गया है ? उपयुक्त विभाजन करते हुए उसकी प्रमुख विकास प्रवृतियों का सप्रमाण परिचय दीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आधुनिक हिंदी काव्य के विकास – खंडों का निर्धारण करते हुए उसकी विकासयात्रा का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

आधुनिक हिंदी कविता के विकास–सोपानों के निर्धारक तत्त्व कौन – कौन से हैं और क्यों ? उनमें से आप सर्वाधिक उपयुक्त किसको समझते हैं ? उपयुक्त प्रमाण देते हुए अपना मत स्पष्ट कीजिए।

आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास का प्रमाण सहित विवेचन कीजिए।

आधुनिक हिंदी कविता को कौन– कौन से विकास – सोपानों में रख सकते हैं ? प्रत्येक सोपान का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

प्रमुख विशेषतायें बताते हुए आधुनिककालीन हिंदी – काव्य की विकासयात्रा का परिचय दीजिए तथा सम्यक् प्रमाणों से उसकी पुष्टि भी कीजिए।

लघूत्तरीय प्रश्न :

आधुनिक कविता के विकास का सामान्य परिचय दीजिए।

आधुनिक हिंदी कविता के कालखंडों का नामकरण समझाइए।

भारतेंदु युग का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

द्विवेदीयुग का महत्त्व समझाइए।

छायावाद के प्रमुख कवियों एवं उनकी रचनाओं के नाम लिखिए।

प्रगतिवाद का सामान्य परिचय दीजिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न :

आधुनिक हिंदी कविता के प्रवर्तक का नाम लिखिए।

भारतेंदु का पूरा नाम क्या ?

भारतेंदु युग की प्रमुख विशेषता क्या है ?

द्विवेदीयुग की समय सीमा क्या है ?

द्विवेदीयुग की प्रमुख विशेषता लिखिए।

छायावाद के प्रवर्त्तक का नाम लिखिए।

छायावाद की प्रमुख विशेषता क्या है ?

प्रगतिवाद का आरंभ कब से माना जाता है ?

प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषता क्या है ?

प्रयोगवाद के प्रवर्त्तक का क्या नाम है?

नई कविता की प्रमुख विशेष क्या है ?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–2

इकाई – 3 भारतेंदु युग : राष्ट्रीय सामाजिक चेतना का युग

संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 सामान्य परिचय
3.3 भारतेंदुयुगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
3.3.1 प्राचीनता एवं नवीनता का समन्वय
3.3.2 प्रकृति का उद्दीपनगत चित्रण
3.3.3 इतिवृत्तात्मकता एवं नीरसता
3.3.4 भाषा
3.3.5 छन्दों का प्रयोग
3.4 सारांश
3.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
3.6 अभ्यास प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी कविता में भारतेंदु का उदय आधुनिक काव्य के लिए युगांतरकारी घटना है। उनके आगमन से काव्य एवं गद्य दोनों में नवीनता का संचार हुआ एवं साहित्य में अनेक नवीन प्रवृत्तियों का समागम हुआ। भारतेंदु बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनका जन्म सन् 1850 ई. में काशी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में हुआ था। साहित्यिक वातावरण भारतेंदु को विरासत में मिला था। उनके पिता गोपालचंद्र 'गिरधर' उपनाम से ब्रजभाषा में श्रेष्ठ काव्य सर्जन के लिए जाने पहचाने जाते थे। भारतेंदु पर अपने पिता का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ा होगा । इसीलिए उन्होंने पाँच वर्ष की अवस्था में एक कविता लिखकर अपनी जन्मजात प्रतिभा का परिचय दिया था –

'ले ब्योढ़ा ठाढ़े भये श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर के सैन्य को हनन लगे भगवान।।'

भारतेंदु की बहुमुखी प्रतिभा अत्यंत विलक्षण थी। इसीलिए उन्होंने साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में विपुल सर्जन किया। साथ ही उन्होंने अपने युग की साहित्य रचना का नेतृत्व किया। आधुनिक हिंदी काव्य का तो प्रवर्त्तन ही भारतेंदु के हाथों हुआ। प्रतिभाशाली एवं विशाल व्यक्तित्व के धनी होने के कारण भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने अपने युग का नेतृत्व करते हुए न केवल स्वयं सर्जनकार्य किया, अपितु अपने समय के अनेक रचनाकारों को साहित्य रचना के लिए भी प्रेरित किया। आधुनिक हिंदी काव्य अथवा खड़ीबोली काव्य के लिए यह समय नवीन प्रवृत्तियों के अभ्युदय का काल था। यही कारण है कि इस काल में आधुनिक काव्य की प्रवृत्तियों का आरंभिक किन्तु महत्त्वपूर्ण अभ्युदय हुआ। दूसरे अर्थों में भारतेंदु ने जिन नवीन काव्य प्रवृत्तियों का इस काल में बीज बोया था, वही आगे चलकर विकसित हुईं।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आधुनिक हिंदी कविता की भूमिका निर्मित करनेवाले भारतेंदुयुग का सर्वांग परिचय प्राप्त करना है। भारतेंदु ने आधुनिक हिंदी कविता का नेतृत्व किया। वे साहित्यकार तो हैं ही, उससे भी आगे वे आधुनिक हिंदी कविता के साथ–साथ आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माता हैं। उस समय साहित्य रचना से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य साहित्य के माध्यम से जनजागरण, सुधार और राष्ट्रीय भावनाओं को जगाना था। भारतेंदु के नेतृत्व में यह कार्य बखूबी हुआ। तत्कालीन परिस्थितियों में साहित्य रचना की प्रेरणा देकर भारतेंदु ने स्वयं प्रभूत साहित्य – सर्जन किया। समय की आवश्यकता के अनुरूप अपने समकालीन साहित्यकारों को साहित्य – रचना के लिए प्रेरित कर उन्होंने युगप्रवर्त्तक की भूमिका का निर्वाह किया। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से भारतेंदुयुग के साहित्य की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट किया जाना इसका प्रमुख उद्देश्य है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- आधुनिक हिंदी कविता के प्रथम चरण 'भारतेंदु युग' से परिचित हो सकेंगे।
- भारतेंदु हरिश्चन्द्र द्वारा आधुनिक हिंदी कविता के विकास के लिए किए गए महत्त्वपूर्ण प्रयासों के विषय में जान सकेंगे। उनके युगप्रेरक व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे।
- खड़ीबोली हिंदी कविता के आरंभिक स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- भारतेंदु एवं उनके मण्डल के साहित्यिक योगदान से अभिज्ञ हो सकेंगे।
- भारतेंदु युग की विभिन्न परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक हिंदी कविता के विकास को समझ सकेंगे।

3.2 सामान्य परिचय

भारतेंदु युग में एक ओर प्राचीन काव्य प्रवृत्तियाँ धीरे–धीरे समाप्त हो रही थीं और दूसरी ओर आधुनिक काव्य प्रवृत्तियाँ उदित हो रही थीं। इस दृष्टि से यह दोनों का संधिकालिक युग है। यही कारण है कि परंपरागत काव्य रचना का आवेग एवं स्वर इस काल में भी प्रभावी है और साथ ही आधुनिक काव्य का नवीन स्वर भी सुनायी देता है। जन–जागरण और देशप्रेम इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई थी। इसीलिए सभी रचनाकारों ने अपनी काव्य रचना में इस प्रवृत्ति को प्रमुखता से उभारा है। भारतेंदु जैसे रचनाकार तत्कालीन सामाजिक समस्याओं से भी पूरी तरह परिचित थे । इसीलिए स्वाभाविक था कि उनके काव्य में वे समस्याएँ प्रमुखता से उभरकर आईं। भारतेंदुयुग के रचनाकार हमारे सामने एक साथ साहित्यकार, पत्रकार और समाज सुधारक के रूप में आते हैं। तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों, समस्याओं एवं विषमताओं को इस काल के रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में प्रमुखता से उभारा है। भारतेंदु और उनके मण्डल के साथी अपने युग और समाज के प्रति कितने जागरूक और सजग थे कि उनकी दृष्टि सामाजिक विषमताओं की ओर बहुत गहराई से उठी हैं। समाज की प्रचलित कुरीतियाँ, शोषण, नारी उत्पीड़न पाश्चात्य कुप्रभाव दिखावा, पुलिस अत्याचार, जनता की लूट–खसोट, कोर्ट–कचहरी का अन्याय एवं इसी तरह के अन्य समस्याओं को उन्होंने अपनी कविताओं में स्थान दिया। इससे यह प्रमाणित होता है कि इस युग के साहित्यकार अपने युग की परिस्थितियों और समस्याओं से अच्छी तरह परिचित थे। इसके साथ ही वे अपनी संस्कृति तथा अपने गौरव को भी विस्मृत नहीं कर सकते थे। इसीलिए उनके काव्य में भारतीय सांस्कृतिक गौरव की विस्तृत झाँकी परिलक्षित होती हैं। इस युग के रचनाकारों ने रीतिकाल की शृंगारिक काव्यपरंपरा का भी सम्यक् सत्कार किया जिसके कारण शृंगार रस की रचनाओं का बाहुल्य भी इस काल में दिखायी देता है। क्षीण ही सही भक्ति और शांत रस की धारा भी इस काल में प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। इसी रचनावैविध्य से भारतेंदुयुग की काव्य प्रवृत्तियों का भी परिवेश निर्मित होता है। इस युग की इन समस्त प्रवृत्तियों को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यह महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की है– ''अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर और द्विजदेव की परंपरा में दिखाई देते हैं, दूसरी ओर बंगदेश के माइकेल म्धुसूदन और हेमचंद्र की श्रेणी में। एक ओर तो राधा–कृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नए भक्तमाल गूँथते हुए दिखाई देते हैं, दूसरी ओर मंदिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हँसी उड़ाते और स्त्री शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते हैं। प्राचीन और नवीन के उस संधिकाल में जैसी शीतल कला का संचान अपेक्षित था, वैसी ही शीतल कला के साथ भारतेंदु का उदय हुआ। इसमें संदेह नहीं।''

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने काव्य में आधुनिक एवं प्राचीन दोनों तत्त्वों को इतनी खूबी के साथ प्रस्तुत किया है कि देखकर आश्चर्य होता है। किसी युग का प्रवर्त्तन करने के लिए आवश्यक है कि युगप्रवर्त्तक न केवल नवीन प्रवृत्तियों से परिचित हो वरन् वह अपने प्राचीन राष्ट्रीय–सांस्कृतिक गौरव से भी पूरी तरह अवगत हो। साथ ही उसमें ऐसी क्षमता हो कि अपनी भावनाओं को आम जन में बहुत सहजता, सरलता एवं प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त कर सके। भारतेंदु हरिश्चंद्र में यह विशेषता कूट–कूटकर भरी हुई थी। इसीलिए वे अपने युग का नेतृत्व करने में सफल हो सके। अपने गुणों एवं विशेषताओं के कारण उन्होंने अपने युग के रचनाकारों को प्रेरित किया, उनका पथ–प्रदर्शन किया और उन्हें एक कुशल नेतृत्व प्रदान किया।

भारतेंदुयुग में भारतेंदु के साथ अन्य जो कवि काव्य रचना में लगे हुए थे, उनमें प्रतापनारायण मिश्र, अंबिकादत्त व्यास, राधाकृष्णदास, बद्रीनारायणचौधरी 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहनसिंह के नाम प्रमुख हैं। इन सभी कवियों की कविताओं पर भारतेंदु का प्रभाव परिलक्षित होता है। इन सभी कवियों ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों, समस्याओं, राष्ट्रीय भावनाओं, सामाजिक सुधार, देश–प्रेम आदि को अपने काव्य में स्थान दिया है। उद्दीपक प्राकृतिक एवं शृंगारिक रचनाओं का भी सम्यक सत्कार करते हुए इन कवियों ने ब्रजभाषा के साथ–साथ खड़ीबोली को भी

महत्त्व प्रदान किया है। इस संबंध में यह विचारणीय है कि भारतेंदु एवं उनके साथी कवियों की काव्य रचनाएं समान प्रवृत्तियों पर आधारित हैं। यहाँ शिवकुमार शर्मा की टिप्पणी विशेष दृष्टव्य है ''भारतेंदुकालीन कविता के विकास में भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, अंबिकादत्त व्यास, राधाकृष्णदास और बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का नाम उल्लेखनीय है। इन सभी कवियों की वाणी में देशभक्ति और राजभक्ति का स्वर ऊँचा है। भारतेंदु जी ने 'भारत दुर्दशा और 'नीलदेवी' नामक नाटकों के गीतों में तथा अन्य स्वतंत्र कविताओं में भारत की हीन दशा का वर्णन किया। 'आवहु सब मिली रोवहु भारत भाई, हा! हा! भारत दुर्दशा देखी न जाई।'' इनकी कविता में कहीं देश के अतीत गौरव की गर्वगाथा है, तो कहीं वर्तमान अधोगति की क्षोभभरी वेदना और कहीं भविष्य की कामना से जगी हुई चिंता। कहीं भक्ति के पद, कहीं श्रृंगार रस के कवित्त और सवैये कहीं उपदेश और सूक्तियाँ तो कहीं उत्सव का वर्णन है। भारतेंदु जी ने हिंदी कविता को नवीन विषयों की ओर अग्रसर किया, किन्तु उसमें किसी नवीन विधान या प्रणाली का सूत्रपात नहीं किया। दूसरे, प्रकृति वर्णन के प्रसंगों में उनका मन जितना नर प्रकृति के वर्णन में रमा है, उतना बाह्य प्रकृति के वर्णन में नहीं। उनके गंगा वर्णन में नागरिकता की अधिकता है, प्रकृति के सहज सौष्ठव की झाँकी कम है।''

3.3 भारतेंदु युगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

इस काल के काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नवत् रेखांकित की जा सकती हैं–

देशभक्ति अथवा राष्ट्रप्रेम :– भारतेंदु का काल राजनीतिक दृष्टि से वह समय है जब देश में स्वतंत्रता का संघर्ष चल रहा था। विदेशी आक्रांताओं से त्रस्त भारत का जनमानस गुलामी की मानसिकता से मुक्त होना चाहता था। मुक्ति की यही आकांक्षा उस काल के कवियों में प्रखर देशभक्ति और व्यापक राष्ट्रप्रेम के रूप में मुखरित हुई। राष्ट्र प्रेम की भावन जन–जन में फैलाना इस काल के कवियों ने अपना महत्त लक्ष्य निर्धारित किया था। तत्कालीन विषम राजनैतिक परिस्थितियों में अपना काम निकालने के लिए नम्र नीति का पालन करते हुए इस काल के कवियों ने कहीं कहीं तत्कालीन सत्ता के प्रति आदर भाव और श्रद्धा भी प्रकट की है। हालांकि इसके पीछे न तो चाटुकारिता थी और न ही राजशाही की प्रशंसा बल्कि इसके पीछे भारतीय समाज का कल्याण भाव ही छिपा हुआ है।

राजभक्ति का उदाहरण भारतेंदु की एक कविता में इस तरह देखा जा सकता है–

'परम मोह फल राजपद दरसन जीवन माहिं।
बृटन देना राजसुत पद परसहुं चित्त चाहि।'

लेकिन इन सभी कवियों ने भारत के हित व सुख की मंगल कामना भी प्रकट की है। बद्रीनारायणचौधरी 'प्रेमघन' के शब्दों में –

करहुं आज सो राज आप केवल भारत हित
केवल भारत के हित साधन में दीने चित्त।'

भारतेंदु जी को अपने देश की गौरवपूर्ण संस्कृति व स्वरूप से बहुत प्रेम था। अतः उन्होंने देश में हो रहे अत्याचारों के प्रति अपनी रोष भरी आवाज उठाई–

अंग्रेज राज सुख साज सबे सुखकारी
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।'

भारतवासी पराधीन है। भारतमाता की इस दीन व क्षीण अवस्था को देखकर भारतेंदु जी व उनके कवि मण्डल का हृदय रो पड़ा। उन्होंने भारत की दीन स्थिति को सुधारने के लिए देवताओं से भी प्रार्थना की।

'कहां करुनानिधि केशव सोए
जानत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए।'

ये कवि विदेशी माल का प्रयोग करने के पक्षपाती नहीं थे, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग करने के पक्षपाती थे। उनकी राष्ट्रीय भावना अनेक रूपों में प्रस्तुत होती है। वे भारतवासियों की इस हीन भाव का विरोध करते हैं–

'मारकीन मलमल बिना चलत कछु नहीं काम
परदेशी जुलहन के मानहु भए गुलाम।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कुछ विद्वानों ने भारतेंदु कालीन राष्ट्रीय भावना की आलोचना की है। उसको संकीर्ण व चाटुकारिता से पूर्ण बताया है। वास्तव में भारतेंदु जैसे सच्चे राष्ट्रभक्त का कदापि यह तात्पर्य नहीं था कि भारतेंदु इत्यादि कवियों के ह्रदय में सच्ची राष्ट्रभक्ति का अभाव है, बल्कि वे पूर्ण रूप से राष्ट्रभक्त, एवं सच्चे समाज सुधारक थे।

समाज सुधार एवं जन जीवन का चित्रण– भारतेंदु ने बहुत स्वाभाविक रूप में किया है, क्योंकि वे एक सच्चे जागरूक साहित्यकार थे। अतः उनकी कविता में समाज सुधार की सशक्त भावना मिलती है। वह समाज का कल्याण करना चाहते थे। उन्होंने अपने युग की प्रवृत्तियों व समस्याओं का चित्रण किया है, परंपरागत अंध–विश्वासों का खण्डन किया, कवि ने अपने युग में फैली सभी कुरीतियों पर घोर कुठाराघात किया। अपने देश के वासियों को उन कुरीतियों के बुरे परिणामों से अवगत करवाया है। डॅ. रामविलास शर्मा के शब्दों में, ''भारतेंदु युग का साहित्य जनवादी इस अर्थ में है कि यह भारतीय समाज में पुराने ढांचे से संतुष्ट न होकर उसमें सुधार भी चाहता है। वह केवल राजनैतिक स्वाधीन का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता समता और भाई–चारे का भी साहित्य है। भारतेंदु स्वदेशी आंदोलन के ही अग्रदूत न थे, वे समाज सुधारकों में भी प्रमुख थे। स्त्री–शिक्षा, विधवा–विवाह, विदेश यात्रा आदि के समर्थक थे। इससे भी बढ़कर बात यह थी कि भारतीय महाजनों के पुराने पेशे सूदखोरी की उन्होंने बड़ी आलोचना की।'' भारतेंदुजी ने यद्यपि सामाजिक पुनरुत्थान की बात कही, लेकिन वह अपने देश की परंपरा को बिल्कुल त्यागना नहीं चाहते –

'लोग क्रिस्तान भए जाथै बल थे साहब
कैसा जब पुन्न धरम गंगा नहाना कैसा
पढ़े जनम तै फारसी, छोड़ वेद मारग दिया,
हा हा हा विधि वाम ने सर्वनाश भारत कियो।

भारतेंदु ने अपने समय की प्रचलित सभी रुढियों का विरोध किया। अछुतोद्धार, स्त्री–शिक्षा इत्यादि को प्रेरणा दी। मानवतावादी धर्म को प्रचलित किया। आर्य समाज की समस्त विचारधाराओं का प्रस्फुटन भी भारतेंदुजी के साहित्य व काव्यों में स्पष्ट रूप से हुआ है। उन्होंने भारत की वैदिककालीन रीति व धर्म को प्रश्रय दिया। विदेशी विचारों के सार तत्वों का समन्वय किया। इस प्रकार उनका काव्य बहुत ही स्वस्थकारी बन गया, जिससे युग को काफी शक्ति मिली।

3.3.1 प्राचीनता एवं नवीनता का समन्वय

भारतेंदु एक ऐसे चौराहे पर खड़े थे जो एक संधि स्थल था, पुरातनता का, व नवीनता का। यह वह युग था जब समाज व काव्य नवीन प्रवृत्तियों से युक्त भी होता जा रहा था अभी भी परंपरागत व प्राचीन परंपराओं का प्रभाव अवशिष्ट था। जहॉं कविता के भावपक्ष व कलापक्ष में ऐसे अनेक नवीन तत्त्वों का समावेश हुआ, वहॉं उसमें परंपरागत, सांस्कृतिक व धार्मिक गौरव का भी योग रहा। मानवतावादी भावना व देशप्रेम की भावना के साथ इन कवियों ने भगवान् के भक्ति रूप में खूब अवगाहन किया। राधा–कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं व भक्ति के पदों में इन कवियों ने अपनी ईश्वर संबंधी आस्था प्रकट की है। यद्यपि इस प्रकार की रचनाओं में रूढ़िबद्धता व परंपराबद्धता है, कहीं–कहीं नख–शिख वर्णन भी मिलते हैं। उनकी ऐसी कविताओं में देव व पद्माकर के काव्य की सी श्रृंगारिकता मिलती है–

''साजि सेज रंग के महल में उमंग भरी
पिय गर लागी काम कसक मिटाय लेत।''

भक्ति के पदों में उनका भक्त ह्रदय पुकार उठता है–

ब्रज के लता पता मोहित कीजो
श्री राधे यह वर मुँह मांग्यो वर दीजै।'

3.3.2. प्रकृति का उद्दीपनगत चित्रण

इस युग के कवियों में प्रकृति का संश्लिष्ट व स्वतंत्र रूप नहीं मिलता। ये कवि चूंकि समाज सुधारक, पत्रकार, इत्यादि थे, अतः इनके पास पर्याप्त अवकाश नहीं था, को भी प्रकृति के एक–एक अंग की विवेचना करने का। ये प्रकृति चित्र परंपरागत हैं। इनमें भी प्रकृति का उद्दीपनगत वर्णन है। इन कवियों की रुचि नर प्रकृति वर्णन में थी, प्रकृति वर्णन में जो कलात्मकता व संवेदनशीलता मिलती है, उनका सर्वथा अभाव इन कवियों के प्रकृति चित्रण में है।

3.3.3. इतिवृत्तात्मकता एवं नीरसता

कवि समाज सुधारक होने के कारण इन कवियों की कविता में अनुभूति की तीव्रता, कल्पना की उदारता व संप्रेषणीयता का अभाव है। नवयुग की अभिव्यक्ति करनेवाली यह कविता कलात्मक नहीं हो सकती। डा. केसरीनारायण शुक्ल के शब्दों में, ''इस युग की कविता में कलात्मकता के अभाव का कारण इस उत्थान में विचारों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का संक्रांति काल होना है। फिर जनता की मनोवृत्ति भी बदलनी थी, उस पर प्रेम गीतों का प्रभाव हटाना था, ये कवि अपनी सामयिक समस्याओं के प्रति अधिक जागरूक थे। इसीलिये उसी का यथार्थ विवेचन करने व समाधान ढूँढने में लगे रहने के कारण इनकी कविता में इतिवृत्तात्मकता व नीरसता मिलती है। उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति प्रधान है।''

3.3.4 भाषा

इन कवियों ने पद्य के क्षेत्र में चली आती हुई ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया। यद्यपि खड़ीबोली में भी काव्य रचना का क्रम शुरु हो गया था तथापि वह अभी बिल्कुल साहित्यिक व कलात्मक नहीं था। इस युग के कवियों ने खड़ीबोली में भी पद्य रचना की। श्रीधर पाठक की कविता देखें –

'वंदनीय वह देश, जहाँ के देशी निज अभिमानी हों
मानवता में बंधे, द्वेष परता के अज्ञानी हों।''

खड़ीबोली का कितना भी प्रचार उस युग में था बावजूद इसके इस काल के कवियों ने ब्रजभाषा के प्रति विशेष आकर्षण दिखलाया। ब्रजभाषा के सौंदर्य पर वे इस कदर मोहित थे कि श्रीधर पाठक जैसे कवियों को कहना पड़ा 'ब्रजभाषा सरीखी, रसीली वाणी को कविता के क्षेत्र से बहिष्कृत करने का विचार केवल उन हृदयहीन रसिकों के हृदय में उठना संभव है जो इस भाषा के स्वरूप ग्रहण से शून्य, उसकी सुधा के आस्वादन से बिल्कुल वंचित हैं। भारतेंदुकाल के प्रत्येक कवि पर इसका काफी प्रभाव था। ब्रजभाषा में बहुत ही सुंदर काव्य रचा गया।''

3.3.5 छंदों का प्रयोग

छंद प्रयोग की दृष्टि से भारतेंदुकाल में कोई विशेष नवीनता, मौलिकता दृष्टिगत नहीं होती। अधिकतर कवियों ने परंपरागत छंदों में ही अपनी रचनाएँ की हैं, जिनके अंतर्गत सवैया, रोला, छप्पय, कवित्त, लावनी, कजरी आदि छंद प्रमुख हैं। अपनी भावनाओं को जन–जन और लोकजीवन से जोड़ने के कारण अनेक कवियों ने लोकगीत और संगीत की तर्ज पर ठुमरी, कहरवा, खेमटा, चैती, होली, लावणी, विरहा आदि लोक छंदों को अपनाया है। कतिपय कवियों ने संस्कृत के वर्णिक छंदों को भी लिया है।

कहा जा सकता है कि भारतेंदु मण्डल के साहित्यकारों ने साहित्यिकता के संरक्षण और काव्यत्व के अनुरक्षण का पूर्ण प्रयास भले ही न किया हो, उनकी कला का पूर्ण विकास भले ही दृष्टिगत न होता हो, लेकिन आगे विकसित होने वाली काव्य परंपरा की सुदृढ़ आधारशिला भारतेंदुयुग में स्थापित हुई। इस काल की साहित्य रचना का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व अक्षुण्ण है। राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत भारतेंदुयुग की काव्य रचना आगे आनेवाले कवियों को प्रेरित करने की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण और उपयोगी हैं।

3.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से भारतेंदुयुग के सामान्य परिचय के साथ उसकी प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट किया गया । संक्षेप में इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियों को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है–

- भारतेंदु ने आधुनिक हिंदी कविता का समारंभ कर हिंदी काव्य के क्षेत्र में नवीन युग का सूत्रपात किया।
- उन्होंने न केवल स्वयं तत्कालीन अपेक्षाओं के अनुरूप साहित्य सर्जित किया, अपितु अपने सभी साहित्यकार मित्रों को भी समसामयिक विषयों पर लिखने के लिए प्रेरित किया। अपने युग का नेतृत्व करने के कारण उन्हें युग – प्रेरक, युग निर्माता के रूप में जाना जाता है।
- जन जागरण और राष्ट्रीय भावनाओं के पोषण में भारतेंदुयुग अग्रणी रहा है।
- तत्कालीन सामाजिक बुराइयों अशिक्षा, बेरोजगारी, गरीबी, असमानता, भेदभाव आदि के विरुद्ध इस युग में आवाज उठाई गई।
- साहित्य की लगभग सभी विधाओं में इस युग के रचनाकारों ने कलम चलाई।
- राष्ट्रीय स्वाभिमान, देशप्रेम, सामाजिक सुधार इस काल की रचना के प्रमुख विषय बने।
- यद्यपि अधिकतर ब्रजभाषा का प्रयोग इस काल में हुआ पर खड़ीबोली का आरंभ भी हो गया था।
- लोक शैली के माध्यम से लोकजीवन पर मजबूत पकड़ इस काल के रचनाकारों ने बनाई।
- इस काल की साहित्य – रचना ने अपने आगे आने वाले युग को प्रेरित करने का कार्य किया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

आधुनिक हिंदी का आदिकाल – श्रीनारायण चतुर्वेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।

भारतेंदु मंडल, ब्रजरत्नदास, श्री कमलमणि ग्रंथमाला – कार्यालय, काशी।

भारतेंदुयुग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास – रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चनसिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

3.6 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न :

1. आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में भारतेंदु युग का महत्त्व निर्धारित कीजिए।
2. ''भारतेंदु युग और हिन्दी कविता'' विषय पर एक निबन्ध लिखिए।
3. भारतेंदु युग के प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरीय प्रश्न :

1. भारतेंदुयु का सामान्य परिचय दीजिए।
2. भारतेंदु युग की सामाजिक परिस्थिति का उल्लेख कीजिए।
3. भारतेंदुयुग के प्रमुख साहित्यकारों के नाम लिखिए
4. भारतेंदुयुग की दो प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।
5. ''भारतेंदु साहित्यकार से बड़े साहित्यकार निर्माता हैं।'' इस कथन को समझाइए।
6. भारतेंदुयुग में प्रयुक्त प्रमुख छंदों का परिचय दीजिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न :

1. भारतेंदु का पूरा नाम क्या था ?
2. भारतेंदु किस उपनाम से कविताएँ लिखते थे ?
3. भारतेंदु के पिता किसमें रचनाएँ करते थे ?
4. भारतेंदु ने बचपन में कौनसी कविता लिखी थी ?
5. भारतेंदु ने कौनसे नाटक लिखे ?
6. भारतेंदु ने किन लोक छंदों का प्रयोग किया ?
7. भारतेंदु ने कौनसी पत्रिकाओं का संपादन किया ?
8. भारतेंदुयुग के प्रमुख आलोचक कौन हैं ?
9. खड़ीबोली कविता का आरंभकर्त्ता किसे माना जाता है ?
10. भारतेंदु द्वारा रचित पहेलियाँ, मुकरियाँ किस कवि से प्रभावित – प्रेरित हैं?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–4 द्विवेदी युग : परिष्कार एवं आदर्शवादी भावनाओं का युग

संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 सामान्य परिचय
4.3 द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां
    4.3.1 देशभक्ति एवं राष्ट्रप्रेम का प्रखर स्वर
    4.3.2 नारी के प्रति संवेदनात्मक दृष्टिकोण
    4.3.3 सामाजिक सुधार की भावना
    4.3.4 बौद्धिकता की प्रधानता
    4.3.5 धार्मिक भावनाओं में परिवर्तन
    4.3.6 इतिवृत्तात्मकता
    4.3.7 अनुवादकार्य
    4.3.8 प्रकृति चित्रण
4.4 सारांश
4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
4.6 अभ्यास प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4.0 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी काव्य के विकास में अगला और द्वितीय चरण द्विवेदीयुग के नाम से जाना जाता है, जिसकी समय सीमा मोटे तौर पर सन् 1900 से 1920 ई. मानी जाती है। जिस तरह आधुनिक हिंदी कविता के आरंभिक चरण में उसे भारतेंदु हरिश्चंद्र का मजबूत संबल प्राप्त हुआ था, उसी तरह उसके द्वितीय चरण में उसे युगगुरु–युगप्रेरक आचार्यप्रवर महावीरप्रसाद द्विवेदी का कुशल नेतृत्व मिल गया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के कुशल नेतृत्व में आधुनिक हिंदी कविता में जो प्रगति और उन्नति इस द्वितीय चरण में हुई, वह प्रत्येक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। जिस तरह भारतेंदु हरिश्चंद्र की विलक्षण प्रतिभा एवं नेतृत्व कौशल से कवियों का एक बड़ा मण्डल खड़ा हो गया था, उसी तरह आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के युग प्रवर्त्तक व्यक्तित्व के प्रभाव से रचनाकारों का एक बहुत बड़ा वर्ग बन गया था। आचार्य द्विवेदी ने अपने संघर्षशील व्यक्तित्व से समकालीन साहित्यकारों को अपनी ओर आकृष्ट किया। अपनी निर्भीकता, स्पष्टवादिता, निष्पक्षता तथा अपने कठोर अनुशासन से उन्होंने अपने युग के साहित्यलेखन का सफल नेतृत्व किया। भाषा परिष्कार की दृष्टि से आचार्य द्विवेदी का प्रयास और योगदान समूचे हिंदी साहित्य में किसी से तुलनीय नहीं है। उनके द्वारा सर्जित–रचित साहित्य का भले ही कोई विशेष मूल्य न स्वीकार किया जा सके, पर साहित्य निर्माता के रूप में आचार्य द्विवेदी का अविस्मरणीय योगदान एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। द्विवेदीयुग के सभी रचनाकार द्विवेदीजी के साहित्यिक व्यक्तित्व से बहुत अधिक प्रभावित थे। हालांकि वे स्वयं एक सफल कवि, निबंधकार, अनुवादक, संपादक, पत्रकार एवं आलोचक थे पर एक संपादक और आलोचक के रूप में उनका योगदान सबसे अधिक है। अपने आलोचकीय एवं संपादकीय दृष्टि से द्विवेदी जी के हिंदी काव्य रचना को संयत एवं निर्दिष्ट स्वरूप प्रदान किया। कविता के साथ–साथ उन समस्त विधाओं को विकसित एवं संवद्धित करने में उनका बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है, जिनका आरंभ भारतेंदुयुग में हो चुका था। एक कुशल संपादक के रूप में सन् 1903 से 'सरस्वती' का संपादन दायित्व स्वीकार करने के साथ ही आचार्य द्विवेदी ने समस्त विधाओं को अपने कौशल से व्यवस्थित एवं सुदृढ़ किया।

नैतिकता के प्रति विशेष आग्रह एवं कठोर अनुशासन के कारण आचार्य द्विवेदी में कठोरता तथा आदर्शवादिता का विशेष आग्रह है। इस कारण से उनके अनेक समकालीन मित्र उनसे रूष्ट तक भी होने लगे थे, पर द्विवेदी जी बिना इसकी परवाह किए अपने साहित्यिक दायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वाह करते रहे। हिंदी भाषा की अस्थिरता दूरकर उसे व्याकरणबद्ध करते हुए भाषा को संस्कारित एवं परिष्कृत करने में द्विवेदीजी का बहुत बड़ा योगदान है। व्याकरण का मनमाना प्रयोग एवं भाषा की अशुद्धियों को देखकर उन्होंने भाषा सुधार का आंदोलन आरंभ किया, जिसके कारण भाषा की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। भाषा परिष्कार, व्याकरण आदि पर विशेष बल देने

के कारण द्विवेदीजी के मौलिक रचनाकर्म में विशेष नवीनता परिलक्षित नहीं होती। यही कारण है कि आलोचकों ने उनके मौलिक सर्जन से अधिक महत्त्व उनके साहित्य निर्माता एवं नेतृत्व कौशल वाले व्यक्तित्व को दिया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है 'आचार्य द्विवेदीजी वस्तुतः आचार्य थे। आचार्य का कार्य मार्ग प्रदर्शन होता है। साहित्य में जितने आचार्य होते हैं, वे शुद्ध साहित्य का निर्माण नहीं करते... रीति की प्रतिष्ठा करते हैं। द्विवेदीजी ने हिंदी में रीति की प्रस्थापना का ही कार्य किया। इसलिए यदि द्विवेदीजी की मौलिक रचनाओं की खोज में कोई हैरान होकर यह मालूम करना चाहे कि उन्होंने क्या लिखा तो बहुत बड़े धोखे में रहेगा।''

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सामने साहित्य रचना से बड़ा काम साहित्य सर्जन की सही दिशा में कवियों रचनाकारों को प्रेरित करना था। यह कार्य उन्होंने बखूबी किया। अपने युग की काव्य रचना का नेतृत्व करते हुए द्विवेदी जी ने गद्य–पद्य की की दूरी कम की। काव्यरुचि का परिष्कार करने की दृष्टि से उन्होंने परंपरागत काव्य रचना को अस्वीकार करते हुए नवीन विषयों पर लिखने के लिए कवियों को प्रेरित किया। काव्य रचना के लिए सीमित विषयों से बाहर निकल विविध नूतन विषयों पर लिखने के लिए उन्होंने कवियों का आह्वान किया और कहा कि–चींटी से लेकर हाथी तक कविता के विषय हो सकते हैं। परिणामस्वरूप उस युग के कवियों का ध्यान विविध नवीन विषयों की ओर आकृष्ट हुआ। उस युग के सबसे बड़े कवि मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदीजी के इसी प्रेरक व्यक्तित्व का परिणाम थे, जिन्हें उन्होंने व्यापक दृष्टिकोण अपनाने तथा नित नवीन विषयों पर लिखने के लिए प्रेरित किया था। 'भारत भारती' तथा 'साकेत' जैसी अनूठी–नूतन तथा युग प्रेरक कृतियाँ द्विवेदीजी की महान प्रेरणा का ही फल कही जा सकती है।

4.1 उद्‌देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आधुनिक हिंदी काव्य की विकासयात्रा के दूसरे चरण द्विवेदी युग जिसमें हिंदी कविता की उल्लेखनीय प्रगति हुई और खड़ीबोली के माध्यम से हिंदी कविता का व्यापक–विकसित रूप दृष्टिगत हुआ, का विशिष्ट परिचय करवाना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- द्विवेदी युग की हिंदी कविता के स्वरूप से भलीभांति परिचित हो सकेंगे।
- भारतेंदु के बाद आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आधुनिक हिंदी साहित्य का नेतृत्व किया। उनके युगप्रेरक व्यक्तित्व ने खड़ीबोली में व्यापक काव्यसर्जन के लिए प्रेरित किया। आचार्य द्विवेदी के युगप्रेरक – युगनिर्माता व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे।
- भाषा परिष्कार की दृष्टि से यह युग सब से विशिष्ट और उल्लेखनीय कहा जा सकता है। हिन्दी भाषा के परिष्कार के लिए किए गए प्रयास से परिचित हो पाएंगे।
- द्विवेदी युग की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

खड़ीबोली में की गई रचनाओं, विभिन्न भाषाओं से किए गए अनुवादकार्य एवं उस युग के महत्त्वपूर्ण कवियों के विषय में जान सकेंगे।

4.2 सामान्य परिचय

आधुनिक कविता के विकास की दृष्टि से यदि भारतेंदुयुग को यदि आरंभिक काल कहें तो द्विवेदीयुग को विकासकाल की संज्ञा दी जा सकती है। दूसरे अर्थों में भारतेंदुयुग में जिस हिंदी कविता का बीजारोपण हुआ, उसे पुष्पित और पल्लवित होने का पर्याप्त अवसर द्विवेदीयुग में हुआ। भारतेंदुजी के प्रयास से उनके युग में जिस राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का आरंभ हुआ था, उन्हीं भावनाओं को व्यापक रूप से प्रखर अभिव्यक्ति के साथ द्विवेदीजी ने प्रोत्साहित किया। इस काल में राष्ट्रीय भावनाओं का जो व्यापक प्रचार और प्रसार हुआ, उसमें द्विवेदीजी व उनके सहयोगी तथा समकालीन साहित्यकारों का अविस्मरणीय योगदान रहा है। काव्य में आदर्शवादी भावनाओं की जैसी अभिव्यक्ति द्विवेदीयुग में हुई वह हिंदी जगत् की विशेष उल्लेखनीय घटना है। जब लोग अपने प्राचीन सांस्कृतिक गौरव को विस्मृत करते जा रहे हो, ऐसे में उन्हें अपने राष्ट्रीय गौरव और आदर्शों की ओर उन्मुख करना बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कहा जा सकता है। इसके लिए द्विवेदीयुग का प्रयास बहुत स्तुत्य है। यही कारण है कि अतीत स्तवन की जैसी विस्तृत और मनोहर झाँकी इस काल में दिखाई देती है, वैसी आधुनिक काल में अन्य किसी युग में नहीं। द्विवेदीयुग का कालखण्ड ऐसा समय है जब सामजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन का क्रम बहुत जोर से चलने लगा था। परिवर्तन की इस त्वरा में द्विवेदीयुग के रचनाकारों ने पुनरुत्थान का संकल्प लिया। जन जागरण का कार्य भारतेंदुयुग में हो चुका था। अब पुनरुत्थान के माध्यम से राष्ट्रीय सुधार की आवश्यकता थी। इसीलिए इस काल के काव्य में राष्ट्रीय सुधार की सर्वाधिक प्रखर अभिव्यक्ति हुई है। समाज सुधार,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नारी सुधार, धार्मिक सुधार, भाषा सुधार, साहित्य सुधार, काव्य रुचि सुधार आदि को दृष्टिगत कर इस समय सर्वत्र सुधार की अनुगूँज सुनाई देती है। इस काल में हिंदी साहित्य का सर्वतोमुखी सुधार हुआ और उस पर अनेकदेशीय तथा विदेशीय साहित्य एवं विचारधाराओं का व्यापक असर पड़ा।

परिवर्तन और सुधार की इन परिस्थितियों में द्विवेदी युग के रचनाकारों ने काव्य की बदलती एवं परिष्कृत होती रुचि को पहचान कर विविध नवीन विषयों पर सर्जन का क्रम आरंभ किया। इसके पीछ आचार्य द्विवेदी की महान् प्रेरणा कार्य कर रही थी। उन्होंने स्वयं सर्जन कार्य भले ही अपेक्षाकृत कम किया हो, पर अन्य साहित्यकारों को इस ओर प्रेरित कर व्यापक साहित्य निर्माण में अविस्मरणीय योगदान दिया। द्विवेदीजी ने भाषा संस्कार पर विशेष बल दिया तथा ऐसा प्रयास किया कि गद्य और पद्य की भाषा की दूरी मिट जाए। इसके पूर्व गद्य में खड़ीबोली का प्रयोग तो होने लगा था, पर कविता में खड़ीबोली का प्रयोग करने में अभी भी हिचक महसूस की जा रही थी। द्विवेदीजी ने यह हिचक दूर की और यह सिद्ध किया कि खड़ीबोली में न केवल काव्य रचना हो सकती है, बल्कि सुंदर और श्रेष्ठ रचना की जा सकती है। परिणामतः काव्य का विषय क्षेत्र इस काल में व्यापक और विस्तृत हो गया।

द्विवेदी युग में आकर रीतिकालीन शृंगारपरंपरा की काव्य रचना का प्रवाह रुक गया। भारतेंदुयुग में जहाँ परंपरागत काव्य रचना के प्रति विशेष आकर्षण दिखाई देता है, वहीं द्विवेदीयुग में शृंगार रचना के प्रति बिल्कुल निषेध का भाव दृष्टिगत होता है। आदर्शवादी भावनाओं की अधिक अभिव्यक्ति के कारण इसकाल में मर्यादा पर व्यापक जोर दिया गया। परिणामतः प्रबंधकाव्यों का प्रणयन इस युग में सर्वाधिक हुआ। प्रबंधात्मकता के कारण इस काल के काव्य में कलात्मकता का किंचित् अभाव है। इसके साथ ही नीरसता और शुष्कता का आरोप भी इस काल की कविता पर लगाया जाता है। कहा गया कि द्विवेदीयुगीन कविता इत्तिवृत्तात्मक है। इस काल के काव्य परिवेश पर डॉ. श्रीकृष्ण लाल की टिप्पणी विशेष उल्लेखनीय है–

"यह स्वच्छंदतावादी काव्य की सैद्धांतिक भूमिका तैयार हुई थी। इसका कलात्मक पक्ष आगे के छायावादी युग में विकसित हुआ। 1912 ई. के बाद छायावादी व्यक्तिपरक गतियों का काल आरंभ होता है, जिसमें कला की दृष्टि से स्वच्छंदतावाद के अनेक तत्त्व पाए जाते हैं। इस काव्य के साथ स्वतंत्र स्वच्छंदतावादी भावधारा के, विशेषकर प्रेम तथा प्रकृति के काव्य भी आधुनिक युग के उत्तरार्द्ध में हुए हैं, परंतु भाषा, छंद एवं अन्य साहित्यिक परंपराओं तथा रूढ़ियों से मुक्त होकर उन्मुक्त स्वच्छंदतावाद का जो रूप हमको आधुनिक युग के मध्यकाल (द्विवेदी युग) में श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों में मिलने लगा, वह स्वतंत्र रूप से आगे विकसित न हो सका।"

द्विवेदीयुग वस्तुतः सुधार का युग था। द्विवेदीजी भाषा में सुधार के पक्षधर थे ही, उधर आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी तथा रामकृष्ण मिशन जैसी धार्मिक और सामाजिक संस्थाएँ अपने–अपने क्षेत्र में सुधारात्मक गतिविधियों में क्रियाशील थीं। द्विवेदी जी अपने कठोर अनुशासन से तनिक भी समझौता नहीं करने वाले साहित्यकार थे। उन्होंने काव्य रचना को जो निर्दिष्ट दिशा दी, उसी के आधार पर कविता की नई धारा प्रवाहित होने लगी। देशभक्ति एवं राष्ट्रप्रेम की जो भावना इस युग में व्यापक रूप से अभिव्यक्त होने लगी थी तथा अतीत के गौरव का जो गान इस काल में प्रस्फुटित हुआ था उसी के आधार पर इस युग के रचनाकारों ने पुरुत्थानवादी काव्य सर्जन के प्रति विशेष ध्यान दिया, जिसमें अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', गोपालशरणसिंह, नाथूराम शर्मा आदि के नाम सम्मिलित हैं। आचार्य द्विवेदी की प्रेरणा से इस युग के कवियों ने खड़ीबोली को काव्यभाषा बनाने में विशेष उल्लेखनीय योगदान दिया।

4.3 द्विवेदी युग के काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

द्विवेदीयुगीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नवत् रेखांकित की जा सकती हैं –

4.3.1 देशभक्ति एवं राष्ट्रप्रेम का प्रखर स्वर

द्विवेदीयुग के काव्य में देशभक्ति, गौरव, स्वाभिमान तथा राष्ट्रप्रेम का प्रखर स्वर सुनाई देता है। वास्तव में यह युग राष्ट्रप्रेम और देशभक्ति की भावनाओं से ओत–प्रोत था। चारों ओर यही स्वर सुनाई दे रहा था। देश में ऐसा वातावरण बन चुका था कि प्रत्येक की जुबान पर बस यही था–

"हम भारत के और हमारा भारत प्यारा।
स्वतंत्रता है जन्मसिद्ध अधिकार हमारा।"

राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति के इस स्वर के पीछे तत्कालीन परिवेश में घटित होनेवाली कुछ प्रमुख घटनाओं का हाथ है। सन् 1905 में बंगाल का विभाजन एक ऐसी घटना थी, जिससे भारतीय जनमानस पूरी तरह क्षुब्ध हो उठा था। परिणामतः स्वदेशी आंदोलन ने जोर कपड़ा। दूसरी ओर कुछ ही समय पूर्व सन् 1905 में जापान जैसे छोटे देश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

द्वारा रूस जैसे विशाल देश का पराजित होना ऐसी घटना थी जिसका सीधा प्रभाव भारतीय मनोबल पर पड़ा। जापान के गौरव–स्वाभिमान ने भारतीय पौरुष एवं स्वाभिमान को कुरेदा और जगाया। कमतरी और हीनता की भावना से ग्रस्त भारतीय जनमानस कसमसाया और इसमें सोया हुआ स्वाभिमान हुँकार कर उठा। जातीय गौरव और राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा के लिए अपनी जान तक दे देने वाले भारतीयों का मनोबल और आत्मसम्मान शंखनाद कर उठा–

'लाख बांधों तुम हमें जंजीर से।
वक्त पर निकलेंगे फिर भी तीर से।।'

स्वतंत्रता की कामना से ओत–प्रोत अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान के लिए देश की रक्षा करने की भावना से पूरा देश आंदोलित होने लगा।

राष्ट्रप्रेम और देशभक्ति का जो वातावरण उस समय निर्मित हो रहा था उसको प्रखर और तीव्रतर करने में द्विवेदीयुग के कवियों ने विशेष योगदान दिया। उनकी रचनाओं में इसका प्रखर स्वर सुनाई देता है। राष्ट्रीय भावनाओं को जगाने की दृष्टि से इस युग के लगभग सभी कवियों ने इस विषय को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। इस क्रम में श्रीधर पाठक की 'हिंद वंदना, 'भारतश्री', 'भारत प्रशंसा', महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'जन्मभूमि', 'भारतभूमि', 'आर्यभूमि', 'प्यारावतन', मैथिलीशरणगुप्त की 'मातृभूमि', गोपालशरण सिंह की 'मातृभूमि', रुपनारायण पाण्डेय की 'मातृमूर्ति, सियारामशरण गुप्त की 'भारतलक्ष्मी, रामचरित उपाध्याय की 'भव्य भारत' आदि कविताओं का उल्लेख किया जा सकता है।

देशभक्तिविषयक कुछ कविताओं के उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

यह जो भारतभूमि हमारी,
जन्मभूमि हम सबकों प्यारी।
एक गेह सम विस्तृत आरी,
प्रजा कुटंबतुल्य है सारी।' (महावीरप्रसाद द्विवेदी)

अथवा

'नीलांबर परिधान हरित पट पर सुंदर है,
सूर्य चंद्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डन है।
बंदी जन खग वृन्द शेषफन सिंहासन हैं।'

अथवा

आशीर्वाद दीजिये हे मां, करने को स्वदेश का त्राण,
विचलित होऊं नहीं युद्ध से निकल जाए चाहे मम प्राण। (सियारामशरण गुप्त)

वस्तुतः देशप्रेम, राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान की अभिव्यक्ति इस काल की स्वाभाविक प्रवृत्ति बन गई थी, जो इस युग की कविताओं में सर्वत्र सुनाई पड़ती है।

4.3.2 नारी के प्रति संवेदनात्मक दृष्टिकोण

द्विवेदीयुग के कवियों ने नारी के प्रति एक सम्मानजनक दृष्टिकोण अपनाया है। सामाजिक सुधार की भावना की सर्वव्यापी अभिव्यक्ति के कारण नारी जागरण की ओर इस काल में विशेष ध्यान दिया गया। नारी मुक्ति आंदोलन उस काल में सामाजिक एवं राजनीतिक आंदोलन का मुख्य पक्ष था, इसलिए उस काल के काव्य में नारी के प्रति एक सकारात्मक सोच के साथ संवेदनात्मक दृष्टि उभर कर आई है। इस काल के कवियों ने सदियों से समाज में उपेक्षित नारी के प्रति विशेष तरह की सहानुभूति एवं समानुभूति प्रकट की है। नारी अबला नहीं है, वह उपेक्षणीय नहीं है, उसे सम्मान से जीने का अधिकार है, उसकी शिक्षा–दीक्षा, रहन–सहन, मान–मर्यादा के प्रति समाज को उचित ध्यान देना चाहिए। इस तरह की भावनाएँ इस काल की कविताओं में सर्वत्र सुनाई देती हैं।

इस युग के अधिकतर कवियों ने समाज में नारी की दयनीय स्थिति को रेखांकित करते हुए उसकी दारुण व्यथा एवं करुण कथा को मार्मिक संवेदन के साथ अभिव्यक्त किया है। इस अभिव्यक्ति में नारी के प्रति उनका सहानुभूतिपूरक दृष्टिकोण स्वाभाविक और सहज रूप में प्रकट हो गया है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपनी एक कविता में नारी जीवन की दुर्दशा का एक बहुत ही कारुणिक चित्र खींचा है–

'महामलिन से मलिन काम करती है दिन रात,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दुःखी देख पति–पिता–पुत्र को व्याकुल हो कृश करती गात।
हे भगवान्, हाय इस पर भी उपमा कैसी पाती है,
ढोल तुल्य ताड़न अधिकारी 'हमी' बनाई जाती है।''

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' में नारियों पर पुरुषों द्वारा किए गए अत्याचार की निंदा की है। नारी के प्रति गहन संवेदनात्मक दृष्टिकोण का फल है कि गुप्तजी ने उसके प्रति बहुत गहरी वेदना प्रकट की है–

'अबला जीवन हाय, तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।''

द्विवेदीयुग के कवियों ने नारी पर किए जाने वाले अत्याचारों एवं उसकी दारुण दशा पर केवल कविताएँ ही नहीं लिखी हैं, वरन् समाज में उसे पुरुषों के समान प्रतिष्ठित एवं सम्मानजनक स्थान दिलाने का भी प्रयत्न किया हो। नारी को सम्मानजनक जीवन जीने के लिए यह आवश्यक है कि वह पुरुषों की तरह पढ़ी–लिखी शिक्षित हैं। इस बात को समझकर इस युग के रचनाकारों ने स्त्री शिक्षा की आवश्यकता को बहुत गहराई से अनुभव किया। इस भावना की अभिव्यक्ति अनेक कवियों ने स्वाभाविक ढंग से की है–

कर तरनी पद उच्च उन्हें शिक्षा तुम दीजै,
मिलित कुटुंबों में न निरादर तिय का कीजै।
ठहरौनी तज दुःखद चाल परदै की छोड़ो,
सुत सम तनया भी न सम्झने से मुँह मोड़ो।'' (मिश्रबंधु–भारत विनय)

नारी के संबंध में द्विवेदीयुग के कवियों ने जो भावनाएँ व्यक्त की हैं, वह नारी के प्रति उनकी गहन मार्मिक संवेदन–दृष्टि का परिचायक है। वे उन्हें समाज के एक आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में स्वीकार करते हैं तथा उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाने पर जोर देते हैं। यहाँ सत्यदेव (शिकागो विश्वविद्यालय नाम से सरस्वती, मार्च 1907 में प्रकाशित लेख) द्वारा की गई टिप्पणी विशेष रूप से द्रष्टव्य है–

''हमारे देश की उन्नति तभी हो सकती है, जब हमारी माताएँ, हमारी बहनें, हमारी कन्याएँ भी सब कामों में उन्नति करें। भारतवर्ष में स्त्री शिक्षा को देखकर दुःख होता है। क्या वह जाति कभी उन्नति के शिखर पर पहुँच सकती है, जहाँ स्त्रियों की अधोगति हो।''

सामाजिक उन्नति के लिए स्त्री शिक्षा पहली शर्त है, यह बात द्विवेदीयुग के रचनाकार भलीभाँति समझ सके हैं। वस्तुतः इस काल में नारी विषयक उच्च एवं उदात्त भावनाएँ व्यक्त हुई हैं, जिसका उद्देश्य नारी की वास्तविक स्थिति से समाज को परिचित करवाना तथा उनके प्रति सच्ची मार्मिक संवेदना प्रकट करना है।

4.3.3 समाजिक सुधार की भावना

सामाजिक सुधार के प्रति इस काल के कवियों में बहुत व्यापक जाग्रति दिखाई देती है। प्रत्येक दृष्टि से इसे सुधार का काल भी कहा जा सकता है। जिस तरह से धार्मिक और सामाजिक संस्थाएँ सामाजिक उत्थान और सुधार में क्रियाशील थीं, उसी तरह आचार्य द्विवेदी साहित्य में सुधार के पक्षधर थे। इस काल के रचनाकार यह समझते थे कि सामाजिक कुरीतियाँ और धार्मिक अंधविश्वास भारतीय राष्ट्रीय जन जागरण में सबसे बड़े बाधक तत्त्व हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में पुरानी, सड़ी–गली मान्यताओं तथा रूढ़िग्रस्त सामाजिक रीति–रिवाजों के खिलाफ कई धार्मिक और समाज सुधार संबंधी आंदोलन हुए। उन्हीं आन्दोलनों का प्रभाव द्विवेदीयुग के रचनाकारों पर पड़ा और उनके प्रति सुधार की भावना जाग्रत हुई। समाज में जाति भेद, ऊँच–नीच, सती प्रथा नारी शोषण आदि जैसी कुरीतियाँ विद्यमान थीं। इन सामाजिक कुरीतियों व अंध विश्वास का प्रधान कारण अशिक्षा और अज्ञान है। अज्ञान को दूर करने का उपाय है शिक्षा। इरा दृष्टि के कारण इरा काल के रचनाकरों ने रामाज में एक चेतना जाग्रत की और अंधविश्वासों के खोखलेपन को पाठकों के सामने रखा। इस काल के रचनाकार जानते थे कि भारतीय समाज में जाति प्रथा जैसी कुरीति सबसे बड़ी बुराई और सामाजिक विकास में बाधा भी। इस तथ्य को लेकर इस काल के कवियों की स्वाभाविक चिंता सहज ही प्रकट हुई है। मिश्रबंधु का संकेत इसी ओर है–

''नीच–ऊँच का भेद जाति बल से था भारी
वह बढ़कर हो गया जाति वंशों में भारी
फिर बढ़कर प्रति बस बीच घर–घर में फैला
प्रति मनुष्य का चित्त किया औरों से मैला।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शिक्षा प्रसार को समाज सुधार का प्रमुख साधन मानते हुए इस काल के कवियों ने स्त्री शिक्षा के साथ–साथ सभी की शिक्षा पर जोर दिया। उनका मानना था कि जैसे–जैसे निरक्षरता समाप्त होती जाएगी लोगों के पुराने रूढ़िबद्ध संस्कार स्वतः ही बदलने लगेंगे और नई सामाजिक चेतना का विकास होगा।

नारी जागरण को समाज सुधार आंदोलन का महत्त्वपूर्ण पक्ष मानकर इस काल के कवियों ने नारी जागरण के लिए एक आंदोलन की तरह कार्य किया। इस भाव की अभिव्यक्ति इस काल के प्रायः प्रत्येक कवि में दिखाई देती है। सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों का प्रभाव इस युग की कविता पर अंत तक दिखाई पड़ता है। इसी सुधार भाव की दृष्टि से नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने छल, कपट, लूटमार, छुआछूत, व्यभिचार, बेमेल विवाह आदि पर अनेक व्यंग्योक्तियाँ लिखी हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत–भारती में अनमेल विवाह, वर–कन्या विक्रय, दासता, अनाचार आदि सामाजिक बुराइयों की निंदा की। सामाजिल सुधार की परिणति के रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की कविता 'अछूत की आह' मोतीलाल की 'पतितों की पुकार' तथा हीरा डोम की 'अछूत की शिकायत' जैसी कालजयी कविताएँ इस काल में लिखी गईं। 'अछूत की आह' की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

"हा! हमने भी कुलीनों की तरह,
जन्म पाया प्यार से पाले गए।
जी बचे फूले फले तब क्या हुआ,
कीट से भी नीच तब माने गए।
पर अजब इस लोक का व्यवहार है,
न्याय हैं संसार से जाता रहा।
श्वान का छूना जिन्हें स्वीकार है,
है उन्हें हम अभागों से भी घृणा।"

इस तरह की अनेक कविताओं का उद्देश्य सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपताओं को उभारना और ऐसी कुरीतियों को दूर कर सामाजिक सुधार का प्रयास करना है। इस तरह द्विवेदीयुग में समाज सुधार की व्यापक भावना का उन्मेष दिखाई देता है। जहाँ इस काल के कवियों ने बहुत विस्तृत ढंग से समाज सुधार का काम किया। जिस समाज सुधार का काम भारतेंदु ने आरंभ किया था उसे इस काल के कवियों ने चरम शिखर पर पहुँचाया था।

4.3.4 बौद्धिकता की प्रधानता

इस काल के कवियों ने भावना के स्थान पर बुद्धि को वरीयता दी है। हालांकि भावना का आवेग भी इस काल में कम नहीं दिखाई देता, लेकिन हृदय और भावना की अपेक्षा बौद्धिकता की प्रधानता इस काल में विशेष रूप से दिखाई देती हैं। इसके पीछे पाश्चात्य शिक्षा से परिचित होने के साथ ही ज्ञान–विज्ञान की नित नवीन होने वाली खोजों और आविष्कारों का हाथ स्वीकार किया जा सकता है। प्रत्येक दृष्टि को बुद्धि और तर्क से संवलित करने के प्रयास के कारण इस काल के रचनाकारों ने प्रत्येक पक्ष को तार्किकता और बौद्धिकता की तुला पर तोलने का प्रयास किया है। प्रत्येक वस्तु को तार्किक दृष्टि से देखने का प्रयास इस काल के कवियों में दिखाई देता है। जिस कारण उन्होंने प्राचीन संस्कृति, विषय एवं मान्यताओं की तर्कसंगत व्याख्या करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि इस काल के रचनाकारों की दृष्टि चमत्कारिक कर देने की दृष्टि से परे यथार्थपूर्ण और विश्वसनीय पहलुओं की ओर अधिक गई हैं। इसी बौद्धिक और तार्किक भावना के कारण मैथिलीशरण गुप्त ने राम को अलौकिक पुरुष नहीं अथवा ईश्वर के रुप में नहीं एक आदर्श पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है। 'साकेत' के राम कहते हैं –

"संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।"

4.3.5 धार्मिक भावनाओं में परिवर्तन

जहाँ आधुनिक काल से पूर्व धार्मिक भावना को बहुत ही संकुचित अर्थ में अभिव्यक्त किया जा रहा था, वहीं आधुनिक काल के कवियों ने इस दृष्टि में परिवर्तन किया। उनकी दृष्टि में केवल ईश्वर का गुणगान और उनका भजन करना ही धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति नहीं। द्विवेदीयुग के कवियों के इसी भावना के कारण उन्होंने मानवतावादी दृष्टिकोण, विश्व कल्याण की भावना को संकीर्ण धार्मिकता से ऊपर माना और कहा मानवता ही सबसे बड़ा धर्म हैं। मनुष्य मात्र की सेवा, दुःखी और पीड़ितों के प्रति मार्मिक वेदना एवं सेवा की भावना को ही ईश्वर की सेवा माना। इस भाव की अभिव्यक्ति गोपालशरण सिंह की निम्नलिखित कविता में दृष्टिगत होती है –

"जन की सेवा करना ही बस है, सब सारों का सार।
विश्व प्रेम के बंधन ही में, मुझको मिला मुक्ति का द्वार।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस काल के कवियों ने सम्पूर्ण जगत् और संपूर्ण प्रकृति में ईश्वर को देखने का प्रयास किया। इस काल की धार्मिक भावना अलौकिक और चमत्कारिक न होकर पूर्णतः मानवीय हैं। आचार्य शुक्ल का कथन इसका अकाट्य प्रमाण है–"भारतेंदुयुग की भारतीय कविता से यह निस्संदेह अधिक उन्नत है। उपदेशात्मक प्रवृत्ति को छोड़कर कवियों ने मानवता को ग्रहण किया। उदारता और व्यापक अन्तर्दृष्टि इस समय की धार्मिक कविता के विशेष लक्षण हैं।"

4.3.6 इतिवृत्तात्मकता

बौद्धिकता एवं आदर्शवादी भावना को बहुत अधिक महत्त्व देने के कारण इस काल की कविता में स्थूलता का आग्रह दिखाई देता है। अपनी प्राचीन संस्कृति एवं अतीत गौरव स्तवन के लिए इस युग में प्रबंध काव्यों की रचना हुई। ऐतिहासिकता एवं कथात्मकता को प्रबंध काव्यों में प्रमुखता से व्यवहृत करने के कारण इस काल की कविता में नीरसता एवं शुष्कता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिलती है। रीतिकाल की परंपरागत शृंगार काव्य रचना का बहिष्कार करने के कारण इस काल के कवियों की कविताओं में शृंगारिक सरसता का अभाव है। इसका एक कारण यह भी है कि इस काल के कवियों ने सात्विकता एवं मर्यादा के प्रति विशेष आग्रह प्रदर्शित किया हैं। जिसके कारण उनकी आदर्शवादी अभिव्यक्तियों शृंगारपरक कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए अवकाश ही नहीं है। स्वभावतः इस काल की कविता इतिवृत्तात्मक हो गई है। जहाँ कवि का उद्देश्य काव्य के माध्यम से केवल मनोरंजन करना न हो, उपदेश देना भी हो वहाँ कविता का शुष्क एवं इतिवृत्तात्मक हो जाना स्वाभाविक ही है। मैथिलीशरण गुप्त का संकेत संभवतः इसी ओर है –

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"

4.3.7 अनुवादकार्य

अनुवाद कार्य की दृष्टि से द्विवेदीयुग सबसे समृद्ध कहा जा सकता है। काव्य रचना की प्रक्रिया में इस काल के कवियों ने सर्वाधिक अनूदित रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। बंगला और संस्कृत रचनाओं के साथ–साथ अंगरेजी और अन्य विदेशी भाषाओं की प्रमुख रचनाओं के अनुवाद इस काल में प्रस्तुत किए गए। जहाँ श्रीधर पाठक जैसे इस काल के महत्त्वपूर्ण कवि ने गोल्ड स्मिथ की रचनाओं 'द हरमिट', 'द ट्रेवलर' और 'द डेजर्टेड विलेज' का 'एकांतवासी योगी', 'श्रांत पथिक' और 'उजड़ ग्राम' नाम से क्रमशः काव्यानुवाद प्रस्तुत किया, वहीं मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि ने उमर खय्याम की रुबाइयों का अनुवाद प्रस्तुत किया। राय देवीप्रसाद पूर्ण ने कालिदास के 'मेघदूत' का 'धाराधर धावन' नाम से छंदोबद्ध अनुवाद प्रस्तुत किया। इस काल के लगभग सभी कवि ने किसी न किसी प्रसिद्ध काव्य का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

4.3.8 प्रकृति–चित्रण

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से यद्यपि द्विवेदीयुग के कवियों ने परपंरागत मानदंडों को बहुत हद तक स्वीकार किया है, पर उसमें एक दम नवीनता एवं मौलिकता का अभाव है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। मैथिलीशरण गुप्त एवं हरिऔध द्वारा किए गए प्रकृति चित्रण में पर्याप्त नवीनता एवं मौलिकता है। इनके अतिरिक्त अधिकतर कवियों ने प्रकृति के आलंबन स्वरूप को प्रमुखता दी है। प्रकृति चित्रण में कल्पना की उड़ान, गहन अनुभूति एवं सूक्ष्म निरीक्षण के प्रायः अभाव के कारण इसकाल के अधिकतर कवियों के प्रकृति चित्रण में स्थूल एवं वायवी प्रयास दृष्टिगत होता है, जिसके कारण उसमें इतिवृत्तात्मकता का समावेश हो गया है। यद्यपि स्वतंत्र रूप से यत्र–तत्र प्रकृति के चित्र भी इस काल की कविताओं में उभरकर आए हैं, जिनमें विविधता एवं व्यापकता भी है, पर उनमें प्रकृति का उद्दीपनकारी स्वरूप विशेष रूप से मुखरित हुआ है। यहां इस क्रम में केसरीनारायण शुक्ल का कथन विशेष द्रष्टव्य है–

"द्वितीय उत्थान के कवि प्रकृति के रहस्यों का न उद्घाटन कर सके, न मानवता को प्रकृति का कोई संदेश ही प्रदान कर सके। नैतिकता के कोरे उपदेश ही इसका परिणाम हैं। इस समय के अधिकतर कवि प्रकृति के ऊपरी रूप की झलक मात्र से संतुष्ट थे। उन्होंने प्रकृति की अंतर्रात्मा तक पहुँचने का प्रयत्न बहुत कम किया है।"

बावजूद इसके श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध ने प्रकृति के मनोहर रूप की मनोरम झाँकी प्रस्तुत की है, जिसमें स्वाभाविकता है, सहजता है, रमणीयता है एवं मौलिकता के साथ नवीनता भी है। इनके अतिरिक्त काव्यरूपों (खंडकाव्य, प्रबंधकाव्य, मुक्तक, प्रगीत आदि) की विशेषताओं के माध्यम से द्विवेदीयुगीन काव्य ने आगे आनेवाली छायावादी कविता के लिए अनुकूल भावभूमि तैयार कर दी। द्विवेदीयुग में आधुनिक हिंदी कविता के विकास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ। छायावादी काव्य की कमोवेश सभी प्रवृत्तियाँ आरंभिक रूप में ही सही द्विवेदीयुग में अंकुरित होने लगी थीं, जिनका पूर्ण विकास आगामी युग में हुआ। हालांकि कतिपय विद्वान् छायावादी

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

कविता को द्विवेदीयुगीन कविता की प्रतिक्रिया मानते हैं, पर यह कहने में कोई हर्ज नहीं कि छायावादी कविता द्विवेदीयुगीन कविता का ही किसी न किसी रूप में विकास है।

4.4 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आधुनिक हिंदी कविता के सर्वाधिक उल्लेखनीय युग द्विवेदीयुग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों एवं विशेषताओं को रेखांकित किया गया। इस युग के महत्त्वपूर्ण तथ्यों को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है –

- आधुनिक हिंदी कविता के विकास में सन् 1900 से 1920 ई. तक के कालखण्ड को 'द्विवेदी युग' के नाम से जाना जाता है।
- इस युग का नेतृत्व युग प्रेरक– युगप्रवर्त्तक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया।
- द्विवेदीजी की निर्भीकता, स्पष्टवादिता एवं उनके कठोर अनुशासन से आधुनिक हिंदी काव्य का स्वरूप परिमार्जित एवं परिष्कृत हुआ। उन्होंने भाषा–परिष्कार पर भी विशेष बल दिया। उनके द्वारा सन् 1903 में 'सरस्वती' का संपादन दायित्व ग्रहण करना बहुत महत्त्वपूर्ण घटना है। आचार्य द्विवेदी के साहित्य–निर्माता व्यक्तित्व ने परिवर्तन, सुधार और परिष्कार के क्षेत्र में प्रेरित किया जिसके कारण हिंदी कविता में बहुविध नवीनता का संचार हुआ।
- अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' एवं मैथिलीशरण गुप्त जैसे आधुनिक कवि इस युग की देन हैं।
- इस युग के काव्य में देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम नारी संवेदन, सामाजिक सुधार, आदर्शवादिता, बौद्धिकता एवं इतिवृत्तात्मकता की भावनाएँ व्यापक रूप में प्रकट हुई हैं।
- छायावादी काव्य की कतिपय विशेषताएँ आरंभिक स्वरूप में इस युग में दिखाई देती हैं, जिनमें प्रकृति चित्रण, प्रेम, करुणा एवं सौन्दर्य प्रमुख हैं।
- इस युग में अनुवादकार्य भी प्रचुर रूप में हुआ।
- आगे आनेवाली छायावादी कविता को यत्किंचित प्रेरित करने में द्विवेदीयुग का योगदान अस्वीकार नहीं किया जा सकता, यद्यपि उसे 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' भी कहा गया है।
- आधुनिक हिंदी काव्य के विस्तार और विकास की दृष्टि से 'द्विवेदी युग' विशेष उल्लेखनीय कहा जा सकता है।

4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास (बच्चन सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद)
2. महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण (रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली)
3. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, (बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली)
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास (डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली)

4.6 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में 'द्विवेदीयुग' का महत्त्व प्रतिपादित कीजिए।
2. द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

   अथवा

   द्विवेदीयुग की काव्य प्रवृत्तियों का विवेचन कीजिए।
3. 'द्विवेदीयुग का काव्य' विषय पर एक समीक्षात्मक निबंध लिखिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. द्विवेदीयुगीन काव्य की पृष्ठभूमि संक्षेप में निरूपित कीजिए।
2. 'द्विवेदीयुग' के नामकरण का औचित्य सिद्ध कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. द्विवेदीयुगीन काव्य का सामान्य परिचय दीजिए।
4. खड़ीबोली और द्विवेदीयुगीन कविता पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
5. ''द्विवेदीयुगीन काव्य देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम की कविता है'', स्पष्ट कीजिए।
6. द्विवेदीयुगीन काव्य में प्रकृति चित्रण विषय पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
7. द्विवेदीयुग के प्रमुख कवियों का सामान्य परिचय दीजिए।
8. 'द्विवेदीयुगीन कविता में नारी संवेदन' विषय पर विचार प्रकट कीजिए।
9. द्विवेदीयुगीन काव्य इतिवृत्तात्मक है, स्पष्ट कीजिए।
10. द्विवेदीयुग में प्रमुख अनुवादकार्यों का उल्लेख कीजिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. द्विवेदी युग की समय–सीमा क्या है?
2. 'सरस्वती' का संपादन–दायित्व आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कब ग्रहण किया?
3. द्विवेदीयुग के दो प्रमुख कवियों के नाम लिखिए।
4. खड़ीबोली का पहला महाकाव्य कौनसा है?
5. प्रवृत्ति के आधार पर द्विवेदीयुग को क्या नाम दिया गया है?
6. 'भारत भारती' और 'साकेत' का रचनाकार कौन है?
7. द्विवेदीयुग में प्रथम स्वच्छंदतावादी कवि किसे कहा गया है?
8. आचार्य द्विवेदी का विशेष आग्रह किस पक्ष को लेकर था?
9. द्विवेदीयुगीन सामाजिक सुधार विषयक रचनाओं / कविताओं के नाम लिखिए ।
10. खड़ीबोली का प्रथम कवि कौन है?
11. द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रधान भावधारा कौनसी है?
12. मैथिलीशरण गुप्त की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना कौनसी है?
13. श्रीधर पाठक ने किन कृतियों का अनुवाद किया?
14. उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद किसने किया?
15. इतिवृत्तात्मकता का क्या अर्थ है?
16. मैथिलीशरण गुप्त ने काव्य को कैसे परिभाषित किया है?
17. राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने किस कृति का अनुवाद किया और किस नाम से?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 5 छायावाद : आधुनिक हिंदी कविता का पूर्ण विकास

संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 छायावाद का उदय (काल और प्रवर्तन)
5.3 छायावादः नामकरण और अर्थ
5.4 छायावाद की परिभाषा
5.5 छायावाद के प्रमुख कवि
5.6 छायावादी काव्य की विशेषताएँ
5.6.1 प्रेम शृंगार का सूक्ष्म–विस्तृत चित्रण
5.6.2 सौन्दर्य का चित्रण
5.6.3 वेदना की गहन अनुभूति
5.6.4 प्रकृति का व्यापक सजीव अंकन
5.6.5 राष्ट्रप्रेम
5.6.6 मानवीय दृष्टिकोण
5.6.7 रहस्यपरक भावना की अभिव्यक्ति
5.6.8 वैयक्तिकता का समावेश
5.6.9 सजीव–सूक्ष्म भाषा
5.6.10 प्रतीकात्मकता
5.6.11 नवछंद
5.6.12 नव अलंकार
5.7 छायावाद पर आरोप
5.8 सारांश
5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
5.10 अभ्यास प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.0 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी काव्य की विकासयात्रा में ऐसे अनेक महत्त्वपूर्ण पड़ाव हैं, जिनसे होकर हिंदी कविता का स्वरूप निरंतर गतिशील, विकसित और प्रौढ़ होता गया। भारतेंदुयुग के क्रोड़ से आरंभ होकर आधुनिक काव्य ने अपना आकार ग्रहण किया। द्वितीय चरण (द्विवेदीयुग) में पहुंचकर उसका स्वरूप व्यापक, विस्तृत एवं पहले से उन्नत हो गया। उसमें अनेक नवीन प्रवृत्तियों का उदय होने से हिंदी काव्य का विस्तार विविध रूपों में हुआ। विकासयात्रा के तीसरे चरण (छायावाद) में प्रत्येक दृष्टि से उसका चरम उत्कर्ष दिखाई देता हैं। काव्यत्व एवं साहित्यिकता का जैसा उत्कृष्ट और उन्नत स्वरूप आधुनिक हिंदी काव्य का छायावाद में दृष्टिगत होता है, वैसा इससे पूर्व दिखाई नहीं देता।

छायावाद आधुनिक हिंदी काव्य के इतिहास में ऐसा काव्य आंदोलन है, जिसे सबसे अधिक आलोचना और प्रत्यालोचना, निंदा और प्रशंसा का शिकार होना पड़ा है। निंदा और प्रशंसा के छोरों का स्पर्श करता हुआ छायावाद संभवतः सबसे विवादास्पद भी रहा है। बावजूद अनेक आरोपों–प्रत्यारोपों के आधुनिक हिंदी काव्य में खड़ीबोली कविता का सर्वोत्कृष्ट कलात्मक एवं चारुतम स्वरूप छायावादी कविता में ही दृष्टिगत होता है। भाषा – भाव – कथ्य – शिल्प आदि सभी दृष्टियों से सर्वाधिक कलात्मक अभिव्यक्ति छायावादी काव्य में हुई है। रोमेंटिक एवं स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों की स्वाभाविक प्रस्तुति के कारण इसे रोमेंटिक काव्य या स्वच्छंदतावादी काव्य कहने का भी आग्रह किया जाता है, जिसका विकास द्विवेदीयुगीन आदर्शवादी काव्य के उपरांत हुआ।

साहित्यिक विकासक्रम अथवा कालक्रम की दृष्टि से छायावाद का अभ्युदय द्विवेदीयुगीन काव्य की पूर्वपीठिका पर हुआ। द्विवेदीयुग में विकसित होनेवाली काव्य प्रवृत्तियों में घोर उपयोगितावाद, अति आदर्शवादिता एवं

इतिवृत्तात्मकता की अभिव्यक्ति के कारण ऐसा स्वीकार किया गया कि द्विवेदीयुगीन काव्य में स्थूलता का अधिक निर्वाह है। हृदय की मार्मिक अनुभूति और संवेदना की दृष्टि से उसमें काव्यत्व एवं साहित्यिकता का अभाव है। दूसरी ओर भावुक कलाकार को आकृष्ट करने में इस तरह की काव्य–रचनाएँ बहुत अधिक समय तक सफल नहीं होतीं। इस काल से पूर्व तक नैतिकता और आदर्श पर बहुत अधिक रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी थीं किन्तु वैयक्तिक एवं आंतरिक अनुभूति पर अभी काव्य सर्जना शेष थी। यद्यपि द्विवेदीयुग में इसका पूरी तरह अभाव नहीं था, पर अधिकांश रचनाओं में नैतिकता और आदर्श पर विशेष बल है। इससे अलग छायावादी काव्य में वैयक्तिक मार्मिक अनुभूतियाँ बहुत स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त हुई। इस कारण से छायावादी काव्य को द्विवेदीयुगीन काव्य की प्रतिक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाता है। डॉ. नगेंद्र जैसे आलोचक छायावाद को 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' मानते हैं। कतिपय आलोचक यह मानते हैं कि छायावाद बंगला साहित्य या पाश्चात्य साहित्य के रामेंटिसिज्म का रूपांतर है, लेकिन वास्तविकता यह है कि छायावाद अपने ही देशकाल की परिस्थितियों की स्वाभविक उद्‌भूति है, जिस पर आधुनिक ज्ञान–विज्ञान का प्रभाव भी अवश्य पड़ा है। यहाँ शिवदानसिंह चौहान का कथन बहुत महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है – " अतः यह कहना गलत होगा कि फ्रांसीसी धारा, जर्मनधारा के अनुकरण पर चली या अंग्रेजी धारा, फ्रांसीसी धारा की अनुवर्तिनी थी, उसी तरह यह कहना भी गलत होगा कि हिंदी की छायावादी कविता पाश्चात्य की नकल है।"

छायावादी काव्यप्रवृतियों के विकास में तत्कालीन निराशामूलक सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों तथा युवामन में पलने–बढ़नेवाली कुंठाओं तथा विषाद की विशिष्ट भूमिका मानी जा सकती है। छायावाद के उदय के कारणों पर प्रकाश डालते हुए डॉ. नगेंद्र कहते हैं – "ब्रिटिश साम्राज्य की अचल सत्ता और समाज में सुधारवादी दृढ़ नैतिकता, असंतोष और विद्रोह इन (प्रतिक्रियात्मक) भावनाओं की बहिर्मुखी अभिव्यक्ति का अवसर नहीं देते थे। निदान, वे अंतर्मुखी होकर धीरे–धीरे अवचेतन मे जाकर बैठ रही थीं और वहाँ से क्षतिपूर्ति के लिए छायाचित्रों की सृष्टि कर रही थीं। आशा के इन स्वप्नों और निराश के इन छायाचित्रों की काव्यगत समष्टि ही छायावाद कहलाई।" कहा जा सकता है कि इन मूल कारणों तथा प्रेरक तत्त्वों के कारण हिंदी काव्य जगत् में छायावाद का प्रादुर्भाव हुआ।

5.1 उद्देश्य

यह इकाई आधुनिक हिन्दी कविता के सर्वाधिक प्रौढ़, व्यापक एवं विकसित काव्यांदोलन छायावाद से सम्बन्धित है। इसका प्रमुख उद्देश्य इस महत्त्वपूर्ण कालखण्ड का सम्पूर्ण समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

- छायावादी काव्यांदोलन की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे।
- छायावादी काव्य के विकास को समग्रता से जान सकेंगे।
- छायावाद के अर्थ उसकी परिभाषा तथा हिंदी में उसकी स्थिति को समझ सकेंगे।
- विभिन्न परिभाषाओं के आलोक में छायावाद के वास्तविक स्वरूप एवं उसकी महत्ता को भलीभांति समझ सकेंगे।
- छायावाद के प्रमुख कविओं के संबंध में सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों से अभिज्ञ हो सकेंगे।
- छायावादी काव्य की उपलब्धियों से परिचित हो सकेंगे।
- छायावाद की कतिपय कमजोरियों एवं उसके पतन के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

5.2 छायावाद का उदय (काल और प्रवर्तन)

छायावाद के उदय को लेकर आलोचकों में कभी एक मत नहीं रहा है। अपनी–अपनी वैयक्तिक रुचि एवं अपने मत के अनुसार अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार– "हिंदी कविता की नई धारा छायावाद का प्रवर्त्तक विशेषतः मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पांडेय को समझना चाहिए।" इलाचंद जोशी शुक्ल जी के इस मत को भ्रामक एवं मनगढ़ंत मानते हुए प्रसाद को 'इंदु' में प्रकाशित उनकी रचनाओं के आधार पर छायावाद के प्रवर्त्तन का श्रेय देते हैं। विनयमोहन शर्मा एवं प्रभाकर माचवे छायावाद का प्रवर्तक माखनलाल चतुर्वेदी को मानते हैं, तो रायकृष्णदास सुमित्रानंदन पंत को। कुछ आलोचक रायकृष्णदास को ही यह श्रेय देते हैं। तटस्थ एवं वस्तुपरक दृष्टि से विचार किया जाए तो स्पष्ट होगा कि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय एवं जयशंकर प्रसाद (आरंभिक कविताओं में) की कविताओं में छायावाद का जन्म हुआ, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्णशर्मा, 'नवीन' की कविताओं में गतिशील होकर आगे बढ़ा, प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की कविताओं में उसका पूर्ण विकास हुआ।

छायावाद का आरंभ कब से हुआ ? यह भी एक उलझा एवं विवादास्पद प्रश्न है। कोई भी वाद न तो अचानक किसी तिथि से आरंभ होता है और नहीं किसी निश्चित तिथि पर समाप्त हो जाता है। उसका विकास धीरे–धीरे क्रमशः होता है और धीरे–धीरे क्रमशः वह समाप्ति की ओर अग्रसर होता है। संभवतः यही कारण है कि आलोचकों ने छायावाद के आरंभ की तिथि को अलग–अलग स्वीकार किया है।

इसी के छायावाद के आरंभ एवं समाप्त होने के समय के विषय में कोई निश्चित तिथि का उल्लेख न कर विद्वानों ने 'वादे–वादे जायते तत्वबोधः' का अनुसरण किया है। इस क्रम में जहाँ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल छायावाद का प्रारंभ 1905 ई. के लगभग मानते हैं, वहीं इलाचंद जोशी 1911 ई.से। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी छायावाद का आरंभ 1920 ई. से स्वीकार करते हैं। इस दृष्टि से डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का कथन बहुत महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। "छायावाद का आरंभ 1913–14 ई. से अर्थात् प्रथम महायुद्ध के आरंभ काल से होता है और 1936 ई. से द्वितीय महायुद्ध की पूर्वपीठिकाकाल तक आते–आते इसकी धारा मंद पड़ जाती है।''

5.3 छायावाद : नामकरण और अर्थ

छायावाद' शब्द का प्रयोग एक लंबे समय तक अंग्रेजी के मिस्टीसिज्म ;डलेजपबपेउद्ध अथवा 'रहस्यवाद' तथा स्वच्छंदतावाद ;त्वउंदजपबपेउद्ध के अर्थों में किया जाता रहा है। हालांकि बाद में इन सबको अलग–अलग अर्थों में ग्रहण किया जाने लगा। हिंदी सहित्य में हम जिसे छायावाद कहते हैं, इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग मुकुटधर पाण्डेय के निबंध 'हिंदी में छायावाद' में हुआ है जो 1920 ई. में शारदा नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। कुछ अन्य समकालीन आलोचकों ने 'छायावाद' शब्द को व्यंग्य के रूप में प्रवृत्ति विशेषवाले काव्य के लिए प्रयुक्त किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इसे पुराने इसाई संतों तथा यूरोपीय आध्यात्मिक प्रतीकवाद ";लउइवसपेउद्ध से जोड़ते हैं। ''पुराने इसाई संतों के छायाभास ;चैंदजेउंजंद्ध तथा यूरोपीय काव्य क्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद ";लउइवसपेउद्ध के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएँ छायावादी कही जाने लगी थीं।'' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल के मत का खण्डन करते हुए कहा ''बंगला साहित्य में 'छायावाद' नाम कभी चला ही नहीं।''

छायावाद के सुप्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत ने तो 'छायावाद' नाम को बिल्कुल स्वीकार नहीं किया है। उनका कहना है ''छायावाद नाम से मैं संतुष्ट नहीं हूँ। यह द्विवेदीयुग के आलोचकों द्वारा नई कविता के उपहास का सूचक है।'' छायावादी काव्य की सर्वप्रथम सम्यक् व्याख्या छायावाद के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद ने की है जिसमें काव्यत्व का समावेश तथा सांस्कृतिक परंपरा से जुड़ाव का संकेत है, "मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है वैसी ही कांति तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत में छाया अथवा विच्छित के द्वारा निरूपित किया गया है।''

'छायावाद' शब्द को आरंभ में रहस्यवाद ;डलेजपबपेउद्ध के ही संदर्भ में प्रयुक्त किया गया। अनेक विद्वान आलोचकों ने इस शब्द का प्रयोग 'स्वच्छंदतावादी कविता' के लिए भी किया। बहुत से आलोचकों ने उपहास करते हुए यहां तक कह दिया ''जो समझ में न आ सके, वही छायावाद है।'' कुछ समय बाद रोमेंटिक प्रवृत्तियों से ओत–प्रोत इस विशेष काव्य प्रवृत्ति के लिए 'छायावाद' शब्द रूढ़ हो गया जिसे रोमेंटिसिज्म ;त्वउंदजपबपेउद्ध का पर्याय भी माना जाने लगा।

5.4 छायावाद की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने अपनी वैयक्तिक रुचियों के परिप्रेक्ष्य में छायावाद को परिभाषित करने का प्रयास किया है। उन परिभाषाओं के आलोक में छायावाद के स्वरूप को निम्नवत् परिभाषित एवं स्पष्ट किया जा सकता है।

''छायावाद का सामान्य अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजन करनेवाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन'' — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

''प्रकृति में चेतना का आरोप, सूक्ष्म सौंदर्य–सत्ता का उदघाटन एवं असीम के प्रति अनुरागमय आत्मविसर्जन की प्रवृत्तियों का गीतात्मक एवं नवीन शैली में व्यक्त रूप छायावाद है।'' — महादेवी वर्मा

''परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की परमात्मा में यही छायावाद है।''–डॉ. रामकमार वर्मा

''छायावाद एक प्रकार की विशेष भाव पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है। –डॉ. नगेन्द्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''कविता के क्षेत्र में जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।''
—जयशंकर प्रसाद

''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।''
—डॉ. नगेन्द्र

''छायावाद पूर्ववर्ती युग की विशेष भावभूमि में प्रस्फुटित एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण, एक विशेष दार्शनिक अनुभूति एवं एक विशेष शैली है जिसमें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक का एवं अलौकिक प्रेम के व्याज से लौकिक अनुभूति का चित्रण होता है, जिसमें प्रकृति को मानवीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है और जिसमें गीति तत्त्वों की प्रमुखता होती है।''
— डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त

5.5 छायावाद के प्रमुख कवि

मुकुटधर पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांतत्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, सुमित्राकुमारी सिन्हा, विद्यावती कोकिल आदि।

5.6 छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ

छायावाद की प्रमुख काव्यगत विशेषताओं को निम्नवत समझा जा सकता है–

1. **विषयगत विशेषताएँ** – प्रेम श्रृंगार का सूक्ष्म–विस्तृत चित्रण, सौन्दर्य का चित्रण, वेदना की गहन अनुभूति, प्रकृति का व्यापक सजीव अंकन, राष्ट्रप्रेम मानवीय दृष्टिकोण, रहस्यपूर्वक भावना की अभिव्यक्ति, वैयक्तिकता का समावेश।

2. **शैली–शिल्पगत विशेषताएँ**– सजीव सूक्ष्म भाषा, प्रतीकात्मकता, नवछंद, अलंकार एवं मुक्तक प्रधान काव्य।

5.6.1 प्रेम श्रृंगार का सूक्ष्म–व्यापक चित्रण

छायावादी काव्य में प्रेम का स्वरूप वायवी एवं स्वच्छंद है। लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम के अधिकांशतः व्यापक चित्रण के कारण छायावादी कवियों के आलंबन का स्वरूप बहुत व्यापक रहा है। उनके प्रेम में विविधता है। स्वच्छंद प्रेम में प्रायः विरह की प्रमुखता है।

कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है–

'इस करुणा कलित हृदय में इक विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती' — प्रसाद
'क्या पूजा क्या अर्चन रे !
उस असीम का सुंदर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे। — महादेवी
सुंदर है विहग सुमन सुंदर
मानव तुम सबसे सुंदरतम — पंत
दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुंदरी, परी–सी
धीरे–धीरे–धीरे। — निराला

5.6.2 सौंदर्य का चित्रण

छायावादी कवि की कोमल कल्पना में सौंदर्य के लिए विशेष स्थान है। वह सौंदर्य का प्रेमी है। छायावादी कवियों ने मानव से लेकर प्रकृति तथा लौकिक से लेकर पारलौकिक तक सर्वत्र सौंदर्यपरक भावाभिव्यक्ति की है। प्रसाद ने तो उसे 'चेतना का उज्ज्वल वरदान' स्वीकारा है तो पंत ने 'प्रज्ञा का सत्य स्वरूप' तथा 'सकल ऐश्वर्यों की संध्या' के रूप में स्वीकार किया है। नारी–सौंदर्यचित्रण में छायावादी कवि की दृष्टि नवीनता का प्रतिपादन करती हुई दिखाई देती है –

'नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग''
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ वन बीच गुलाबी रंग।। — प्रसाद

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.6.3 वेदना की गहन अनुभूति

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप छायावादी काव्य में नैराश्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। निराशा की इस भावना के कारण वेदना की गहन अनुभूति छायावादी काव्य की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप में परिलक्षित होती है। छायावादी कवियों में प्रसाद और महादेवी के काव्य में वेदना और निराशा का स्वर बहुत सहज रूप में मुखरित हुआ। कामायनी के मनु 'जीवन निशीथ के अंधकार' तथा महादेवी के 'मैं नीर भरी दुख की बदली' या 'विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात'' आदि पंक्तियाँ इसका स्पष्ट निदर्शन हैं। निराला की कविता 'मैं अकेला, आ रही मेरे दिवस की सांध्य बेला' में निराशा के स्वर स्पष्टतया सुने जा सकते हैं।

5.6.4 प्रकृति का व्यापक और सजीव अंकन

छायावादी कवियों का मन प्रकृति के सजीव अंकन में बहुत अधिक रमा है। दूसरे शब्दों में प्रकृति छायावादी कविता का आधार है। प्रकृति की विविधता एवं बहुरंगी भावभंगिमाएँ छायावादी काव्य में दृष्टिगत होती हैं। प्रसाद और पंत की कविताओं में तो प्रकृति का स्वरूप बहुत व्यापक रूप में अभिव्यक्त हुआ है, जिसके कारण पंत को तो प्रकृति का ही कवि कहा जाता है। निराला और महादेवी की कविताओं में भी प्रकृति के विविध रूप बिखरे पड़े हैं।

'प्रथम रश्मि का आना रंग्णिी
तूने कैसे पहचाना!
कहां–कहां हे बाल विहंगिनी
गाया यह स्वर्गिक गाना।' — पंत

5.6.5 राष्ट्रप्रेम

आधुनिक काल में राष्ट्रप्रेम एक राष्ट्रीय प्रवृत्ति के रूप में दिखाई देता है। इसलिए इस काल में राष्ट्रप्रेम की व्यापक चेतना मिलती है। इस समय राष्ट्रप्रेम एक राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में दिखाई देता है। छायावादी काव्य में राष्ट्रप्रेम की यह प्रवृत्ति प्रमुखता से दिखाई देती है–

'अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को
मिलता एक सहारा — प्रसाद

''मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर तुम देना फेंक
मातृभूमि पर शीश चढाने
जिस पर जाएँ वीर अनेक।'' — माखनलाल चतुर्वेदी

5.6.6 मानवीय दृष्टिकोण

छायावादी कवियों की दृष्टि मानवीय भावना से ओतप्रोत दिखाई देती है। वे शिवमंगल की भावना से परिपूर्ण हैं, जिस पर रवीन्द्र और अरविंद की मानवतावादी दृष्टि का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। छायावादी कवियों की मानवतावादी दृष्टि व्यक्ति स्वातंत्र्य, नारी–संवेदन तथा सामाजिक उपेक्षा के शिकार निम्न एवं उपेक्षित वर्ग के परिप्रेक्ष्य में दिखाई देती है। निराला की अनेक कविताएँ (बादल राग, भिक्षुक, विधवा, तोड़ती पत्थर आदि) गहन मानवीय संवेदना से संपृक्त हैं। पंत की ग्रामयुवती, मानव, धोबियों का नृत्य जैसी कविताएँ मानवीय दृष्टिकोण का स्पष्ट निदर्शन हैं। 'निराला' की कविता 'भिक्षुक' की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं –

'वह आता,
दो टूक कलेजे का करता
पछताता पथ पर आता
पेट–पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को –
भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता
वह आता।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5.6.7 रहस्यपरक भावना की अभिव्यक्ति

छायावादी कविता में रहस्यपरक भावनाओं की स्वाभाविक एवं सहज अभिव्यक्ति हुई है। यद्यपि रहस्यवाद और छायावाद को एक मानकर दोनो को मिलाया नहीं जा सकता, इसके साथ ही छायावादी कविता रहस्यवादी नहीं है, तथापि छायावादी कवि जीवन, जगत, सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति आदि के चित्रण में प्रतीकात्मक शैली के माध्यम से इन्हें आत्मा–परमात्मा के साथ जोड़कर देखता है। वह अपनी लौकिक भावनाओं को भी अलौकिकता के ऐसे झीने आवरण में प्रस्तुत करता है कि उनमें रहस्यपरकता का पुट आ जाता है। आध्यात्मिकता से ओत–प्रोत छायावादी कवियों की अभिव्यक्ति रहस्यपरक भावनाओं से संवलित है। प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी सभी प्रमुख छायावादी कवियों की कविताओं में ऐसी रहस्यपरक भावाभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है।

छायावादी कवि को प्रकृति तथा विश्व में छिपे हुए रहस्य को जानने की स्वाभाविक इच्छा है –

'सिर नीचाकर किसकी सत्ता,
सब करते स्वीकार यहाँ।
सदा मौन हो प्रवचन करते,
जिसका वह अस्तित्व कहाँ।'' – प्रसाद

अद्वैत भावना रहस्यवाद का एक प्रमुख पक्ष है। छायावादी कविता में यह अद्वैत भाव रहस्यमयी अभिव्यक्ति के रूप में रेखांकित किया जा सकता है, जहां स्वयं को उस परम सत्ता से संपृक्त कर देखने का आग्रह है–

'तुम तुंग हिमालय श्रृंग
और मैं चंचलगति सुर सरिता
तुम विमल ह्रदय उच्छ्वास
और मैं कान्त कामिनी कविता।'' – निराला

छायावादी कवि उस अज्ञेय, असीम सत्ता के मौन निमंत्रण को अनुभव तो करता है, पर प्रश्नाकुल होकर सहसा कह उठता है–

''न जाने नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन।'' – पंत

महादेवी वर्मा की कविताओं में भी इस तरह की अभिव्यक्ति सहज रूप में दृष्टिगत होती है। वस्तुतः छायावादी कविता में रहस्यावादी भावनाएँ प्रचुर रूप में व्यक्त हुई हैं।

5.6.8 वैयक्तिकता का समावेश

छायावादी काव्य में कवि की वैयक्तिक भावनाएँ बहुत व्यापक रूप में प्रकट हुई हैं। कमोबेश सभी प्रमुख छायावादी कवियों ने अपनी वैयक्तिक गहन अनुभूतियों को आत्मपरक शैली में सहज रूप में अभिव्यक्त किया है। उनके व्यक्तिगत जीवन की निराशा, करुणा, वेदना, पीड़ा आदि को कविता में बहुत स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिली है। प्रसाद कृत 'आँसू' वैयक्तिक अनुभूतियों को व्यक्त करनेवाला आत्मपरक करुण गान है, जिसके माध्यम से कवि की तीव्र वेदना को स्वर मिला–

''इस करुणा कलित ह्रदय में,
इक विकल रागिनी बजती।
क्यों हाहाकार स्वरों में,
वेदना असीम गरजती।''
और
''परिरंभ कुंभ की मदिरा,
निःश्वास मलय के झोंके।
निस्स्वच्छ चाँदनी में मैं,
उठता था मुँह धोके।''

निराला की अनेक महत्त्वपूर्ण कविताओं के साथ, 'राम की शक्ति पूजा' तथा 'सरोज स्मृति' जैसी कविताओं में वैयक्तिकता का प्रभावी समावेश है। उनकी यह पंक्ति–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'कन्ये मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित कर न सका'

आत्मपरकता की पराकाष्ठा है। महादेवी की अधिकांश कविताओं में उनकी वैयक्तिक अनुभूतियाँ ही प्रकट हुई हैं, जिनमें 'मैं नीर भरी दुःख की बदली' उसकी चरम अभिव्यक्ति कही जा सकती है। वस्तुतः वैयक्तिकता छायावादी कविता की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है, जिसका सम्मान प्रत्येक कवि करता है।

5.6.9 सजीव सक्षम भाषा

भाषा की दृष्टि से छायावादी काव्य में आधुनिक हिंदी कविता का चरम उत्कर्ष दृष्टिगत होता है। द्विवेदीयुग में जहाँ खड़ीबोली काव्यभाषा परिष्कार और शुद्धिकरण के अनुशासन में अपना स्वरूप और आकार निर्मित कर रही थी, छायावादी युग में उसका परिष्कृत और प्रांजल स्वरूप बहुत निखरा हुआ दिखाई देता है। अंतर्मन के गूढ़ एवं गहन भावों को सहज एवं सरल रूप में व्यक्त करने में छायावाद की भाषा बहुत सजीव और सक्षम है। कल्पना, प्रेम और सौन्दर्य जैसे पक्षों को व्यक्त करते समय छायावादी कविता में तद्नुरूप भाषा प्रयोग मन मोह लेता है–

'चंचल किशोर सुंदरता की,
मैं करती रहती रखवाली।
मैं वह हल्की–सी मसलन हूँ,
जो बनती कानों की लाली।'' – प्रसाद

पंत की 'नौका विहार' तथा 'परिवर्तन' एवं निराला की 'राम की शक्तिपूजा' नामक कविताएँ तत्सम शब्दावली युक्त परिनिष्ठित भाषा का उच्चस्तरीय परिष्कृत स्वरूप प्रस्तुत करती हैं। भाषा की दृष्टि से छायावादी कविता बहुत समृद्ध है।

5.6.10 प्रतीकात्मकता

आतंरिक अनुभूतियों की गहनतम अभिव्यक्ति के लिए छायावादी कवि भावावेश के क्षणों में जब अपनी भावनाएँ सहज रूप में व्यक्त करता है तब प्रतीक उसके सहायक बन जाते हैं। असहाय होते शब्द कवि को प्रतीकों का सहारा लेने के लिए बाध्य करते हैं। छायावादी कविता अधिकांशतः भावावेश के क्षणों में उपजी अनायास सहज अभिव्यक्ति है, जिसके कारण प्रतीकों की अधिकता छायावादी काव्य की स्वाभाविक विशेषता बन गई है। इन प्रतीकों के माध्यम से छायावादी कवि अपनी वैयक्तिक आंतरिक भावना को सहजता से प्रकट करता है, जहाँ वह अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य और अप्रस्तुत विषय को मूर्त, दृश्य, श्रव्य एवं प्रस्तुत रूप में व्यक्त कर प्रतीक – विधान का सम्यक् सत्कार करता है। सभी छायावादी कवियों ने विविध भावों की अभिव्यक्ति में नए–नए प्रतीकों का प्रयोग किया है। जयशंकर प्रसाद एवं महादेवी वर्मा तो छायावादी कवियों में प्रतीक के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं।

प्रसाद की आत्मपरक अनुभूतियाँ प्रतीकों के माध्यम से ही प्रकट होती हैं –

''झंझा था झाड खड़े थे जीवन की फुलवारी में
नव किसलय कुसुम सजाकर आए तुम इस क्यारी में

''झंझा–झकोर गर्जन था बिजली की नीरद माला
आकर इस शून्य हृदय में है किसने डेरा डाला''

महादेवी वर्मा की अधिकतर कविताओं में प्रतीक सहज रूप में प्रस्तुत है –

''मधुर–मधुर मेरे दीपक जल

या

मैं नीर भरी दुःख की बदली,

निराला और पंत की भी अनेक कविताएँ नवीन से नवीन प्रतीकों से संपृक्त हैं। वस्तुतः प्रतीकात्मकता छायावादी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है, जो सभी छायावादी कवियों में दृष्टिगत होती है।

5.6.11 नवछंद

छायावादी काव्य की एक बहुत बड़ी विशेषता, जो सर्वाधिक उल्लेखनीय कहीं जा सकती है, वह नवीन छंदों का प्रयोग है। नूतन छंद प्रयोग छायावाद की नवीन एवं विशेष उपलब्धि कही जा सकती है। इस दृष्टि से अन्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नवीन छंदों के साथ 'मुक्त छंद' का प्रयोग सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता है, जिसके सफल एवं कुशल प्रयोक्ता हैं – निराला । निराला ने छंदों के अनावश्यक बंधन को अस्वीकार कर मुक्तछंद (छंदमुक्त नहीं) का समर्थन किया, जिसके माध्यम से उन्होंने अपनी भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति की, बल्कि आगे आनेवाले कवियों के लिए 'मुक्तछंद' का मार्ग प्रशस्त किया। कहना न होगा कि आज अधिकतर कवि निराला द्वारा दिखाई गई राह पर चल रहे हैं।

'खुल गए छंद के बंध' की उद्घोषणा के साथ छायावादी काव्य नूतन छंदों से संपृक्त है।

प्रसाद ने अपनी रचनाओं में परंपरागत छंदों से अलग प्रसाद, आँसू, आनंद, पदाकूलक आदि नवीन छंदों की सृष्टि कर छायावादी काव्य को समृद्ध बनाया है। कमोबेश सभी छायावादी कवियों ने नवीन छंदों का प्रयोग किया है। प्रसंगवश निराला की कविता, 'जूही की कली' से मुक्त छंद का रास्ता खुलता है।

5.6.12 नव अलंकार

नवीन छंद प्रयोग के साथ–साथ नित नवीन अलंकारों के प्रयोग में भी छायावादी कवि सिद्धहस्त हैं। अलंकार के क्षेत्र में छायावादी कवियों ने परंपरागत अलंकारों का विशेष आग्रह नहीं करते हुए नवीन पाश्चात्य अलंकारों के प्रयोग में विशेष रुचि दिखाई । परंपरागत अलंकारों के प्रयोग में भी नवीनता का विशेष आग्रह छायावादी कवियों में दृष्टिगत होता है। प्रसाद की कविताएँ नवीन से नवीन उपमाओं से संवलित है। 'कामायनी' में ऐसे नवीन प्रयोग बहुलता से देखें जा सकते हैं –

''नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुल अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ वन बीच गुलाबी रंग।''

कुछ नूतन पाश्चात्य अलंकारों में मानवीकरण, ध्वन्यार्थ व्यंजना, विशेषण – विपर्यय के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं, जिनका सफल प्रयोग छायावादी काव्य में दिखाई देता है। निराला, महादेवी, पंत की कविताओं में मानवीकरण अलंकार की छटा देखते ही बनती है –

''दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से
उतर रही है
संध्या परी – सी,
धीरे–धीरे–धीरे – निराला

धीरे–धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत रजनी – महादेवी

विशेषण विपर्यय के उदाहरण प्रसाद की अनेक कविताओं मे दृष्टिगत होते हैं –

''इस करुणा कलित हृदय में,
इक विकल रागिनी बजती।
क्यों हाहाकार स्वरों में,
वेदना असीम गरजती।''

इनके अतिरिक्त 'मधुमय अभिशाप', 'सुंदर पाप', 'स्वर्ण – निर्झर' आदि विशेषण – विपर्यय के उदाहरण कहे जा सकते हैं।

5.7 छायावाद पर आरोप

कल्पना की अत्यधिक उड़ान और स्वानुभूतिमयी आंतरिक अनुभूतियों की अतिभावुक अभिव्यक्ति ने छायावादी काव्य को इतना अंतर्मुखी बना डाला कि वह कविता उन कवियों को तो परितुष्ट कर सकी, पर जन जीवन से कटती चली गई। वैयक्तिक अनुभूतियों की अतिकल्पनाशीलता ने छायावादी काव्य को अधिकांश में एक रस बना डाला। चिर, मधु और आली की अधिकता ने छायावादी कविता को ऊबाऊ और बोझिल बना डाला। तत्सम शब्दावली युक्त परिनिष्ठित भाषा ने जहाँ छायावादी कविता को दुरूह एवं क्लिष्ट बना डाला, वहीं अतिकल्पनाशीलता, अतिभावुकता, अतिविरहानुभूति ने उसे अस्पष्टता, सूक्ष्मता और गहनता के आवरण में हृदय के अंतर्जगत का विषय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बना डाला। वैयक्तिक अनुभूतियों में मानवीय संवेदना के विविध पक्ष दबकर रह गए। छायावादी कवि वाग्जाल के सुंदर शब्द चित्रों में पाठकों के मनमस्तिष्क पर मादकता उड़ेल कर एक जादू का सा प्रभाव तो डाला, पर नवीन आदर्शों एवं उपयोगी जीवनमूल्यों के प्रति उसमें कोई नूतन संदेश विवृत्त नहीं हुआ। यहां छायावाद के एक स्तंभ सुमित्रानंदन पंत का कथन अप्रासंगिक नहीं कहा जाएगा – ''उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौंदर्यबोध और नवीन विचारों का दृश्य नहीं था। वह काव्य न रहकर केवल अलंकार संगीत बन गया था।''

हालांकि छायावादी काव्य पर अति कल्पनाशीलता, अतिभावुकता के साथ उसके पूर्णतः अंतर्मुखी होने का आरोप अनेक आलोचकों ने लगाया है और इसी दिशा में 'छायावाद का पतन' (डॉ. देवराज) जैसे निबंध भी प्रस्तुत किए गए हैं, फिर भी छायावादी कविता, साहित्यिकता के संरक्षण एवं काव्यत्व के अनुरक्षण की दृष्टि से बहुत सफल एवं बहुत प्रभावी है, सौंदर्य और प्रेम के अंकन में छायावादी काव्य का कोई सानी नहीं है। प्रकृति, सांस्कृतिक–भावना, मानवतावादी दृष्टिकोण, नारी – संवेदन, आदि विषय बहुत सजीव रूप में छायावादी काव्य के विषय बने हैं। छायावाद ने काव्य भाषा के निर्माण में बहुत ही उच्च स्तरीय मानदंड सुनिश्चित किए हैं। कविता के वास्तविक पारखियों एवं रसज्ञ पाठकों के लिए छायावादी काव्य ने वह विश्रांति स्थल उपलब्ध करवाया, जहां वे आनंद से विचरण कर सकते थे। संभवतः दिनकर ने इसीलिए कहा होगा –

''यह आंदोलन विचित्र जादूगर बनकर आया था। जिधर भी इसने एक मुट्ठी गुलाल फेंक दी, उधर क्षितिज लाल हो गया।''

उपर्युक्त आरोपों, प्रत्यारोपों एवं प्रशंसा के मध्य यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं कि छायावाद एक पूर्ण काव्यांदोलन था, जो अपनी पूर्णता को प्राप्तकर समाप्त हुआ। हिंदी कविता की दृष्टि से जैसी उल्लेखनीय उन्नति और प्रगति छायावादी युग में हुई, वह आधुनिक हिंदी काव्य जगत की सर्वाधिक चर्चित और महत्त्वपूर्ण घटना है। ऐसे कालखंड को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिसने प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी जैसे काव्यरत्न दिए, जिन पर हिंदी जगत गौरव और अभिमान करता है। डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद का उचित मूल्यांकन करते हुए स्पष्ट रूप से लिखा है –

''जिस कविता ने जीवन के सूक्ष्म मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठा द्वारा नवीन – सौंदर्य चेतना जगाकर एक वृहत् समाज की अभिरुचि का परिष्कार किया, जिसने हमारी कला को असंख्य अनमोल छायाचित्रों से जगमगा दिया– उस कविता का गौरव अक्षय है। उसकी समृद्धि की समता हिंदी, का केवल भक्तिकाव्य ही कर सकता है।''

5.8 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आपने आधुनिक हिंदी कविता के सबसे महत्त्वपूर्ण आंदोलन 'छायावाद' के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। छायावादी काव्यांदोलन तत्कालीन परिस्थितियों की देन था, जो द्विवेदीयुगीन काव्य की यत्किंचित प्रतिक्रिया होते हुए भी उसी के क्रोड़ से जन्मा और विकसित हुआ। इस काव्यांदोलन ने आधुनिक हिंदी काव्य को बहुविध नवीनता से विभूषित किया तथा काव्य रचना के कई मानदंड सुनिश्चित किए। अपने से आगे आनेवाले काव्य आंदोलनों को प्रभावित करने में छायावादी काव्य का विशेष उल्लेखनीय स्थान और महत्त्व है।

इकाई के अध्यन के उपरांत निष्कर्ष स्वरूप निम्नलिखित बिन्दु रेखांकित किए जा सकते हैं –

- आधुनिक हिंदी काव्य के विविध पड़ावों में छायावाद में काव्य का चरम उत्कर्ष दिखाई देता है।
- अनेक आलोचनाओं, प्रत्यालोचनाओं के बावजूद छायावाद एक पूर्ण एवं उत्कृष्ट काव्य का उदाहरण प्रस्तुत करता है।
- छायावाद का विकास द्विवेदीयुगीन काव्य की पूर्वपीठिका पर हुआ।
- हालांकि छायावाद को द्विवेदी युगीन काव्य की प्रतिक्रिया के रूप में जाना जाता है, पर उसके अनेक तत्त्व द्विवेदी काल में परिलक्षित होते हैं। छायावाद को द्विवेदी युगीन काव्य का विकास भी कहा जा सकता है।
- छायावादी काव्य प्रवृत्तियों के विकास में तत्कालीन निराशामूलक सामाजिक – राजनीतिक परिस्थितियों तथा युवामन में पलने – बढ़नेवाली तथा विषाद की विशिष्ट भूमिका मानी जा सकती है।
- छायावादी कविता का आरंभिक स्वर मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय एवं माखनलाल चतुर्वेदी की आरंभिक कविताओं में सुनाई देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- प्रामाणिक रूप से छायावादी काव्य की प्रवृत्तियां जयशंकर प्रसाद की कविताओं में स्पष्टतया परिलक्षित होती हैं।
- छायावाद का वास्तविक आरंभ प्रथमविश्वयुद्ध (सन् 1913–14) के आरंभकाल से माना जाता है।
- लंबे समय तक छायावाद और रहस्यवाद को एक ही समझा जाता रहा।
- प्रेम, शृंगार, सौंदर्य चित्रण, प्रकृति चित्रण, वेदना की गहन अनुभूति, राष्ट्रप्रेम, रहस्यपरकता, वैयक्तिकता, सजीव भाषा, प्रतीकात्मकता, नवीन छंद आदि छायावाद की प्रमुख विशेताएँ हैं।
- छायावादी काव्य पर अतिकल्पनाशीलता, अतिभावुकता, अतिविरहाकुलता का आरोप लगा और उसे अंतर्मुखी कहा गया।
- बावजूद इसके छायावाद एक पूर्ण काव्यांदोलन के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिसने प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी के रूप में चार बड़े कवि प्रदान किए।

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. छायावाद, नामवरसिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. प्रसाद, पंत, निराला : एक अधुनातन आकलन, डॉ. रामप्रसाद मिश्र, दिनमान प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. नया साहित्य – नए प्रश्न, आचार्य नंददुलारे, वाजपेयी, चौखंभा प्रकाशन, वाराणसी।

5.10 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. छायावाद की पृष्ठभूमि का उल्लेख करते हुए उसका सामान्य परिचय दीजिए।
2. छायावाद की विभिन्न परिभाषाओं के आलोक में उसका स्वरूप निर्धारित कीजिए।
3. छायावाद के उदय एवं विकास को स्पष्ट करते हुए उसकी मान्यताओं का उल्लेख कीजिए।
4. छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
5. छायावाद के नामकरण की सार्थकता पर अपने विचार प्रकट करते हुए उस पर लगे आरोपों की जांच – पड़ताल कीजिए।
6. छायावाद पर एक समीक्षात्मक लेख लिखिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. छायावाद की परिस्थितियों का उल्लेख कीजिए।
2. छायावाद और रहस्यवाद में अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. 'छायावाद का नामकरण' विषय पर एक लघु निबंध लिखिए।
4. छायावाद की प्रमुख परिभाषाएँ लिखिए।
5. छायावादी काव्य की तीन प्रमुख विशेषताओं को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
6. छायावाद के प्रमुख कवियों के नाम लिखिए।
7. छायावाद पर क्या आरोप हैं ? स्पष्ट कीजिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. छायावाद का पूर्ववर्ती काल कौन–सा है ?
2. छायावादी कविता को अन्य किस नाम से जाना जता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. 'छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है,' यह किसका कथन है ?
4. छायावाद का आरंभ कब से माना जाता है।
5. आचार्य शुक्ल ने छायावाद का प्रवर्तक किसे माना है ?
6. जयशंकर प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक सर्वप्रथम किसने घोषित किया ?
7. छायावाद की विभिन्न परिभाषाओं में किस –किस की परिभाषाएं श्रेष्ठ मानी जाती हैं ?
8. छायावाद के चार प्रमुख कवि कौन हैं ?
9. छायावाद की वृहत्रयी में कौन–कौन सम्मिलित हैं ?
10. छायावाद की लघुत्रयी किसे कहते हैं ?
11. छायावादी काव्य में कौन–से पाश्चात्य अलंकार प्रयुक्त हुए हैं।
12. मुक्तछंद का प्रवर्तक किसे कहते हैं ?
13. विरह की कवयित्री कौन है ?
14. प्रकृति का कवि किसे कहते हैं ?
15. 'छायावाद का पतन' किसकी रचना है ?
16. 'छायावाद' पुस्तक किसने लिखी है ?
17. छायावाद का सर्वाधिक मौलिक एवं प्रयोगशील, प्रगति चेतना का कवि कौन है ?
18. जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ कौनसी रचना है ?
19. 'जूही की कली' किसकी रचना है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 6 प्रगतिवाद : यथार्थवादी दृष्टि का काव्य

संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 हिंदी साहित्य और प्रगतिवाद
6.3 प्रगतिवाद का उदय
6.4 प्रमुख साहित्यकार
6.5 प्रगतिवाद– अर्थ और परिभाषा
6.6 प्रगतिवादी विचारधारा
6.7 प्रगतिवादी काव्य की विशेषताएं
6.7.1 रूढ़ियों का विरोध और नूतनता का पक्ष
6.7.2 शोषकों के प्रति आक्रोश
6.7.3 शोषितवर्ग से सहानुभूति
6.7.4 क्रांति का स्वर/मार्क्स का गुणगान
6.7.5 यथार्थवादी दृष्टि
6.7.6 नवीन शिल्प
6.8 प्रगतिवाद पर आरोप
6.9 सारांश
6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
6.11 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी काव्य में छायावादी काव्य आन्दोलन के उपरांत नवीन क्रांतिकारी विचारधारा से संवलित जिस महत्त्वपूर्ण काव्य आंदोलन का उदय हुआ, उसे 'प्रगतिवाद' के नाम से अभिहित किया जाता है। यद्यपि व्यवस्थित एवं घोषित रूप से इस आंदोलन का आरंभ सन् 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना के साथ माना जाना है, तथापि एक वैचारिक आंदोलन के रूप में प्रगतिवाद का उदय सन् 1936 से बहुत पहले छायावादी युग में ही हो चुका था। छायावाद के प्रमुख कवियों में 'निराला' और 'पंत' की अनेक कविताएं प्रगतिवादी भावनाओं से ओतप्रोत हैं। प्रगतिवादी विचारधारा से पोषित 'निराला' की अनेक कविताएं, 'विधवा', 'भिक्षुक', 'दीन', वह तोड़ती पत्थर', 'कुकुरमुत्ता', आदि, सन् 1936 से पूर्व या उसके आसपास की रचनाएं हैं, जिनमें उक्त स्वर स्पष्टतया सुने जा सकते हैं। निःसंदेह प्रगतिवादी कविताओं का उत्स छायावादी युग में अवस्थित है। छायावाद के एक अन्य प्रमुख कवि सुमित्रानंदन पंत अपनी काव्ययात्रा के द्वितीय पड़ाव पर घोषित रूप से प्रगतिवादी आंदोलन से जुड़े। उनकी रचनाएं युगवाणी और 'ग्राम्या' में प्रगतिवादी चेतना मुखरित हुई है।

अगर गहराई से विचार किया जाए, तो तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के मद्देनजर प्रगतिवादी आंदोलन को विकसित होने का अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका, कांग्रेस के कई आंदोलन, गांधी का दांडी मार्च, असहयोग आंदोलन आदि ने पूरे समाज में जनक्रांति का जो परिवेश निर्मित किया, उससे देश में जनभावना का एक अलग वातावरण बना। इस वातावरण में परिस्थितियां कुछ ऐसी निर्मित हुईं कि समाजवादी विचारधारा की ओर लोगों का रुझान बढ़ा। विघटन और नैराश्य के मध्य संत्रस्त मानवता की भावनाओं को संबल देने की आकांक्षा के फलस्वरूप मार्क्स के अर्थ – समाज दर्शन की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट हुआ। इस मार्क्सवादी चेतना की ओर मध्यवर्गीय जनजीवन सर्वप्रथम आकृष्ट हुआ। हिन्दी कविता में मार्क्स की यह दार्शनिक चेतना साहित्यिक मूल्य के रूप में स्वीकृत हुई और प्रगतिवादी काव्य आंदोलन को आगे बढ़ने का अवसर मिला। इसमें जन भावनाओं की स्वाभाविक अभिव्यक्ति का अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम आधुनिक हिंदी कविता के एक बड़े एवं यथार्थ दृष्टिसंपन्न आंदोलन प्रगतिवाद के संबंध में अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- आधुनिक हिंदी कविता की विकासयात्रा के महत्त्वपूर्ण सोपान 'प्रगतिवाद' से परिचित हो सकेंगे।
- प्रगतिवाद का उदय और हिंदी में प्रमुख प्रगतिवादी साहित्यकारों से परिचित हो सकेंगे।
- प्रगतिवाद के अर्थ एवं उसकी परिभाषाओं को जान सकेंगे।
- हिंदी के प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख विशेषताओं से पूर्णतया परिचित हो सकेंगे।
- प्रगतिवादी साहित्य पर उठे कतिपय आक्षेप एवं उसके समाधान के परिप्रेक्ष्य में प्रगतिवाद के सम्पूर्ण स्वरूप को समझने में सक्षम हो सकेंगे।

6.2 हिन्दी साहित्य और प्रगतिवाद

आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रगतिवादी विचारधारा का समावेश प्रायः पाश्चात्य विचारधाराओं और राजनीतिक उथल–पुथल की देन माना जाता है। डार्विन का विकासवाद, हीगेल का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा उसी पर आधारित कार्लमार्क्स का साम्यवाद आदि को इसी के प्रमाण्स्वरूप गिनाया जाता है।

हिन्दी कविता में जनभावनाओं के अनुरूप भावाभिव्यक्ति का यह समय छायावाद के अवसान का था, क्योंकि छायावाद तत्कालीन परिस्थितियों में अभिव्यक्ति के करने में समर्थ नहीं रह गया था। जिस समय जगत की वास्तविकता की ओर आँखें बन्द कर और मानो आत्म–विभोर होकर आगे बढ़ा जा रहा था, उसी समय जगत की नग्न वास्तविकता 'रोटी का राग, और 'क्रांति की आग' आगे आयी और उसने साहित्यकार को एक नवीन समस्या, एक नवीन चेतना की ओर अग्रसर किया। छायावाद की अत्यधिक कल्पनाप्रियता, वैराग्य–भावना, पलायनवादिता, भावुकता आदि तथा शिल्पक्षेत्र में संस्कृतनिष्ठ भाषा, लाक्षणिक – रहस्यमयी शैली आदि भी, 'रोटी–रोजी–काव्य' के लिए हितकर नहीं थी। तब प्रगतिवादी चेतना से परिपूर्ण हिन्दी कविता का स्वर आमजन के पक्ष में उभरने लगा। डॉ. नगेन्द्र ने संभवतः इसी ओर संकेत किया है–''छायावाद की भस्म से प्रगतिवाद पैदा नहीं हुआ, बल्कि उसके यौवन का गला घोट कर ही उठ खड़ा हुआ है।''

6.3 प्रगतिवाद का उदय

भारत में प्रगतिवादी आंदोलन की शुरूआत 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना (सन् 1936) से ही मानी जाती है, जिसका प्रथम अधिवेशन हिंदी कथा सम्राट प्रेमचंद की अध्यक्षता में लखनऊ में हुआ। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ऐसा प्रयास पूर्व में किया जा चुका था। सन् 1935 में हेनरी बारबूज की अगुवाई में दुनिया भर के प्रगतिशील लेखकों को एक मंच पर लाने की गरज से पेरिस में एक सम्मेलन बुलाया गया, जिसका नाम था – 'संस्कृति की रक्षा के लिए विश्व लेखक अधिवेशन'। वहीं पर उसी समय अंग्रेजी के प्रसिद्ध साहित्यकार ई.एम. फोर्स्टर की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखकों की एक समिति भी गठित की गई।

इसी वर्ष (सन् 1935) में लंदन मे रहनेवाले कुछ जागरूक बुद्धिजीवी एवं समाजवादी विचारधारा के समर्थकों ने 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' बनाने का निश्चय किया, जिसको कार्य रूप में बदलने का दायित्व मुल्कराज आनन्द एवं सज्जाद जहीर को सौंपा गया। अगले वर्ष सन् 1936 में लखनऊ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। इसके प्रथम अधिवेशन के सभापति थे प्रेचन्द्र और दूसरे के थे, रवीन्द्रनाथ ठाकुर। 'जोश' और सरदार जाफरी ने भी इनका साथ दिया। इनका नारा था – 'हमारा साहित्यिक नारा कला, कला के लिए नहीं, वरन् कला संसार को बदलने के लिए है। इस नारे को बुलन्द करना प्रत्येक प्रगतिशील साहित्यिक का फर्ज है।''

6.4 प्रमुख साहित्यकार

प्रगतिवाद के मुख्य साहित्यकार हैं – 'पंत, निराला, राहुल साँकृत्यायन, रांगेय राघव, यशपाल, अमृतलाल नागर,, मुक्तिबोध, नागार्जुन, शंकर शैलेन्द्र केदारनाथ अग्रवाल, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', गोपालदास 'नीरज', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामविलास शर्मा, भगवतशरण उपाध्याय, शिवदानसिंह चौहान, चन्द्रबली सिंह, प्रकाशचन्द्र गुप्त, मन्मथनाथ गुप्त तथा नामवर सिंह आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.5 अर्थ और परिभाषा

एक विशेष ढंग के साथ एक निर्दिष्ट दिशा की ओर बढ़ते रहना प्रगति है। प्रगतिवाद सामान्य प्रगतिशीलता से अलग हो जाता है और एक विशेष ढंग या दिशा अर्थात् साम्यवाद या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से जुड़ जाता है। यहीं से प्रगतिवाद के दो अर्थ हो जाते हैं – व्यापक और रूढ़। डॉ. धर्मवीर भारती के अनुसार ''व्यापक अर्थों में प्रगतिवाद साहित्य (या काव्य) की उस विशेष दशा को कहेंगे जिसमें चलकर साहित्य मानव–सभ्यता और संस्कृति के विकास में सहयोग देता है, रूढ़ अर्थों में प्रगतिवाद साहित्य की उस दशा–विशेष को कहते हैं जो मार्क्सवादी जीवन–दर्शन के अनुसार साहित्य के लिए निर्देशित की गई है।'' हिन्दी में वाद–रूप में यह प्रायः दूसरे अर्थात् रूढ अर्थ में ही प्रयुक्त किया गया है और इसी आधार पर इसको परिभाषित किया गया है। कुछ प्रमुख परिभाषाओं के आलोक में प्रगतिवाद का स्वरूप निम्नवत् है–

विनयमोहन शर्मा : – 'प्रगतिवादी साहित्य वह कहलाता है जिसमें रोमानी या रोमांचकारी युग की बुर्जुआ अर्थात् सामन्त–वाणी का परित्याग हो, और दूसरों के राज्य की जय–घोषणा हो, किसानों की विजय और जमींदारों की पराजय को स्वीकृति हो तथा नारी की स्वच्छन्द प्रवृत्तियों का उल्लसित स्वागत हो' ।

डॉ. नगेन्द्र : – ''राजनैतिक क्षेत्र में जो साम्यवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद।''

6.6 प्रगतिवाद की विचारधारा

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के प्रणेता हीगेल ने सृष्टि के मूल में तीन अवस्थाओं को माना है – वाद ;जैमेपेद्ध, प्रतिवाद ;।दजपजीमेपेद्ध और संवाद ;ैलदजीमेपेद्ध। प्रत्येकवाद में उसका विपरीत धर्म–प्रतिवाद साथ लगा रहता है और दोनों के समन्वय से ही संवाद की स्थिति होती है।

कार्ल मार्क्स ने हीगेल के 'परिवर्तन और विकास' के सिद्धान्त को तो स्वीकार कर लिया, किन्तु उसकी 'निरपेक्ष ब्रह्म की कल्पना' को ठुकरा दिया। उसने विचार या कल्पना को प्रधानता न देकर ब्राह्य जगत को ही प्रमुख माना। इसी प्रकार उसने फायरबाख के प्रकृतिवाद या भौतिकवाद को संशोधित रूप में स्वीकार किया। हीगेल की द्वन्द्वात्मक पद्धति में भौतिकवाद की कमी थी और फायरबाख के भौतिकवाद में द्वन्द्वात्मक पद्धति की। मार्क्स ने इन दोनों का समन्वय करके अपने मत का आधार भौतिकवाद और निरूपण – प्रणाली द्वन्द्वात्मक पद्धति को रखा। इनके साथ – साथ सर्वप्रथम चार्ल्स हाल द्वारा प्रतिपादित वर्ग–संघर्ष के सिद्धान्त को भी मार्क्स ने ग्रहण किया। इसी से कहा जाता है कि ''मार्क्स ने हीगल की द्वन्द्वात्मक तर्क पद्धति ली, फायरबाख से भौतिकवाद लिया और हाल से वर्ग – संघर्ष ग्रहण किया और इस समन्वय से अपना मत निर्मित किया।''

मार्क्स के अनुसार सृष्टि में दो तत्व प्रधान हैं – स्वीकारात्मक ;च्वेपजपअमद्ध और नकारात्मक ;छमहंजपअमद्ध। इन दोनों तत्वों का संघर्ष ही जीवन है। इन्हीं के संघर्ष से 'चेतना उत्पन्न होती है। इस चेतना का आधार पदार्थ ;डंजजमतद्ध है। उपर्युक्त दोनों तत्त्व पदार्थ में स्थिर रहते हैं जिससे उनमें चेतना की उत्पत्ति होती है। वह चेतना द्वंद्व का परिणाम है। इसी से इसे द्वंद्वात्मक भौतिकवाद कहा जाता है। ऐतिहासिक रूप से इसी द्वंद्व का परीक्षण और निरीक्षण ऐतिहासिक भौतिकवाद है। अतीत काल से ही स्वामी–दास, शासक–शासित तथा पूंजीपति श्रमिक के रूप में वर्ग – संघर्ष चलता रहा है। मार्क्स के अनुसार अब इसे परिवर्तित होना है। इस परिवर्तन के लिए वह गाँधीवाद की तरह ह्दय परिवर्तन में विश्वास न कर बल–प्रयोग में विश्वास रखता है।''

मार्क्स के इन्हीं दार्शनिक सिद्धान्तों पर 'साम्यवाद' खड़ा हुआ और इसी 'साम्यवाद' के आधार पर हिन्दी जगत का प्रगतिवाद । इस प्रकार मार्क्सवाद या साम्यवाद का स्वरूप ही प्रगतिवाद है।

6.7 प्रगतिवादी काव्य की विशेषताएं

प्रगतिवादी अभिव्यक्ति देकर उसके पक्ष में प्रगतिवादी विचारक साहित्य और उसके अभिन्न अंग काव्य को भी निरंतर गतिशील मानता है। वह परम्पराओं को नकारता है और आम आदमी की भावनाओं के प्रति अपनी पक्षधरता सिद्ध करने का आग्रही है। नूतनता को ही आवश्यक–स्वाभाविक मानता है। इसी से वह एक ओर तो काव्य के सभी अंगों में परिवर्तन की हिमायत करता है और दूसरी ओर यथार्थ स्थिति को आँखें खोलकर देखता है। निःसंदेह यह दृष्टिकोण मार्क्सवादी या साम्यवादी है। इस आधार पर प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत हैं :–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.7.1 रूढ़ियों का विरोध और नूतनता का पक्ष :

पुरातनता के निषेध तथ नवीनता के उन्मेष के कारण प्रगतिवादी कवियों ने रूढ़ियों और परम्पराओं का विरोध किया है। वे ईश्वर और धर्म को हेय और त्याज्य मानकर उनकी भर्त्सना करते हैं और इनके स्थान पर नूतन दृष्टिकोण की स्थापना करते हैं –

"आज भी जन–जन जिसे करबद्ध होकर याद करते।
नाम ले जिसका गुनाहों के लिए फरियाद करते।
किन्तु मैं उसका घृणा की धूलि से सत्कार करता।" – रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

6.7.2 शोषकों के प्रति आक्रोश :

प्रगतिवादी मान्यता के अनुसार प्रत्येक देशकाल में उच्चवर्ग ने निम्न वर्ग या जनसाधारण का शोषण किया है। साम्यवाद की स्थापना में सबसे बड़ा रोड़ा यह उच्च शोषक वर्ग (पूंजीपति, जमींदार और धर्माचार्य आदि) ही है। अतएव इसके प्रति घृणा, आक्रोश होना स्वाभाविक ही नहीं, जनहित में भी है–

"अबे, सुन बे, गुलाब
भूल मत, जो पाई खुशबू रंगो–आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।" – निराला : कुकुरमुत्ता

6.7.3 शोषितवर्ग से सहानुभूति

प्रगतिवादी कवि शोषित वर्ग के प्रति हार्दिक सहानुभूति रख कर उसी को समाज का केन्द्रबिन्दु मानता है। उसकी मान्यता है कि जहाँ लोग कीड़े की तरह जिंदगी बिता रहे हों, वहाँ स्वर्ग के गानेगाना अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन रहना है। 'भिक्षुक', 'दो लड़के', भैंसागाड़ी', 'वह तोड़ती पत्थर' जैसे विषयों को काव्य का प्रमुख वर्ण्य विषय बनाकर प्रगतिवादी भावधारा के पोषक कवियों ने अपने दायित्व का निर्वाह किया है –

"बाप–बेटा बेचता है भूख से बेहाल होकर
धर्म धीरज, प्राण खोकर
हो रही अनरीति बर्बर
राष्ट्र सारा देखता है : – केदारनाथ अग्रवाल

6.7.4 क्रान्ति का स्वर/मार्क्स का गुणगान

प्रगतिवाद का मूलाधार है साम्यवाद जिसके प्रणेता – कार्ल मार्क्स हैं। प्रगतिवादी कवियों द्वारा मार्क का गुणगान करना उनके काव्य का मूल स्वर रहा है । कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

(1) "लाल रूस है ढाल साथियों, सब मजदूर–किसानों की
वहाँ राज्य है पंचायत का, वहाँ नहीं बेकारी है।
लाल रूस का दुश्मन, साथी, दुश्मन सब इन्सानां का।" – नरेन्द्र शर्मा

(2) "धन्य मार्क्स चिर–तमाछन्न पृथ्वी के उदय–शिखर पर
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान–चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।" – पन्त

(3) "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल–पुथल मच जाए।
एक लहर इधर से आये, एक लहर उधर से आए।" – नवीन

6.7.5 यथार्थवादी दृष्टि

अति यथार्थवादी चित्रण करने में प्रगतिवादी कविता स्वाभाविक रूप से बहुत मुखर रही है। उसने समाज के नग्न यथार्थ को हमारे सामने रख कर उस ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। इस क्रम में शिवबालक राय का कथन प्रासंगिक है – "हमें ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो हमें अपने वास्तविक रूप से सच्ची परिस्थिति से परिचित कराए। अपनी दुर्दशा, गरीबी पाखंड यानी समाज के वीभत्स रूप को उघाड़कर हमारे सामने रखे। दुर्गन्ध सड़ापन, बदबू जो कुछ हो, समाज की आँखों के सामने स्पष्ट होना चाहिए।" काव्य इसी लोक की वस्तु है, परलोक की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अलौकिक वस्तु नहीं। अलौकिक या काल्पनिक आदर्शों की झूठी नैतिक मान्यताओं से डर कर मुँह मोड़ना पलायन है। इसी से ये कवि यथार्थ ही नहीं, अति या नग्न यथार्थ को ग्रहण करने में भी हिचकते नहीं हैं । यथा –

''श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, बच्चे भूखे अकुलाते हैं।

माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।
युवती के लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाये जाते हैं।
मालिक जब तेल–फुलेलों पर पानी–सा द्रव्य बहाते हैं।
पानी महलों का अहंकार, देता मुझको तब आमन्त्रण।' – दिनकर

6.7.6 नवीन शिल्प

प्रगतिवाद के लिए मधु और कल्पना मिश्रित कोमल भाषा – शैली की आवश्यकता नहीं है, वरन् हमारी गरीबी और परवशता का चित्रण खुरदरी और सपाट भाषा में ही होना चाहिए। इसी से इन कवियों ने छंद–अलंकार के (परम्परागत) बंधन खोले, मशाल, प्रलय, रक्त, जोंक, तांडव आदि नए प्रतीकों को ग्रहण किया तथा सरल शब्दावली में अपनी भावनाएँ व्यक्त कीं।

6.8 प्रगतिवाद पर आरोप

आधुनिक हिंदी काव्य की प्रगतिवादी विचारधारा पर अनेक समीक्षकों ने विविध आक्षेप किये हैं। उनका मानना है कि 'प्रगतिवाद शाश्वत सत्यों की उपेक्षा करता है, मार्क्सवादी विचार पद्धति पर आधारित होने के कारण यह भारत की आध्यात्मिक भावना के प्रतिकूल है, इसलिए यह चार्वाक मत का नवीन साहित्यिक संस्करण है। यह हिंसा को प्रश्रय देता है और श्रद्धा की उपेक्षा करके केवल बौद्धिकवाद और आर्थिक कसौटी पर प्रत्येक वस्तु को परखता है इसलिए त्याज्य है। किसानों और मजदूरों तक ही सीमित रहने के कारण इसका क्षेत्र अत्यन्त संकुचित है। मात्र क्रान्ति का राग अलापने के कारण यह हेय है, अतीत को मिटाकर केवल वर्तमान को महत्त्व देने के कारण यह अपूर्ण है। डॉ. नगेन्द्र ने भी इस पर कुछ आक्षेप किये हैं– ''प्रगतिवादी जीवन दर्शन संकुचित है ' साहित्य अपने में वैयक्तिक चेतना है किन्तु यह उसे सामाजिक या सामूहिक चेतना मानता है, एक विशेष राजनैतिक विचारधारा का ही उच्चार है, जो बलपूर्वक साहित्य द्वारा अपनी प्रत्यक्षाभिव्यक्ति चाहता है, इसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक होने के कारण बौद्धिक एवं आलोचनात्मक है, अतएव स्वभाव से ही उसमें एक तन्मयता–आत्म–विसर्जन नहीं है जो काव्य के लिए अनिवार्य है।'' कुछ अन्य आक्षेप निम्नवत् हैं –

(1) प्रगतिवाद भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित नहीं है और उसका विरोध ही नहीं भर्त्सना तक करता है। ''इसकी दृष्टि में रवीन्द्र का रहस्यवाद, गाँधी की रामधुन और हृदय की आवाज तथा महादेवी की प्रेमसाधना सभी निरर्थक एवं हास्यास्पद हैं।'' – शिवबालक

(2) यह अति यथार्थवादी है और इसके नाम पर प्रायः दुराचार और अश्लीलता का ही अंकन हुआ करता है। – अम्बाप्रसाद 'सुमन'

(3) ''हिन्दी में प्रगतिवादी साहित्य के नाम पर जो भी कूड़ा–करकट लिखा गया है, उसे देखकर शर्म आती है।'' – शिवदानसिंह चौहान

(4) ''........ प्रगतिवाद सस्ती भावुकता को ढोने की अधिक सामग्री एकत्र करता है। यह साहित्य प्रौढ़ता या विशिष्टता की पूर्णता से दूर है। अतः काव्य की सजीव आत्मा की अभिव्यक्ति उसमें नहीं।''

– प्रो. शिवचन्द्र

हिंदी की प्रगतिवादी विचारधारा पर किए गए आक्षेप और आरोप प्रमुख रूप से उसके किए जाने वाले सर्जन के प्रति है। यह सही भी है कि प्रगतिवादी साहित्य के नाम पर बहुत कुछ सतही, सामान्य और अरुचिकर भी पंक्तिबद्ध किया गया है, लेकिन यह भी सही है कि सामाजिक विषमता के विरुद्ध तीव्र स्वर और अपनी गहन प्रतिबद्धता के कारण प्रगतिवाद हमें सोचने समझने की एक नवीन दृष्टि से संवलित करता है। आमजन की मूक पीड़ा और व्यथा को वाणी देकर प्रगतिवाद ने क्रांति का जो उद्घोष किया, उसके कारण आधुनिक हिंदी काव्य में उसका विशिष्ट और असाधारण महत्त्व है। जनभावना का सम्मान करनेवाला प्रगतिवाद यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित होकर एक नवीन भावदृष्टि का निर्माण करता है,जो महत्त्वपूर्ण है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.9 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आधुनिक हिंदी काव्य के विशिष्ट एवं यथार्थ दृष्टि संपन्न आंदोलन 'प्रगतिवाद' का विवेचन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। प्रस्तुत अध्ययन का सार–संक्षेप निम्नवत् रेखांकित किया जा सकता है–

- छायावाद के उपरांत यथार्थवादी दृष्टि पर आधारित जिस नवीन क्रांतिकारी काव्यांदोलन का जन्म हुआ उसे हिंदी में प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है।
- यह आंदोलन छायावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ था।
- प्रगतिवाद पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव में राजनीतिक उथल–पुथल के परिणाम स्वरूप सामने आया।
- कार्लमार्क्स के दार्शनिक सिद्धांत द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित उनके समाजवादी सिद्धांत से प्रेरित होकर प्रगतिवाद ने अपना स्वरूप निश्चित किया।
- हिंदी में प्रगतिवाद का आरंभ सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ में आयोजित प्रथम अधिवेशन से माना जाता है, जिसकी अध्यक्षता प्रेमचंद ने की थी।
- सन् 1936 से पूर्व भी छायावादी परिधि में ही निराला की अनेक कविताएं (दीन, भिक्षुक, विधवा, वह तोड़ती पत्थर, कुकुरमुत्ता आदि) प्रगतिवादी विचारधारा का पोषण करती हैं।
- पंत, निराला, राहुलसांकृत्यायन, मुक्तिबोध, रांगेयराघव, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शमशेर बहादुरसिंह, त्रिलोचन, रामविलास शर्मा, नामवरसिंह प्रमुख रूप से प्रगतिवादी साहित्यकार माने जाते हैं।
- प्रगतिवादी काव्य समाज के शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति रखते हुए आमजन की मूक भावनाओं को स्वर देने के कारण बहुत लोकप्रिय हुआ।
- रूढ़ियों का विरोध, नवीनता का समर्थन, शोषकों के प्रति आक्रोश, शोषित के प्रति संवेदना, कार्ल मार्क्स का गुणगान, अतियथार्थप्रियता, नवीनशिल्प आदि प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताएँ हैं।
- प्रतिवाद पर 'शोर' और 'नारे' खड़े करने का आरोप लगाया जाता है।
- जनभावनाओं की व्यापक अभिव्यक्ति के कारण 'प्रगतिवाद' एक बड़े वर्ग का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने में सफल हुआ।
- यर्थावादी दृष्टि पर आधारित होने के कारण आज भी इसका महत्त्व कम नहीं हुआ है। हिंदी साहित्य जगत में इस विचारधारा का समर्थन करनेवाले सर्वाधिक हैं।

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ – डॉ. नामवरसिंह
2. प्रगतिवाद : एक समीक्षा – डॉ. धर्मवीर भारती
3. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य– रामविलास शर्मा
4. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – डॉ. बच्चनसिंह
5. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास– डॉ. बच्चनसिंह

6.11 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. आधुनिक हिंदी साहित्य में प्रगतिवाद के उदय एवं विकास पर आलोचनात्मक दृष्टि डालिए।
2. प्रगतिवाद की मान्यताएं एवं उसकी विभिन्न परिभाषाओं के आलोक में उसका स्वरूप स्पष्ट किजिए।
3. प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख विशेषताओं को उदाहरण सहित स्पष्ट किजिए।
4. प्रगतिवाद का अर्थ, उसके प्रेरक तत्वों का उल्लेख करते हुए हिंदी साहित्य में उसका महत्त्व प्रतिपादित कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. प्रगतिवादी काव्य पर लगाए जानेवाले आरोपों, आक्षेपों की समीक्षा करते हुए उनके समाधान का उल्लेख कीजिए।
6. प्रगतिवाद पर एक समीक्षात्मक निबंध लिखिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. प्रगतिवाद का अर्थ स्पष्ट किजिए।
2. प्रगतिवाद की प्रमुख पारिभाषाएं लिखिए।
3. प्रगतिवाद का उदय कब और कैसे हुआ ?
4. प्रगतिवाद ने कहां से प्रेरणा ग्रहण की संक्षेप में स्पष्ट कीजिए ?
5. हिंदी में प्रमुख प्रगतिवादी कवियों के नाम लिखिए।
6. प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि समझाइए।
7. प्रगतिवाद की विचारधारा स्पष्ट कीजिए।
8. प्रगतिवाद की किन्हीं दो विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
9. प्रगतिवाद पर प्रमुख आरोप क्या है ?

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना कब और कहां हुई ?
2. भारत में 'प्रगतिशील लेखक संघ' का आरंभ कब हुआ ?
3. 'प्रगतिशील लेखक संघ' का प्रथम अधिवेशन कब और कहां हुआ ?
4. 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अध्यक्ष कौन थे ?
5. 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' शीर्षक लेख का लेखक कौन है ?
6. प्रगतिशील साहित्य का प्रमुख नाम क्या है ?
7. प्रगतिवाद कौनसी विचारधारा से संबद्ध है।
8. 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोशियेसन' की स्थापना कब और कहां हुई थी ? उसके सभापति का नाम भी बताएं।
9. कार्लमार्क्स के सिद्धांत का क्या नाम है ?
10. 'श्वानों को मिलता दूधवस्त्र' किसकी पंक्ति है ?
11. प्रगतिवाद पर सबसे प्रमुख आरोप क्या है ?
12. 'बाप बेटा बेचता है– भूख से बेहाल होकर' किसकी पंक्ति है ?
13. 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओं जिससे उथल–पुथल मच जाए'। किसकी पंक्ति है ?
14. ''अबे, सुन बे गुलाब' किस प्रसिद्ध कवि की पंक्ति है ?
15. प्रगतिवाद का उदय किस काव्यांदोलन की प्रतिक्रिया में हुआ ?
16. प्रगतिवाद का प्रवर्तक कवि किसे माना जाता है ?
17. प्रगतिवाद का प्रेरक कवि किसे कहते है ?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 7 प्रयोगवाद : नवीन उद्‌भावनाओं का काव्य

संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 प्रयोगवाद : एक परिचय
7.3 हिन्दी कविता में प्रयोगवाद
7.4 प्रयोगवाद की मान्यताएँ
7.4.1 सत्य की खोज
7.4.2 काव्य का साधारणीकरण
7.4.3 नये प्रयोगों पर बल
7.4.4 शिल्प–क्रान्ति पर जोर
7.4.5 बौद्धिकता पर बल
7.5 प्रयोगवादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ
7.5.1 घोर वैयक्तिकता
7.5.2 क्षणवाद
7.5.3 दमित वासना का प्राधान्य
7.5.4 बौद्धिकता
7.5.5 अनास्था
7.5.6 कुण्ठा और निराशा
7.5.7 लघुमानव की प्रतिष्ठा
7.5.8 छन्द
7.6 प्रयोगवाद की उपलब्धियाँ
7.7 प्रयोगवाद गर आक्षेप
7.8 सारांश
7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
7.10 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

छायावादी काव्यांदोलन के अवसान के उपरान्त आधुनिक हिन्दी काव्य में छायावादी काव्य की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिवादी आन्दोलन सामने आया। कमाबेश उसी विचारधारा से सम्बद्ध कवियों एवं कतिपय अन्य कवियों ने उसी समय या उसके आस–पास कविता में परीक्षण और पुनः परीक्षण द्वारा सत्य के विविध नूतन आयामों के अन्वेषण का मिलकर समर्थन करते हुए नवीन से नवीनतम प्रयोगों पर बल दिया। प्रयोग पर बल तथा प्रयोग शब्द का बार–बार प्रयोग करने से जो एक नई काव्यधारा प्रस्फुटित हुई वह 'प्रयोगवाद' कहलाई। इस धारा के प्रवर्तक कवियों ने नवीनता के आधार पर साहित्य में अन्वेषण को अपनाया जिसके कारण आलोचकों ने आलोचना स्वरूप इसे प्रयोगवाद नाम दे दिया।

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में 'प्रयोगवाद', जिसका आरंभ सन् 1943 में अज्ञेय के संपादन में 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ माना जाता है, का सम्यक् एवं प्रामाणिक विवेचन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस तरह प्रयोगवादी काव्यांदोलन का संक्षिप्त परिचय देना इस इकाई का उद्‌देश्य है। इस इकाई के अध्ययन के अपरांत आप :

- प्रयोगवाद का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रयोगवादी कविता आंदोलन की परिस्थितियों के संबंध में जान सकेंगें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- प्रयोगवाद का उदय एवं उसके प्रमुख कवियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रयोगवाद को बल प्रदान करनेवाली पत्रिकाओं एवं प्रकाशनों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रयोगवाद की मान्यताओं से परिचित हो सकेंगे।
- प्रयोगवाद की प्रमुख विशेषताओं के संबंध में जान सकेंगे।
- प्रयोगवाद की उपलब्धियों से परिचित हो सकेंगे।
- प्रयोगवाद पर लगे आक्षेपों / आरोपों को जान सकेंगे।
- समग्रतः प्रयोगवादी काव्य आंदोलन के संबंध में विस्तार से जान सकेंगे।

7.2 प्रयोगवाद का परिचय

'प्रयोग' शब्द साहित्य में 'अन्वेषण' के लिये प्रयुक्त किया जाता है। प्रयोग का उद्देश्य है – मान्य सत्य का परीक्षण और पुनः परीक्षण द्वारा सत्य के नूतन आयामों का अन्वेषण।'' ''प्रयोग की मूल प्रवृत्ति – परामपरागत स्थापनाओं से आगे बढ़कर नई दिशाओं की स्थापना है।'' इधर वाद मूलतः कवि की प्रवृत्ति की व्याख्या है। इन प्रयोगशील कवियों (और इनके काव्य) को ही 'प्रयोगवाद' के खेमे में जाना – माना गया। अज्ञेय ने 'तारसप्तक' के कवियों को 'प्रयोगधर्मा' कहा, प्रयोगवाद शब्द सुनते ही आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने प्रगतिवाद की तर्ज पर 'प्रयोगवाद' नाम दिया, जो चल पड़ा। हालांकि अज्ञेय जी ने स्पष्ट रूप से घोषित किया था कि ''प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, अब भी नहीं है। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना।''

7.3 हिन्दी कविता में प्रयोगवाद

'प्रयोगवाद' का उदय अज्ञेय द्वारा सम्पादित और सन् 1943 में प्रकाशित 'तारसप्तक' से माना जाता है। इसमें अज्ञेय के अतिरिक्त छः अन्य नये कवियों की नये ढंग की कवितायें संकलित थीं। ये कवि थे – गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द जैन, भारतभूषण अग्रवाल प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर तथा डॉ. रामविलास शर्मा। 'दूसरा सप्तक', 'तीसरा सप्तक', निकष और 'विविधा' आदि काव्य संकलनों एवं 'प्रतीक', 'पाटल', 'कल्पना', 'दृष्टिकोण', 'अजन्ता', 'राष्ट्रवाद', 'कविता' और 'नई कविता' पत्रिकाओं से इसका विकास हुआ, जो आगे चलकर 'नई कविता' में बदल गया। 'तारसप्तक' के कवियों के अतिरिक्त इस धारा के अन्य प्रमुख कवि हैं धर्मवीर भारती, भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर, नरेश मेहता तथा रघुवीर सहाय (दूसरा सप्तक), प्रयाग नारायण त्रिपाठी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजयदेव नारायण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और कीर्ति चौधरी (तीसरा सप्तक) और लक्ष्मीकांत वर्मा आदि। आगे चलकर 'नई कविता' के कवि भी इसी खेमे का प्रतिनिधित्व करते हैं।

7.4 प्रयोगवाद की मान्यतायें

प्रयोगवाद किसी एक निश्चित जीवन–दर्शन में विश्वास नहीं करता। ये कवि ''..... किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं, राही नहीं, राहों के अन्वेषी, । ''काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण इन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है।'' इसी से, 'ये कवि किसी एक सम्प्रदाय के नहीं हैं, न सबकी साहित्यिक मान्यतायें एक हैं।'' बावजूद इसके सामान्यीकरण के आधार पर, जिन बातों पर प्रयोगवादी कवि एकमत हैं, उन्हें इनकी मान्यतायें कहा जा सकता है। संक्षेप में प्रयोगवादी काव्य की मान्यतायें निम्नांकित हैं –

7.4.1 सत्य की खोज

प्रयोगवाद के मतानुसार जीवन की भाँति काव्य भी एक चिरगतिशील सत्य है। अतएव वह कहीं एक स्थान पर 'सम्पूर्ण' नहीं होता वरन् उसका निरन्तर शोध या अन्वेषण करना पड़ता है। इस प्रकार यह ''मान्य सत्य का परीक्षण और फिर परीक्षण द्वारा सत्य के नये अन्वेषण'' पर बल देता है। इतना ही नहीं लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्दों में, कह सकते हैं कि ''प्रयोगवादी केवल 'अज्ञात' की खोज ही नहीं करना चाहते थे– वह 'ज्ञात' में भी 'अज्ञात खोजते थे।'' उन्होंने 'व्यक्ति–सत्य' और 'व्यापक सत्य' को एक ही सत्य के दो रूप माना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.4.2 काव्य का साधारणीकरण

प्रयोगवाद साधारणीकरण को परम्परागत और नूतन दोनों अर्थों में स्वीकार करता है। उसके अनुसार दीर्घकाल तक कविता वर्ग–विशेष तक सिमटी–चिपटी रही है। छायावादी कविता ने इसको व्यक्ति में बाँध दिया तो प्रगतिवादी ने 'समाज' में नया कवि काव्य को वैयक्तिक आधार पर भी सर्वसाधारण के लिए सुलभ करना चाहता है। वह उपलब्ध सत्य को इसकी सम्पूर्णता में ही पाठकों तक पहुँचाना चाहता है। कहा है, ... कवि नये तथ्यों को उनके साथ नये रागात्मक सम्बन्ध जोड़कर सत्यों का रूप दें, इन नये सत्यों को प्रेष्य बनाकर उनका साधारणीकरण करें, यही नयी रचना है। साधारणीकरण को उसने छोड़ नहीं दिया है, पर वह जितनों तक पहुँच सके, उन तक पहुँचाता रहकर और आगे बढ़ जाना चाहता है, उनको छोड़कर नहीं।''

7.4.3 नये प्रयोगों पर बल

प्रयोगवाद केवल पुराने से सन्तुष्ट नहीं वरन् काव्य के अनुभूति और शिल्प दोनों ही पक्षों में नये प्रयोग करते रहने का पक्षधर है। अज्ञेय ने 'प्रयोग– की आवश्यकता पर स्पष्टतः बल देते हुये कहा है, ''प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किए हैं, किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों में अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी छुआ नहीं गया या जिनको अभेद्य मान लिया गया है। इसी से प्रयोगवाद एक ओर 'व्यक्ति–अनुभूति' को 'समष्टि–अनुभूति' तक उत्सर्ग करने का प्रयास है, तो दूसरी ओर वह रूढ़ि का विरोधी और अन्वेषण का समर्थक है।''

7.4.4 शिल्प – क्रान्ति पर जोर

डॉ. नगेन्द्र ने प्रयोगवाद को 'शैली का विद्रोह' कहा है। समस्त–शिल्प–विधान में प्रयोगवादी कवि ने परिवर्तन करने पर जोर दिया है। कुछ प्रयोगवादी कवियों के मत देखिए :

(1) अज्ञेय (तारसप्तक : भूमिका) ''जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुँचाया जाये – यही पहली समस्या है, जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।''

(2) गिरिजाकुमार माथुर (तारसप्तक) : ''कविता में विषय से अधिक टेकनीक पर ध्यान दिया जाता है। मेरा विश्वास है कि टेकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है।''

शिल्प की इसी प्रमुखता के कारण शब्दावली, प्रतीक, बिम्ब, छंदयोजना आदि सभी क्षेत्रों में प्रयोगवाद के कवियों ने नये प्रयोग किये हैं। उन्होंने अपने शब्द – भण्डार को समृद्ध करने के लिये विज्ञान–मनोविज्ञान, उर्दू और अंग्रेजी से लेकर गली–बाजारों तक से शब्द एकत्र किये हैं– उनको नये रूप – रंग दिये हैं और सर्वथा नवीन अर्थवत्ता प्रदान की है। प्रतीक और बिम्बों के लिये अछूते उपमानों को ग्रहण किया है तथा छंदादि में तुक, नाद आदि नये तत्वों का समावेश किया है।

7.4.5 बौद्धिकता पर बल

प्रयोगवाद बौद्धिकता का विशेष आग्रही है। उसके अनुसार तो आज के परिवेश में रस के पुराने साधन व्यर्थ हैं और अब तो बौद्धिकता में भी रस को ढूँढ़ा जा सकता है। डॉ. जगदीश गुप्त (नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ ने ठीक कहा है 'रसवादी कविता के प्रायः लक्षण नयी कविता में नहीं मिलते , यहाँ तक कि भावुकता की कमी रहती है।'' ''उसके सौन्दर्य –बोध में अन्तर आ गया है' तथा ''नई कविता बौद्धिकता की छाया में विकस रही है।' .... सभी के पीछे प्रेरणा का बुद्धिगत रूप स्पष्ट झलकता है।'' इसी भांति प्रसिद्ध कवि धर्मवीर भारती का मत हैं – 'प्रयोगवादी कविता में हर भावना के सामने एक प्रश्न–चिह्न लगा हुआ है। इसी प्रश्न–चिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। प्रयोगवादी कवि बौद्धिकता पर 'अति' की सीमा तक बल देता है और इसको काव्य का प्रमुख अंग मानता है।

डॉ. नगेन्द्र प्रयोगवाद को 'शैली का विद्रोह' मानते हैं। डॉ. देवराज ने प्रयोगवाद को केवल युग –प्रभावित नहीं अपितु बहुत हद तक इलियट, एजरापाउण्ड आदि की शैली का अनुकरण भी बताया है, किन्तु प्रयोगवाद का उदय अनुकरणमात्र नहीं है। प्रगतिवादी कवियों ने जिस जीवन का चित्रण किया है, वह अनुभूत नहीं था। अतः उसमें गहराई का अभाव था, भाषा शैली की दृष्टि से भी वह अनगढ़ था। अतः उसके विद्रोह – स्वरूप प्रयोगवाद का जन्म हुआ। डॉ. रामदरश मिश्र ने प्रयोगवाद का सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से विवेचन करते हुए लिखा है – ''प्रयोगवादी कविताओं में भी नकली और घटिया कोटि की कविताओं का अभाव नहीं है, फिर भी सामान्यतः उनमें कवि का आत्ममुक्त दर्द ईमानदारी से व्यक्त हुआ है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7.5 प्रयोगवादी काव्य की विशेषतायें

प्रयोगवादी काव्य की विशेषतायें (प्रवृत्तियाँ) निम्नवत् हैं –

7.5.1 घोर वैयक्तिकता

प्रयोगवादी कवि व्यापक जन – जीवन का चित्रण नहीं करता । अतः वह अपने ही भोगे हुए यथार्थ को अभिव्यक्त करना पसन्द करता है। कहीं कहीं यह वैयक्तिकता आत्मविज्ञापन तक बन गई है, किन्तु सामान्यतः इस वैयक्तिकता का चित्रण सहानुभूतिपूर्ण है। अहंवादी मूलस्वर भारतभूषण की इस कविता में व्यक्त हुआ है।

''साधारण नगर के / एक साधारण घर में / मेरा
जन्म हुआ / बचपन बीता अतिसाधारण / साधारण
खान–पान / साधारण वस्त्र वास/ ....।''

प्रयोगवाद व्यक्तिवादी काव्य–प्रवृत्ति है। धारा से कट कर द्वीप की भाँति आत्मकेन्द्रित रहने की व्यक्तिवादी तथा अहंवादी प्रवृत्ति सर्वाधिक 'अज्ञेय' की रचनाओं में देखी जा सकती है, यथा –

''हम नदी के द्वीप हैं

हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाये।

....

किन्तु हम हैं द्वीप। हम धारा नहीं हैं।''

जहाँ कवि अपने अहं का विसर्जन करता है, वहां भी वह अपने व्यक्तित्व को पृथक् नहीं करता है, जैसे – ''यह द्वीप अकेला स्नेह भरा'' में।

7.5.2 क्षणवाद

प्रयोगवाद में बड़ी–बड़ी घटनाओं या जीवन – प्रसंगों के स्थान पर क्षणों की अनुभूतियों और छोटी तथा सूक्ष्म संवेदनाओं का चित्रण है। रामदरश मिश्र के शब्दों में – ''सुख–दुःख की संवेदनाओं को उभार कर चुपके से सरक जानेवाले छोटे–छोटे क्षण, छोटी–छोटी अनदेखी घटनाएँ, छोटे–छोटे प्रसंग बड़ी सच्चाई के साथ प्रयोगवादी कविता में अंकित होने शुरु हुए।''

यह प्रवृत्ति 'अज्ञेय' की निम्न रचना में द्रष्टव्य है –
''आओ बैठो क्षण भर तुम्हें निहारूँ
झिझक न हो कि निरखना दबी वासना की विकृति है।''

7.5.3 दमित वासना का प्राधान्य

घुटी हुई वासना को स्वर देकर प्रयोगवादी कवियों ने उलझी हुई संवेदनाओं को प्रतीकों और बिम्बों की सहायता से रूपायित किया। कहीं – कहीं स्पष्ट रूप से इसका चित्रण भी किया है। 'अज्ञेय' 'तार–सप्तक' में इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं – ''आधुनिक युग का साधारण मनुष्य यौन–वर्जनाओं का पुंज है। इसका परिणाम यह है कि आज के मानव का मन यौन, परिकल्पनाओं से लदा हुआ है और वे सब कल्पनायें दमित और कुण्ठित हैं।'' अज्ञेय, शमशेरबहादुर, गिरिजाकुमार माथुर, और धर्मवीर भारती के नाम इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

(1) ''जहाँ में अब तो जितने रोज अपना जीना होना है
तुम्हारी चोटें होनी हैं, हमारा सीना होना है।'' (शमशेर)

(2) ''इन फीरोजी होटों पर बरबाद
मेरी जिन्दगी।''

7.5.4 बौद्धिकता

प्रयोगवादी कवि यथार्थवादी है। उसका उद्देश्य रसानुभूति कराना नहीं, अपितु सत्यानुभूति कराना है। अतः उसकी रचनाओं में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता प्राप्त होती है। कहीं– कहीं यह बौद्धिकता मात्र ओढ़ी हुई सी प्रतीत होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.5.5 अनास्था

स्वप्नदर्शी यथार्थवादी ये कवि अपने परिवेश से आहत होकर हीनता से ग्रस्त हो जाते हैं, उनका दम्भ टूटता है और उनकी हर आस्था अनास्था में परिवर्तित हो जाती है। सामाजिक यथार्थ में, टूटा हुआ यह कवि अनास्था का चित्रण करता है–

'मेरी भुजायें टूट गई हैं
क्योंकि मैंने उनकी परिधि में
मेघों को बाँध लेना चाहा था।'' – अज्ञेय

7.5.6 कुण्ठा और निराशा

प्रयोगवादी कवियों ने मध्यवर्गीय जीवन की समस्त कुण्ठा, जड़ता, निराशा, अनास्था, पराजय और मानसिक संघर्ष को उदारतापूर्वक अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। अनास्थावादी विचारधारा के कारण ये कुण्ठाएँ प्रायः वैयक्तिक धरातल पर ही अधिक व्यक्त हुई हैं, जैसे –

''अपनी कुण्ठाओं की दीवारों में बंदी
मैं घुटता हूँ।''

7.5.7 लघु मानव की प्रतिष्ठा

प्रयोगवाद ने सीमित जीवन के साथ सीमित व्यक्ति को महत्ता दी। उसने वृहत् या सामूहिक मानव के स्थान पर लघुमानव की प्रतिष्ठा की। दूसरे शब्दों में वर्ग या समाज के स्थान पर व्यक्ति को महत्त्व दिया। डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दों में 'लघुमानव को उसकी समस्त हीनता और महत्ता के सन्दर्भ में प्रस्तुत करके प्रयोगवादी कविता ने उसके प्रति सहानुभूतिमय दृष्टि से सोचने के लिये एक नया रास्ता खोला। आदमी अपनी सारी कमजोरियों, हीनताओं, लघुताओं और महत्ताओं के बीच यथार्थ है –

''मैं रथ का टूटा पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंकों मत
इतिहासों की सामूहिक गति सहसा झूठी पड़ जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुये पहिये का आश्रय ले।'' (धर्मवीर भारती)
अलंकार के क्षेत्र में भी यह कवि प्रयोगवादी रहे –
''कैमरे के लैन्स सी हैं।
आँखें बुझी हुई ''

या – ''प्यार का नाम सुनते ही जो बिलजी के स्टोव – सी सुर्ख हो जाती है।''

कहीं – कहीं नवीन उपमानों की सार्थकता परिलक्षित होती है। उपमानों की इसी नवीनता के विषय में डॉ. प्रभाकर माचवें ने ठीक कहा है – ''नवोन्मेष से उत्सर्जित और उत्प्रेरित कल्पना की हिन्दी कविता में कमी है। उसके लिये अपना अलंकार – विधान आमूल बदलना होगा, उपमान माँजने होंगे, रूपकों की कलई खोलनी होगी, उत्प्रेक्षाएँ सचमुच भाव के उत्स से प्रेरित हैं या नहीं, यह देखना होगा।''

इनकी काव्य–भाषा में अनगढ़ता और भदेसपन को भी ग्रहण किया गया है, यद्यपि इस भाषा में अभिव्यक्ति का तीखापन भी वर्तमान है, जैसे –

'तू सुनता रहा मधुर नूपुर ध्वनि
जबकि बजती थी चप्पल।'

संभवतः प्रथम बार इसी काव्य में भाषा का सर्वथा वैयक्तिक प्रयोग किया गया। भाषा का कुछ प्रयोग द्रष्टव्य है –

(1) ''ई से ईश्वर
हाँ जी ?
उ से उल्लू
नहीं जी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वह पक्षी
जो देखता है रातभर।'   – नरेश मेहता

(15)   'चाय रख दो कागजों पर।
या निशा सर्वभूतानां तस्यां जाग्रति संयमी।
ई ईश्वर उ उल्लू चल हट बेटा।''

7.5.8 छन्द

छन्द के विषय में, प्रयोग के नाम पर, प्रयोगवादी कवि मुख्यतः स्वच्छन्द रहा है। यूँ, इसमें टूटे–फूटे, अतुकान्त प्रयोगात्मक छन्द भी मिलते हैं किन्तु दूसरी ओर इन कवियों ने अनेक लोकधुनों गीत गजल, बहर, रुबाई, सानेट आदि के सफल प्रयोग भी किये हैं। ये छन्द एक–दो शब्दों की पंक्तियों से लेकर दीर्घ पंक्तियों तक विभिन्न प्रकार के हैं, किन्तु निःसंदेह परम्परागत काव्य–छन्दों से एकदम अलग, –

''भोर की
प्रथम रश्मि
फीकी
अनजाने
जागी हो
याद
किसी की।   – (अज्ञेय)

7.6 प्रयोगवाद की उपलब्धियाँ

वस्तुतः अनेक न्यूनताओं के बावजूद प्रयोगवाद के महत्त्व और विशिष्टताओं को नकारा नहीं जा सकता है। प्रयोगवाद के कई प्रयोग और मौलिक बन पड़े हैं और इसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ बन गए हैं।

परम्परा से उपेक्षित, नए – नए वर्ण्यविषय – प्रयोगवाद की महत्त्वपूर्ण देन है। एक और ये विषय आम जीवन के आम पक्षों से सम्बन्धित हैं, तो दूसरी ओर, परम्परा में सर्वथा अछूते बने रहने के कारण एकदम मौलिक भी बन गये हैं। चूड़ी का टुकड़ा, टाइपराइटर, मिल का भोंपू प्रौढ़, रोमां, धूप का ऊन, मोमबत्ती, टूटा पहिया, चाँद का टेढ़ा मुँह तथा क्यूरियोमार्ट आदि ऐसे ही कुछ विषय हैं।

प्रयोगवाद एकदम युगानुरूप रहा है। वह न तो कल्पनाओं में खोता है, न दल या व्यक्तिविशेष के नारे लगाता है और न किसी एक दर्शन की सीमा में बंध कर दार्शनिक मुद्रा अपनाता है। वह तो आँखें खोलकर दुनिया के नंगे रूप स्वरूप को देखता है, स्वयं अनुभव करता ओर भोगता है और तभी उसे अभिव्यक्त करता है।

नये – नये प्रयोग, अच्छे–बुरे प्रयोग, प्रयोगवाद की कमी है तो यही उसकी उपलब्धि भी। यह उपलब्धि, अन्वेषण–प्रयोग काव्य के सभी पक्षों में द्रष्टव्य है।

7.7 प्रयोगवाद पर आक्षेप

डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने प्रयोगवाद की कला पर आक्षेप करते हुए कहा है– ''इनकी कविताओं में अनगढ़ान, शिल्पहीनता और गद्यात्मकता इतनी अधिक है कि कोई भी पाठक उन्हें अत्यन्त परिश्रम से ही पढ सकता है।''

डॉ. नगेन्द्र ने आरोप लगाया कि ''एक बात जो अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है वह इन कविताओं की दुरुहता । ये कविताएँ अनिवार्य रूप से ही नहीं, सिद्धान्त रूप से भी दुरूह हैं।'' आगे भी, डॉ. नगेन्द्र इसी सन्दर्भ में कहते हैं – ''उसमें रस का अभाव है। पहले तो उसका अर्थ ही हाथ नहीं पड़ता, और यदि दिमाग को खुरच कर उसका अर्थ निकाल भी लिया जाये, तो पाठक के मन का प्रसादन नहीं होता और उसे एक प्रकार की खीझ सी होती है।''

इन आरोपों में यद्यपि सच्चाई है फिर भी प्रयोगवाद के महत्त्व को एकदम अस्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रयोगवादी कवि अपने पीड़ा–बोध की गहराई पर सजगता के साथ जीता है और उसे दार्शनिक स्तर पर चिरन्तन सत्य के रूप में प्रतिष्ठित करता है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस कवि में जहां सामाजिक वर्जनाओं से उत्पन्न अनास्था, कुण्ठा और निराशा है वहीं आस्था, मुक्ति एवं आशा की भावनाएँ भी हैं, जैसे –

"आस्था न कॉंपे, मानव फिर मिट्टी का भी देवता हो जाता है।" – (अज्ञेय)

"पर न हिम्मत हार;
प्रज्वलित है प्राण में अब भी व्यथा का दीप
ढाल उसमें शक्ति अपनी
लौ उठा।" – (भारतभूषण अग्रवाल)

डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दों में, प्रयोगवादी कविता का स्वस्थ दृष्टि से मूल्यांकन करते हुए कह सकते हैं कि – "कला का मूल प्रश्न विषय की महत्ता या लघुता का नहीं है। मूल प्रश्न है उसे ईमानदारी के साथ जी कर व्यक्त करने का। सुख–दुःख की संवेदनाओं को उभार कर चुपके से सरक जाने वाले छोटे – छोटे क्षण, छोटी–छोटी अनदेखी अनचाही घटनायें, छोटे–छोटे प्रसंग बड़ी सच्चाई के साथ प्रयोगवादी कविता में अंकित होने शुरू हुए। .... प्रयोगवादी कवियों ने अपने भोगे हुए दुःखों को व्यक्त कर अपने ही समान मध्यवर्ग के अन्य व्यक्तियों की संवेदनाओं को स्वर दिया।"

7.8 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आधुनिक हिंदी कविता में नितनूतन प्रयोग के लिए विख्यात प्रयोगशील कविता का युग 'प्रयोगवाद' के विषय में विस्तृत जानकारियाँ प्राप्त हुईं। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त यह स्पष्ट हुआ है कि–

- प्रयोगवादी काव्य का आरंभ 'तार सप्तक' के प्रकाशन (सन् 1943) के साथ माना जाता है, जिसके प्रणेता 'अज्ञेय' थे।
- प्रयोगवाद का उदय छायावादी कविता की 'अति' की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ।
- नित नवीन प्रयोग, अन्वेषण एवं प्रयोगशीलता के कारण आलोचकों द्वारा इस काव्यधारा को 'प्रयोगवाद' नाम दिया गया।
- इस पूरे आंदोलन का नेतृत्व 'अज्ञेय' कर रहे थे।
- 'तार सप्तक' में सम्मिलित कवियों के नाम सच्चिदानंदहीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', नेमिचंद जैन, गजाननमाधव 'मुक्तिबोध', गिरजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे और रामविलास शर्मा हैं।
- प्रयोगवादी काव्य ने सत्य की खोज, काव्य का साधारणीकरण, शिल्पक्रांति पर जोर, नए प्रयोग, बौद्धिकता आदि पर विशेष बल देते हुए अपनी मान्यताओं को स्थापित किया।
- घोर वैयक्तिकता, क्षणवाद, दमित वासना का प्राधान्य, अनास्था, कुंठा–निराशा, लघुमानव की प्रतिष्ठा, नवीन छंद आदि प्रयोगवाद की प्रमुख विशेषताएँ हैं।
- परंपरा से उपेक्षित नए–नए वर्ण विषय प्रयोगवाद की महत्त्वपूर्ण देन है।
- प्रयोगवाद पर कलाहीनता का आरोप भी लगाया जाता है।
- अनगढ़शिल्प और दुरूहता का भी आरोप प्रयोगवादी काव्य पर लगाया गया है।
- आरोपों और आक्षेपों के बावजूद 'प्रयोगवाद' आधुनिक हिंदी काव्य में एक महत्त्वपूर्ण काव्यांदोलन माना जाता है, जिसकी ओर उस समय के कमोबेश सभी महत्वपूर्ण कवि आकृष्ट हुए।

7.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. नया साहित्य – नए प्रश्न – आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, विद्या मंदिर ब्रह्मनाल, वाराणसी।
2. हिंदी साहित्य का मानक इतिहास – लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, लोकभारती, इलाहाबाद।
3. आधुनिक हिंदी साहित्य – श्रीकृष्णलाल, हिंदी परिषद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय।
4. हिंदी वाङ्मय : बीसवीं सदी – डॉ. नगेन्द्र, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा ।
5. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – डॉ. बच्चनसिंह राधाकृष्ण प्रकाश, नई दिल्ली।
6. अज्ञेय की काव्यतितीर्षा – नंदकिशोर आचार्य, राजकमल, नई दिल्ली।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

7.10 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. प्रयोगवाद का विकास और उसकी मान्यताओं को स्पष्ट कीजिए।
2. प्रयोगवाद से आप क्या समझते हैं? हिंदी कविता मे उसके विकास को समझाइए।
3. प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियों को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. प्रयोगवाद के उद्‌भव, विकास एवं उसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
5. 'प्रयोगवाद' पर एक समीक्षात्मक लेख लिखिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. प्रयोगवाद का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. प्रयोगवाद की मान्यताएं संक्षेप में समझाइए।
3. 'प्रयोगवाद और हिंदी कविता' पर एक लघु लेख लिखिए।
4. 'तार सप्तक' के कवियों के नाम लिखिए।
5. 'दूसरा सप्तक' के कवियों के नाम लिखिए।
6. प्रयोगवाद की तीन प्रमुख विशेषताओं को समझाइए।
7. प्रयोगवाद की उपलब्धियों को स्पष्ट कीजिए।
8. प्रयोगवाद पर क्या आक्षेप हैं ? समझाइए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी साहित्य में आधुनिक संवेदना का विकास किस संकलन के प्रकाशन से माना जाता है ?
2. प्रयोगवाद का आरंभ किसके प्रकाशन से माना जाता है।
3. 'तार सप्तक' का प्रकाशन कब हुआ ?
4. 'तार सप्तक' के संपादक का नाम लिखिए।
5. 'नई कविता' नाम किसका दिया हुआ है।
6. 'अज्ञेय' का पूरा नाम क्या है ?
7. 'प्रयोगवाद' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसने किया।
8. 'तार सप्तक' की परिकल्पना किसकी थी ?
9. प्रयोगवाद का काल क्या है ?
10. प्रयोगवदी कवियों को अज्ञेय ने क्या कहा था ?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 8 नई कविता : आधुनिक हिंदी काव्य का विस्तार

संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 नई कविता : एक परिचय
8.3 आधुनिक हिंदी कविता में नई कविता का विकास
8.4 नई कविता की मान्यताएँ
8.5 नई कविता के कवि
8.6 नई कविता की प्रमुख विशेषताएँ
8.6.1 मध्यवर्गीय चेतना की अभिव्यक्ति
8.6.2 वैयक्तिक असंतोष
8.6.3 परिवेश के प्रति जागरूकता
8.6.4 क्षण की अभिव्यक्ति
8.6.5 व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति
8.6.6 सामाजिक यथार्थ
8.6.7 व्यंग्यपरकता
8.6.8 सौंदर्य चेतना
8.6.9 मृत्युबोध
8.6.10 शिल्पगत नूतनता
8.6.11 नई कविता में प्रतीक–विधान
8.7 सारांश
8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
8.9 अभ्यास प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.0 प्रस्तावना

प्रगतिवादी काव्यांदोलन के 'शोर' और 'नारों' की तीव्र प्रतिक्रिया स्वरूप 'प्रयोगवाद' का उदय हुआ। वैसे 'प्रयोगवाद' हो या फिर उससे पूर्व प्रगतिवाद दोनों का उत्स छायावाद में अवस्थित है। छायावादी परिधि में निराला की कविताओं में जहाँ एक ओर प्रगतिवादी भावधारा की पोषक कविताएँ विद्यमान हैं, वहीं उन्होंने कविता में नित नवीन प्रयोग भी किए हैं। इस दृष्टि से प्रगतिवाद, प्रयोगवाद दोनों के प्रेरक निराला कहे जा सकते हैं। निराला जहाँ एक ओर प्रगतिवादी कविता में उसके कथ्य के प्रवर्तक हैं, वहीं प्रयोगवादी कविता में वे शिल्प के प्रणेता हैं। इतना होने के बावजूद व्यवस्थित रूप से एक काव्यांदोलन के रूप में प्रयोगवाद का आरंभ 'अज्ञेय' के संपादन में प्रकाशित 'तार सप्तक' (सन् 1943) के प्रकाशन से माना जाता है। यही प्रयोगवाद आगे चलकर दूसरा सप्तक (सन् 1951) के प्रकाशन के साथ ही 'नई कविता' के रूप में जाना जाने लगा। वैसे इससे पूर्व 'अज्ञेय' ने अपने वक्तव्य एवं लेख में 'प्रयोगवाद' नाम को अस्वीकार करते हुए इसे 'नई कविता' नाम से अभिहित किया था। वे 'प्रयोगवाद' नाम को अपूर्ण एवं निरर्थक मानते रहे।

नई कविता, जिसका उदय प्रयोगवाद के क्रोड़ से ही हुआ था,को प्रयोगवाद का पूर्ण विस्तार कहा जा सकता है। 'नए पत्ते' और 'प्रतीक' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से अज्ञेय 'नई कविता' नाम का प्रयोग कर ही चुके थे।

'दूसरा सप्तक' जब प्रकाशित हुआ तब तक 'नई कविता' के संबंध में व्यापक विचार विमर्श आरंभ हो चुका था।

8.1 उद्देश्य

आधुनिक हिन्दी काव्य में 'नई कविता', प्रयोगवाद का नवीन, उन्नत, एवं विकसित रूप है, जिसे प्रयोगवाद का विस्तार कहा जा सकता है। प्रयोगवाद की अपनी निश्चित मान्यताएं एवं उसकी विशिष्ट प्रवृत्तियां हैं। इस इकाई के माध्यम से 'नई कविता' का समग्र मूल्यांकन अपेक्षित है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- नई कविता का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रयोगवाद के 'नई कविता' बन जाने की परिस्थितियों के संबंध में जान सकेंगे।
- प्रयोगवाद और नई कविता के अंतर को समझ सकेंगे।
- हिंदी कविता में नई कविता के विकास को जान सकेंगे।
- नई कविता की मान्यताओं से परिचित हो सकेंगे।
- नई कविता की प्रमुख विशेषताओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आधुनिक हिन्दी कविता में 'नई कविता' की उपलब्धियों के विषय में जान सकेंगे।

8.2 नई कविता : एक परिचय

'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के साथ ही कविता नई दिशा की खोज में चल पड़ी। प्रयोगवादी कवियों के विरोध के बावजूद उनकी कविताओं को प्रयोगवाद की सीमा स्वीकार करनी पड़ी। सम्प्रेषण की समस्या प्रयोगवादी कविताओं में भी बनी रही तथा सूक्ष्म एवं खण्डचित्रों के प्रस्तुतीकरण से प्रयोगवादी कविता दुरूह होती गई। प्रयोगशील कविता के लिए नए नाम (नई कविता) की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि 'प्रयोग' की सार्थकता नहीं रह गई थी, या कि कवियों ने अपना वांछित लक्ष्य अभिव्यक्ति के स्तर पर प्राप्त कर लिया था। बल्कि जैसा कि 'अज्ञेय' ने स्वयं उद्घाटित किया है, प्रयोग का कोई 'वाद' नहीं होता। अतः उसे बाद अथवा किसी साहित्यिक प्रवृत्ति – विशेष के बोधक शब्द के रूप में ग्रहण करना अनुचित ही था। प्रयोगवादी कविताओं में होनेवाले साहित्यिक – प्रयोग मात्र शिल्प के स्तर तक ही रह गए। प्रयोगों के चक्कर में उलझे रहने के कारण कवियों की दृष्टि जब भावानुभूति की ओर नहीं जा सकी तो फलस्वरूप 'नयी कविता' का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ।

8.3 आधुनिक हिन्दी कविता में नई कविता का विकास

नई कविता का आन्दोलन किसी प्रतिक्रिया में नहीं उपजा था। 'नई कविता' की सीमा में 'सप्तकों' की परम्परा तथा प्रयोगवादी दृष्टि आ मिली। परिणामतः 'नई कविता का फलक व्यापक होता गया तथा विभिन्न विचारशैलियों के कवि इसमें आ मिले। नई कविता में प्रयोगवादी, प्रगतिवादी एवं छायावादी खेमों के कवियों ने अपना विश्वास प्रकट किया। विभिन्न पत्रिकाओं, नयेपत्ते (सं. लक्ष्मीकान्त वर्मा एवं डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी 1953) 'नयी कविता' (सं. डॉ. जगदीश गुप्त एवं रामस्वरूप चतुर्वेदी 1954) 'निकष' (सं. डॉ. धर्मवीर भारती एवं लक्ष्मीकान्त वर्मा) के प्रकाशनों ने इसे बल प्रदान किया। नई कविता की काव्य–यात्रा का प्रारम्भ किसी विशेष बिन्दु से न होकर चतुर्दिक से हुआ। इसे पुष्ट करने में बहुत से लोगों ने सहयोग किया किन्तु सर्वाधिक श्रेय डॉ. जगदीश गुप्त को मिला। 'गुप्त' जी ने अपनी कृतियों के माध्यम से उसे समर्थ बनाया तथा आलोचनाओं से इसके विरोधियों को ध्वस्त करते हुए बल प्रदान कर इसे प्रतिष्ठित किया।

8.4 नई कविता की मान्यताएं

'नई कविता' आधुनिकता के आलोक में समसामयिकता की अभिव्यक्ति का समर्थन करती है। इस क्रम में वह समस्त कुंठाओं और वर्जनाओं के साथ मुक्त यथार्थ का समर्थन करती हुई उसके पक्ष में खड़ी है। बौद्धिकता के विशेष आग्रह के साथ नई कविता 'क्षण' के महत्त्व को भी बखूबी समझती है।

'नई कविता' की मान्यताओं को लक्ष्मीकांत वर्मा के शब्दों में इस तरह समझा जा सकता है –

नई कविता मानव विशिष्टता से उद्भूत उस लघुमानव के लघु परिवेश की अभिव्यक्ति है, जो एक और आज की समस्त तिक्तता और विषमता को तो भोग ही रहा है, साथ ही उन समस्त तिक्तताओं के बीच वह अपने व्यक्तित्व को भी सुरक्षित रखना चाहता है। वह विशाल मानव प्रवाह में बहने के साथ – साथ अस्तित्व के यथार्थ को भी स्थापित करना चाहता है, उसके दायित्व का भी निर्वाह करना चाहता है।''

नई कविता की मूल मान्यताओं का स्पष्टीकरण करते हुए वे आगे कहते हैं –

''सर्वप्रथम तो यह कि नई कविता का विश्वास आधुनिकता में हैं, दूसरे, नई कविता जिस आधुनिकता को स्वीकार करती है, उसमें वर्जनाओं और कुंठाओं की अपेक्षा यथार्थ का समर्थन है, तीसरे इस मुक्त यथार्थ का साक्षात्कार वह विवेक के आधार पर करना अधिक न्यायोचित मानती है और चौथा यह कि इन तीनों के साथ–साथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वह क्षण के दायित्व और नितांत समसामयिकता का अर्थ विकृतिओं से होकर उस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समर्थन में है, जो विवेचना और विवेक के बल पर हमें प्रत्येक वस्तु के प्रति एक मानवीय दृष्टि यथार्थ की दृष्टि देती है।''

काव्य रूप को सामने रखकर प्रयोगवाद और नयी कविता में कोई एक निश्चित रेखा नहीं खींची जा सकती। बाह्य रूपों को देखने से ऐसा लगता है कि इनमें विशेष अन्तर नहीं है, किन्तु आन्तरिक तत्वों तथा अभिव्यजना कौशल पर विचार करने से दोनों का अन्तर दिखलायी पडता है। निश्चित ही नई कविता स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के एक अंग का विकसित रूप है। स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का अविच्छिन्न प्रवाह नई कविता में वर्तमान है। नई कविता के कवियों का आग्रह परम्परा के यथावत् पालन की दिशा में नहीं है, बल्कि परम्परा के सार्थक ग्रहण एवं जीवन की बदली भंगिमा को स्वीकार करने में है। नयी कविता में अपेक्षाकृत वातावरण चित्रण, भावुकता तथा स्वच्छन्दतावादी चित्रण अधिक मिल जाते हैं। नई कविता का कवि कविता की सीमा निर्धारित करने के पक्ष में नहीं है। वह कविता को अपनी रचना धर्मिता एवं युग चेतना को वाहिका के रूप में निरन्तर प्रवहमान धारा के रूप में स्वीकार करता है –

> नहीं होती कहीं भी खत्म कविता नहीं होती / कि वह आवेग त्वरित काल
> यात्री है / व मैं उसका नहीं कर्ता, / प्ति–धाता / कि वह कभी दुहिता नहीं
> होती / परम स्वाधीन है वह विश्वधात्री है / गहन – गम्भीर छाया
> आगमिष्यत् की / लिए, वह जन चरित्री है।/ – मुक्तिबोध

नई कविता आधुनिकता बोध की संवाहिका रही है। स्वत्रतंता के बाद की स्थितियों में जन्मे नये मूल्यबोध इसके प्रेरक तत्त्व रहे हैं। वस्तु एवं शिल्प की सीमा में निरन्तर नवीनता का आग्रह नई कविता की प्रमुख विशेषता रही है। पूर्ववर्ती स्थितियों का निषेध कर अभिव्यंजना के नवीन आयाम उद्घाटित करना इसका अभीष्ट रहा है। नई कविता व्यक्ति को प्रधानता देती है, उसका विश्वास है कि व्यक्ति ही समाज में कल्याण के लिए उत्तरदायी है :

> 'मेरी लघुता है परमाणुवादी सार्थकता / क्योंकि / मैं अपना मैं ही नहीं /
> मैं तुम्हारा तुम सबका हूँ / आत्मिस्थित / क्रियाशील। / – लक्ष्मीकान्त वर्मा

नई कविता छायावाद की कल्पना, रहस्यवादिता और रोमांटिकता से मुक्त है, किन्तु उसकी सार्थक स्थिति को उसने अपने में समाहित कर लिया है। प्रगतिवाद की आरोपित वैचारिकता तथा प्रयोगवाद की शैली एवं शिल्पगत अतिवादिता से भी उसने स्वयं को बचा लिया है। इस तरह सामाजिक परिवेश में व्यक्ति को स्थापित करती, मानवीय अनुभूतियों को अधिक सचाई एवं ईमानदारी से व्यक्त करने में व्यस्त रही है।

छन्दों के सम्बन्ध में इन कवियों की दृष्टि अत्यन्त उदार है। कहीं – कहीं ये गद्यात्मकता के निकट चले गए हैं अन्यथा स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति प्रदान करने में इन कवियों की रचनाएं पूर्ण समर्थ हैं। अपने परिवेश को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए नयी कविता ने अपनी भाषा तथा बात कहने की अनेक भंगिमाओं की खोज की है। अभिव्यक्ति के इस नए तेवर में सपाटबयानी से लेकर काल्पनिकता का मिश्रण है। व्यंग्य नयी कविता की अभिव्यक्ति का अनिवार्य साधन है। नयी कविता में व्यंग्य ने रचनाधर्मिता को जितना प्रखर बनाया है उतना हिन्दी की पिछली किसी काव्य प्रकृति में देखने को नहीं मिलता। नयी कविता के मूल में जो धारणा कार्य कर रही है वह यह है कि कविता के छन्द और उपमान इतने पुराने पड़ गए हैं कि आधुनिक विकसित समाज की अनुभूतियों को उनके माध्यम से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। कविता के नए प्रतिमान भी आलोचकों ने स्थापित कर उसे दिशा एवं शक्ति प्रदान की।

8.5 नई कविता के कवि

'तार सप्तक' (सन् 1943) में सम्मिलित कवि यद्यपि आगे चलकर 'नई कविता' के कवि के रूप में भी जाने – पहचाने जाते हैं, और उससे भी आगे चलकर दूसरा और तीसरा सप्तक के कवि भी इसके वाहक संवाहक बने, फिर भी इस सप्तक श्रृंखला से अलग भी अनेक कवियों ने नई कविता को संबल प्रदान किया है। गजाननमाधव मुक्तिबोध (1917 से 1964 ई.), जगदीश गुप्त (जन्म सन् 1924 ई.), धर्मवीर भारती (जन्म 1926 ई.) कुवरनारायण (जन्म सन् 1927 ई.) सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (1927 ई.) रमा सिंह (जन्म 1927 ई.) लक्ष्मीकान्त वर्मा (जन्म 1922 ई.) नरेश मेहता (जन्म सन् 1922 ई.) विजयदेवनारायण साही (जन्म 1924 ई.) केदारनाथ सिंह (जन्म 1932 ई.), दुष्यंतकुमार (जन्म 1933 ई.), अजितकुमार (जन्म 1933 ई.) तथा कीर्ति चौधरी इस विधा के प्रमुख कवि हैं। इनके अतिरिक्त प्रयोगवादी 'अज्ञेय' शमशेरबहादुर सिंह' एवं भवानीप्रसाद मिश्र की कुछ रचनाएं भी नई कविता की सीमा में आती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.6 नई कविता की प्रमुख विशेषताएँ

नई कविता की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् रेखांकित की जा सकती हैं –

8.6.1 मध्यमवर्गीय चेतना की अभिव्यक्ति

नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति मध्यवर्गीय चेतना की अभिव्यक्ति है। संकटग्रस्त, पीड़ित और विवश मनुष्य की खुली व्यंजना नई कविता में उपलब्ध होती है। जीवन में सर्वत्र असंतोष, अनिश्चय और दुविधा व्याप्त है। घर से लेकर बाहर समाज तक जहाँ भी यह मध्यवर्गीय मनुष्य है वहीं वह रुग्ण और असहाय है।

"पिस गया वह भीतरी
ओ, बाहरी दो कठिन पाटों के बीच,
ऐसी ट्रैजिडी है नीच !!" – मुक्तिबोध

8.6.2 वैयक्तिक असंतोष

नयी कविता की प्रवृत्ति वर्तमान में असंतोष की भावना को व्यक्त करती है। यह अंसतोष कहीं तो वैयक्तिक है और कहीं आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक कारणों से उद्भूत है। नये कवि का वैयक्तिक असंतोष उदार मानवतावादी भूमि पर खड़ा होने से सामूहिक भी हो गया है। जो वैयक्तिक कारण वर्तमान परिवेश में उसे क्षुब्ध और असंतुष्ट बनाये हुए हैं वे ही सब जन–समाज के असंतोष का कारण भी हों तो कवि का उक्त वैयक्तिक असंतोष समष्टि का असंतोष बन जाता है।

8.6.3 परिवेश के प्रति जागरूकता

परिवेश के प्रति जागरुकता नई कविता की एक प्रमुख विशेषता है। इसमें परिवेश को पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत किया गया है। नया कवि न तो विगत के गीत गाकर मन को भुलावे में रखना चाहता है और न भविष्य की कल्पना में निमग्न रहना चाहता है। वह तो समसामयिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान के प्रत्येक जीवन्त क्षण को अपने में पूर लेना चाहता है।

8.6.4 क्षण की अभिव्यक्ति

क्षणबोध नई कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है। यह बोध शाश्वत को पकड़ने की यथार्थ प्रक्रिया है। क्षणों में विभक्त जीवन, उसकी व्यथा, उसका उल्लास, क्षणों में लक्षित मनःस्थिति और क्षणों में स्फूर्ति कोई भी सत्य छोटा नहीं है। अनुभूतिविरहित, पीड़ाहीन इतिहास असत्य है, अमहत्त्वपूर्ण है। अतः नई कविता अनुभूति प्रेरित गहरे क्षणों, प्रसंगों और स्थितियों को उसकी समग्र आन्तरिकता के साथ पकड़ती है।

आज के विविक्त अद्वितीय क्षण को
पूरा हम जी लें, आत्मसात कर लें
इसकी विविक्त अद्वितीयता
आपको, किमपि को क ख ग को
अपनी – सी सकें।
रसमय कर दिखा सकें –
शाश्वत हमारे लिए वही है।
अजर अमर है।
वेदितव्य
अक्षर !
एक क्षण । क्षण में प्रवहमान
व्याप्त सम्पूर्णता। – अज्ञेय

8.6.5 व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

नयी कविता में पहली बार मनुष्य को उसके व्यक्तित्व के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह नई कविता की उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। यहाँ पर व्यक्ति अजागरूक न होकर, अपनी स्थिति के प्रति सतर्क है। नव मानव में व्याप्त अहं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का समाज या सामाजिक उन्नति से कोई विरोध नहीं है। यही कारण है कि नई कविता में जिस अहं को स्वीकृति प्राप्त है, वह समाज के प्रति विसर्जित हो जाता है–

''दुःखों के दागों को तमगों सा पहना
अपने ही खयालों में दिन रात रहना
असंग बुद्धि व अकेले में सहना
जिन्दगी निष्क्रिय बन गई तलघर
अब तक क्या किया
जीवन क्या जिया ! !
बताओ तो किस–किस के लिए तुम दौड़ गए
करुणा के दृश्यों से हाय मुँह मोड़ गए,
बन गए पत्थर
बहुत – बहुत ज्यादा लिया
दिया बहुत – बहुत कम
मर गया देश और जीवित रह गए तुम।'' (मुक्तिबोध)

8.6.6 सामाजिक यथार्थ

नयी कविता की एक प्रवृत्ति सामाजिक और यथार्थ के ग्रहण से भी सम्बन्धित है। मानव जीवन और समाज में व्याप्त इन विविध यथार्थ रूपों का चित्र नयी कविता के सामाजिक पक्ष को ही पुष्ट करता है। सामाजिक जीवन की विकृतियों, मजबूरियों और असमर्थताओं के स्पष्ट और खुले चित्र नये कवि ने उतारे हैं।

भर दो, इस त्वचा की मृतात्मा की, सूखी ठाठर में / यह घास–पात कूड़ा – कबाड़ सब कुछ भर दो/ लगा दो नकली कौड़ियों की आँखें / कानों में सीपियाँ / पैरों में खपचियाँ / मेरी इस हृदयहीन धमनी हीन काया में / सभी कुछ भर दो।

8.6.7 व्यंग्यपरकता

नई कविता में व्यंग्य का अच्छा विकास हुआ है। व्यंग्य बोध वहाँ है जहाँ कवि सामाजिक स्तर पर असंतोष से भर उठा है या उसने अनुभव किया है कि जीवन में शक्ति और सत्ता का दुरुपयोग करते हुए कितने ही लोग जीवन (लक्ष्मीकांत वर्मा) को गंदला कर रहे हैं। नये कवियों का व्यंग्य हमें कभी विषाद में डुबा जाता है और कभी वैचारिक सीमाओं पर छोड़ जाता है।

साँप
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ (उत्तर दोगे ?)
तब कैसे सीखा डसना –
विष कहाँ पाया ? – अज्ञेय

8.6.8 सौंदर्यचेतना

नई कविता में जो सौन्दर्य चेतना विकसित हुई उसमें प्रकृति और नारी ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। नई कविता में विचित्र प्रकृति की अनेक विशेषताएँ हैं। 'हिमबिद्ध' नई कविता का प्रकृति काव्य है। 'हिमबिद्ध' की कविताओं में हिमानी प्रकृति की आँखों देखी टटकी छवियों की अनुभूतिपरक प्रतीतियों के शब्द बिम्ब हैं। ये बिम्ब प्रकृति की अनाघ्रात छवियों, मंत्रपूत पावनता और अचुम्बित सौन्दर्य – संवेदना को उजागर करते हुए कवि के सांस्कृतिक बोध को भी अभिव्यक्त करते हैं।

''दूध के अधउगे दांत–सी / कोर हिमश्रृंग की / फूटी फिर / उस सलेटी बादल की ओट से/ .... जाने कब बादल की सीप ने / नभ के उस अंधियारे कोने तक / मोती सी चाँदनी उलीच दी/ .... शिखरों पर टिक / स्याह बादल की परछाँई / आँखों में काजल सा पार गई''। (जगदीश गुप्त)

नई कविता के प्रकृतिपरक दृष्टिकोण में एक नवीनता आँचलिकता को लेकर है। आँचलिक प्रकृति को व्यक्त करनेवाली कविताओं में स्वप्निल वातावरण की गहराई प्रभावित करती है। केदारनाथसिंह के लोक–गीतों की धुन पर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सजी कविताओं की प्रकृति में 'टहनी के टेसू पतरा गये, पंखुड़ी के पात नये आ गये', 'धान उगेंगे, पान उगेंगे', 'रात पिया पिछवारे पहरू ठनका किया' आदि का समावेश बड़ी मधुर व्यंजना के साथ हुआ है।

8.6.9 मृत्युबोध

नई कविता के कवियों पर अस्तित्ववादी दर्शन का गहरा प्रभाव था। उसी से उन्होंने मृत्युबोध की प्रेरणा ली थी। जीवन का अंतिम सत्य मृत्यु है। अतः मृत्युमय जीवन को खोखला और मानवीय सम्बन्धों को निरर्थक बना रहा था। इसी मृत्युबोध के कारण कवियों को मूल्यों के विघटन और पराजय का बोध हो रहा था। कवियों को जीवन में खंडित आस्था उन्हें मृत्यु के लिए आकृष्ट कर रही थी।

अस्तित्ववादी दर्शन से प्राप्त मरण की स्वतंत्रता में ये कवि हत्या और आत्महत्या के बीच झूल रहे थे–

''न मैं आत्महत्या
कर सकता हूँ
न औरों का
खून।'' – श्रीकान्त वर्मा

इन कवियों के लिए मरना एक यंत्रणा है तो जिन्दा रहना भी यंत्रणा है –

''मैं मर चला हूँ
मर जाना ठीक है
शायद मर जाता हूँ
क्या करूँ ?
मर नहीं पाता ।'' – कैलाश वाजपेयी

8.6.10 शिल्पगत नूतनता

नई कविता को अपने नये भावबोध और सौन्दर्यबोध को व्यक्त करने के लिए एक नई भाषा और नये शिल्प विधान की आवश्यकता थी। उसने इन अभिव्यक्ति माध्यमों की तलाश की जिससे नयी कविता परवर्ती कविता से सर्वथा भिन्न दिखने लगी।

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब। (मुक्तिबोध)

नई कविता तक आते–आते कवियों ने परम्परागत काव्य – रूपों को त्यागकर नये काव्य रूप ग्रहण किए। नई कविता के कवियों ने पौराणिक आख्यानों को लेकर – प्रबंध काव्य लिखे किन्तु उन्होंने पौराणिक कथाओं या मिथकों को सर्वथा नये अर्थ दिए।

नई कविता के दौर में लम्बी कविताएँ लिखने की परम्परा भी आरम्भ हुई। मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' , 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'चम्बल की घाटी', अज्ञेय की 'असाध्य वीणा', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कृत कुआनो नदी आदि लम्बी कविताएँ हैं। लोक संपृक्तता नयी कविता की खास विशेषता है। लोकजीवन के प्रति नई कविता का रुझान उसे प्रगतिवाद से मिला है।

नई कविता में प्रयुक्त सभी उपमान जीवन के बदलते परिवेश से ग्रहण किये गये हैं। इन कवियों ने सर्वथा नये, अछूते और संवेदनशील उपमान लिये हैं –

''गोमती तट
दूर पेंसिल रेख सा
वह बाँस झुरमुट
शरद दुपहर के कपोलों पर उड़ी वह
धूप कील लट
जल के नग्न ठंडे बदन पर का
झुका कोहरा
लहर पीना चाहता है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.6.11 नई कविता में प्रतीक – विधान

प्रतीक विधान भावों की गहनतम अभिव्यक्ति के माध्यम बन कर नई कविता में आये है। उनके द्वारा अमूर्त्त, अदृश्य, अश्रव्य और अप्रस्तुत विषय का प्रति विधान मूर्त्त, दृश्य श्रव्य व प्रस्तुत रूप में किया जाता रहा है। प्रतीक–विधान में अज्ञेय सिद्धहस्त हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

'भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बाँध लेता है सभी को साथ
छोटी–छोटी चिड़ियाँ
मझोले परेवे
बड़े–बड़े पंखी
डैनोंवाले डीलवाले
डौल के बेडौल
उड़ते जहाज।' – अज्ञेय

नयी कविता में शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श आदि के सजीव, रोचक तथा नूतन बिम्ब प्रस्तुत किये गये हैं। इस कविता ने गहरी संवेदनाओं को जगाने के लिए प्रतीकात्मक और सांकेतिक बिम्बों की योजना की है –

'बूँद टपकी एक नभ से
किसी ने झुक कर झरोखे से
कि जैसे हँस दिया हो,
हँस रही आँख ने जैसे
किसी को कस दिया हो।' – भवानीप्रसाद मिश्र

वस्तुतः नई कविता की प्रवृत्तियाँ आज के मनुष्य की संभावनाओं एवं उसके परिवेश को समग्रता के साथ अभिव्यक्ति का काव्य है।

8.7 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आधुनिक हिंदी कविता में प्रयोगवाद के विस्तार 'नई कविता' के संबंध में विशेष सामग्री प्रस्तुत की गई। इकाई का सार संक्षेप निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है –

- 'तार सप्तक' के प्रकाशन से 'प्रयोगवाद' का आरंभ हुआ, पर 'अज्ञेय' ने 'प्रयोगवाद' शब्द पर एतराज करते हुए उसे 'नई कविता' कहने पर जोर दिया।
- प्रयोगवाद ही आगे चलकर 'दूसरा सप्तक' के प्रकाश के साथ ही 'नई कविता' में पर्यवसित हो गया। वस्तुतः 'नई कविता' 'दूसरा सप्तक' से आरंभ हुई, ऐसा माना जाता है।
- दूसरा सप्तक से पूर्व 'नएपत्ते', 'प्रतीक', आदि पत्रिकाओं में नई कविता की प्रवृत्तियां स्पष्ट होने लगी थीं।
- नई कविता को सर्वाधिक बल मिला 'नई कविता' पत्रिका से जिसका प्रकाशन जगदीश गुप्त – रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा सन् 1954 में आरंभ किया गया।
- बाहरी तौर पर 'प्रयोगवाद' और 'नई कविता' में कोई विशेष अंतर नहीं है, पर आंतरिक रूप से 'नई कविता' की प्रवृत्तियाँ 'प्रयोगवाद' से नितांत भिन्न हैं।
- मध्यवर्गीय चेतना, वैयक्तिक असंतोष, परिवेशगत जागरूकता, क्षण की अभिव्यक्ति, व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति, व्यंग्यपरकता, मृत्युबोध, शिल्पगत नूतनता आदि 'नई कविता' की प्रमुख विशेषताएं हैं।
- 'नई कविता' विस्तृत रूप से मनुष्य की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का काव्य है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. नई कविता और अस्तित्ववाद, डॉ. रामविलास शर्मा – राजकमल नई दिल्ली।
2. कविता के नए प्रतिमान, डॉ. नामवर सिंह – राजकमल, नई दिल्ली।
3. नई कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकांत वर्मा – लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. बच्चनसिंह – लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
5. आधुनिक काव्य की प्रवृत्तियाँ, नामवर सिंह – राजकमल, नई दिल्ली।

8.9 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. आधुनिक हिंदी काव्य में 'नई कविता' के विकास को स्पष्ट कीजिए।
2. नई कविता की परिभाषा देते हुए हिंदी कविता में उसके महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
3. नई कविता की मान्यताओं को स्पष्ट कीजिए।
4. नई कविता की प्रमुख विशेषताओं को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
5. नई कविता विषय पर एक समीक्षात्मक सारगर्भित लेख लिखिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. नई कविता की परिभाषा दीजिए।
2. नई कविता की मान्यताएँ समझाइए।
3. नई कविता का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
4. नई कविता के प्रमुख कवियों के नाम लिखिए।
5. नई कविता की किन्हीं दो प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
6. नई कविता की उपलब्धियों को समझाइये।
7. नई कविता का परिचय दीजिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. नई कविता का आरंभ कब से माना जाता है ?
2. 'नई कविता' पत्रिका का प्रकाशन कब हुआ ?
3. नई कविता का सर्वाधिक प्रचार–प्रसार किसने किया ?
4. 'दूसरा सप्तक' का प्रकाशन कब हुआ ?
5. 'दूसरा सप्तक' के कवियों के क्या नाम हैं ?
6. नई कविता की प्रमुख विशेषता क्या है ?
7. 'लघुमानव की महत्ता' के प्रतिपादक कौन हैं ?
8. अज्ञेय किस दर्शन में विश्वास करते हैं ?
9. 'तीसरा सप्तक' कब प्रकाशित हुआ ?
10. 'तीसरा सप्तक' के कवि कौन–कौन हैं ?
11. 'चौथा सप्तक' के संपादक कौन हैं ?
12. 'नई कविता' पत्रिका कहां से प्रकाशित होती थी ?
13. 'नई कविता' पत्रिका के संपादक का नाम लिखिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–9 कविता सन् 1960 के बाद : मोहभंग और विद्रोह का स्वर

संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 सन् 1960 के बाद कविता का स्वरूप
9.3 सन् 1960 के बाद विविध काव्यांदोलन
9.3.1 अकविता
9.3.2 भूखीपीढ़ी और बीट कविता
9.3.3 श्मशानी पीढ़ी
9.3.4 ताजी कविता
9.3.5 अस्वीकृत कविता
9.3.6 साम्प्रतिक कविता
9.3.7 युयुत्सावादी कविता
9.3.8 साठोत्तरी कविता
9.3.9 सहजकविता
9.3.10 सनातन सूर्योदयी नूतन कविता
9.4 सन् 1960 के बाद कविता की प्रमुख विशेषताएं
9.4.1 नारी अवमानना
9.4.2 व्यक्तिवादिता
9.4.3 मोहभंग एवं अनास्था
9.4.4 जीवन संघर्ष की अभिव्यक्ति
9.4.5 सामाजिक प्रतिबद्धता
9.4.6 नवीन शिल्प
9.4.7 विरोधी तेवर
9.5 सारांश
9.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
9.7 अभ्यास प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

'तीसरा सप्तक' हिन्दी कविता की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में सामने आया। यद्यपि तीसरा सप्तक में संकलित रचनाकार (प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुँवरनारायण, विजयदेवनारायण साही और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना) छठे दशक के ही हैं, तथापि उनकी कविताओं में संवेदना का जो स्तर उद्घाटित हुआ, उनकी रचनात्मक दृष्टि ने कविता को जो व्यापक फलक प्रदान किया उससे कविता में वस्तुगत एवं शिल्पगत निखार आया, जिसके आधार पर नयी कविता के बारे में कुछ अधिक तथ्य निकालना आसान हो गया। यद्यपि ये कवि भी 'तार सप्तक' और दूसरा सप्तक' के कवियों की ही तरह एक ही मंजिल तक पहुंचने, या एक ही दिशा में चलने, या अपनी अलग दिशा में भी एक–सी गति से चलने के विपरीत अपनी – अपनी अलग राह का ही अन्वेषण करनेवाले हैं, फिर भी ये कवि अपने – अपने विकास–क्रम में अधिक परिपक्व और मँजे हुए रूप में सामने आए।

प्रयोगवाद की अगली कड़ी के रूप में 'नयी कविता' को मान्यता मिल जाने से तथा अधिकांश कवियों के 'नयी कविता' को स्वीकार कर लेने के कारण एक बहुत बड़ा विवाद समाप्त हो गया, यद्यपि प्रयोगवादी कविता एवं 'नयी कविता' को एक नहीं कहा जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'सातवाँ दशक' शुरू होते – होते नयी कविता के विषय में फैली हुई विरोधी भ्रांतियाँ लगभग समाप्त हो गयीं और वह न केवल पाठकों और श्रोताओं की रुचि से जुड़ गई बल्कि साहित्यिक रुचि के लोगों के लिए नयी कविता से जुड़ना एक प्रकार से अनिवार्य हो गया। पत्र–पत्रिकाओं में अब नयी कविता प्रमुखता पाने लगी। उसकी अपनी भी दर्जनों पत्रिकाएँ निकलीं, सैंकड़ों संग्रह निकले, उसके बारे में आलोचनाएँ और समीक्षाएँ छपने लगीं और नयी कविता पर गोष्ठियों और बहसों का एक ऐसा सिलसिला चला कि सन् 64, 65 तक कविता के नाम पर केवल 'नयी कविता' का ही बोध होने लगा।

वस्तुतः 'तीसरा सप्तक' के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी कविता में हलका–सा परिवर्तन महसूस होने लगा था। यह परिवर्तन 'सप्तक' के अगुवा 'अज्ञेय' के विरोध में अथवा नए कवियों की अपनी अस्मिता एवं जिजीविषा रक्षण की भावना के कारण उत्पन्न हुआ। अज्ञेय–युग 'तीसरा सप्तक' के साथ ही पूरा हो चुका था, यद्यपि व्यक्तिगत स्तर पर 'अज्ञेय' ने हार नहीं मानी थी। नयी कविता के बाद के रचनाकारों में सर्वत्र अस्तित्व का संघर्ष दिखाई देता है तथा खुद को अलग स्थापित करने की छटपटाहट स्पष्ट परिलक्षित होती है। इन रचनाकारों ने एक तो अपनी अस्तित्व रक्षा, दूसरे इतिहास–पुरुष बनने की आकांक्षा (अज्ञेय और जगदीश गुप्त ने इसका रास्ता दिखा ही दिया था) के साथ आन्दोलनों का सहारा लिया। परिणामतः सातवें दशक का उत्तरार्द्ध आन्दोलनों का युग बन गया। डॉ. जगदीश गुप्त ने अपने 'किसिम–किसिम की कविता' नामक लेख में लगभग चार दर्जन नामों की सूची दी है। ये आन्दोलन विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से सामने आए। इनमें अधिकांश आन्दोलन तो किसी पत्रिका के एकाकी अंकों तक ही सीमित रह गए। फिर भी इन आन्दोलनों का अपना एक इतिहास है जो हिन्दी कविता को रचनात्मक स्तर भले ही न प्रदान कर सका, किन्तु उसे चमत्कारों की चकाचौंध से भरने में सफल रहा।

9.1 उद्देश्य

'नई कविता' आंदोलन के उपरांत कविता के अनगिनत आंदोलन प्रकाश में आए। इस इकाई का उद्देश्य उन आंदोलनों का परिचय देना है। सन् 1960 के बाद उन आंदोलनों में कुछ निःसंदेह महत्त्वपूर्ण हैं, जिनका प्रामाणिक विवेचन इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- सन् 1960 के बाद की काव्य परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।
- सन् 60 के बाद के महत्त्वपूर्ण काव्यांदोलनों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- अकविता, समकालीन कविता, साठोत्तरी कविता, सहज कविता जैसे महत्वपूर्ण काव्यांदोलनों के विषय में जान सकेंगे।
- कुछ ऐसे आंदोलन जो मात्र आंदोलन के लिए आंदोलन प्रमाणित हुए, के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सन् 1960 के बाद की कविता की कतिपय प्रमुख विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- सन् 60 के बाद के प्रमुख कवियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

9.2 सन् 1960 के बाद कविता का स्वरूप

जगदीश गुप्त एवं विजयदेवनारायण साही के सम्पादन में 'नयी कविता' का आठवां अंक सन् 1966–67 ई. में प्रकाशित हुआ। उसके आस–पास ही युवा कवियों के एक वर्ग द्वारा 'अकविता' का प्रकाशन हुआ। 'अकविता' के मसीहाओं ने परम्पराओं के पूर्ण बहिष्कार एवं परिवर्तित सौन्दर्यबोध के बल पर नवीन मार्ग तलाशने का उद्देश्य उद्घाटित किया। 'अज्ञेय' रूढ़ि के विरोध तक ही सीमित रह गए थे, इन्होंने अपने विरोध–यज्ञ में परम्परा को भी स्वाहा कर देने का बीड़ा उठाया। विरोध की पृष्ठभूमि में देश की भ्रष्ट राजनीति के कारण युवा–वर्ग में व्याप्त कुंठा, संत्रास, अनास्था एवं भविष्य के प्रति आशाहीनता की भावना काम कर रही थी।

विदेशों में इस तरह के आन्दोलन आरम्भ हो चुके थे, जिनसे भारत का युवा कवि प्रेरणा ग्रहण कर रहा था। उसके समक्ष न कोई लक्ष्य था और न कोई मार्ग ही, जो उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम बनता। पैसे और भौतिकता से ऊबे पश्चिमी किशोर – किशोरियाँ शान्ति की खोज में भारत आ रहे थे। उनके साथ उनके जीवनमूल्य भी भारत में आए। परिणामतः भारतीय युवा का मन इन नवीन मूल्यों के प्रति प्रगतिशील रुख अपनाने में जरा भी न हिचका और उसने पश्चिमी युवकों की अशान्त मानसिकता को अपनी शान्ति के लिए अंगीकार कर लिया।

अमेरिका का अघोरी कवि एलेन गिन्सबर्ग अपनी भारत – यात्रा के दौरान अनेक कवियों को दीक्षित कर, अनेक आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार कर गया। फलतः बीट पीढ़ी, भूखी पीढ़ी, नाराज पीढ़ी तथा कई अन्य पीढ़ियों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

की जमात तैयार होने लगी। 'अज्ञेय' का 'यौन वर्जनाओं का पुंज मानव' मुखर होने लगा। वर्जना के सारे बन्धन टूट गए तथा लिजलिजी कामुकता के अनेक चित्र व्यापक स्तर पर रचे जाने लगे।

राजनीतिक एवं आर्थिक स्तर पर भी राष्ट्रीय संकट उपस्थित हो चुके थे। चीन एवं पाकिस्तान से युद्ध भारतीय जनता को झेलने पड़े थे। युद्धों की इस विभीषिका ने भारत के राजनीतिक मूल्यों की विफलताओं को खोलकर रख दिया। पूँजीपति वर्ग ने इन युद्धों का व्यापारिक लाभ उठाया। फलतः मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग का जीवन और जटिल होता गया। पं. नेहरू एवं लालबहादुर शास्त्री की मौतों से राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण उत्पन्न हो गया था। यद्यपि कांग्रेस का आधिपत्य पूरी तरह भारतीय राजनीति पर छाया रहा, फिर भी आर्थिक रूप से संत्रस्त मध्यम एवं निम्नवर्ग की जीवन स्थितियों में कोई परिवर्तन परिलक्षित नहीं हो रहा था। घोषित औद्योगिक नीति, शिक्षा नीति एवं राजनीतिक मूल्यहीनता ने भारत में उदास बेरोजगार पीढ़ी को जन्म देना प्रारम्भ कर दिया था। कांग्रेस का कोई विकल्प उभर कर सामने न आ पा रहा था, इसके कारण शासक वर्ग जनता के प्रति उपेक्षा बरतने लगा था। सन् 69 में कांग्रेस में हुए विघटन ने राजनीति को और अस्थिर किया, व्यापक रूप से दल–बदल की भावना को बढ़ावा मिला। भ्रष्ट शासन – तन्त्र में आर्थिक विषमता को समाप्त करने का कोई कार्यक्रम नहीं था। बंगाल और केरल में उभरती कम्युनिस्ट पार्टी की जमीन को राजनीतिक छल–छद्म से जमने नहीं दिया गया। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर वियतनाम युद्ध, अमेरिका और रूस का शोषक स्वरूप भारतीय राजनीति को प्रभावित कर रहा था।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का पूर्ण निषेध कुछ तो जीवन की संश्लिष्ट परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुआ और कुछ पश्चिमी प्रभाववश फैशन के रूप में अख्तियार किया गया। सभ्यता, संस्कृति एवं प्राचीन संस्कारों को एक ही बार में रौंद देने की संकल्पना हिन्दी कविता में किसी दुराग्रह के कारण ही आ सकी। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्री – पुरुष के सम्बन्धों को खुलकर कविता का विषय बनाया गया, नकारा गया तथा इनकी छीछालेदर की गई। स्त्री को उसके समस्त रूपावयवों के साथ–ही–साथ काम की पुतली के रूप में देखा जाने लगा। आजाद भारत में ये स्थितियाँ चौंकानेवाली थीं। विभिन्न आन्दोलनों के कारण हिन्दी कविता विभिन्न नामवर्गों में बंटती गई, यद्यपि गहरे में उसका मूल स्वरूप कहीं–न–कहीं एक ही बिन्दु पर जाकर ठहरता दिखाई देता है।

9.3 सन् 1960 के बाद विविध काव्यान्दोलन

9.3.1 अकविता

परम्परा – विरोध एवं परिवर्तित सौन्दर्यबोध की संकल्पना के साथ यह आन्दोलन हिन्दी में उठा। इसके प्रमुख प्रवक्ता श्यामपरमार माने जाते हैं। अपनी कविताओं, आलोचनाओं के माध्यम से उन्होंने अकविता के स्वरूप एवं संविधान का उद्घाटन किया। इस कविता की पृष्ठभूमि सन् 1963 में जगदीश चतुर्वेदी के संकलन 'प्रारम्भ' से ही तैयार होने लगी थी। 'अकविता' के प्रथम संकलन के कवियों में जगदीश चतुर्वेदी, मुद्राराक्षस, रवीन्द्रनाथ त्यागी और श्याम परमार हैं। 'अकविता' की प्रस्तावना करनेवालों में अतुल भारद्वाज, गंगाप्रसाद विमल, गिरिजाकुमार माथुर, तारा तिक्कू, नित्यानन्द तिवारी, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, राजीव सक्सेना, विनोदचन्द्र पाण्डेय और सौमित्रमोहन हैं। 'अकविता' नाम से पत्रिका का प्रकाशन हुआ तथा विभिन्न पत्रिकाओं ने अकविता विशेषांक निकाले।

अकविता को आन्दोलन न मानकर श्यामपरमार इसे समसामयिक जीवन संदर्भों में व्याप्त अन्तर्विरोधों की तह में जाकर उनका विश्लेषण करते हुए नवीन मूल्यों के उद्घाटन का माध्यम मानते हैं। विभिन्न कवियों ने नारी – पुरुष के सम्बधों का वर्णन अपने–अपने ढंग से किया। अकविता का सम्पूर्ण विद्रोह नारी के शरीर के इर्द–गिर्द घूमता नजर आता है। नारी का अंकशायिनी रूप इन्हें नहीं भाता, न उसके अंगों से इन्हें कुछ लेना–देना है। अकविता वर्ग में मणिकामोहिनी और मोना गुलाटी जैसी कवयित्रियाँ भी हैं, जो पुरुष की सत्ता को समाप्त कर, शादी के बाद स्वतंत्र जीवन की हिमायती हैं। वस्तुतः अकविता अलगाव की प्रक्रिया है जो परम्परागत मूल्यों, मान्यताओं और संदर्भों को व्यर्थ और अनावश्यक मानती है। अतिस्वतंत्रता की पुरजोर वकालत करती है।

9.3.2 भूखी पीढ़ी और बीट कविता

बीट पीढ़ी का नामकरण अमेरिकी कवि 'गिन्सबर्ग' के साथी 'कैरुआक' ने किया था। इसे गिन्सवर्ग की कविता 'हाउस' तथा 'अमेरिका' से बल मिला। यह कविता धारा अमेरिका से चलकर बंगाल में मलय चौधरी तक तथा बंगाल से राजकमल चौधरी के माध्यम से हिन्दी में आई। 'फ्री सेक्स', अति मशीनीकरण तथा भौतिकता की अति से उद्भूत विलासी वृत्ति ने इसे जन्म दिया। 'बीट कविता' का उद्देश्य जो भी रहा हो किन्तु उसने महज उच्छृंखल पीढ़ी को जन्म दिया, जो यौनविकृतियों एवं मादक द्रव्यों 'एल. एस. डी.' और 'मारिजुआना' के सेवन को ही जीवन मान बैठी। गिन्सबर्ग की अलौकिक अनुभव प्राप्त करने की सलाह (कीर्तन अथवा मादक द्रव सेवन से) इनके काम आयी। परिणाम यह हुआ कि कविता कामुकता और अश्लीलता की सीमा पार कर गई, जिसमें किसी स्वस्थ मानवीय

मूल्य के पनपने का प्रश्न ही नहीं उठा। हिन्दी में राजकमल चौधरी, केशनीप्रसाद चौरसिया, तथा अकवि जगदीश चतुर्वेदी एवं श्याम परमार इसकी ओर प्रवृत्त हुए। इस कविता का कोई स्थायी स्वरूप स्थापित न हो सका।

9.3.3 श्मशानी पीढ़ी

इस कविता के मसीहा निर्भय मल्लिक हैं। सपाट साहित्य की रचना इनका अभीष्ट है, जिसमें यौन प्रतीक स्थिति का निर्धारक तत्त्व है। परिवेश से जुड़कर वैचारिकता का निषेध करते हुए चत्मकारों से बचकर काव्य–सृजन इनका लक्ष्य है। यह पीढ़ी भी निषेध को अपना आधार मानकर चली है, जो युगीन सन्दर्भों में अनास्था, वैफल्य एवं जटिल स्थितियों के कारण जन्मा है। श्मशानी कवि पूंजीवादी तन्त्र का विरोध करता है किन्तु उसका आधार मार्क्सवाद नहीं है। जिस सामाजिक स्वरूप की संकल्पना इनके मस्तिक में है वह उभर कर सामने नहीं आ पाती । फलतः क्रान्ति पिछड़ जाती है और सेक्स आगे आ जाता है। श्मशानी पीढ़ी अपने सार्थक गुस्से के बाद भी कुछ विशेष रंग नहीं दिखा सकी। इसके प्रमुख कवि निर्भय मल्लिक एवं सकलदीप सिंह आदि हैं। निर्भय मल्लिक का गुस्सैल तेवर श्मशानी कविता का प्रतीक बन गया है।

9.3.4 ताजी कविता

नई कविता की सीमाओं को रेखांकित करते हुए लक्ष्मीकान्त वर्मा ने उसकी अर्थवत्ता पर प्रश्नचिह्न लगाया। यह प्रश्नचिह्न नई कविता के छायावादी रोमानीपन, मानवतावादी मोह, अनुभूतियों के बासीपन, भाषा की निर्भीक योजना, बात कहने के अन्दाज आदि को लेकर लगाया गया था। वस्तुतः वर्माजी ने इसे कविता में जड़ता की स्थिति मानकर इस बासीपन की ओर इशारा करते हुए ताजी कविता को ताज पहनाने का प्रयास किया। ताजी कविता नवीन भावों का अन्वेषण कर अद्वितीय भाव की खोज, पुरानी भाषा के स्थान पर नई भाषा की रचना तथा जीवन के नवीन सन्दर्भों की सार्थक अभिव्यक्ति का नारा लेकर सामने आई। ताजी कविता को नंगी भाषा की अपेक्षा थी जो आवरणहीन, सज्जाहीन, संस्कारहीन एक ऐसी भाषा हो जो तथाकथित सभ्यों की असभ्यता पर वक्त की छाप छोड़ सके। ताजी कविता को न तो जड़ीभूति स्थिति स्वीकार है और न किसी तरह की अतिरंजना । चिन्तन एवं व्यक्तित्व का दुहरापन इसे गवारा नहीं। निरर्थकता विवेक एवं सन्तुलन की पक्षधरता इसकी अलग विशेषता है। नामों की दौड़ में यह नाम भी निरर्थक नाम बनकर रह गया।

9.3.5 अस्वीकृत कविता

इसका आधार धनश्याम रंजन का लेख 'अस्वीकृत कविताः प्रश्न और समाधान' है। यह नाम 'रिजेक्टेड राइटिंग' का अनुवाद है। श्रीराम शुक्ल का नाम इसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से लिया जाता है। लखनऊ से 'न' नाम की पत्रिका सुशीलकुमार ने इसकी मुद्रा को स्पष्ट करने के लिए निकाली। सामाजिक रूढ़ियां इन्हें स्वीकार नहीं हैं। यह कविता समकालीन जीवन सन्दर्भों में व्याप्त असुरक्षा की पहचान का दावा करती है। पलायन एवं पराजय को नहीं स्वीकारती। यह आत्महत्या और भूख आदि के अनुभवों से गुजरती है, स्वयं को विवश नहीं मानती। इसके प्रमुख कवि बजरंग विश्नोई, सतीश जमाली, शरद, नीलम, शेषमणि पाण्डेय, हरीश मादानी, उदयशंकर माधव विमल पाण्डेय आदि हैं।

9.3.6 साम्प्रतिक कविता

श्यामनारायण द्वारा सम्पादित 'अंतर' पत्रिका में यह नाम आया। इसकी भूमिका डॉ. रमेश कुन्तल मेघ ने लिखी। इस कविता में अकविता , अस्वीकृत कविता, सचेतन कविता, बीट कविता, विद्रोही कविता आदि को समेटने की कोशिश की गई है। यह कविता भी परिवेश से अपनी संपृक्ति ज्ञापित करती है। इसका कवि विद्रूपताओं, विसंगतियों पर झूठा आवरण नहीं डालता। वह वर्जनाओं एवं निषेधों के दलदल में धंसने का दावा करता है। फन्तासी के प्रयोग से यथार्थ को 'एब्सर्ड' और 'टेरिफ' बनाने का आरोप साम्प्रतिक कविता पर लगाया जाता है। समाज की अवहेलित शक्तियों के लिये दुलार लेकर आई थी यह कविता। इस दिशा में विजयदेवनारायण साही, गिरिराजकिशोर और सव्यसाची की कविताएँ प्रमुख हैं।

9.3.7 युयुत्सावादी कविता

'युयुत्सा' पत्रिका के माध्यम से यह नाम सामने आया। यह पत्रिका कलकत्ता से प्रकाशित होती थी। सामाजिक बदलाव एवं क्रांति की पृष्ठभूमि तैयार करती हुई ये कविताएं एक सार्थक दिशा की तलाश में चलती दिखाई पड़ती हैं। जनता एवं बुद्धिजीवियों की एकता के बल पर समाजवादी व्यवस्था की स्थापना इनका अभीष्ट है। इसके प्रमुख 'शलभश्रीराम सिंह' साहित्य की रचना का मूल युयुत्सावादी वृत्ति को मानते हैं। उनके अनुसार यही आदिम युयुत्सा सदा से किसी न किसी रूप में कहीं न कहीं क्रान्तिकारी परिवर्तन एवं विघटन की दिशा निर्धारित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करती रही है। विद्रोह इनकी चेतना एवं चाहत का सिम्बल है। युयुत्सावादी कवि निजता से ऊपर उठकर सोचता है तथा गलत शक्तियों का वर्चस्व समाप्त कर यान्त्रिकता को मुक्त करना चाहता है। कवियों के विभिन्न वैचारिक दृष्टिकोणों के कारण पूर्व से पाश्चात्य तक के दर्शन इसके आधाररूप में सामने लाए गये। मूल्यों की प्रतिस्थापना में जिजीविषा, मुमूर्षा, विद्रोह, प्लेटॉनिक, वीरपूजा, धर्म भावना, जन संस्कृति आदि शब्दों का प्रयोग किया गया। 'रूपाम्बरा' के सम्पादक स्वदेश भारती ने जिजीविषा और मुमूर्षा को एक ही माना। यद्यपि यह कविता सार्थक मूल्यों को लेकर चली किन्तु वैचारिक भिन्नता एवं संगठित संचालन के अभाव में अपनी सार्थकता सिद्ध न कर सकी। शलभश्रीराम सिंह, चन्द्रमौलि उपाध्याय, राजीव सक्सेना, शरद, उमेश, नीलम, रामाश्रय, सविता आदि इसके कवि है।

9.3.8 साठोत्तरी कविता

इसके प्रवक्ता सलिल गुप्त हैं। यह नाम सन् 60 के बाद की कविता के कालक्रम को ज्ञापित करने वाला नहीं है, वरन् कविता की एक धारा विशेष का नाम है। इसका कवि प्रतिबद्धता एवं नारेबाजी में विश्वास नहीं करता। अन्तरराष्ट्रीयता की सीमा को स्वीकार करते हुए भी वह राष्ट्रीयता का पक्षधर है। सामान्य जन से जुड़ने की चाहना के साथ–साथ वह क्रान्ति द्वारा मूल्यों की स्थापना करना चाहता है। विज्ञान, मानववाद, समाजवाद तथा देशप्रेम उसकी आचार संहिता में आते हैं। मृत जीवन मूल्यों के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। सुरेश सलिल, ललित शुक्ल, चन्द्रेशगुप्त, वैजनाथ, सलिल गुप्त और जीवन शुक्ल इसके कवि एवं कर्त्ता हैं। यद्यपि आन्दोलनों के कुहासे में यह नाम एक आशा की किरण के समान था, फिर भी कोई प्रभाव स्थापित न कर सका।

9.3.9 सहज कविता

अलीगढ़ से मार्च सन् 1967 में रवीन्द्र भ्रमर ने सहज कविता का नारा दिया। यद्यपि सहज कविता का आगमन बड़ा ही असहज था। इस कविता ने अनुभूति के सहज अंकन एवं संप्रेषण का दावा किया था। इसमें कृत्रिमता, जटिल बिम्ब एवं प्रतीकों के विन्यास को नकारा गया। इसका उद्देश्य आज की विषम काव्य परिस्थितियों में कविता की खोज मात्र है। अजय कुमार का एक उद्धरण पर्याप्त होगा–

धूप तेज होती है / धूप तेज होती है / और छोटी सी झाड़ी में
एक नन्हीं चिड़िया / गाने लगती है / टूट जाती है दोपहरी
की तन्द्रा/ याद हठी बच्चे सी / सूने दीवारों के साये पर /
दरपन चमकाने लगती है। / – अजय कुमार

9.3.10 सनातन सूर्योदयी नूतन कविता

इस कविता के जन्मदाता वीरेन्द्रकुमार जैन ने इसे नयी कविता के विकल्प रूप में पैदा किया। उनके अनुसार यह आगामी वक्त की ऊर्ध्वोन्मुखी नूतन कविता धारा है। यहाँ नवीनता एवं आध्यात्मिकता को एक ही मंच से प्रस्तुत करने का प्रयास था।

इन कविता नामों के अतिरिक्त 'विचार कविता', 'आज की कविता' 'अगली कविता', 'नूतन कविता', 'अभिनव काव्य', निर्दिशायामी कविता', 'टटकी कविता' आदि अनेक कवितान्दोलन हैं जिनका अस्तित्व भी मात्र नाम तक ही सीमित रह गया।

हिन्दी कविता में आन्दोलनों की आँधी सातवें दशक के अंत तक थम गई। ये आंदोलन प्रवर्तक बनने एवं साहित्य में शीघ्र ही स्थान पाने की नीयत से प्रारम्भ हुए थे। विभिन्न नामों के बैनरों तले कविता का एक सामान्य रूप देखने को मिलता है। 'साठोत्तरी कविता' में अनास्था, आक्रोश, असंतोष के स्वर पूरी शक्ति के साथ उभरे। विद्रोह एवं निषेध की मुद्रा तथा परम्परा का अस्वीकार इसमें सर्वत्र परिलक्षित होता है। विद्रोह का जो तेवर देखने को मिलता है सब – का – सब निरर्थक नहीं है। बल्कि कहीं – न – कहीं यह विद्रोह सार्थक समाजोपयोगी बन गया है। साठोत्तरी कविता के कवि को रूढ़ियों एवं पर्दे की आड़ में चल रहे कुत्सित् व्यापार सह्य नहीं है। परम्परा एवं आदर्शों की दुहाई देकर इन्हें नहीं बहलाया जा सकता। इनकी दृष्टि जमीन पर है। सामाजिक दायित्वों के निर्वहन की संकल्पना के साथ इनका विद्रोह मात्र गुस्सा बनकर नहीं रह पाता, बल्कि कविता की पहचान बनकर उसकी संभावनाओं के प्रति आश्वस्त भी करता है–

'वे / जो अपने पुत्र और पत्नियों को सोता हुआ छोड़कर / सुख
और शान्ति की खोज में / जंगलों को निकल गये / वे / जो
दूसरा गाल सामने कर देने का उपदेश दे / लोगों को नपुंसक
बनाते रहे। नहीं थे / वे हमारे पूर्वज नहीं थे। – रमेश गौड़

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9.4 सन् 1960 के बाद की कविता की प्रमुख विशेषताएँ

9.4.1 नारी अवमानना

इस काल की कविताओं में सर्वाधिक दुर्दशा नारी की हुई है। कामोन्माद की जो स्थिति रचनाओं में देखने को मिलती है वह कवियों की मानसिक विकृति को अधिक; उनकी विद्रोही चेतना को कम व्यंजित करती है। सेक्स और कुण्ठा का जो चित्रण साठोत्तरी कविता में देखने को मिलता हैं वस्तुतः वह नारी के सामाजिक अस्तित्व के नकारा की ही मुद्रा है। नारी – पुरुष के सम्बन्धों की छीछालेदर कविता को स्थापित करने की जगह उसे विस्थापित करती है। यौन विकृतियों के चित्रण के पीछे यद्यपि क्रान्तिकारिता की दुहाई दी गई है, तथापि वह कविता के हित में नहीं हैं। भीड़ का सामान्यीकरण भी इस कविता में हुआ है जो आधुनिक जीवन की विसंगतियों, उसके नारीकरण तथा लाचारी की उपज है।

9.4.2 व्यक्तिवादिता

ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि साठोत्तरी कविता दो वर्गों में विभाजित होकर विकास करती रही है। उसका पहला रूप व्यक्तिवादी है – जिसने व्यक्ति को समाज से काटकर उसे व्यक्ति की सीमा में ही परखा। दूसरा रूप कविता की समाज निष्ठ चेतना का रूप है। इस कविता ने भी यद्यपि व्यक्ति की ही परख की किन्तु इसका व्यक्ति समाज – सापेक्ष के अर्थात व्यक्ति और समाज, दोनों की सहयोगी भंगिमा इसका मूल बिन्दु है। वास्तव में हिन्दी कविता में इन दोनों चेतना – प्रवाहों का उभरना यह संकेतित करता है कि दूसरे विश्व युद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों ने इसे प्रत्यक्षतः या परोक्षतः प्रभावित किया, जिससे समूचा विश्व काव्य जुड़ा हुआ है।

9.4.3 मोह भंग एवं अनास्था

हिन्दी कविता की व्यक्ति निष्ठ धारा जो सन् 60 और 70 के बीच देखी गयी वह वास्तव में 'आजाद देश' के प्रति लोगों के दुखद स्वप्नभंग, युद्धों में होनेवाले नरसंहार से जीवन के प्रति उदासीनता, सामाजिक, वैयक्तिक तथा आर्थिक टूटन और व्यवस्था में व्यक्ति की दयनीय विवशता की देन थी, जो पतनशील प्रवृत्तियों के आधार तत्वों का निर्माण करनेवाले अस्तित्व दर्शन का सहारा लेकर चलती रही। यही कारण है कि इस धारा की कविता में जीवन की निर्भीकता और व्यक्ति–विवशता, क्षण का महत्त्व और चिरंटकाल की अस्वीकृति, निराशा और अनास्था, शून्यता की अनुभूति, कुण्ठा और संत्रास, घृणा और उबकाई, ईश्वर के प्रति अविश्वास और अहं का विस्तार तथा यौन भावना के नग्न रूप अधिक दिखाई पड़ते हैं। इस धारा का रचनाकार जीवन के अभिशप्त मार्ग पर निरर्थक यात्रा करता हुआ एक भयावह विवशता का अनुभव करता है। प्रयाग नारायण त्रिपाठी की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

किन्तु काल की शत– सहस्र परतों के पीछे
काली–काली चट्टानों के पास झाँकने के प्रयत्न सब व्यर्थ हुए हैं
यात्रा का कुछ स्पष्ट अर्थ
चेतना पटल पर नहीं सँवरता
लगता है धारा में बहते – बहते सहसा
नाव भँवर में उलझ गई है
लगता है : हर नया मार्ग गन्तव्यहीन
आगे–आगे–आगे प्रतिक्षण बढ़ता जाता है
जिस पर बस चलते जाने का निष्कारण अभिशाप मिला है
मुझको अन्तहीन यात्री को।

अतीत, वर्तमान और भविष्य के विराट्काल के अखंड प्रवाह के प्रति विश्वास छोड़कर किसी एक क्षण से अपना अस्तित्व सिद्ध करने के संदर्भ में कीर्ति चौधरी की कविताएं प्रस्तुत की जा सकती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

'मैं प्रस्तुत हूँ / इन कई दिनों के चिन्तनों – संघर्षों के बाद / यह क्षण

जो अब आया है / उसमें बंधकर मैं प्रस्तुत हूँ तुमसे सब कुछ कह देने की। /

×××अभिमान नाम का, पद का भी तो होता है / यह कछुए सी मेरी आत्मा पंजे

फैला / असली स्वरूप जो तुम्हें दिखाने को उत्सुक हो उठी है / क्या जाने

अगले क्षण की ही आहट पा / सब कुछ अपने में समेट ले अन्दर !'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ईश्वर के प्रति अविश्वास में अपने अहं के प्रति अधिक सजग विजयदेव नारायण साही कहते हैः–

'नबी, तुम्हारी कुंठाओं से निर्मित प्रभुता / केवल आत्मा की तेजाबी आभा
थी, जो / जीती नहीं कलंकित होकर / मुर्दा परतों पर कुम्हलाया जहर
छोड़कर / कुछ दिन बाद उतर जाती है।'

कविता का यह व्यक्तिनिष्ठ रूप वास्तविक साठोत्तरी कविता का नहीं है। इसी व्यक्तिवादी कविता के तहत अनर्गल प्रलाप, आत्मरति, दुर्बोधता, समाज–विमुखमता के चित्र देखने को मिलते हैं। परिणाम यह हुआ कि शारीरिक उत्तेजना की तरह यह ज्वार शीघ्र ही थम गया। उपर्युक्त कतिपय कवियों को छोड़कर इस धारा में आनेवाले शेष कवियों ने कोई उल्लेखनीय रचना नहीं दी।

9.4.4 जीवन संघर्ष की अभिव्यक्ति

इसके विपरीत समाजनिष्ठ चेतनावाली कविता बराबर विकास करती रही है। उसने सामाजिक दबावों को झेलते हुए, जीवन के विभिन्न स्तरों एवं अवस्थाओं को ईमानदारी के साथ आत्मसात् करते हुए उसका चित्रण किया है। यह कविता समकालीन जीवन के जटिल सन्दर्भों से कतराती नहीं है वरन् उससे होकर गुजर रहे मनुष्य की अनुभूतियों, आशाओं, आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति में लगी रही है। इस कविता ने कथ्य के स्तर पर परिप्रेक्ष्य की नवीनता, मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि, आधुनिकता के नये आयाम, भावबोध के नये स्तर तथा यथार्थ के नये धरातल उद्घाटित किये हैं। साथ–ही–साथ मानवजीवन की विशिष्टताओं तथा संघर्ष और आत्मविश्वास को आधार प्रदान किया है।

वास्तव में 'माध्यम' में प्रकाशित दो – तीन निबन्धों में चर्चित 'अनुभव वाद' (कविता की वैयक्तिक प्रक्रिया जिसे प्रकारान्तर से मुक्तिबोध ने 'पर्सनल सिचुएशन' कहकर नकारा था) से आगे रचनाकारों के लिए संक्रान्ति और संघर्ष का दशक था, जिसकी पीड़ा को भोगते हुए जूझनेवाले कवियों की एक लम्बी कतार पत्र–पत्रिकाओं में आई। इस पीड़ा का कारण वह बंजर व्यवस्था और सत्ताधारियों द्वारा प्रोत्साहित संचालित वह दस्यु संस्कृति है, जो समाज को और सामाजिक मानव को कुछ भी दे सकने में अक्षम है। इस स्थिति में तमाम ढहते प्रतिमानों, निरर्थक होते मूल्यों और मरती हुई संस्कृति पर नये निर्माण की आशा लेकर प्रायः सभी नए कवि अपनी खीझ और आक्रोश व्यक्त करते रहे हैं। नये कवियों के अतिरिक्त पाँचवें और छठे दशक के कवियों में भी एक अभूतपूर्व परिवर्तन आया और दिनकर, नागार्जुन, बच्चन, साही, भारती शकुन्तला माथुर आदि कवियों ने भी इधर आक्रोश – भरी कविताएँ ही लिखीं।

आठवें दशक के शुरू होते – होते कविता आन्दोलनी–वृत्ति तथा चमत्कारों से मुक्त दीखने लगी। कविता सही दिशा की तलाश में चल पड़ी । आन्दोलनों का आधार लेकर उछलनेवाले कवि खो गए। कविता के मैदान में अब वे ही शेष बचे जिनकी कविताओं में युग – जीवन का स्पन्दन था। एक ठोस जमीन का निर्माण होने लगा था जो दशक की समाप्ति तक पूरी तरह अस्तित्व में आ गई। नये पुराने – सभी कवि दुराग्रह एवं व्यक्तव्यों से मुक्त होकर रचना करते दिखाई पड़े। इस दशक में खासतौर से चार तरह की कवितायें लिखी गईं। इनमें पहला वर्ग उन कवियों का था जो 'प्रयोगवाद' एवं 'नयी कविता' के दौर से गुज़र कर आये थे। दूसरे ऐसे कवि थे जो आन्दोलनों के माध्यम से उभरे थे। तीसरे श्रेणी उन कवियों की थी जो जनाभिमुख होकर कविता की सामाजिक जिम्मेदारी को समझते हुए कविता कर रहे थे। ये कवि प्रगतिवादी चेतना को आधार बनाकर कविता के जनवादी पक्ष को उभारने की कोशिश कर रहे थे। चौथे ऐसे कवि थे जो नए थे, किन्तु किसी तरह की आरोपित वैचारिकता और आन्दोलनों से दूर रहकर सर्वथा स्वतन्त्र भाव से जीवन की सार्थक अभिव्यक्ति में लगे हुए थे। इन धाराओं से होकर कविता का एक सामान्य रूप उभरकर सामने आया। ये जीवन की विसंगतियों एवं विवशताओं की व्यंजना के साथ–साथ आम आदमी की जटिल जिन्दगी की अभिव्यक्ति भी इस कविता में थी। जन – जीवन से जुड़ने की ललक इस काल की कविता में सर्वत्र परिलक्षित हो रही थी किन्तु यहाँ प्रेरणा प्रदान करने के लिए कोई नारा नहीं था वरन् मध्य एवं निम्न वर्ग का जीवन – यथार्थ ही उसमें चित्रित हो रहा था। अब कवि सीधे आदमी की जिन्दगी से जुड़कर चल रहा था। एक उदाहरण देखें –

'मुझे लगा मुझे एक दाने के अन्दर घुस जाना चाहिए ।
पिसने से पहले मुझे पहुँच जाना चाहिए / आटे के शुरू में /
चक्की की आवाज के पत्थर के नीचे / – मुझे होना चाहिए इस समय /
जहाँ से गाने की आवाज आ रही थी / यह माँ की आवाज है /
मैंने खुद से कहा / चक्की के अन्दर माँ थी / पत्थरों की रगड़ और
आटे की गन्ध से / धीरे – धीरे छन रही थी माँ की आवाज।

– केदारनाथ सिंह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9.4.5 सामाजिक प्रतिबद्धता

प्रतिबद्धता का प्रश्न इस दिशा में व्यापक रूप में उठा है। चूंकि राजनीति समसामयिक जीवन पर पूरी तरह हावी रही है अतः उससे निरपेक्ष रहकर रचना कर पाना सम्भव नहीं है। फिर राजनीति ने जनता के जीवन को आक्रान्त कर रखा है। फलतः जन – जीवन की अभिव्यक्ति के साथ उसका मुखड़ा आज की कविता में दिखाई दे जाता है। साठोत्तरी कवि व्यवस्था के प्रति आक्रोश के साथ–साथ उसमें परिवर्तन का आकांक्षा है। विभिन्न विचार–सरणियों की पक्षधरता के बावजूद आज की कविता में शोषित जन के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई है। राजनैतिक पक्षधरता अब 'मानवीय प्रतिबद्धता' में बदलती नजर आती है। जड़ता एवं संकीर्णता से मुक्त होती काव्य चेतना अब मानव जीवन के विविध रंगों को उतारती तथा उनमें अपनी संपृक्ति जाहिर करती है। इस तरह आठवें दशक की कविता उन तमाम सीमाओं को तोड़ती चलती है जो उसके विकास में बाधा उपस्थित करती रही हैं।

9.4.6 नवीन शिल्प

शिल्प एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से साठोत्तरी कविता अपना अलग स्वरूप स्थापित करने में सफल एवं समर्थ रही है। छायावादी संस्कारोंवाली भाषा जो 'नयी कविता' तक अपना आंशिक प्रभाव लेकर चली थी, अब प्रभावहीन हो गई है। जीवन की संश्लिष्ट स्थितियों की अभिव्यक्ति के लिए अब वह भाषा किसी भी तरह समर्थ नहीं रह गई, परिणामस्वरूप साठोत्तरी कविता ने अपनी एक भाषा का निर्माण किया तथा वह अपनी स्वतन्त्र छवि स्थापित करने में सफल रही। साठोत्तरी कविता की भाषा न भरमाती है न उपदेश देती है, वह बेलाग, साफ–साफ बोलती है, बतियाती है। बिम्ब – विधान की जो प्रथा कविता में चली आ रही थी, उसके संविधान में परिवर्तन होने लगा। कथ्य को सहज सम्प्रेषणीय बनाने के लिए केदारनाथ सिंह जैसे बिम्बवादी कवियों ने भी उसे तोड़ा। सपाटबयानी अब कविता में अधिकाधिक प्रयुक्त होने लगी। वस्तुतः यह कविता को सम्प्रेषणीय एवं नाटकीयता को समाप्त करने की इच्छा से हुआ। व्यक्तिवाचक नामों का सामान्यीकरण इस कविता में हुआ जो कविता को अधिक सम्प्रेषणीय बनाने में सफल रहा। वर्गीय चरित्रों को प्रस्तुत करने तथा उनकी सम्पूर्ण स्थितियों का बोध कराने में ये प्रयोग पूरी तरह सफल रहे। रघुवीरसहाय की कविताओं में ऐसे प्रयोग सफलतापूर्वक किये गए हैं–

नाम कहाँ तक याद रक्खूँ / लोगों को उनकी तोंद से जानता हूँ /
पहले मुझे वही मिली देवीदयाल वर्मा में / कितनी शान्तिभरी घुटनभरी /
आदमी से आदमी के बचाव की ढाल । – रघुवीर सहाय

उत्तम पुरुष में वक्तव्य की परिपाटी भी कविता में चली जो व्यक्ति के 'मैं' को प्रस्तुत करती है। बहुत से कवियों में यह 'मैं' सामाजिक भूमिका निभाता हुआ सामाजिक रुप पा लेता है। फन्तासी का प्रयोग इधर की कविताओं में व्यापक रूप में हुआ। मुक्तिबोध की कविताएँ इसका अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। प्रलाप शैली, नाटकीय एकालाप, बिम्बात्मकता, नवगीतात्मकता, मिथकीय सन्दर्भों का प्रयोग इस काल की कविताओं में व्यापक स्तर पर हुआ है।

साठोत्तरी कविता की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि लम्बी कविताओं का लिखा जाना है। ये कविताएँ आज कविता की उपलब्धि बन चुकी हैं। 'अंधेरे में' (मुक्तिबोध), 'पटकथा', 'मोचीराम' (धूमिल), 'मुक्तिप्रसंग' (राजकमल चौधरी), 'आत्महत्या के विरुद्ध' (रघुवीरसहाय), 'जलसाघर' (श्रीकान्त वर्मा), 'बलदेव खटीक' – (लीलाधर जगूड़ी), 'लुकमान अली' (सौमित्र मोहन) आदि कविताएँ साठोत्तरी हिन्दी कविता की पहचान कराने में पूर्ण समर्थ हैं।

9.4.7 विरोधी स्वर

इस दौर के कवियों ने भाषा अथवा अभिव्यक्ति के संकट को नहीं स्वीकारा, फिर भी इनकी रचनाओं में व्यवस्था का इतना तीव्र विरोध और पर्दाफाश था कि 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' जैसी व्यावसायिक पत्रिकाओं में इनका छपना सम्भव नहीं था। इस तथ्य को स्वीकार कर इन कवियों ने और इनके समर्थकों ने सैंकड़ों छोटी–छोटी पत्रिकाएं निकालीं, जिनमें कविता, नयी कविता, आइना, प्रचेता, आवेग, विकल्प, आवेश, अथवा, प्रत्याशित, निकेत, संचेतना, आमुख, अन्तराल, उत्तरार्द्ध, वाम, तनाव, अनाहूत, समिधा, प्रक्रिया, निकष, पुरुष, कथा, पहल, ओर, सिलसिला, फिलहाल, आरम्भ, विचार, सर्वनाम, भंगिमा, अर्थात्, प्रतिमान, पहचान आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'कल्पना' और ' आलोचना' जैसी पत्रिकाएँ तो इस धारा की कविता को पहले से ही प्रोत्साहन देती है। 'ज्ञानोदय' का अचानक बन्द हो जाना तथा 'माध्यम' का भी कुछेक अंकों के बाद ही बन्द हो जाना पूरी साठोत्तरी कविता के लिए अहितकर सिद्ध हुआ, पर कई विश्वविद्यालयों से 'परिवेश' आदि जैसी पत्रिकाओं और सरकारी पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' का निकलना कविता के लिए उत्साहजनक रहा है। अज्ञेय के सम्पादन में 'प्रतीक' का प्रारम्भ फिर से होना शुभ लक्षण था। विश्वनाथ तिवारी के सम्पादन में प्रकाशित 'दस्तावेज' समकालीन कविता का वास्तविक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दस्तावेज बन रहा है। वस्तुतः साठोत्तरी कविता को कई पड़ावों से होकर गुजरना पड़ा है, जिसकी छाप इसमें देखने को मिल जाती है। अपने विकास की स्थिति में यह कविता कहीं भी घुटने नहीं टेकती वरन् आगे देखती चल रही है। अपने कथ्य एवं शिल्प के आधार पर अपनी पहचान स्थापित करती हुई साठोत्तरी कविता नए आयाम उद्घाटित करती हुई विकासमान है। मतवादों, सम्प्रदायों, राजनैतिक दुराग्रहों को उसने तिलांजलि दे दी है तथा वह जीवन से अपनी सम्पृक्ति जाहिर करती है। समकालीन जीवन सन्दर्भों में व्यक्तित्व का दुहरापन व्याप्त है जिससे मानव सक्रान्त हो उठा है –

'हम निरे आकार हैं / अधीन नहीं हैं /
दुह रहे हैं / विवश खुद को — विष्णुचन्द्र शर्मा

सातवें दशक तक व्याप्त यह दुहरापन अब इकहरेपन में बदलने लगा है। वस्तुस्थिति को पहचान, कविता सही आदमी की प्रतिष्ठा में लग चुकी है। साठोत्तरी कविता के रचनाकारों में कई पीढ़ियां साथ–साथ चल रही हैं। एक तरफ नयी कविता से होकर आने वाली पीढ़ी के कवि भवानीप्रसाद मिश्र, सर्वेश्वर, शमशेर आदि की कविताएं हैं। वहीं केदारनाथ सिंह, रघुवीरसहाय कवियों की कविताएं है। प्रमुख रचनाकारों में धूमिल, राजकमल चौधरी, श्रीकान्त वर्मा, दुष्यन्तकुमार, अशोक वाजपेयी, कैलाश वाजपेयी, लीलाधर जगूड़ी, रामकुमार कुम्भज श्रीराम वर्मा, मणि मधुकर, सौमित्र मोहन आदि है। जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, चंद्रकांत, देवताले, गंगाप्रसाद विमल आन्दोलनों के माध्यम से उभर कर आनेवाले रचनाकार हैं। आठवें दशक में अपनी कविताओं को लेकर उपस्थित होने वाले कवियों में मलयज, रणजीत, ऋतुराज, देवेन्द्रकुमार, विनोदकुमार शुक्ल, राजीव सक्सेना, विष्णु खरे, वेणु गोपाल, आलोक धन्वा, उदय प्रकाश, ज्ञानेन्द्रपति, कमलेश, विमल, मंगलेश डबराल, अरुण कमल आदि प्रमुख हैं।

9.5 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आधुनिक हिंदी काव्य में सन् 1960 के बाद के विभिन्न काव्यांदोलनों का परिचय, विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। इकाई के अध्ययन के उपरांत हमने जाना कि सन् 1960 के बाद हिंदी कविता में अनगिनत आंदोलन प्रकाश में आए, जिनमें कुछ तो थोड़ी बहुत अपनी पहचान बना सके, कुछ नाममात्र के आंदोलन बनकर रह गए। उन सबका विवेचन करने के उपरांत निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि –

- 'नई कविता' एक व्यापक आंदोलन था, जिसने आधुनिक हिन्दी कविता को व्यापक आधार और बहुत विस्तार दिया।
- सन् 1960 के बाद 'नई कविता' विविध दिशाओं एवं स्वरूपों में विस्तृत होकर फैल गई।
- 'नई कविता' का यह विस्तार विभिन्न नामों एवं आंदोलनों के माध्यम से हुआ।
- सन् 1960 के बाद हिंदी कविता आंदोलनों में अकविता, भूखीपीढ़ी और बीटपीड़ी, श्मशानी पीढ़ी, ताजी कविता, अस्वीकृत कविता, सांप्रतिक कविता, युयुत्सावादी कविता, साठोत्तरी कविता, सहज कविता, सनातन सूर्योदयी नूतनकविता के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं।
- सन् 1930 के बाद हिंदी कविता में मोहभंग एवं विद्रोह के स्वर प्रमुखता से उभरकर आए हैं।
- नारी अवमानना, व्यक्तिवादिता, अनास्था, सामाजिक प्रतिबद्धता, नवीन शिल्प, जीवन संघर्ष आदि की प्रवृत्तियाँ इस काल में प्रमुख रूप से उभर कर आईं।
- सुदामा पांडेय 'धूमिल', श्यामपरमार, राजकमल चौधरी, निर्भय मलिक, लक्ष्मीकांत वर्मा, शलभश्रीरामसिंह, रवीन्द्र भ्रमर, वीरेन्द्रकुमार जैन, लीलाधर जगूड़ी, सलिला गुप्त इस दौर के प्रमुख कवि कहे जा सकते हैं।

9.6 उपयोगी पुस्तकें

1. आधुनिक कविता का मूल्यांकन, इंद्रनाथ मदान।
2. अधूरे साक्षात्कार – नेमिचंद जैन।
3. आधुनिक साहित्य का परिप्रेक्ष्य, डॉ. रघुवंश।
4. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी।
5. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. बच्चनसिंह
6. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ – नामवर सिंह।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

9.7 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. सन् 1960 के बाद हिंदी कविता के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
2. सन् 1960 के बाद विभिन्न कविता आंदोलनों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. 'अकविता' आंदोलन की परिस्थितियों एवं उसकी प्रवृत्तियों को समझाइए।
4. 'समकालीन कविता' पर एक समीक्षात्मक निबंध लिखिए।
5. 'साठोत्तरी' कविता को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
6. सन् साठ के बाद हिंदी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. 'अकविता' का सामान्य परिचय दीजिए।
2. 'समकालीन कविता' को संक्षेप में समझाइए।
3. सन् 60 के बाद कविता आंदोलनों के नाम लिखिए।
4. सन् 60 के बाद प्रमुख कवियों के नाम लिखिए।
5. 'भूखी पीढ़ी और 'बीट कविता' का परिचय दीजिए।
6. 'श्मशानी पीढ़ी' क्या है ?
7. 'ताजी कविता' किसे कहते हैं ?
8. सहज कविता क्या है ?
9. सन् 60 के बाद कविता की प्रमुख प्रवृत्ति क्या है ?

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. 'अकविता' के प्रवर्त्तक कौन हैं ?
2. 'भूखी पीढ़ी' और 'बीट कविता' के प्रणेता कौन हैं ?
3. 'श्मशानी पीढ़ी' का प्रवर्त्तक किसे कहते हैं ?
4. 'अस्वीकृत कविता' के प्रवर्त्तक कौन हैं ?
5. 'ताजी कविता' के प्रणेता कौन हैं ?
6. 'साठोत्तरी कविता' के प्रवर्त्तक का नाम लिखिए ?
7. 'सहजकविता' का नारा किसने दिया ?
8. समकालीन कविता का सर्वाधिक सशक्त कवि कौन है ?
9. 'सनातन सूर्योदयी नूतन कविता' के महत्त्वपूर्ण कवि का नाम लिखिए ।
10. 'प्रतिश्रुति पीढ़ी' के प्रवर्त्तक कौन हैं ?
11. युयुत्सावादी कविता के प्रणेता कौन हैं ?
12. 'ताजी कविता' से क्या आशय है ?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–3

इकाई–10 मैथिलीशरण गुप्त

संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 मैथिलीशरण गुप्त : एक परिचय
10.3 मैथिलीशरण गुप्त और उनका साकेत
10.4 साकेत का नवम सर्ग
10.5 नवम सर्ग का काव्यवैशिष्ट्य / उर्मिला के विरह की विशेषताएँ
10.5.1 प्रवत्स्यपतिका
10.5.2 प्रोषितपतिका
10.5.3 स्वाभाविकता
10.5.4 षड्ऋतु–वर्णन और विरह
10.5.5 विरह का आभ्यन्तर स्वरूप
10.6 व्याख्या खंड
10.7 सारांश
10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
10.9 अभ्यास प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

10.0 प्रस्तावना

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के युगप्रेरक व्यक्तित्व से प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः उस युग के अनेक कवि प्रभावित हुए, जिनमें सबसे अधिक प्रेरित और प्रभावित होनेवाले कवि मैथिलीशरण गुप्त हैं। गुप्त जी वास्तव में द्विवेदी जी की प्रेरणा की ही उपज हैं। उनके कवि व्यक्तित्व को निखारने में आचार्य द्विवेदी ने एक पथप्रदर्शक, दिशानिर्देशक का कार्य किया। उपनाम – 'रसिकेंद्र' से काव्यरचना का आरंभ करनेवाले गुप्त जी में रीतिकालीन एवं ब्रजभाषा के प्रबल संस्कार थे। द्विवेदी जी ने उन्हें आधुनिक दृष्टि की ओर मोड़ा और विभिन्न आधुनिक समसामयिक विषयों पर काव्य सर्जन के लिए प्रेरित किया। द्विवेदी जी की प्रेरणा से ही गुप्त जी ने आधुनिक भावसम्पन्न रचना 'भारतभारती' को बहुत मनोयोग से प्रस्तुत किया, हिंदी जगत में जिसका अभूतपूर्व स्वागत हुआ।

आचार्य द्विवेदी के सरस्वती में प्रकाशित एक लेख 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' (जुलाई 1908, भुजंगभूषण भट्टाचार्य नाम से) प्रेरित और प्रभावित होकर अपना आभार महाकाव्य 'साकेत' प्रस्तुत किया, जो रामकथा परंपरा का अंतिम श्रेष्ठ ग्रंथ है। उक्त ग्रंथ में यद्यपि रामकथा ही है, पर उसकी सर्वप्रमुख विशेषता और मौलिकता है, उर्मिला के उज्ज्वल चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन। 'साकेत' के माध्यम से गुप्त जी ने रामकथा की सर्वाधिक उपेक्षित पात्र 'उर्मिला' को स्थापित कर दिया है। 'साकेत' की लोकप्रियता ने मैथिलीशरण गुप्त को हिंदी काव्य में बहुंत ऊचे स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया। वह उनकी अक्षय कीर्ति का स्थायी स्तंभ बन गया।

'साकेत' की पूरी कथा का ताना–बाना उर्मिला को लेकर बुना गया है। पहले कवि ने उस ग्रंथ का नामकरण भी उर्मिला के नाम पर ही किया था। उर्मिला का चारित्रिक वैशिष्ट्य 'साकेत' का केन्द्र बिन्दु है, जो उसके नवम् सर्ग में उद्घाटित हुआ है। कहा जाता है कि 'साकेत' के नवम सर्ग की रचना के लिए ही गुप्त जी ने पूरे साकेत की रचना की। वस्तुतः 'साकेत' और साकेत का नवम सर्ग हिंदी साहित्य की अमर धरोहर है, जिसके अमर गायक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हैं। वही मैथिलीशरण गुप्त 'द्विवेदी' युग के सर्वाधिक प्रतिष्ठित कवि के रूप में ख्यात हैं, जिनका रचना संसार लगभग पचास वर्षों में प्रसरित है और जो अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के प्रामाणिक रचयिता हैं।

10.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई द्विवेदी युग के सर्वप्रमुख सर्वमान्य कवि मैथ्लीशरण गुप्त से संबंधित है, जिसका उद्देश्य गुप्तजी के साहित्यिक परिचय के साथ उनके काव्य सौष्ठव को प्रस्तुत करना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त का सामान्य परिचय प्राप्त करते हुए उनकी रचनाओं से अभिज्ञ हो सकेंगे।
- मैथिलीशरण गुप्त के साहित्यिक व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे।
- गुप्त जी की काव्यगत मान्यताओं के विषय में पूरी तरह जान सकेंगे।
- गुप्त जी की महत्त्वपूर्ण एवं सर्वाधिक रचना 'साकेत' के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- 'साकेत' के नवम सर्ग का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- नवम् सर्ग के काव्यसौंदर्य / उसकी प्रमुख विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- नवम् सर्ग से संबंधित महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्याओं से परिचित हो सकेंगे।

10.2 मैथिलीशरण गुप्त : एक परिचय

द्विवेदी युग के प्रमुख कवियों में मैथिलीशरण गुप्त का नाम बहुत आदर के साथ लिया जाता है। 'भारत–भारती' और 'साकेत' जैसी महत्त्वपूर्ण कृतियों की रचना कर गुप्त जी ने हिंदी कविता को बहुत समृद्ध किया है। लगभग पचास वर्षों तक प्रसरित गुप्त जी की काव्ययात्रा में अनेक महत्वपूर्ण कृतियाँ सम्मिलित हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी गुप्त जी ने प्रबंध, गीति, नाट्य आदि शैलियों में रचनाएं की हैं। अनुवाद में उनकी विशेष रुचि रही है। उमर खैयाम की रुबाइयों के साथ माइकल मधुसूदनदत्त की कृति 'मेघनाथ' का उन्होंने 'मेघनाथ वध' नाम से अनुवाद किया, जो कि उनकी दिव्य प्रतिभा व गहन बुद्धि का संकेत देता है। मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं व छप्पयों को पढ़कर लोग अत्यन्त प्रसन्न होते थे। प्रारम्भ में गुप्त जी की रचनायें एक जातीय पत्र से निकलती थीं, तत्पश्चात् उनका सम्पर्क द्विवेदी जी से हुआ। उनकी कृपा व आर्शीवाद से उनकी रचनायें 'सरस्वती' पत्रिका जो उस समय की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका थी, में प्रकाशित होने लगीं। यही से उनका शुद्ध साहित्यिक व्यक्तित्व उजागर हुआ। उनकी साहित्यिक प्रतिभा यही से निरन्तर विकसित होती गई। महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के कुशल निर्देशन में मैथिलीशरण गुप्त ने अपने साहित्य को रचा; जिसका नूल विषय भारतीय आदर्श, संस्कृति, स्वतन्त्रता प्राप्ति व राष्ट्रभक्ति इत्यादि थे। गुप्त जी में राष्ट्र के प्रति अगाध श्रद्धा थी, क्योंकि वह समय परतन्त्रता व आंग्ल अत्याचार का युग था, गुप्त जी का भक्त हृदय अपनी भारत मां की इस दुर्दशा को देखकर अधीर हो उठा। अतः उनके काव्य का मुख्य विषय भारत मां की स्वतन्त्रता की अर्चना से सम्बन्धित है।

गुप्त जी में भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध निष्ठा थी। वह पूर्ण रूप से भारतीय थे। उन पर उनके पिता के सुसंस्कारों का भी प्रभाव था। यद्यपि वह तुलसी, राम व वैष्णव पंथी थे, लेकिन उनमें धार्मिक कट्टरता का अभाव था। उनका हृदय सहिष्णु व उदार था। वह प्रत्येक धर्म में एक ही ईश्वर का स्वरूप मानते थे। ईसाई, सिक्ख, मुस्लिम व पारसी सभी धर्मों का मौलिक व आधारभूत सत्य एक है – वह इसी मान्यता को माननेवाले थे। वह अहिंसा, प्रेम, परोपकार, उदारता व परम सृष्टि मानव की मानवता के परम विश्वासी थे । जहां गुप्त जी प्राचीन भारतीय संस्कृति में विश्वास रखते थे, वहीं वह वर्तमान परिस्थिति से भी पराङ्गमुख नहीं थे। आधुनिक समस्याओं को प्राचीन भारतीय संस्कृति के आश्रय से सुलझाते थे। इस प्रकार से उनकी कृतियों व विचारों में, संस्कृतियों व युगों का बड़ा ही सरल समन्वय मिलता है। मैथिलीशरण गुप्त मूलतः आदर्शवादी थे। उन्होंने मर्यादा शीलता, सहिष्णुता, गांधीवादिता, पुरुषार्थ, भारतीयता, शिष्टाचार, भारतीय संस्कृति एवं वर्तमान परिस्थिति व समस्याओं की तरफ विशेष रूप से ध्यान दिया।

राम उनके आदर्श चरित्र थे। अतः यह स्वाभाविक था कि वह राम के आदर्शपूर्ण चरित्र को काफी मान्यता देते होंगे।

मैथिलीशरण गुप्त की भाषा खड़ीबोली है। अपने साहित्यिक गुरू महावीरप्रसाद द्विवेदी से ही उन्होंने इसकी प्रेरणा ग्रहण की थी। गुप्त जी की भाषा शुद्ध खड़ीबोली होने पर भी क्लिष्ट नहीं है। उसमें सर्वत्र सरलता व सुकुमारता है। वह प्रसंगानुकूल व विषयानुकूल होने के कारण बहुत ही आकर्षक लगती है। यूँ तो वर्तमान काल में अनेक कवि हुए, लेकिन गुप्त का स्थान उन अन्य कवियों में काफी महत्त्वपूर्ण है। वह अपने युग के प्रसिद्ध कवि व राष्ट्र भक्त हैं। राष्ट्र भक्ति की वेदी पर साकेत संत मैथिलीशरण गुप्त ने जो दीपक जलाए हैं, उनका प्रकाश आज तक भी अक्षुण्ण है। इसीलिये उनके प्रसिद्ध महाकाव्य 'साकेत' पर उन्हें मंगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ जो हिन्दी साहित्य का उच्चतम पुरुस्कार रहा है। आज भी गुप्त जी के साहित्य में सरसता, शुद्धता व आकर्षण है और सहृदय पाठक को प्रभावित करने की अद्वितीय क्षमता है।

गुप्त जी की भाषा सरल होने के साथ – साथ उनकी शैली भी सरल व विविध है। उन्होंने मुख्यतः प्रबन्ध शैली व गीति नाट्य शैली को अपनाया क्योंकि गुप्त जी हृदय से कवि हैं, अतः गीतात्मकता, संगीतात्मकता व

काव्यत्मकता तो प्रत्येक में विद्यमान है ही। उनकी शैली की अन्य विशेषता यह है कि गुप्त जी के साहित्य व कविता में नाटकीयता व संवादात्मकता है। 'साकेत' महाकाव्य में यह नाटकीयता बड़ी ही सुन्दर व स्वाभाविक है। कथोपकथनात्मक शैली से काव्य भी नाटकीय, रोचक व सरल बन जाता है।

(1) प्रबन्ध शैली – 'साकेत', 'पंचवटी', जयद्रथ वध, सिद्धराज।

(2) गीति नाटयात्मक शैली – चन्द्रहास, तिलोत्तम, अनघ व यशोधरा।

(3) गीति शैली – इसके अन्तर्गत कवि की कोमल भावना गीत बनकर प्रस्फुटित होती है, जैसे साकेत के अष्टम सर्ग में 'सीता संतोष' गीत है। ऐसे बहुत से गीत 'साकेत' व 'यशोधरा' में मिलते हैं।

वस्तुतः गुप्त जी की भाषा शैली अत्यन्त सजीव, आकर्षक व रोचक है। वह प्रसंग व विषय के अनुसार अपने स्वरूप को परिवर्तित करती है, इसलिये उसमें एकरसता है, बोझिलता नहीं है। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी विषय वस्तु को संप्रेषित करने तथा भाषा को मूर्त रूप प्रदान करने के लिये अलंकारों व शब्द शक्तियों का प्रयोग किया है। उन्होंने अलंकारों को केशव की तरह जानबूझकर नहीं भरा है, बल्कि स्वाभाविक रूप से वे उसमें समाविष्ट हो गये हैं। गुप्त जी के प्रिय अलंकारों में रूपक, उपमा, सांगरूपक, अनुप्रास उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति, संदेह, श्लेष व भ्रांतिमान हैं। कहीं–कहीं उनमें मानवीयकरण व ध्वन्यात्मकता का भी गुण विद्यमान है।

गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में विविध रसों का प्रयोग किया है। उन्होंने 'साकेत' में श्रृंगार के दोनों रूप, वियोग व संयोग का जितना विशद, विस्तृत व गहन चित्रण किया है उतना अन्य किसी ने नहीं। आंशिक रूप से सभी रस आ गए हैं। महाकाव्य होने के कारण नवों रसों का समावेश उसमें हुआ है, जैसे – वीर, रौद्र, भयानक, हास्य, वीभत्स, श्रृंगार, वात्सल्य व शांत रस इत्यादि। सूरदास की तरह गुप्त जी ने वात्सल्य रस का भी सफल वर्णन 'यशोधरा' में किया है। उनकी रस योजना विशेष रूप से सराहनीय है।

गुप्त जी ने अनन्त काल तक साहित्य की साधना की है और अनेकों विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है। अपने इस सृजनात्मक कार्य से उन्होंने हिन्दी साहित्य की अत्यन्त सेवा की है तथा उसके रिक्त कोष को भी भरा है। उन्होंने भारतीय संस्कृति, पुराण, भागवत से विषय लेकर उन्हें आधुनिक परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए नवीन रूप दिया। उनकी रचनायें दो प्रकार की हैं – (1) अनुदित, (2) मौलिक । अनुदित रचनाओं में उन्होंने मुख्य रूप से बंगला, फारसी व अंगरेजी रचनाओं का सफल अनुशीलन व अनुवाद किया है। दूसरी रचनायें वे हैं जो उनकी स्वरचित हैं –

(1) रंग में भंग, (2) जयद्रथ वध, (3) पद्य प्रसून, (4) पत्रावली, (5) पंचवटी, (6) भारत भारती, (7) चन्द्रहास, (8) अनघ, (9) किसान, (10) स्वदेश गीत, (11) शकुन्तला, (12) तिलोत्तमा (13) हिन्दू, (14) शक्ति, (15) बक संहार, (16) विकट भट, (17) साकेत, (18) नहुष, (19) यशोधरा, (20) सिद्धराज, (21) द्वापर, (22) गीतामृतम् (23) त्रिपथगा, (24) काबा और कर्बला, (25) पृथ्वीपुत्र, (26) हिद्रम्बा, (27) जय भारत, (28) कुणाल गीत, (29) झंकार इत्यादि। अन्य भी रचनायें हैं।

गुप्त जी का साहित्य वास्तव में प्रशंसनीय है। यद्यपि गुप्त जी ने स्वतन्त्रता संग्राम आन्दोलन में भाग नहीं लिया तथापि उन्होंने अपनी मधुर व उत्साह पूर्ण वाणी से जन–मन में स्फूर्ति, जागरण व नवीन चेतना के स्वर भरे। उनकी प्रेरणा से सुप्त भारतीय हृदयों में नव स्पन्दन जाग उठा। भारतीयों ने फिर से अंगड़ाई ली और देश की बलिवेदी पर उत्सर्ग होने की प्रेरणा पाई। ऐसे कवि को निश्चित ही राष्ट्रीय कवि माना जाना चाहिए। मैथिलीशरण गुप्त की वाणी में यथार्थ व आदर्श, प्राचीन व नवीन, भक्ति व प्रेम, सुख व दुःख, सरलता व क्लिष्टता अथवा विरह व संयोग का बड़ा सुन्दर समन्वय मिलता है। तुलसी की भाँति वह भी समाज सुधार तथा लोकनायकत्व की भावना से पूर्ण थे। उनकी अविरल साहित्य साधना अमर बनकर पूरे हिन्दी साहित्य पर छा गई।

10.3 मैथिलीशरण गुप्त और उनका साकेत

'साकेत', मैथिलीशरण गुप्त की काव्य–साधना की चरम परिणति और उनकी अक्षय–कीर्ति का आधार–स्तम्भ है। इसमें उनके महाकाव्यकार की प्रतिभा उभरकर सामने आयी है तथा उनकी भाव–व्यंजना को विस्तृत भूमिका में विचरण करने का अवसर मिला है। वह एक ऐसा विशाल प्रबन्ध–काव्य है जिसमें उनकी काव्य–कला का चरम उत्कर्ष व्यंजित हुआ है। दीर्घ कलेवर में अनुपम भावों की जो निधि गुप्त जी ने हिंदी–जगत को भेंट की है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। समाज और संस्कृति की विशाल चित्रपटी में कवि की भावुकता ने जिन चित्रों की अवतारणा की है, वह गुप्त जी जैसे समर्थ कलाकार की लेखनी से ही सम्भव था। कवि का भावपूर्ण हृदय अपनी सर्वोच्च संवेदनशीलता और सहजता के साथ इस काव्य में रूपायित हुआ है। डॉ. नगेन्द्र का कथन ठीक है कि 'हमारी सबसे

बड़ी समस्या जीवन है और उससे परे अध्यात्म या धर्म इस युग में कोई अर्थ नहीं रखता। 'साकेत' की धार्मिक पृष्ठभूमि का ठीक यही स्वरूप है, उसमें भुक्ति और मुक्ति का, भावुकता और बुद्धि (इड़ा) का सामंजस्य है। भक्ति आकर 'साकेत' में भावुकता बन गई है, यह समय का तकाजा है।"

साकेत का महत्त्व सुरक्षित है। वह आधुनिकयुगीन प्रथम श्रेणी के काव्य ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है।

साकेत का भाव–पक्ष समृद्ध और काव्य चेतना युगान्तरकारी है; इसलिए वह अनेक युगों तक हिंदी का लोकप्रिय काव्य–ग्रन्थ बना रहेगा। कवि और काव्य दानों की सहजता उसकी अनुपम विभूति है, जिसे हिन्दी का और कोई भी कवि नहीं प्राप्त कर सका है। यहीं मैथिलीशरण गुप्त सबसे सफल कवि हैं और 'साकेत' उनका श्रेष्ठ अद्वितीय ग्रन्थ।

राम–कथा का जो स्वरूप हमें प्राप्त है, कवि ने उसकी मूल चेतना एवं भावधारा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं उपस्थित किया है, परन्तु कवि जिस युग में रह रहा था, उससे वह पूर्णतः विमुख भी नहीं हो सकता था।

'साकेत' आधुनिक युग में रचा गया है। इसलिए आधुनिकता से वह समन्वित है, किन्तु उसका कथानक त्रेतायुगीन होने से मूल भाव चेतना भी उसी के अनुरूप व्यंजित हुई है।

रामधारीसिंह 'दिनकर' के शब्दों में "साकेत के राम और लक्ष्मण त्रेताकालीन होते हुए भी हमारे समय में पूर्ण रूप से खप जाते हैं और साकेत में ऐसी पंक्तियाँ अनेक हैं, जो त्रेतायुग के प्रसंग में लिखी जाने पर भी हमारे अपने समय की समस्याओं पर चोट करती हैं।"

10.4 साकेत का नवम् सर्ग

साकेत का नवम् सर्ग इस काव्य–ग्रन्थ का सबसे महत्त्वपूर्ण अंश है। कतिपय विद्वानों के अनुसार तो यह सर्ग ही इस काव्य के प्रणयन का मूलाधार है। इसमें उर्मिला की विरह–व्यथा का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है। कवि की काव्य–कला यहाँ अपने चरम रूप में दृष्टिगत होती है।

सर्ग का आरम्भ जनकजी की वंदना से होता है, तत्पश्चात् कवि, कविता और करुणा के महत्त्व पर प्रकाश डालता हुआ उर्मिला के विरह वर्णन के मुख्य–प्रसंग पर आता है। उर्मिला एक विवेकशील युवती एवं गृह–वधू के रूप में इस बात से चिंतित है कि कहीं मेरे कारण परिवार के किसी व्यक्ति को किसी प्रकार की असुविधा या अन्य कोई चिन्ता न हो। इसलिए वह राजभवन का परित्याग कर अपनी सखी सुलक्षणा के साथ उद्यान में आकर रहने लगती है। समय काटने के लिए वह अपने साथ कुछ ग्रन्थ, वीणा और तूलिका ले आती है। पति लक्ष्मण से दूर चले जाने के कारण उर्मिला का मन खाने–पीने, शृंगार या विश्राम किसी में भी नहीं लगता है। उसकी सखी इस बात से चिन्तित होती है और उसका मन बहलाने के लिए जीवन की बहुविध सुविधाएँ एवं विनोद–सामग्री जुटाती रहती है, किन्तु उर्मिला का मन किसी में नहीं लगता और वह किसी सुख का उपभोग अकेले कैसे करे– कोई भी सच्चा प्रेमी ऐसा नहीं चाहता। उसके तो रोम–रोम में लक्ष्मण समाए हुए हैं। अतः पशु–पक्षी, तृण–पुष्प, लता कुंज, सरिता–सरोवर, सूर्य–चन्द्र जिस पर भी वह दृष्टि डालती है, उससे उसके मानस में लक्ष्मण की सुधि का आवेग उमड़ आता है। कभी उसे वैवाहिक जीवन के प्रारम्भिक दिनों का समरण हो आता है, तो कभी रम्यचित्रकूट की शान्ति प्रदायनी प्रकृति–सुषमा का, जहाँ से वह अभी लौटकर आयी है। वह स्वयं कभी बातचीत करके अपने जी को बहलाना चाहती है, तो कभी चित्र बनाकर, किन्तु उसका जी किसी भी काम में लगता ही नहीं।

उर्मिला का त्याग अवर्णनीय था, तो उसका विरह अगाध। जीवन–यौवन की देहरी पर खड़ी उस जैसी राजवधू के लिए ही नहीं अपितु किसी भी रमणी के लिए चौदह वर्ष की अवधि, साधारण अवधि नहीं है। नारी जीवन का सर्वोत्तम तो इसी काल में गलता है, भोग्य बनता है। उर्मिला उससे वंचित थी। कवि के मानस को उसके जीवन का यह मर्म–स्थल विशेष आन्दोलित करता है। वह इसके समाधान के लिए विकल हो उठता है, क्योंकि वह जानता है कि साकेत का हर पाठक उससे यह प्रश्न पूछेगा। निदान, ऋतु–वर्णन के आधार पर वह उर्मिला के एक वर्ष के विरह का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करते हुए यह संकेतित कर देता है कि उस दीर्घ विरहावधि के शेष दिन भी इसी प्रकार बीतते हैं। प्रत्येक ऋतु बारी–बारी से आती है और अपना कुछ न कुछ प्रभाव उर्मिला के हृदय पर छोड़ जाती है। ऋतुओं के प्रति उर्मिला की प्रतिक्रिया एक विरहिणी की प्रतिक्रिया है– सामान्य प्रकृति–प्रेमी की नहीं और यह स्वाभाविक भी था। इस प्रतिक्रिया के माध्यम से कवि ने मिलन–विरह के शत–शत अनुपम चित्र अंकित किये हैं।

विरह–व्यथा और गीतों की दृष्टि से तो इस सर्ग का महत्त्व है ही, विचारों की दृष्टि से भी यह एक श्रेष्ठ सर्ग प्रमाणित होता है। प्रेम और प्रकृति, व्यक्ति और परिवार तथा राजा और प्रजा व युद्ध और कला पर विचार प्रकट करने के साथ उर्मिला मोह और मर्यादा, द्वन्द्व उपस्थित होने पर आदर्श के पक्ष में अपना निर्णय देती है। इस प्रकार उर्मिला को कवि ने एक ऐसी नारी के रूप में इस सर्ग में चित्रित किया है, जो बीसवीं शताब्दी की रचना होकर भी एक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

आदर्श भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। उर्मिला प्रणय, त्याग और भारतीय नारी की सामाजिक विवशता की प्रतीक है। उसमें कवि की मधुर–करुण कल्पना एवं आदर्श त्यागपूर्ण जीवन का समन्वय अभिव्यक्त हुआ है। वस्तुतः 'साकेत' का नवम सर्ग इस महाकाव्य का सबसे प्रमुख और महत्त्वपूर्ण भाग है, जो उर्मिला के आंसुओं से भीगा हुआ है।

10.5 नवम् सर्ग का काव्यवैशिष्ट्य

अहह ! विरह कराहते इस शब्द को निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा।'' – पन्त

विरह मनुष्य जीवन का चिर साथी है। जब से सृष्टि आरम्भ हुई है तभी से इसका अस्तित्व है। विरह जीवन का तप्त स्वर्ण है। इसी कारण विश्व के सभी कवियों ने विप्रलंभ की महत्ता स्वीकार की है।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ का कहना है कि मेरे हृदय में एक विरहिणी नारी बैठी है जो अपने दुःख के गीत सुनाया करती है। डॉ. नगेन्द्र कहते हैं–''यह विरहिणी अजर अमर है और उनके हृदय में नहीं, सभी कवियों की आत्मा में इसका निवास है। यह विरहिणी कालिदास के हृदय में शकुन्तला, भवभूति के हृदय में सीता, जायसी की आत्मा में नागमती और सूर के अन्तस् में राधा और मीरा के प्राणों में अरूप होकर रोई थी। मैथिलीशरण के हृदय में वही उर्मिला बन गई।''

'साकेत' के नवम सर्ग में वर्णित उर्मिला का विरह इस महाकाव्य की सबसे प्रमुख और उल्लेखनीय घटना है। (ष्मिजमेज ॅवदहे तम जीवेमए जींज जमससे ॅककमेज जीवनहीज॰ मधुरतम हैं वे गीत जो विरह में गाए जाते हैं।) परिस्थितियों की दयनीयता ने उसके विरह को और अधिक करुण बना दिया है। वह अपनी बहिनों के समान न होकर निस्संबल है। सीता 'पति ही पत्नी की गति है' का आदर्श लेकर राम के साथ, वन चली गईं, पर उर्मिला को विरह सहने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था। उसकी माँ ने सत्य ही कहा है –

''मिला न वन ही न भवन ही तुझको।''

10.5.1 प्रवत्स्यपतिका नायिका

लक्ष्मण राम के साथ वन जा रहे हैं – इस समय उर्मिला चिन्ता, मोह, विषाद, काम और आशंका आदि मनोभावों से ग्रस्त है, पर वह किसी से कुछ नहीं कहती और विवश होकर सब कुछ स्वीकार कर लेती है। वह पति के मार्ग में बाधा नहीं बनना चाहती अतः अपने मन को समझाती हुई कहती है–

'' .... हे मन !
तू प्रिय–पथ का विघ्न न बन।''

राम सीता को अपने साथ चलने की अनुमति प्रदान कर देते हैं। परिस्थिति का यह वैषम्य उर्मिला की भावनाओं को और अधिक तीव्र कर देता है और वह 'हाय' कहकर गिर पड़ती है। उसकी इस अवस्था को निहार कर लक्ष्मण आँख मूंद लेते हैं और सीता कहती है–

''आज भाग्य जो है मेरा,
वह भी हुआ न हो ! तेरा ।''

लक्ष्मण वन को चले जाते हैं और उर्मिला एकाकी प्रेममयी बनकर घर में रह जाती है। अपने नव–वय में, यौवन में ही उसे यति का वेश मिल जाता है। उसकी वियोगजन्य कृशता का एक चित्र द्रष्टव्य है–

''मुख–कान्ति पड़ी पीली पीली,
आँखें अशान्त नीली नीली।
क्या हाय! यही वह कृशकाया,
या उसकी शेष सूक्ष्म छाया।''

सखियाँ उसे आशा प्रदान करती हैं तो वह कह उठती है –

''सब गया हाय आशा न गई।''

उर्मिला का विरह धीरे–धीरे बल प्राप्त करता है। अपनी व्यथा को वह अपनी दुर्बलता समझती है और ''करना न सोच मेरा इससे'' कहकर उसका आदर्श ऊँचा उठ जाता है। अब तो उसे सिर्फ इसी में संतोष है–

''आराध्य युग्म के सीने पर,
निस्तब्ध निशा के होने पर।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तुम याद करोगे मुझे तभी,
तो बस फिर मैं पा चुकी सभी।''

चित्रकूट में सीता के चातुर्य से उर्मिला और लक्ष्मण की भेंट होती है। कुटिया में उर्मिला को रेखामात्र देखकर लक्ष्मण विमूढ़ रह जाते हैं, पर उर्मिला कहती है–

''मेरे उपवन के हरिण, आज वनचारी,
मैं बाँध न लूंगी तुम्हें, तजो भय–भारी।''

लक्ष्मण प्रिया के चरणों में गिर पड़ते हैं। उर्मिला को प्रिय से बहुत कुछ कहना है, पर वह कुछ कह नहीं पाती और जिसमें लक्ष्मण को संतोष है, उसी में संतोष प्राप्त कर लेती है–

''पर जिसमें संतोष तुम्हें हो उसी में है संतोष।''

10.5.2 प्रोषितपतिका

उर्मिला प्रोषितपतिका है। चौदह वर्ष तक उसे एकाकी रहना है, अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करनी है। वह इस अवधि को व्यतीत कर रही है –

''अवधि–शिला का उर पर था गुरु भार,
तिल तिल काट रही थी दृग–जल धार।''

'साकेत' के नवम सर्ग में उर्मिला के इस प्रोषितपतिका स्वरुप का अंकन हुआ है। इस सर्ग में वर्णित विरह में कवि ने प्राचीन और नवीन तत्वों का सम्मिश्रण किया है। यहाँ एक ओर ताप के ऊहात्मक वर्णन मिलते हैं, षड्ऋतुओं का अंकन मिलता है, तो दूसरी ओर कवि ने उर्मिला की व्यथा की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति भी इसमें की है। गुप्तजी ने ऊहात्मक वर्णन किए हैं, पर उनमें सर्वत्र स्वाभाविकता मिलती है–

''मानस मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती–सी उस विरह में, बनी आरती आप।
''ओ, मलयानिल, लौट जा, यहाँ अवधि का शाप,
लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप।''

यहाँ उर्मिला अवधि के शाप को आधार बनाकर विरह – ताप की ऊहा कर रही है। उसके शरीर का ताप मलयानिल को लू नहीं बना रहा।

10.5.3 स्वाभाविकता

उर्मिला के विरह में स्वाभाविकता निहित है। वह बिहारी की नायिका की भाँति घर में प्रलय नहीं मचाती है और न ही जायसी की नागमती की भाँति वन – वन घूमती हुई आँसू बहाती है। उसका विरह तो गृहस्थ – जीवन की मर्यादा में बंधा हुआ है। वह परिवार की सीमा में बन्दिनी होकर नित्यप्रति के सभी कार्यों को करती है। उसका जीवन समय की शृंखलाओं से जकड़ा हुआ है, जिसमें उसे सब कुछ करना है, सब कुछ सहना है। सखियाँ उसके लिए खीर लाती हैं तो वह खीझ कर कहती है–

''पिऊं ला, खाऊं ला, सखि, पहनूं ला, सब करूं;
जिऊं मैं जैसे हो, यह अवधि का अर्णव तरूं।
कहे जो, मानू सो, किस विध बता, धीरज धरूं;
अरी, कैसी भी तो पकड़ प्रिय के वे पद मरूं।''

कितनी व्यथा है उर्मिला के हृदय में। उसे अवधि के अन्त तक हर हालत में जीवित रहना है। अब तो उसे एकान्त ही अच्छा लगता है। उसे रह–रहकर अतीत की स्मृतियाँ सताती हैं। उसके दुःख का शमन किस प्रकार हो। अब वह प्रोषितपतिकाओं को निमन्त्रण भेजती है –

''प्रोषितपतिकाएँ हों
जितनी भी सखि, उन्हें निमन्त्रण दे आ,
समदुःखिनी मिलें तो
दुःख बंटे, जा, प्रणयपुरस्सर ले आ।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परन्तु नगर में कोई दुःखिनी नहीं मिलती। वह वीणा–वादन, तूलिका आदि के माध्यम से अपना मन बहलाने का प्रयास करती है। अन्ततः, वह विरह–वेदना से ही प्यार करने लगती है। विरह ने उसे इतना परदुःखकातर बना दिया है कि वह किसी को भी दुःखी नहीं देखना चाहती। सखी से दीपक जलाने का निषेध करती हुई वह कहती है–

"दीपक – संग शलभ भी
जला न सखि, जीत सत्व से तम को।"

दीपक को देखकर वह रात व्यतीत करना चाहती है, परन्तु रात इतनी लम्बी हो गई है कि वह कटती नहीं, अब वह स्वप्न का ही आह्वान करती है, जिससे प्रिय के संयोग का सुख प्राप्त हो सके। वह पुकार उठती है –

"आओ हो, आओ, तुम्हीं प्रिय के स्वप्न विराट।
अर्घ्य लिये आंखें खड़ीं हेर रही हैं बाट।"

परन्तु न नींद ही आती है और न स्वप्न ही। रात तो वह तारे गिनगिनकर काट रही थी, पर अब दिन में वह क्या करें, अब तो उसके पास रोने के सिवाय और कुछ उपाय नहीं बचा है।अतः वह कहती है–

"बो बो कर कुछ काटते, सो सो कर कुछ काल,
रो–रो कर ही हम मरे, खो–खो कर स्वर–ताल।"

10.5.4 षड्ऋतु–वर्णन और विरह

षड्ऋतुओं में उर्मिला की दशा और अधिक दीन हो जाती है। गुप्त जी ने इस षड्ऋतु–वर्णन के अन्तर्गत वस्तु–परिगणना मात्र नहीं की। उन्होंने ऋतुओं का प्रभाव–व्यंजक तथा संवेदनात्मक चित्रण किया है। यहाँ ऋतु परिवर्तन के साथ उर्मिला की दिनचर्या का वर्णन हुआ है।

'तपोयोगी' कहकर वह ग्रीष्म का स्वागत करती है। ग्रीष्म की दाहकता से बचने के लिये सखियाँ उसे भूमि–गर्भ–शयनागार में भेजती हैं तो वह कहती है–

"ठेल मुझे न अकेली अन्ध–अवनि–गर्भ–देह में आली !
आज कहाँ है उनमें हिमांशु–मुख की अपूर्व उजियाली?"

ग्रीष्म के ताप को वह लक्ष्मण के तप का प्रभाव समझती है, फिर अपने ये विचार व्यक्त करती है –

"मन को यों मत जीतो।
बैठी है यह यहाँ मानिनी सुध लो इसकी भी तो।"

ग्रीष्म के पश्चात् उसे विरहिणी चातकी की मेघ के प्रति करुण पुकार सुनाई देती है। आकाश में उमड़ते बादल उसे किसी के उच्छ्वास के समान प्रतीत होते हैं। मेघ पृथ्वी पर पानी बरसाते हैं,उर्मिला भी–

"बरस घटा बरसूं मैं संग,
सरसे अवनी के सब अंग।"

कहकर वह प्राणिमात्र के प्रति संवेदना व्यक्त करती है।

वर्षा के बीतने पर शरद् ऋतु आती है। इस समय सरोवरों में कमल खिल उठते हैं। हंस क्रीड़ा करने लगते हैं, और दूर–दूर से खंजन पक्षी भी उड़कर आ जाते हैं। खंजनों में उर्मिला को लक्ष्मण के नेत्रों का आभास होता है और वह कहती है–

'निरख सखी, ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये।
स्वागत, स्वागत, शरद् भाग्य से मैंने दर्शन पाये।"

इसके बाद हेमन्त ऋतु आती है। उर्मिला शारीरिक दृष्टि से क्षीण हो गई है, पर मन उसका स्नेहपूर्ण है। और फिर वही तो दुर्बल नहीं हुई है, कमलिनी भी तो क्षीण हो गई है–

"एक अनोखी मैं ही
क्या दुबली हो गई सखी, घर में
देख पद्मिनी भी तो
आज हुई नालशेष निज सर में।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रकृति में शिशिर ऋतु आ गई है, पर उर्मिला के तो शरीर में ही पतझड़ का वास है। उसके शब्द कितने मार्मिक हैं–

''शिशिर, न फिर गिरि–वन में,
जितना माँगे पतझड़ दूंगी मैं इस निज नन्दन में,
कितना कम्पन तुझे चाहिए, ले मेरे इस तन में।''

ऋतुराज बसन्त नई उमंगें, नई भावनायें और मस्ती का आह्वान लेकर आता है, पर उर्मिला की विरह व्यथा इससे भी दुगुनी हो जाती है। वह भ्रमर को अपने समीप आने के लिए मना करती है। इस समय कोयल की कूक भी अत्यधिक हृदय विदारक है –

''उठती है उर में हाय! हूक,
ओ कोयल, कह, यह कौन कूक ?
क्या, ही सकरुण, दारुण, गंभीर,
निकली है नभ का चित्त चीर,
होते हैं दो दो दृग सनीर,
लगती है लय की एक लूक।''

षड्ऋतुओं में उर्मिला की वेदना में वृद्धि हो रही है, पर इस समय उसके हृदय की भावनायें विशाल हो गई हैं। अब उसका स्नेह अपने समीप रहनेवाले सभी प्राणियों पर बिखर रहा है। इस कारण वह कोक से कहती है –

''कोक, शोक मत कर हे तात्,
और कभी मकडी पर दया दिखाती हुई अपनी सखी से कहती है–
''सखि, न हटा मकड़ी को, आई है वह सहानभूति वशा,
जालगता मैं भी तो, दोनों की यहां समान दशा।''

षड्ऋतुओं में उर्मिला के मन के बदलते भावों के सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र ने कहा है– 'यहाँ बदलते हुए छंदों में नित्यप्रति जीवन एवं सम्बद्ध भावनाओं की इस प्रकार व्यंजना हुई है कि .... मानों कोई विरहिणी करवटें बदलकर .... रोदन कर रही हो।''

10.5.5 विरह का आभ्यन्तर स्वरूप

आचार्यों ने विरह की दस अवस्थायें अथवा काम–दशायें मानी हैं। ये दशायें हैं– अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण, कथन, उद्वेग, उन्माद, प्रलाप, व्याधि, जड़ता और मरण (प्रत्येक विरही को प्रिय मिलन की अभिलाषा होती है।) उर्मिला की अभिलाषा में भी कितना भोलापन निहित है–

''यही आता है इस मन में,
छोड़ धाम–धन जाकर मैं भी रहूं उसी वन में।
बीच–बीच में उन्हें देख लूँ झुरमुट की ओट,
जब वे निकल जायें तब लेटूँ उसी धूल में लोट।''

''मुझे भूलकर ही त्रिभुवन में विचरें मेरे नाथ'' चिन्ता का व्यंजक प्रगीत है। नवम सर्ग के अधिकांश छन्दों में प्रिय की स्मृति की भी व्यंजना हुई है–

यथा – ''आलि, इस वापी में हंस बने बार–बार हम विहरे,
सुध कर उन छीटों की मेरे अंग आज भी सिहरे।''

''मुझे फूल मारो' और ''मेरे चपल यौवन – बाल'' प्रगीत उर्मिला की उद्वेगावस्था को व्यक्त करते हैं। यहाँ उसका उद्वेग केवल मानसिक ही नहीं है, वरन् शारीरिक काम दशा की ओर भी संकेत करता है। उर्मिला की भावनायें उमड़–घुमड़कर उसे अर्ध–मूर्छित बना देती हैं। उसमें रूढ़ि का पालन नहीं , स्वाभाविक स्थिति का चित्रण है।''

''तुम मिलो मुझे धर्म छोड़ के,
फिर मरुं न न क्यों मुण्ड फोड़ के?''

काव्य में मरण का चित्रण नहीं हुआ है, पर मरण की समतुल्य स्थिति का यहां इस प्रकार अंकन हुआ है –

''सखी ने अंक में खींचा, दुःखिनी पड़ सो रही,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्वप्न में हंसती थी हां, सखी थी देख रो रही।''

गुप्त जी ने उर्मिला का विरह – वर्णन गहन अनुभूति के साथ किया है, जिसमें विरह–भावना साकार हो उठी है। उर्मिला का विरह आदर्श, असामान्य है। वह सती और लक्ष्मी से भी ऊंचा है –

''डूब बची लक्ष्मी पानी में, सती आग में पैठ,
जिये उर्मिला, करे प्रतीक्षा, सहे सभी घर बैठ।''

वस्तुतः ''उर्मिला का विषाद ही वह रीढ़ की हड्डी है जिस पर साकेत का शरीर टिका हुआ है।'' उर्मिला कवि की प्रतिभा की परिचायक है, उसके हृदय की धड़कन है जिसके द्वारा उसने नारी के सलज्ज, कारुणिक व्यक्तित्व को उभारने की चेष्टा की है। उर्मिला के संगीत में गुप्त जी ने अपने प्राणों के संगीत को अमर कर दिया है। यही साकेत के नवम सर्ग की सार्थकता है।

10.6 व्याख्या खंड

10.6.1 साकेत / मूल पाठ

नवम सर्ग

(1)

दो वंशों में प्रकट करके पावनी लोक–लीला,
सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियाँ पूतशीला,
त्यागी भी हैं शरण जिनके, जो अनासक्त गेही,
राजा–योगी जय जनक वे पुण्यदेही विदेही।

विफल जीवन व्यर्थ बहा बहा,
सरस दो पद भी न हुए हहा।
कठिन है कविते, तब भूमि ही।
पर यहाँ श्रम भी सुख–सा रहा।

करुणे, क्यों रोती है ? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई –
मेरी विभूति है जो, उसको 'भव–भूति' क्यों कहे कोई ?'
अवध को अपनाकर त्याग से,
बन तपोवन–सा प्रभु ने किया ।
भरत ने उनके अनुराग से,
भवन में वन का व्रत ले लिया !

स्वामि–सहित सीता ने
नन्दन माना सघन – गहन कानन भी,
ऊर्मिला वधू ने वन
किया उन्हीं के हितार्थ निज उपवन भी !

अपने अतुलित कुल में
प्रकट हुआ था कलंक जो काला,
वह उस कुल–बाला ने
अश्रु–सलिल से समस्त धो डाला।

भूल अवधि–सुध प्रिय से
कहती जगती हुई कभी – 'आओ !'
किन्तु कभी सोती तो
उठती वह चौंक बोलकर – 'जाओ !'

मानस–मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती–सी उस विरह में, बनी आरती आप !

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आँखों में प्रिय – मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम–वियोग !

आठ पहर चौंसठ घड़ी स्वामी का ही ध्यान,
छूट गया पीछे स्वयं उससे आत्मज्ञान !

उस रुन्दती विरहिणी के रुदन–रस के लेप से,
और पाकर ताप उसके प्रिय–विरह–विक्षेप से,
वर्ण–वर्ण सदैव जिनके हों विभूषण कर्ण के,
क्यों न बनते कविजनों के ताम्रपत्र सुवर्ण के ?

पहले आँखों में थे, मानस में कूद मग्न प्रिय अब थे,
छींटे वही उड़े थे, बड़े–बड़े अश्रु टे कब थे ?

उसे बहुत थी विरह के एक दण्ड की चोट,
धन्य सखी देती रही निज यत्नों की ओट ।

मिलाप था दूर अभी धनी का,
विलाप ही था बस का बनी का ।
अपूर्व आलाप वहीं हमारा,
यथा विपंची–दिर दार दारा !

सींचें बस मालिनें, कलश लें, कोई न ले कर्त्तरी,
शाखी फूल फलें यथेच्छ बढ़के, फैलें लताएँ हरी।
क्रीड़ा–कानन–शैल यन्त्र–जल से संसिक्त होता रहे,
मेरे जीवन का, चलो सखि, वहीं सोता भिगोता बहे ?

क्या–क्या होगा साथ, मैं क्या बताऊँ ?
है ही क्या, हा ! आज जो मैं जताऊँ ?
तो भी तूली, पुस्तिका और वीणा,
चौथी मैं हूँ, पांचवीं तू प्रवीणा !

हुआ एक दुःस्वप्न–सा सखि, कैसा उत्पात,
जगने पर भी वह बना वैसा ही दिन–रात !

खान–पान तो ठीक है पर तदन्तर हाय !
आवश्यक विश्राम जो उसका कौन उपाय ?

अरी, व्यर्थ है व्यंजनों की बड़ाई,
हटा थाल, तू क्यों इसे आप लाई ?
वही पाक है, जो बिना भूख भावे,
बता किन्तु तू ही, उसे कौन खावे ?

बनाती रसोई, सभी को खिलाती,
इसी काम में आज मैं तृप्ति पाती।
रहा किन्तु मेरे लिए एक रोना,
खिलाऊँ किसे मैं अलोना–सलोना ?

वन की भेंट मिली है,
एक नई वह जड़ी मुझे जीजी से,
खाने पर सखि, जिसके
गुड़ गोबर–सा लगे स्वयं ही जी से !

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रस हैं बहुत, परन्तु सखि, विष है विषम प्रयोग,
बिना प्रयोक्ता के हुए, यहाँ भोग भी रोग !

लाई है क्षीर क्यों तू ? हठ मत कर यों,
मैं पियूँगी न आली,
मैं हूँ क्या हाय ! कोई शिशु सफलहठी,
रंक भी राज्यशाली ?
माना तूने मुझे है तरुण विरहिणी,
वीर के साथ व्याहा,
आँखों का नीर ही क्या कम फिर मुझको ?
चाहिए और क्या हा !

चाहे फटा फटा हो, मेरा अम्बर अशून्य है आली,
आकर किसी अनिल ने भला यहाँ धूलि तो डाली !

धूलि–धूसर हैं तो क्या, यों तो मृण्मात्र गात्र भी;
वस्त्र ये वल्कलों से तो हैं सुरम्य, सुपात्र भी !

फटते हैं, मैले होते हैं, सभी वस्त्र व्यवहार से;
किन्तु पहनते हैं क्या उनको हम सब इसी विचार से ?

पिऊँ ला, खाऊँ ला, सखि, पहनूँ ला, सब करूँ;
जिऊँ मैं जैसे हो, यह अवधि का अर्णव तरूँ ।
कहे जो, मानूँ सो, किस विध बता, धीरज धरूँ,
अरी, कैसे भी तो पकड़ प्रिय के वे पद मरूँ !

रोती हैं और दूनी निरखकर मुझे
दीन–सी तीन साँसें,
होते हैं देवरश्री नत, हत बहनें
छोड़ती हैं उसासें ।
आली, तू ही बता दे, इस विजन बिना
मैं कहाँ आज जाऊँ ?
दीना, हीना, अधीना ठहरकर जहाँ
शान्ति दूँ और पाऊँ ?

आई थी सखि, मैं यहाँ लेकर हर्षोल्लास,
जाऊँगी कैसे भला देकर यह निःश्वास ?
कहाँ जायेंगे प्राण ये लेकर इतना ताप ?
प्रिय के फिरने पर इन्हें फिरना होगा आप।

साल रही सखि, माँ की
झाँकी वह चित्रकूट की मुझको,
बोलीं जब वे मुझसे –
'मिला न वन ही न भवन ही तुझको !'

जात तथा जामाता समान ही मान तात थे आये,
पर निज राज्य ने मँझली माता को वे प्रदान कर पाये ?

मिली मैं स्वामी से, पर कह सकी क्या सँभल के ?
बहे आँसू होके सखि, सब उपालम्भ गल के ।
उन्हें हो आई जो निरख मुझको नीरव दया,
उसी की पीड़ा का अनुभव मुझे हा ! रह गया !

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

न कुछ कह सकी अपनी,
न उन्हींकी पूछ मैं सकी भय से,
अपने को भूले वे,
मेरी ही कह उसे सखेद ह्रदय से ।

मिथिला मेरा मूल है और अयोध्या फूल,
चित्रकूट को क्या कहूँ, रह जाती हूँ भूल !
सिद्ध–शिलाओं के आधार,
ओ गौरव–गिरि, उच्च उदार !
मुझपर ऊँचे – ऊँचे झाड़,
तने पत्र मय छत्र पहाड़ !
क्या अपूर्व है तेरी आड़,
करते हैं बहु जीव विहार ।
ओ गौरव–गिरि, उच्च उदार !
घिरकर तेरे चारों ओर,
करते हैं घन क्या हो घोर ।
नाच–नाच गाते हैं मोर,
उठती है, गहरी गुंजार,
ओ गौरव –गिरि, उच्च उदार !
नहलाती है नभ की वृष्टि,
अंग पोंछती आतप–सृष्टि,
करता है शशि शीतल दृष्टि,
देता है ऋतुपति श्रृंगार,
ओ गौरव–गिरि, उच्च–उदार !
तू निर्झर का डाल दुकूल,
लेकर कन्द–मूल–फल–फूल,
स्वागतार्थ सबसे अनुकूल,
खड़ा खोल दरियों के द्वार,
ओ गौरव–गिरि, उच्च–उदार !
सुदृढ, धातुमय, उपलशरीर
अन्तःस्तल में निर्मल नीर,
अटल–अचल तू धीर–गंभीर,
समशीतोष्ण, शान्तिसुखसार,
ओ गौरव–गिरि, उच्च उदार !
विविध राग–रंजित, अभिराम,
तू विराग–साधन, वन–धाम,
कामद होकर आप अकाम,
नमस्कार तुमको शत वार,
ओ गौरव–गिरि, उच्च–उदार !
प्रोषितपतिकाएँ हों
जितनी भी सखि, उन्हें निमन्त्रण दे आ,
समदुःखिनी मिलें तो
दुःख बँटें, जा, प्रणयपुरस्सर ले आ।

सुख दे सकते हैं तो दुःखी जन ही मुझे, उन्हें यदि भेंटूँ,
कोई नहीं यहाँ क्या जिसका कोई अभाव मैं भी मेटूँ ?

इतनी बड़ी पुरी में, क्या ऐसा दुःखिनी नहीं कोई ?
जिसकी सखी बनूँ मैं, जो मुझ–सी हो हँसी–रोई ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मैं निज ललितकलाएँ भूल न जाऊँ वियोग–वेदन में,
सखि, पुरबाला–शाला खुलवा दे क्यों न उपवन में ?

कौन–सा दिखाऊँ दृश्य वन का बता मैं आज ?
हो रही है आलि, मुझे चित्र–रचना की चाह,
नाला पड़ा पथ में, किनारे जेठ–जीजी खड़े,
अम्बु अवगाह आर्यपुत्र ले रहे हैं थाह ?
किंवा वे खड़ी हों घूम प्रभु के सहारे आह,
तलवे से कंटक निकालते हों ये कराह ?
अथवा झुकाये खड़े हों ये लता और जीजी
फूल ले रही हों, प्रभु दे रहे हों वाह – वाह ?

प्रिय ने सहज गुणों से, दीक्षा दी थी मुझे प्रणय, जो तेरी,
आज प्रतीक्षा–द्वारा, लेते हैं वे यहाँ परीक्षा मेरी ।

जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी,
हरी भूमि के पात–पात में मैंने हृद्गति हेरी।
खींच रही थी दृष्टि सृष्टि यह स्वर्णरश्मियाँ लेकर,
पाल रही ब्रह्माण्ड प्रकृति थी, सदय हृदय में सेकर।
तृण–तृण को नभ सींच रहा था बूँद–बूँद रस देकर,
बढ़ा रहा था सुख की नौका समय समीरण खेकर।
बजा रहे थे द्विज दल–बल से शुभ भावों की भेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी।
वह जीवन–मध्याह्न सखी, अब श्रान्ति–क्लान्ति जो लाया,
खेद और प्रस्वेद–पूर्ण यह तीव्र ताप है छाया।
पाया था सो खोया हमने, क्या खोकर क्या पाया?
रहे न हममें राम हमारे, मिली न हमको माया ।
यह विषाद ! वह हर्ष कहाँ अब देता था जो फेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी।
वह कोयल, जो कूक रही थी, आज हूक भरती है,
पूर्व और पश्चिम की लाली रोष–वृष्टि करती है।
लेता है निःश्वास समीरण, सुरभि धूलि चरती है,
उबल सूखती है जलधारा, यह धरती मरती है।
पत्र–पुष्प सब बिखर रहे हैं, कुशल न मेरी – तेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी।
आये जीवन की सन्ध्या है, देखें क्या हो आली,
तू कहती है–'चन्द्रोदय ही, काली में उजियाली ?
सिर–आँखों पर क्यों न कुमुदिनी लेगी वह पद–लाली ?
किन्तु करेंगे कोक–शोक की तारे जो रखवाली ?
'फिर प्रभात होगा' क्या सचमुच ? तो कृतार्थ यह चेरी,
जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी।

सखि, विहग उड़ा दे, हो तभी मुक्तिमानी,
सुन शठ –वाणी–'हाय ! रूठो न रानी !'
खग, जनकपुरी की ब्याह दूँ सारिका मैं ?
तदपि यह वहीं की त्यक्ता हूँ दारिका मैं !

कह विहग, कहाँ हैं आज आचार्य तेरे ?
विकच वदन वाले वे कृती कान्त मेरे ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सचमुच 'मृगया में' ? तो अहेरी नये वे,
यह हत हरिणी क्यों छोड़ यों ही गये वे ?

निहार सखि, सारिका कुछ कहे बिना शान्त–सी,
दिये श्रवण है यहीं, इधर मैं हुई भ्रान्त –सी।
इसे पिशुन जान तू, सुन सुभाषिणी है बनी–
'धरो !' खगि, किसे धरुँ ? धृति लिये गये हैं धनी ।

तुझपर–मुझपर हाथ फेरते साथ यहाँ,
शशक, विदित है तुझे आज वे नाथ कहाँ ?
तेरी ही प्रिय जन्मभूमि में, दूर नहीं.
जा तू भी कहना कि ऊर्मिला क्रूर वहीं !

लेते गये क्यों न तुम्हें कपोत, वे,
गाते सदा जो गुण थे तुम्हारे ?
लाते तुम्हीं हा ! प्रिय–पत्र–पोत वे,
दु:खाब्धि में जो बनते सहारे ।

औरों की क्या कहिये,
निज रुचि ही एकता; नहीं रखती;
चन्द्रामृत पीकर तू
चकोरि, अंगार है चखती !

विहग उड़ना भी ये हो वद्ध भूल गये, अये,
यदि अब इन्हें छोड़ूँ तो और निर्दयता दये !
परिजन इन्हें भूले, ये भी उन्हें, सब हैं बहे;
बस अब हमीं साथी–संगी, सभी इनके रहे।

मेरे उर–अंगार के बने बाल–गोपाल,
अपनी मुनियों से मिले पले रहो तुम लाल !

वेदने, तू भी भली बनी ।
पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी।
नई किरण छोड़ी है तूने, तू वह हीर–कनी,
सजग रहूँ मैं, साल हृदय में, ओ प्रिय–विशिख–अनी!
ठंडी होगी देह न मेरी, रहे दृगम्बु–सनी,
तू ही उसे उष्ण रक्खेगी मेरी तपन–मनी !
ओ, अभाव की एक आत्मजे और अदृष्टि–जनी !
तेरी ही छाती है सचमुच उपमोचितस्तनी!
अरी वियोग–समाधि, अनोखी, तू क्या ठीक ठनी,
अपने को, प्रिय को, जगती को देखूँ खिंची–तनी।
मन सा मानिक मुझे मिला है तुझमें उपल खनी,
तुझे तभी छोड़ूँ जब सजनी, पाऊँ प्राण – धनी।

विरह संग अभिसार भी,
भार जहाँ आभार भी।
मैं पिंजड़े में पड़ी हुई हूँ किन्तु खुला है द्वार भी,
काल कठिन क्यों न हो किन्तु है मेरे लिए उदार भी !
जहाँ विरह ने मार दिया है किया वहीं उपकार भी,
सुध–बुध हर ली, किन्तु दिया है ज्ञानज्ञान विचार भी।
जना दिया है उसने मुझको जन जीवन है भार भी,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और मरण ? वह बन जाता है कभी हिये का हार भी।
जाना मैंने इस उर में भी ज्वाला भी, जलधार भी,
प्रिय ही नहीं यहाँ मैं भी थी, और एक संसार भी !

लिखकर लोहित लेख, डूब गया है दिन अहा !
व्योम–सिन्धु सखि, देख, तारक–बुद्बुद दे रहा !

दीपक–संग शलभ भी
जला न सखि, जीत सत्त्व से तम को,
क्या देखना–दिखाना
क्या करना है प्रकाश का हमको ?

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि, पतंग भी जलता है हा ! दीपक भी जलता है !
सीस हिलाकर दीपक कहता –
'बन्धु, वृथा ही तू क्यों दहता ?'
पर पतंग पड़कर ही रहता !
कितनी विह्वलता है !
दोनों ओर प्रेम पलता है।
बचकर हाय! पतंग मरे क्या ?
प्रणय छोड़कर प्राण धरे क्या ?
जले नहीं तो मरा करे क्या ?
क्या यह असफलता है ?
दोनों ओर प्रेम पलता है !
कहता है पतंग मन मारे –
'तुम महान् मैं लघु, पर प्यारे,
क्या न मरण भी हाथ हमारे ?'
शरण किसे छलता है ?
दोनों ओर प्रेम पलता है ।
दीपक के जलने में आली,
फिर भी है जीवन की लाली।
किन्तु पतंग–भाग्य–लिपि काली,
किसका वश चलता है ?
दोनों ओर प्रेम पलता है ।
जगती वणिक्वृत्ति है रखती।
उसे चाहती जिससे चखती,
काम नहीं, परिणाम निरखती।
मुझे यही खलता है।
दोनों ओर प्रेम पलता है।
बता अरी, अब क्या करूँ, रुपी रात से रार,
भय खाऊँ, आँसू पियूँ, मन मारूँ झख मार !

क्या क्षण – क्षण में चौंक रही मैं ?
सुनती तुझसे आज यही मैं।
तो सखि, क्या जीवन न जनाऊँ ?
इस क्षणदा को विफल बनाऊँ ?

अरी, सुरभि जा, लौट जा, अपने अंग सहेज,
तू है फूलों में पली, यह काँटों की सेज !

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यथार्थ था सपना हुआ है,
अलीक था जो अपना हुआ है।
रही यहाँ केवल है कहानी,
सुना वही एक नई–पुरानी ।

आओ हो, आओ, तुम्हीं प्रिय के स्वप्न विराट।
अर्घ्य लिये आँखें खड़ी हेर रही हैं बाट।
आ जा, मेरी निंदिया गूँगी!
आ, मैं सिर आँखों पर लेकर चन्दखिलौना दूँगी!

प्रिय के आने पर आवेगी,
अर्द्धचन्द्र ही तो पावेगी।
पर यदि आज उन्हें लावेगी,
तो तुझसे ही लूँगी।
आ जा, मेरी निंदिया गूँगी!

पलक–पाँवड़ों पर पद रख तू,
तनिक सलोना रस भी चख तू,
आ, दुनिया की ओर निरख तू,

मैं न्योंछावर हूँगी।
आ जा, मेरी निंदिया गूँगी।

हाय ! हृदय को थाम,
पकड़ भी मैं सकती कहाँ,
दु:स्वप्नों का नाम,
लेती है तू सखि, वहाँ।

स्नेह जलाता है यह बत्ती !
फिर भी वह प्रतिभा है इसमें दीखे जिसमें राई–रत्ती।

रखती है इस अन्धकार में सखि, तू अपनी साख,
मिल जाती है रवि–चरणों में कर अपने को राख।
खिल जाती है पत्ती–पत्ती,
स्नेह जलाता है यह बत्ती !

होने दे निज शिखा न चंचल, ले अंचल की ओट,
ईंट ईंट लेकर चुनते हैं हम कोसों का कोट।
ठंडी न पड़, बनी रह तत्ती,
स्नेह जलाता है यह बत्ती !

हाय ! न आया स्वप्न भी, और गई यह रात,
सखि, उडुगण भी उड़ चले, अब क्या गिनूँ प्रभात ?

चंचल भी किरणों का
चरित्र क्या ही पवित्र है भोला,
देकर साख उन्होंने
उठा लिया लाल लाल वह गोला।

सखि, नीलनभस्सर में उतरा
यह हंस अहा ! तरता तरता,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अब तारक–मौक्तिक शेष नहीं,
निकला जिनको चरता चरता।
अपने हिम–बिन्दु बचे तब भी,
चलता उनको धरता धरता,
गढ़ जायँ न कण्टक भूतल के,
कर डाल रहा डरता डरता !

भींगी या रज में सनी अलिनी की यह पाँख ?
आलि, खुली किंवा लगी नलिनी की वह आँख ?
बो बोकर कुछ काटते, सो सोकर कुछ काल,
रो रोकर ही हम मरे, खो खोकर स्वर – ताल !

ओहो ! मरा वह वराक वसन्त कैसा ?
ऊँचा गला रुँध गया अब अन्त जैसा ।
देखो, बढ़ा ज्वर, जरा – जड़ता जगी है,
लो, ऊर्ध्व साँस उसकी चलने लगी है !

तपोयोगि, आओ तुम्हीं, सब खेतों के सार,
कूड़ा–कर्कट हो जहाँ, करो जलाकर छार ।
आया अपने द्वार तप, तू दे रही किवाड़,
सखि, क्या मैं बैठूँ विमुख ले उशीर की आड़ ?

ठेल मुझे न अकेली अन्ध–अवनि–गर्भ–गेह में आली ?
आज कहाँ है उसमें हिमांशु–मुख की अपूर्व उजियाली ?

आकाश–जाल सब ओर तना,
रवि तन्तुवाय है आज बना;
करता है पद–प्रहार वही,
मक्खी–सी भिन्ना रही मही ।
लपट से झट रूख जले, जले,
नद–नदी घट सूख चले, चले,
विकल वे मृग–मीन मरे, मरे,
विफल ये दृग दीन भरे, भरे !

या तो पेड़ उखाड़ेगा, या पत्ता न हिलायेगा,
विना धूल उड़ाये हा ! ऊष्मानिल न जायेगा !

गृहवापी कहती है –
'भरी रही, रिक्त क्यों न अब हूँगी ?
पंकज तुम्हें दिये हैं,
और किसे पंक आज मैं दूँगी ?'
दिन जो मुझको देंगे, आलि, उसे मैं अवश्य ही लूँगी,
सुख भोगे हैं मैंने, दुःख भला क्यों न भोगूँगी ?

आलि, इसी वापी में हंस बने बार बार हम विहरे,
सुधकर उन छींटों की मेरे ये अंग आज भी सिहरे ।

चन्द्रकान्तमणियाँ हटा, पत्थर मुझे न मार।
चन्द्रकान्त आवें प्रथम जो सबके शृंगार।

हृदयस्थित स्वामी की
स्वजनि, उचित क्यों नहीं अर्चा,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मन सब उन्हें चढ़ावे,
चन्दन की एक क्या चर्चा?

बँधकर घुलना अथवा,
जल पल भर दीप–दान कर खुलना,
तुझको सभी सहज है,
मुझको कर्पूरवर्ति, बस घुलना !

करो किसी की दृष्टि को शीतल सदय कपूर।
इन आँखों में आप ही नीर भरा भरपूर।

मन को यों मत जीतो !
बैठी है यह यहाँ मानिनी, सुध लो इसकी भी तो !

इतना तप न तपो तुम प्यारे,
जले आग–सी जिसके मारे।
देखो, ग्रीष्म भीष्म तनु धारे,
जन को भी मनचीतो।
मन को यों मत जीतो !
प्यासे हैं प्रियतम, सब प्राणी,
उनपर दया करो हे दानी,
इन प्यासी आँखों में पानी,
मानस, कभी न रीतो !
मन को यों मत जीतो !

धरकर धरा धूप ने धाँधी,
धूल उड़ाती है यह आँधी,
प्रलय, आज किसपर कटि बाँधी ?
जड़ न बनो, दिन, बीतो,
मन को यों मत जीतो !

मेरी चिन्ता छोड़ो,
मग्न रहो नाथ, आत्मचिन्तन में;
बैठी हूँ मैं फिर भी,
अपने इस नृप–निकेतन में।

नयन–नीर पर ही सखी, तू करती थी खेद,
टपक उठा है देख अब, रोम रोम से स्वेद।

ठहर अरी, इस हृदय में लगी विरह की आग,
तालवृन्त से और भी धधक उठेगी जाग!

प्रियतम के गौरव ने
लघुता दी है मुझे, रहे दिन भारी ।
सखि, इस कटुता में भी
मधुस्मृति की मिठास, मैं बलिहारी !

तप, तुझसे परिपक्वता पाकर भले प्रकार,
बनें हमारे फल सकल, प्रिय के ही उपहार।

पड़ी है लम्बी–सी अवधि पथ में व्यग्रमन है,
गला रूखा मेरा, निकट तुझसे आज धन है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मुझे भी दे दे तू स्वर तनिक सारंग, अपना,
करूँ तो मैं भी हा ! स्वरित प्रिय का नाम जपना।

कहती मैं, चातकि, फिर बोल,
ये खारी आँसू की बूँदें दे सकतीं यदि मोल !
कर सकते हैं क्या मोती भी उन बोलों की तोल ?
फिर भी फिर भी इस झाड़ी के झुरमुट में रस घोल ।
श्रुति–पुट लेकर पूर्वस्मृतियाँ खड़ी यहाँ पट खोल,
देख, आप ही अरुण हुए हैं उनके पाण्डु कपोल !
जाग उठे हैं मेरे सौ–सौ स्वप्न स्वयं हिल–डोल,
और सन्न हो रहे, सो रहे, ये भूगोल–खगोल ।
न कर वेदना–सुख से वंचित, बढ़ा हृदय – हिण्डोल
जो तेरे सुर में सो मेरे उर में कल–कल्लोल !

चातकि, मुझको आज ही हुआ भाव का भान।
हां ! वह तेरा रुदन था, मैं समझी थी गान !

घूम उठे हैं शून्य में उमड़–घुमड़ घन घोर,
ये किसके उच्छ्वास से छाये हैं सब ओर ?
मेरी ही पृथिवी का पानी,
ले लेकर यह अन्तरिक्ष सखि, आज बना है दानी !

मेरी ही धरती का धूम,
बना आज आली, घन घूम।
गरज रहा गज–सा झुक–झूम,
ढाल रहा मद मानी।
मेरी ही पृथिवी का पानी।

अब विश्राम करें रवि–चन्द्र,
उठें नये अंकुर निस्तन्द्र,
वीर, सुनाओ निज मृदुमन्द्र,
कोई नई कहानी।
मेरी ही पृथिवी का पानी।

बरस घटा, बरसूँ मैं संग;
सरसें अवनी के सब अंग;
मिले मुझे भी कभी उमंग
सबके साथ सयानी।
मेरी ही पृथिवी का पानी।

दरसो परसो घन, बरसो,
सरसों जीर्ण शीर्ण जगती के तुम नव यौवन, बरसो।
घुमड़ उठो आषाढ़ उमड़कर पावन सावन, बरसो।
भाद्र–भद्र, आश्विन के चित्रित हस्ति, स्वातिघन, बरसो।
सृष्टि के अंजन रंजन, ताप विभंजन, बरसो।
व्यग्र उदग्र जगज्जननी के, अयि अग्रस्तन, बरसो।
गत सुकाल के प्रत्यावर्तन हे शिखिनर्तन, बरसो।
जड़ चेतन में बिजली भर दो ओ उद्बोधन, बरसो।
चिन्मय बनें हमारे मृण्मय पुलकांकुर बन, बरसो।
मन्त्र पढ़ो, छींटे दो, जागे सोये जीवन, बरसो।
घट पूरो त्रिभुवनमानस रस, कन छन छन छन, बरसो ।
आज भींगते ही घर पहुँचें, जन जन के जन, बरसो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

घटना हो, चाहे घटा, उठ नीचे से नित्य,
आती है ऊपर सखी, छाकर चन्द्रादित्य !

तरसूँ मुझ–सी मैं ही, सरसे–हरसे–हँसे प्रकृति प्यारी,
सबको सुख होगा तो मेरी भी आयेगी बारी।

बुँदियों को भी आज इस तनु–स्पर्श का ताप,
उठती हैं वे भाप–सी गिरकर अपने आप !

न जा उधर हे सखी, वह शिखी सुखी हो, नचे,
न संकुचित हो कहीं, मुदित लास्य–लीला रचे।
बनूँ न पर – विघ्न मैं, बस मुझे अबाधा यही,
विराग–अनुराग में अहह ! इष्ट एकान्त ही ।

इन्द्रवधू आने लगी क्यों निज स्वर्ग विहाय ?
नन्हीं दूबा का हृदय निकल पड़ा यह हाय !
बता मुझे नख रंजनी, तू किस भाँति अरी।
होकर भी भीतर अरुण बाहर हरी–हरी ?

अवसर न खो निठल्ली,
बढ़ जा, बढ़ जा, विटपि–निकट वल्ली,
अब छोड़ना न लल्ली,
कदम्ब–अबलम्ब तू मल्ली।

त्रिविध पवन ही था, आ रहा जो उन्हीं–सा,
यह घन–रव ही था, छा रहा जो उन्हीं–सा !
प्रिय–सदृश हँसा जो, नीप ही था, कहाँ वे ?
प्रकृत सुकृत फैले, भा रहा जो उन्हीं–सा !
सफल है, उन्हीं घनों का घोष,
वंश वंश को देते हैं जो वृद्धि, विभव, सन्तोष ।
नभ में आप विचरते हैं जो,
हरा धरा को करते हैं जो,
जल में मोती भरते हैं जो,
अक्षय उनका कोष
सफल है, उन्हीं घनों का घोष।

'चंगी पीठ बैठकर घोड़े को उड़ाऊँ कहो,
किन्तु डरता हूँ मैं तुम्हारे इस झूले से,
रोक सकता हूँ ऊरुओं के बल से ही उसे,
टूटे भी लगाम यदि मेरी कभी भूले से ।
किन्तु क्या करूँगा यहाँ !' उत्तर में मैंने हँस
और भी बढ़ाये पैग दोनों ओर ऊले – से,
'हैं–हैं' कह लिपट गये थे यहीं प्राणेश्वर,
बाहर से संकुचित, भीतर से फूले – से !

सखि, आशांकुर मेरे इस मिट्टी में पनप नहीं पाये;
फल कामना नहीं थी, चढ़ा सकी फूल भी न मनभाये ।

कुलिश किसीपर कड़क रहे हैं,
आली, तोयद तड़क रहे हैं।
कुछ कहने के लिए लता के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अरुण अधर वे फड़क रहे हैं।
मैं कहती हूँ – रहें किसी के
हृदय वही जो धड़क रहे हैं।
अटक अटककर, भटक भटककर,
भाव वही जो भड़क रहे हैं !

मैं निज अलिन्द में खड़ी थी सखि, एक रात,
रिमझिम बूँदें पड़ती थीं घटा छाई थी,
गमक रहा था केतकी का गन्ध चारों ओर,
झिल्ली – झनकार यही मेरे मन भाई थी ।
करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से,
चंचला थी चमकी, घनाली घहराई थी,
चौंक देखा मैंने, चुप कोने में खड़े थे प्रिय,
माई ! मुख – लज्जा उसी छाती में छिपाई थी !

तम में तू कम नहीं, जी, जुगनू, बड़भाग,
भवन भवन में दीप हैं, जा वन वन में जाग।

हां ! वह सहृदयता भी क्रीड़ा में है कठोरता जड़िता,
तड़प–तड़प उठती है स्वजनि, घनालिंगिता तड़िता !

गाढ़ तिमिर की बाढ़ में डूब रही सब सृष्टि,
मानो चक्कर में पड़ी चकराती है दृष्टि।

लाईं सखि, मालिनें थी डाली उस वार जब,
जम्बूफल जीजी ने लिये थे, तुझे याद है ?
मैंने थे रसाल लिये, देवर खड़े थे वहीं,
हँसकर बोल उठे – 'निज निज स्वाद है।'
मैंने कहा – 'रसिक, तुम्हारी रुचि काहे पर ?'
बोले – 'देवि, दोनों ओर मेरा रस–वाद है,
दोनों का प्रसाद–भागी हूँ मैं' हाय आली ! आज
विधि के प्रमाद से विनोद भी विषाद है !

निचोड़ पृथ्वी पर वृष्टि–पानी,
सुखा विचित्राम्बर सृष्टिरानी !
तथापि क्या मानस रिक्त तेरा ?
बना अभी अंचल सिक्त मेरा।
सखि, छिन धून और छिप छाया,
यह सब चौमासे की माया !

गया श्वास फिर भी यदि आया,
तो सजीव है कृश भी काया।
हमने उनको रोक न पाया,
तो निज – दर्शन – योग गमाया !
ले लो, दैव जहाँ जो लाया ।
यह सब चौमासे की माया !

पथ तक जकड़े हैं झाड़ियाँ डाल घेरा,
उपवन वन–सा हा हो गया आज मेरा।
प्रियतम वनचारी गेह में भी रहेंगे,
कह सखि, मुझसे वे लौटके क्या कहेंगे ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

करें परिष्कृत मालिनें आली, यह उद्यान;
करते होंगे गहन में प्रियतम इसका ध्यान।
ठीक कहा तूने सखी, अर्पित है यह देह,
तू सँभालकर रख इसे रखती है ज्यों गेह।

रह चिरदिन तू हरी–भरी,
बढ़, सुख से बढ़ सृष्टि – सुन्दरी,
सुध प्रियतम की मिले मुझे,
फल जन–जीवन–दान का तुझे;

हँसो, हँसो हे शशि, फूल, फूलो,
हँसो, हिंडोरे पर बैठ झूलो ।
यथेष्ट मैं रोदन के लिए हूँ,
झड़ी लगा दूँ, इतना पिये हूँ।

प्रकृति, तू प्रिय की स्मृति–मूर्ति है,
जड़ित चेतन की त्रुटि–पूर्ति है।
रख सजीव मुझे मन की व्यथा,
कह सखी, कह, तू उनकी कथा।

निरख सखी, ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये !
फैला उनके तन का आतप, मन ने सर सरसाये,
घूमें वे इस ओर वहाँ, ये हंस यहाँ उड़ छाये !
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाये,
फूल उठे हैं कमल, अधर–से ये बन्धूक सुहाये !
स्वागत, स्वागत, शरद, भाग्य से मैंने दर्शन पाये,
नभ ने मोती वारे, लो ये अश्रु–अर्घ्य भर लाये !
अपने प्रेम–हिमाश्रु ही दिये दूब ने भेंट,
उन्हें बनाकर रत्न–कण रवि ने लिया समेट।
प्रिय को था मैंने दिया पद्म–हार उपहार;
बोले – 'आभारी हुआ पाकर यह पद–भार !'
अम्बु, अवनि, अम्बर में स्वच्छ शरद की पुनीत क्रीड़ा–सी,
पर सखि, अपने पीछे पड़ी अवधि पित्त–पीड़ा–सी!
हुआ विदीर्ण जहाँ तहाँ श्वेत आवरण जीर्ण,
व्योम शीर्ण कंचुक धरे विषधर–सा विस्तीर्ण !
शफरी, अरी, बता तू
तड़प रही क्यों निमग्न भी इस सर में ?
जो रस निज गागर में,
सो रस–गोरस नहीं स्वयं सागर मे ।
भ्रमरी, इस मोहन मानस के
सुन, मादक हैं रस–भाव सभी,
मधु पीकर और मदान्ध न हो,
उड़ जा, बस है अब क्षेम तभी ।
पड़ जाय न पंकज – बन्धन में,
निशि यद्यपि है कुछ दूर अभी,
दिन देख नहीं सकते सविशेष
किसी जन का सुखभोग कभी !
उस उत्पल–से हाय ! उपल–से प्राण ?
रहने दे वक, ध्यान यह पावें ये दृग त्राण !

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हंस, छोड़ आये कहाँ मुक्ताओं का देश ?
यहाँ बन्दिनी के लिए लाये क्या सन्देश ?

हंस, हहा ! तेरा भी बिगड़ गया क्या विवके बन बनके ?
मोती नहीं, अरे, ये आँसू है ऊर्मिला जन के !
चली क्रौंचमाला कहाँ लेकर वन्दनवार ?
किस सुकृती का द्वार वह, जहाँ मंगलाचार !

सखि, गोमुखी गंगा रहे, कुररीमुखी करुणा यहाँ,
गंगा जहाँ से आ रही है, जा रही करुणा वहाँ !

कोक, शोक मत कर हे तात,
कोकि, कष्ट में हूँ मैं भी तो, सुन तू मेरी बात।
धीरज धर, अवसर आने दे, सह ले यह उत्पात,
मेरा सुप्रभात वह तेरी सुख–सुहाग की रात !

हा मेरे ! कुंजों का कूजन रोकर, निराश होकर सोया,
यह चन्द्रोदय उसको उड़ा रहा है धवल वसन–सा धोया।

सखि, मेरी धरती है करुणांकुर ही वियोग सेता है,
यह ओषधीश उनको स्वकरों से अस्थिसार देता है !

जन प्रावीजननी ने शशिशिशु को जो दिया डिठौना है,
उसको कलंक कहना, यह भी मानों कठोर टोना है !

सजनी, मेरा मत यही, मंजुल मुकुर मयंक,
हमें दीखता है वहाँ अपना राज्य – कलंक !

किसने मेरी समृति को
बना दिया है निशीथ में मतवाला !
नीलम के प्याले में
बुद्बुद देकर उफन रही वह हाला !

सखि, निरख नदी की धारा,
ढलमल ढलमल चंचल अंचल, झलमल झलमल तारा।
निर्मल जल अन्तःस्तल भरके,
उछल उछलकर छल छल करके,
थल थल तरके, कल कल धरके,
बिखराता है पारा !
सखि, निरख नदी की धारा।

लोल लहरियाँ डोल रही हैं,
भ्रू–विलास–रस घोल रही हैं,
इंगित ही में बोल रही हैं,
मुखरित कूल, किनारा !
सखि, निरख नदी की धारा।
पाया,–अब पाया–वह सागर,
चली जा रही आप उजागर।
कब तक आवेंगे निज नागर
अवधि–दूतिका–द्वारा ?
सखि, निरख नदी की धारा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मेरी छाती दलक रही है,
मानस–शफरी ललक रही है,
लोचन–सीमा छलक रही है,
आगे नही सहारा !
सखि, निरख नदी की धारा।

सखी, सत्य क्या मैं घुली जा रही ?
मिलूँ चाँदनी में, बुरा क्या यही ?
नहीं चाहते किन्तु वे चाँदनी,
तपोमग्न हैं आज मेरे धनी।

नैश गगन के गात्र में पड़े फफोले हाय !
तो क्या अरी न आह भी करूँ आज निरुपाय ?

तारक–चिह्नदुकूलिनी पी–पीकर मधु मात्र,
उलट गई श्यामा यहाँ रिक्त सुधाधर–पात्र।

(2)

आलि, काल है काल अन्त में,
उष्ण रहे चाहे वह शीत,
आया यह हेमन्त दयाकर,
देख हमें सन्तप्त–सभीत।
आगत का स्वागत समुचित है, पर क्या आँसू लेकर ?
प्रिय होते तो लेती उसको मैं घी–गुड़ दे देकर।
पाक और पकवान रहें, अब
गया स्वाद का अवसर बीत,
आया यह हेमन्त दयाकर,
देख हमें सन्तप्त–सभीत।
हे ऋतुवर्य, क्षमा कर मुझको, देख दैन्य यह मेरा,
करता रह प्रतिवर्ष यहाँ तू फिर फिर अपना फेरा।

ब्याज–सहित ऋण भर दूँगी मैं,
आने दे उनको हे मीत,
आया यह हेमन्त दयाकर,
देख हमें सन्तप्त–सभीत।
सी–सी करती हुई पार्श्व में पाकर जब–तब मुझको,
अपना उपकारी कहते थे मेरे प्रियतम तुझको।
कंबल ही संबल है अब तो,
ले आसन ही आज पुनीत,
आया यह हेमन्त दयाकर,
देख हमें सन्तप्त–सभीत।
कालागुरु की सुरभि उड़ाकर मानों मंगल तारे,
हँसे हसन्ती में खिल खिल्कर अनल–कुसुम अंगारे।
आज धुकधुकी में मेरी भी
ऐसा ही उद्दीप्त अतीत !
आया यह हेमन्त दयाकर,
देख हमें सन्तप्त सभीत।

अब आतप–सेवन में कौन तपस्या, मुझे न यों छल तू,
तप पानी में पैठा, सखि, चाहे तो वहीं चल तू !

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नाइन, रहने दे तू, तेल नहीं चाहिए मुझे तेरा,
तनु चाहे रूखा हो, मन तो सुस्नेह–पूर्ण है मेरा।

मेरी दुर्बलता क्या
दिखा रही तू अरी, मुझे दर्पण में ?
देख, निरख मुख मेरा
वह तो धुंधला हुआ स्वयं ही क्षण में !
एक अनोखी मैं ही
क्या दुबली हो गई सखी, घर में,
देख पद्मिनी भी तो
आज हुई नालशेष निज सर में।

पूछी थी सुकाल–दशा मैंने आज देवर से –
कैसी हुई उपज कपास, ईख, धान की ?
बोले –''इस बार देवि, देखने में भूमि पर
दुगुनी दया–सी हुई इन्द्र भगवान् की।''
पूछा यही मैंने एक ग्राम में तो कर्षकों ने
अन्न, गुड़, गोरस की वृद्धि ही बखान की,
किन्तु स्वाद कैसा है, न जानें, इस वर्ष हाय !'
यह कह रोई एक अबला किसान की !
हम राज्य लिए मरते हैं ?
सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं।

जिनके खेतों में है अन्न,
कौन अधिक उनसे सम्पन्न ?
पत्नी–सहित विचरते हैं वे, भव –वैभव भरते हैं,
हम राज्य लिए मरते हैं !

वे गो–धन के धनी उदार,
उनको सुलभ सुधा की धार,
सहनशीलता के आगर वे श्रम–सागर तरते हैं।
हम राज्य लिए मरते हैं !

यदि वे करें, उचित है गर्व,
बात बात में उत्सव –पर्व,
हम–से प्रहरी रक्षक जिनके , वे किससे डरते हैं ?
हम राज्य लिए मरते हैं !

करके मीन – मेख सब ओर,
किया करें बुध वाद कठोर,
शाखामयी बुद्धि तजकर वे मूल–धर्म धरते हैं।
हम राज्य लिए मरते हैं।
होते कही वहीं हम लोग,
कौन भोगता फिर ये भोग ?
उन्हीं अन्नदाताओं के सुख आज दुःख हरते हैं !
हम राज्य लिए मरते हैं !

प्रभु को निष्कासन मिला, मुझको कारागार,
मृत्यु–दण्ड उन तात को, राज्य तुझे धिक्कार !

चौदह चक्कर खायगी जब यह भूमि अभंग,
घूमेंगे इस ओर तब प्रियतम प्रभु के संग।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रियतम प्रभु के संग आयेंगे तब हे सजनी,
अब दिन पर दिन गिनी और रजनी पर रजनी !
पर पल–पल ले रहा यहाँ प्राणों से टक्कर,
कलह मूल यह भूमि लगावे चौदह चक्कर !

सिकुड़ा–सिकुड़ा दिन था, सभीत–सा शीत के कसाले से,
सजनी, यह रजनी तो जम बैठी विषम पाले से !

आये, सखि, द्वार पेटी हाथ में हटाके प्रिय
वंचक भी वंचित–से कम्पित विनोद में,
'ओढ़ देखो तनिक तुम्हीं तो परिधान यह'
बोले डाल रोमपट मेरी इस गोद में।

क्या हुआ, उठी मैं झट प्रावरण छोड़कर
परिणत हो रहा था पवन प्रतोद में,
हर्षित थे तो भी रोम–रोम हम दम्पति के
कर्षित थे दोनों बाहु–बन्धन के गोद में।

करती है तू शिशिर का बार बार उल्लेख,
पर सखि, मैं जल–सी रही, धुंवाँधार यह देख !

सचमुच यह नीहार तो अब तू तनिक निहार,
अन्धकार भी शीत से श्वेत हुआ इस बार !

कभी गमकता था जहाँ कस्तूरी, का गन्ध,
चौंक चमकता है वहाँ आज मनोमृग अन्ध!

शिशिर, न फिर गिरि–वन में,
जितना माँगे, पतझड़ दूँगी मैं इस निज नन्दन में।
कितना कम्पन तुझे चाहिए, ले मेरे इस तन में।
सखी कह रही, पाण्डुरता का क्या अभाव आनन में?
वीर, जमा दे नयन – नीर यदि तू मानस – भाजन में,
तो मोती–सा मैं अकिंचना रक्खूँ उसको मन में।
हँसी गई, रो भी न सकूँ मैं, – अपने इस जीवन में,
तो उत्कण्ठा है, देखूँ फिर क्या हो भाव–भुवन में !

सखि, न हटा मकड़ी को, आई है वह सहानुभूति–वशा,
जालगता मैं भी तो, हम दोनों की यहाँ समान–दशा।

भूल पड़ी तू किरण कहाँ ?
झाँक झरोखे से न, लौट जा, गूँजें तुझसे तार जहाँ।
मेरी वीणा गीली गीली;
आज हो रही ढीली ढीली;
लाल हरी तू पीली नीली;
"कोई राग न रंग यहाँ।
भूल पड़ी तू किरण, कहाँ ?
शीत काल है और सबेरा;
उछल रहा है मानस मेरा;
भरे न छींटों से तनु तेरा;
रुदन जहाँ क्या गान वहाँ ?
भूल पड़ी तू किरण, कहाँ ?"
मेरी दशा हुई कुछ ऐसी;
तारों पर अँगुली की जैसी;
कसक परन्तु मींड़ भी कैसी ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कह सकती हूँ नहीं न हाँ !
भूल पड़ी तू किरण, कहाँ ?

न तो अगति ही है न गति, आज किसी भी ओर,
इस जीवन के झाड़ में रही एक झकझोर !

पाऊँ मैं तुम्हें आज, तुम मुझको पाओ,
ले लूँ अंचल पसार, पीतपत्र, आओ।
फूल और फल–निमित्त,
बल देकर स्वरस–वित्त,
लेकर निश्चिन्त चित्त,
उड़ न हाय ! जाओ,
लूँ मैं अंचल पसार, पीतपत्र, आओ।
तुम हो नीरस शरीर,
मुझमें हैं नयन–नीर,
इसका उपयोग वीर,
मुझको बतलाओ।
लूँ मैं अंचल पसार, पीतपत्र, आओ।

जो प्राप्ति हो फूल तथा फलों की,
मधूक, चिन्ता न करो दलों की।
हो लाभ पूरा पर हानि थोड़ी,
हुआ करे तो वह भी निगोड़ी।

श्लाघनीय हैं एक–से, दोनों ही द्युतिमन्त,
जो वसन्त का आदि है, वहीं शिशिर का अन्त।

ज्वलित जीवन धूप कि धूप है,
भुवन तो मन के अनुरूप है।
हँसित कुन्द रहे कवि का कहा,
सखि, मुझे वह दाँत दिखा रहा !

हाय ! अर्थ की उष्णता देगी किसे न ताप ?
धनद – दिशा में तप उठे, आतप–पति भी आप।

अपना सुमन लता ने
निकालकर रख दिया, बिना बोले,
आलि, कहाँ वनमाली,
झड़ने के पूर्व झाँक ही जो ले ?

काली काली कोइल बोली –
होली – होली – होली !
हँसकर लाल लाल होठों पर हरयाली हिल डोली,
फूटा यौवन, फाड़ प्रकृति की पीली पीली चोली ।
होली – होली – होली !
अलस कमलिनी ने कलरव सुन उन्मद अँखियाँ खोली,
मल दी ऊषा ने अम्बर में दिन के मुख पर रोली।
होली – होली – होली !
रागी फूलों ने पराग से भर ली अपन झोली,
और ओस ने केसर उनके स्फुट–सम्पुट में घोली।
होली – होली – होली !

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ऋतु ने रवि–शशि के पलड़ों पर तुल्य प्रकृति निज तोली,
सिहर उठी सहसा क्यों मेरी भुवन–भावना भोली ?
होली – होली – होली !
गूँज उठी खिलती कलियों पर उड़ अलियों की टोली,
प्रिय की श्वास–सुरभि दक्षिण में आती है अनमोली ।
होली – होली – होली !

जा, मलयानिल, लौट जा, यहाँ अवधि का शाप,
लगे न लू होकर कहीं तू अपने को आप !

भ्रमर इधर मत भटकना, ये खट्टे अंगूर,
लेना चम्पक–गन्ध तुम, किन्तु दूर ही दूर।

सहज मातृगुण गन्ध था कर्णिकार का भाग;
विगुण रूप–दृष्टान्त के अर्थ न हो यह त्याग !

मुझे फूल मत मारो,
मैं अबला बाला वियोगिनी, कुछ तो दया विचारो,
होकर मधु के मीत मदन, पटु तुम कटु, गरल न गारो,
मुझे विकलता, तुम्हें विफलता ठहरो, श्रम परिहारो।
नहीं भोगिनी यह मैं कोई,जो तुम जाल पसारो,
बल हो तो सिन्दूर–बिन्दु यह – यह हरनेत्र निहारो !
रूप–दर्प कन्दर्प, तुम्हें तो मेरे पति पर वारो,
लो यह मेरी चरण–धूलि उस रति के सिर पर धारो !

फूल ! खिलो आनन्द से तुमपर मेरा तोष;
इस मनसिज पर ही मुझे दोष देखकर रोष।

आई हूँ सशोक मैं अशोक, आज तेरे तले,
आती है तुझे क्या हाय ! सुध उस बात की।
प्रिय ने कहा था – 'प्रिये, पहले ही फूला यह,
भीति जो थी इसको तुम्हारे पदाघात की !'
देवी उन कान्ता सती शान्ता को सुलक्ष कर,
वक्ष भर मैंने भी हँसी यों अकस्मात की –
'भूलते हो नाथ, फूल फूलते कैसे, यदि
ननद न देतीं प्रीति पद–जलजात की !'

सूखा है यह मुख यहाँ,रूखा है मन आज;
किन्तु सुमन–संकुल रहे प्रिय का वकुल–समाज।

करूँ बड़ाई फूल की या फल की चिरकाल ?
फूला–फला यथार्थ में तू ही यहाँ रसाल !

देखूँ मैं तुझको सविलास,
खिल सहस्र दल, सरस, सुवास !
अतुल अम्बुकुल–सा अमल भला कौन है अन्य ?
अम्बुज, जिसका जन्य तू धन्य, धन्य, ध्रुव धन्य !
साधु सरोवर–विभव–विकास !
खिल सहस्रदल, सरस, सुवास।
कब फूलों के साथ फल, फूल फलों के साथ ?
तू ही ऐसा फूल है फल है जिसके हाथ !
ओ मधु के अनुपम आवास,
खिल सहस्रदल, सरस, सुवास।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक मात्र उपमान तू, हैं अनेक उपमेय,
रूप–रंग, गुण–गन्ध में तू ही गुरुतम, गेय।
ओ उन अंगों के आभास !
खिल सहस्रदल, सरस, सुवास ।

तू सुषमा का कर कमल, रति–मुखाब्ज उद्ग्रीव;
तू लीला–लोचन नलिन, ओ प्रभु–पद राजीव !
रच लहरों को लेकर रास,
खिल सहस्रदल, सरस, सुवास।

सहज सजल सौन्दर्य का जीवनधन तू पद्म,
आर्य जाति के जगत् की लक्ष्मी का शुभ सद्म।
क्या यथार्थ है यह विश्वास,
खिल सहस्रदल, सरस, सुवास।
रहकर भी जल–जाल में तू अलिप्त अरविन्द,
फिर तुझपर गूँजें न क्यों कविजन–गनोगिलिन्द !
कौन नहीं दानी का दास ?
खिल सहस्रदल, सरस, सुवास।
तेरे पट है खोलता आकर दिनकर आप,
हरता रह निष्पाप तू हम सबके सन्ताप।
ओ मेरे मानस के हास !
खिल सहस्रदल, सरस, सुवास।

पैठी है तू षट्पदी, निज सरसिज में लीन;
सप्तपदी देकर यहाँ बैठी मैं गति–हीन !

बिखर कली झड़ती है, कब सीखी किन्तु संकुचित होना ?
संकोच किया मैंने, भीतर कुछ रह गया, यही रोना !

अरी, गूँजती मधुमक्खी,
किसके लिए बता तूने वह रस की मटकी रक्खी ?
किसका संचय दैव सहेगा ?
काल घात में लगा रहेगा,
व्याध बात भी नहीं कहेगा,
लूटेगा घर लक्खी।
अरी, गूँजती मधुमक्खी।
इसे त्याग का रंग न दीजो,
अपने श्रम का फल है, लीजो,
जयजयकार कुसुम का कीजो,
जहाँ सुधा–सी चक्खी !
अरी, गूँजती मधुमक्खी !

सखि, मैं भव–कानन में निकली,
बनके इसकी वह एक कली,
खिलते खिलते जिससे मिलने
उड़ आ पहुँचा हिल हेम–अली
मुसकाकर आलि, लिया उसको,
तब लौं यह कौन बयार चली,
'पथ देख जियो' कह गूँज यहाँ
किस ओर गया वह छोड़ छली ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

छोड़, छोड़ फूल मत तोड़, आली, देख मेरा
हाथ लगते ही यह कैसे कुम्हलाये हैं ?
कितना विनाश निज क्षणिक विनोद में है,
दुःखिनी लता के लाल आँसुओं से छाये हैं।
किन्तु नहीं, चुन ले सहर्ष खिले फूल सब
रूप, गुण, गन्ध से जो तेरे मनभाये हैं,
जाये नहीं लाल लतिका ने झड़ने के लिए,
गौरव के संग चढ़ने के लिए जाये हैं।

कैसी हिलती डुलती अभिलाषा है कली, तुझे खिलने की,
जैसी मिलती जुलती उच्चाशा है भली मुझे मिलने की !

मान छोड़ दे, मान अरी,
कली, अली आया, हँसकर ले, यह बेला फिर कहाँ धरी ?
सिर न हिला झोंकों में पड़कर, रख सहृदयता सदा हरी,
छिपा न उसको भी प्रियतम से यदि है भीतर धूलि भरी !

भिन्न भी भाव–भंगी में भाती है रूप–सम्पदा,
फूल धूल उड़ाके भी आमोदप्रद है सदा।
फूल, रूप–गुण में कहीं मिला न तेरा जोड़,
फिर भी तू फल के लिए अपना आसन छोड़।

सखि, बिखर गई हैं कलियाँ;
कहाँ गया प्रिय झुकामुकी में करके वे रंग–रलियाँ ।
भुला सकेगी पुनः पवन को अब क्या इसकी गलियाँ ?
यही बहुत, ये पचें उन्हीं में जो थीं रंगस्थलियाँ ।

कह कथा अपनी इस घ्राण से,
उड़ गये मधु–सौरभ प्राण–से।
फल मिलें हमको–तुमको सखी,
तदपि बीज रहें सब त्राण से।
उठती है उर में हाय ! हूक,
ओ कोइल, कह, यह कौन कूक ?
क्या ही सकरुण, दारुण, गंभीर,
निकली है नभ का चित्त चीर,
होते हैं दो–दो दृग सनीर,
लगती है लय की एक लूक !
ओ कोइल, कह, यह कौन कूक ?
तेरे क्रन्दन तक में सु–गान,
सुनते हैं जग के कुटिल कान,
लेने में ऐसा रस महान।
हम चतुर करें किस भाँति चूक !
ओ कोइल, कह, यह कौन कूक ?
री, आवेगा फिर भी वसन्त,
जैसे मेरे प्रिय प्रेमवन्त।
दुःखों का भी है एक अन्त,
हो रहिए दुर्दिन देख मूक ?
ओ कोइल, कह, यह कौन कूक ?
अरे एक मन, रोक थाम तुझे मैंने लिया,
दो नयनों ने, शोक, भरम खो दिया रो दिया !

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हे मानस के मोती, ढलक चले तुम कहाँ बिना कुछ जाने ?
प्रिय हैं दूर गहन में, पथ में है कौन जो तुम्हें पहचाने ?

न जा अधीर धूल में,
दृगम्बु, आ, दुकूल में।
रहे एक ही पानी चाहे हम दोनों के मूल में,
मेरे भाव आँसुओं में हैं, और लता के फूल में।
दृगम्बु, आ, दुकूल में।
फूल और आँसू दोनों ही उठें हृदय की हूल में,
मिलन–सूत्र–सूची से कम क्या अनी विरह के शूल में।
दृगम्बु, आ, दुकूल में।
मधु हँसने में, लवण रुदन में, रहे न कोई भूल में,
मौज किन्तु मँझधार बीच है किंवा है 'वह कूल में ?
दृगम्बु, आ, दुकूल में।
नयनों को रोने दे, मन, तू संकीर्ण न बन, प्रिय बैठे हैं,
आँखों से ओझल हो, गये नहीं वे कहीं, यहीं पैठे हैं !
आँख, बता दे तू ही, तू हँसती या यथार्थ रोती है ?
तेरे अधर – दशन ये, या तू भर अश्रुबिन्दु ढोती है ?

बने रहो मेरे नयन, मानसजल में लीन,
माना है प्रिय ने तुम्हें अपना क्रीड़ा–मीन !

सखे, जाओ तुम हँसकर भूल, रहूँ मैं सुध करके रोती ।
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती !
मानती हूँ, तुम मेरे साध्य,
अहर्निशि एक मात्र आराध्य,
साधिका मैं भी किन्तु अवाध्य,
जागती होऊँ, या सोती ।
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती !
सफल हो सहज तुम्हारा त्याग,
नहीं निष्फल मेरा अनुराग,
सिद्धि है स्वयं साधना–भाग,
सुधा क्या, क्षुधा जो न होती !
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती !
काल की रुके न चाहे चाल,
मिलन से बड़ा विरह का काल;
वहाँ लय, यहाँ प्रलय सुविशाल !
दृष्टि मैं दर्शनार्थ धोती !
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती !

अर्थ, तुझे भी हो रही पद प्राप्ति की चाह ?
क्या इस जलते हृदय में नहीं और निर्वाह ?
स्वजनि, रोता है मेरा गान,
प्रिय तक नही पहुँच पाती है उसकी कोई तान।

झिलता नहीं समीर पर इस जी का जंजाल,
झड़ पड़ते हैं शून्य में बिखर सभी स्वर – ताल ।
विफल आलाप–विलाप समान,
स्वजनि, रोता है मेरा गान।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उड़ने को है तड़पता मेरा भावानन्द,
व्यर्थ उसे पुचकारकर फुसलाते हैं छन्द।
दिलाकर पद–गौरव का ध्यान।
स्वजनि, रोता है मेरा गान।
अपना पानी भी नहीं रखता अपनी बात,
अपनी ही आँखें उसे ढाल रहीं दिन–रात।
जना देते हैं सभी अजान,
स्वजनि, रोता है मेरा गान।
दुःख भी मुझसे विमुख हो करें न कहीं प्रयाण,
आज उन्हीं में तो तनिक अटकें हैं ये प्राण।
विरह में आ जा, तू ही मान !
स्वजनि, रोता है मेरा गान।

यही आता है इस मन में,
छोड़ धाम–धन जाकर मैं भी रहूँ उसी वन में।

प्रिय के व्रत में विघ्न न डालूँ, रहूँ निकट भी दूर,
व्यथा रहे, पर साथ साथ ही समाधान भरपूर।
हर्ष डूबा हो रोदन में,
यही आता है इस मन में।

बीच बीच में उन्हें देख लूँ मैं झुरमुट की ओट,
जब वे निकल जायँ तब लेटूँ उसी धूल में लोट।
रहें रत वे निज साधन में,
यही आता है इस मन में।

जाती जाती, गाती गाती, कह जाऊँ यह बात –
धन के पीछे जन, जगती में उचित नहीं उत्पात।
प्रेम की ही जय जीवन में।
यही आता है इस मन में।

अब जो प्रियतम को पाऊँ !
तो इच्छा है, उन चरणों की रज मैं आप रमाऊँ !
आप अवधि बन सकूँ कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊँ,
मैं अपने को आप मिटाकर, जाकर उनको लाऊँ ।
ऊषा–सी आई थी जग में, सन्ध्या–सी क्या जाऊँ ?
श्रान्त पवन–से वे आवें मैं सुरभि–समान समाऊँ !
मेरा रोदन मचल रहा है, कहता है, कुछ गाऊँ,
उधर गान कहता है, रोना आवे तो मैं आऊँ !
"इधर अनल है और उधर जल, हाय ! किधर मैं जाऊँ !
प्रबल वाष्प, फट जाय न यह घट, कह तो हाहा खाऊँ ?"

उठ अवार न पार जाकर भी गई,
ऊर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नई !
अटक जीवन के विशेष विचार में,
भटकती फिरती स्वयं मँझधार में,
सहज कर्षण कूल, कुञ्ज, कछार में,
विषमता है किन्तु वायु–विकार में,
और चारों ओर चक्कर हैं कई,
ऊर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नई !

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पर विलीन नहीं, रहूँ गतिहीन मैं,
दैन्य से न दबूँ कभी, वह दीन मैं।
अति अवश हूँ, किन्तु आत्म–अधीन मैं,
सखि, मिलन के पूर्व ही प्रिय–लीन मैं।
कर सका सो कर चुका अपना दई,
ऊर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नई !

आये एक बार प्रिय बोले – 'एक बात कहूँ,
विषय परन्तु गोपनीय सुनो कान में !'
मैंने कहा – 'कौन यहाँ ?' बोले – 'प्रिये, चित्र तो हैं,
सुनते हैं वे भी राजनीति के विधान में।'
लाल किये कर्णमूल होठों से उन्होंने कहा –
'क्या कहूँ सगद्गद हूँ, मैं भी छद–दान में;
कहते नहीं हैं, करते हैं कृती !' सजनी मैं
खीझ के भी रीझ उठी उस मुसकान में !

मेरे चपल यौवन–बाल !
अचल अंचल में पड़ा सो, मचलकर मत साल,
बीतने दे रात, होगा सुप्रभात विशाल,
खेलना फिर खेल मन के पहन के मणि–माल।
पक रहे हैं भाग्य–फल तेरे सुरम्य–रसाल,
डर न, अवसर आ रहा है, जा रहा है काल।
मन पुजारी और तन इस दुःखिनी का थाल,
भेंट प्रिय के हेतु उसमें एक तू ही लाल !

यही वाटिका थी, यही थी मही,
यही चन्द्र था, चाँदनी थी यही।
यही वल्लकी मैं लिये गोद में,
उसे छेड़ती थी महामोद में।
यही कण्ठ था, कौन–सा गान था ? –
'न था दुर्ग तू, मानिनी–मान था !'
यही टेक मैं तन्मयी छोर से,
लगी छेड़ने कान्त की ओर से।
अकस्मात् निःशब्द आये जयी,
मनोवृत्ति थी नाथ की मन्मयी।
सखी, आप ही आप वे हँसे –
'बड़े वीर थे, आज अच्छे फँसे !'
हँसी मैं, अजी, मानिनी तो गई,
बधाई ! मिली जीत यों ही नई !
'प्रिये, हार में ही यहाँ जीत है।
रुका क्यों तुम्हारा नया गीत है ?'
जहाँ आ गई चाप–टंकार है,
वहाँ व्यर्थ – सी आप झंकार है।
'प्रिये, चाप–टंकार तो सो रही,
स्वयं मग्न झंकार में हो रही।'
भला ! – प्रश्न है किन्तु संसार में –
भली कौन झंकार – टंकार में ?
'शुभे, धन्य झंकार है धाम में,
रहे किन्तु टंकार संग्राम में।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इसी हेतु है जन्म टंकार का,
न टूटे कभी तार झंकार का।
यही ठीक, टंकार सोती रहे,
सभी ओर झंकार होती रहे।
सुनो, किन्तु है लोभ संसार में,
इसी हेतु है क्षोभ संसार में।
हमें शान्ति का भार जो है मिला,
इसी चाप को कोटियों से झिला।'

हुआ, – किन्तु कोदण्ड–विद्या–कला,
मुझे व्यर्थ, क्यों और सीखूँ भला ?
भले ऊर्मिला के लिए गान ये,
विवादी स्वरों से बचें कान ये।
करूँ शिष्यता क्यों तुम्हारी अहो,
बनूँ तांत्रिकी शिक्षिका जो अहो।
मृगों को धरो तो सही चाप से,
कहो, खींच लूँ मैं स्वरालाप से !
'अभी खींच ही जो लिया है ! रहो,
बनीं शिष्य से शिक्षिका, क्यों न हो !
तुम्हारी स्वरालाप –धारा बहे,
पड़ा कूल में चाप मेरा रहे।
इसी भाँति आलाप–संलाप में,
(न ऐसे महाशाप में, ताप में,)
हमारा यहाँ काल था बीतता,
न संतोष का कोष था रीतता।
हरे ! हाय ! क्या से यहाँ क्या हुआ ?
उड़ा ही दिया मन्थरा ने सुआ !
हिया–पिंजरा शून्य माँ को मिला,
गया सिद्ध मेरा, रही मैं शिला !

स्वप्न था वह जो देखा, देखूँगी फिर क्या कभी ?
इस प्रत्यक्ष से मेरा परित्राण कहाँ अभी ?

कूड़े से भी आगे
पहुँचा अपना अदृष्ट गिरते गिरते,
दिन बारह वर्षों में
घूड़े के भी सुने गये हैं फिरते !

रस पिया सखि, नित्य जहाँ नया,
अब अलभ्य वहाँ विष हो गया !
मरण–जीवन की यह संगिनी
बन सकी वन की न विहंगिनी !
सखि, यहाँ सब ओर निहार तू,
फिर विचार अतीत विहार तू।
उदित–से सब हास–विलास हैं,
रुदित–से सब किन्तु उदास हैं।
स्वजनि, पागल भी यदि हो सकूँ,
कुशल तो अपनापन खो सकूँ।
शपथ है उपचार न कीजियो,
अवधि की सुध ही तुम लीजियो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बस इसी प्रिय–कानन–कुंज में,
मिलन–भाषण के स्मृति–पुज में,
अभय छोड़ मुझे तुम दीजियो,
हसन–रोदन से न पसीजियो।
सखि, न मृत्यु न आधि, न व्याधि ही,
समझियो तुम स्वप्न–समाधि ही।
हहह ! पागल हो यदि ऊर्मिला,
विरह–सर्प स्वयं फिर तो किला !
प्रिय यहाँ वन से जब आयँगे,
सब विकार स्वयं मिट जायँगे।
न सपने सपने रह पायँगे,
प्रकटता अपनी दिखलायँगे।

अब भी समक्ष वह नाथ, खड़े,
बढ़ किन्तु रिक्त यह हाथ पड़े।
न वियोग है न यह योग सखी,
कह, कौन भाग्य–भय भोग सखी ?

विचारती हूँ सखि, मैं कभी–कभी !
अरण्य से हैं प्रिय लौट आते।
छिपे छिपे आकर देखते सभी
कभी स्वयं भी कुछ दीख जाते !

आते यहाँ नाथ निहारने हमें,
उद्धारने या सखि, तारने हमें?
या जानने को, किस भाँति जी रहे ?
तो जान लें वे, हम अश्रु पी रहे !

सखि, विचार कभी उतता रही –
अवधि पूर्ण हुई, प्रिय आ गये।
तदपि मैं मिलते सकुचा रही,
वह वहीं, पर आज नये – नये ?

निरखती सखी, आज मैं जहाँ,
दयति–दीप्ति ही दीखती वहाँ ।
हहह ! ऊर्मिला भ्रान्त है रहे,
यह असत्य तो सत्य भी बहे।
ज्वलित प्राण भी त्राण पा गये,
सुभग आ गये, कान्त, आ गये !
निकल हंस–से केकि–कुंज से
निरख वे खड़े प्रेम–पुंज–से !
रुचिर चन्द्र की चन्द्रिका खिली,
निज अशोक से माधवी मिली।
अवधि होगई पूर्ण अन्त में,
सुयश छा रहा है दिगन्त में।
स्वजनि, धन्य है आज की घडी,
तदपि खिन्न–सी तू यहाँ खड़ी !
त्वरित आरती ला, उतार लूँ,
पद दृगम्बु से मैं नखार लूँ।
चरण हैं भरे देख, धूल से,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विरह–सिन्धु में प्राप्त कूल–से।
विकट क्या जटाजूट है बना,
भृकुटि युग्म में चप–सा तना।
वदन है भरा मन्द हास से,
गलित चन्द्र भी श्री–विलास से।
ललित कन्धरा, कण्ठ कम्बु–सा,
नयन पद्म–से, ओज अम्बु–सा,
तनु तपा हुआ शुद्ध हेम है,
सुलभ योग है और क्षेम है।
उदित ऊर्मिला–भाग्य धन्य है,
अब कृती कहाँ कौन अन्य है !

विजय नाथ की हो सभी कहीं,
तदपि क्यों खड़े हो गये वहीं ?
प्रिय, प्रविष्ट हो, द्वार मुक्त है,
मिलन–योग तो नित्य युक्त है।
तुम महान हो और हीन मैं,
तदपि, धूल–सी अंघ्रि–लीन मैं।
दयति देखते देव भक्ति को,
निरखते नहीं नाथ, व्यक्ति को।
तुम बड़े, बने और भी बड़े,
तदपि ऊर्मिला–भाग में पड़े।
अब नहीं, रही दीन मैं कभी,
तुम मुझे मिले तो मिला सभी।
प्रभु कहाँ, कहाँ किन्तु अग्रजा,
कि जिनके लिए था मुझे तजा ?
वह नहीं फिरे ? क्या तुम्हीं फिरे ?
हम गिरे अहो ! तो गिरे, गिरे।
दयित, क्या मुझे आर्त्तजॉन के,
अधिप ने अनुक्रोश मान के,
घर दिया तुम्हें भेज आप ही ?
यह हुआ मुझे और ताप ही ।
प्रिय, फिरो, फिरो हा ! फिरो, फिरो !
न इस मोह की धूम से घिरो ।
विकल मैं यहाँ, किन्तु गर्विणी,
न कर दो मुझे नष्टपर्विणी।
घर फिरे तुम्हीं मोह से कहीं
तब हुए तपोभ्रष्ट क्या नहीं ?
च्युत हुए अहो नाथ, जो यथा,
धिक् ! वृथा हुई ऊर्मिला–व्यथा।
समय है अभी, हा ! फिरो, फिरो,
तुम न यों यशःस्वर्ग से गिरो।
प्रभु दयालु हैं, लौट के मिलो,
न उनके कुटी–द्वार से हिलो।
निरखती अभी एक मात्र मैं,
पर अभिन्न हूँ, अर्द्ध गात्र में।
यह सखी मुझे मत्त मानती,
कुशल मैं यही आज जानती।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अवश रो रहे प्राण ये धँसे,
तदपि कौन है, जो मुझे हँसे ?
अब हँसी न हो, और क्या कहूँ ?
तुम व्रती रहो, मैं सती रहूँ ।

धिक् ! तथापि हा सामने खड़े ?
तुम अलज्ज–से क्यों यहाँ अड़े ?
जिधर पीठ दे दीठ फेरती,
उधर मैं तुम्हें ढीट, हेरती !
तुम मिलो मुझे धर्म छोड़के,
फिर मरूँ न क्यों मुण्ड फोड़के ?
यह शरीर लो, प्राण ये बुझे,
धर न हा सखी, छोड़ दे मुझे ।
स्वजनि, क्या, कहा– 'वे यहाँ कहाँ ?'
तदपि देखते हैं जहाँ तहाँ ?
यह यथार्थ उन्माद, भ्रान्ति हैं?
ठहर तो मिटा क्षोभ, शान्ति है।
धिक् ! प्रतीत भी की न नाथ की,
पर नथी सखी, बात हाथ की।
प्रतिविधान मैं क्या करूँ बता,
इस अनर्थ का भी कहीं पता !
अधम ऊर्मिले, हाय निर्दया !
पतित नाथ हैं ! तू सदाशया ?
नियम पालती एक मात्र तू,
सब अपात्र हैं, और पात्र तू ?
मुहँ दिखायगी क्या उन्हें अरी,
मर ससंशया, क्यों न तू मरी।
सदय वे, बता किन्तु चंचला,
वह क्षमा सही जायगी भला ?

बिसरता नहीं न्याय भी दया,
बस रहो प्रिये, जान मैं गया।
तुम अधीर हो तुच्छ ताप में,
रह सकी नहीं आप आपमें !
न उस धूप में और मेह में,
तुम रहीं यहाँ राजगेह में।
विदित क्या तुम्हें, देवि, क्या हुआ,
रुधिर स्वेद के रूप में चुआ।
विपिन में कभी–सो सका न मैं,
अधिक क्या कहूँ, रो सका न मैं।
वचन ये पुरस्कार में मिले,
अहह मिले ! हाय ऊर्मिले !
गिन सको, गिनो शूल, जो चुभे,
सहज है समालोचना शुभे।
कठिन साधना किन्तु तत्त्व की,
प्रथम चाहिए सिद्धि सत्त्व की।
कठिन कर्म का क्षेत्र था वहाँ,
पर यहाँ ? कहो देवि, क्या यहाँ ?
उलहना कभी दैव को दिया,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बहुत जो किया नेक रो लिया !
सतत पुण्य या पाप–संगिनी,
समझता रहा आत्मअंगिनी।
स्वपति–पुण्य ही इष्ट था तुम्हें,
कटु मुझे, तथा मिष्ट था तुम्हें ?
प्रियतमे, तपोभ्रष्ट मैं ? भला !
मत छुओ मुझे, लौट मैं चला।
तुम सुखी रहो हे विरागिनी,
बस विदा मुझे पुण्यभागिनी !
हट सुलक्षणे, रोक तू न यों,
पतित मैं, मुझे टोक तू न यों ।
विवश लक् – ''नहीं, ऊर्मिला हहा !'
किधर ऊर्मिला ? आलि, क्या कहा ?

फिर हुई अहा ! मत्त ऊर्मिला,
सखि, प्रियत्व था क्या मुझे मिला ?
यह वियोग या रोग, जो कहे,
प्रियमयी सदा ऊर्मिला रहे।

उन्मादिनी कभी थी,
विवेकिनी ऊर्मिला हुई सखि, अब है;
अज्ञान भला, जिसमें
सोहं तो क्या, स्वयं अहं भी कब है ?

लाना, लाना, सखि, तूली !
आँखों में छवि झूली।

आ, अंकित कर उसे दिखाऊँ,
इस चिन्ता से निष्कृति पाऊँ,
डरती हूँ फिर भूल न जाऊँ,
मैं हूँ भूली भूली ।
लाना, लाना, सखि, तूली !

जब जल चुकी विरहिणी बाला,
बुझने लगी चिता की ज्वाला,
तब पहुँचा विरही मतवाला,
सती–हीन ज्यों शूली।
लाना, लाना, सखि, तूली !

झुलसा तरु मरमर करता था,
झड़ निर्झर झरझर करता था,
हत विरही हरहर करता था,
उड़ती थी गोधूली ।
लाना, लाना, सखि, तूली !

ज्यों ही अश्रु चिता पर आया,
उग अंकुर पत्तों से छाया।
फूल वही वदनाकृति लाया,
लिपटी लतिका फूली !
लाना, लाना, सखि, तूली !

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सिर – माथे तेरा यह दान,
हे मेरे प्रेरक भगवान !
अब क्या माँगूं भला और मैं फैला कर ये हाथ ?
मुझे भूलकर ही विभु–वन में विचरें मेरे नाथ।
मुझे न भूले उनका ध्यान,
हे मेरे प्रेरक भगवान !
डूब बची लक्ष्मी पानी में, सती आग में पैठ,
जिये ऊर्मिला, करे प्रतीक्षा, सहे सनी घर बैठ।
विधि से चलता रहे विधान,
हे मेरे प्रेरक भगवान !
दहन दिया तो भला सहन क्या होगा तुझे अदेय ?
प्रभु की ही इच्छा पूरी हो, जिसमें सबका श्रेय ।
यही रुदन है मेरा गान,
हे मेरे प्रेरक भगवान !
अवधि–शिला का उर पर था गुरु भार,
तिल तिल काट रही थी दृग–जल–धार।

10.6.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

नवम् सर्ग

दो वंशों में .... विदेही ।

शब्दार्थ – पूतशीला = पवित्र चरित्रवाली।

संदर्भ – द्विवेदीयुग के ख्यातनाम कवि मैथिलीशरण गुप्त की अमर लेखनी से प्रस्फुटित काव्य पंक्तियाँ उनके महाकाव्य 'साकेत' के 'नवम सर्ग' से अवतरित हैं।

प्रसंग – कवि राजा जनक और उनकी दोनों पुत्रियाँ सीता और उर्मिला की प्रशंसा करते हुए कहता है–

व्याख्या – जिनकी पुत्रियाँ सौ पुत्रों से भी अधिक पवित्र चरित्रवाली हैं और जिन्होंने अपनी मानवीय लीला के द्वारा अपने पिता और पति दोनों के कुलों में पावनता प्रकट की है, वे राजा जनक पुण्यात्मा हैं, शरीरधारी होकर भी विदेह हैं, गृहस्थ होकर भी अनासक्त हैं तथा उनके समीप आये हुए अनेक त्यागी और तपस्वी पुरुष उनकी महानता स्वीकार करते हैं। ऐसे राजा जनक की जय हो।

विशेष – कवि को आगे उर्मिला के विरह का चित्रांकन करना है। अतः उसने आरम्भ में ही जनक की पुत्रियों का उल्लेख करते हएु उर्मिला की ओर संकेत कर दिया है।

अलंकार – यहां श्लेष अलंकार और मन्दाक्रान्ता छंद प्रयुक्त हुआ है।

करुणे क्यों .... कहे कोई ?

शब्दार्थ – करुणे = करुण रस। उत्तर = जवाब, भवभूति का 'उत्तर रामचरित' नाटक। भवभूति = संस्कृत के महाकवि भवभूति, सांसारिक ऐश्वर्य।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – इस सर्ग में करुण रस की प्रधानता है। अतः करुण रस की जननी करुणा को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है–

व्याख्या– हे करुणे ! तू क्यों रोती है। भवभूति के 'उत्तर रामचरित' में तो तू पहले ही इससे अधिक अश्रु बहा चुकी है। कवि के इस प्रश्न पर करुणा कहती है– 'उत्तर रामचरित' में करुण रस को स्थान देने के कारण सब भवभूति की प्रशंसा करते हैं और उसे संसार की विभूति बताते हैं, परन्तु वास्तव में यह मेरी विभूति है। मेरा ही मूर्तिमान रूप है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष– नवम सर्ग में करुण रस का बाहुल्य देखकर कवि ने करुण रस के महान् कवि 'भवभूति' का स्मरण किया है। इन पदों, पंक्तियों से यह भी स्पष्ट होता है कि 'उत्तर रामचरित' नाटक में करुण रस की योजना 'साकेत' से अधिक मात्रा में हुई है।

अलंकार– करुणा का यहाँ मानवीकरण किया गया है। 'उत्तर' और 'भवभूति' में श्लेष अलंकार है और छंद है आर्या।

मानस–मन्दिर .... आप !

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रिय के विरह के व्यथित होकर उर्मिला ध्यान मग्न हो गई है। उसकी इस अवस्था का चित्रण करते हुए गुप्त जी कहते हैं–

व्याख्या– उस सती उर्मिला ने अपने मन–मन्दिर में अपने पति की, अपने आराध्य की मूर्ति स्थापित की। उस प्रतिमा की पूजा के लिए वह स्वयं आरती बन गई और विरहाग्नि में जलने लगी। प्रिय के जाने पर उर्मिला का जीवन सतत जाज्वल्यमान दीपशिखा बन गया है।

विशेष– ये पंक्तियाँ उर्मिला की करुणाजनक स्थिति पर प्रकाश डालती हैं।

अलंकार– अनुप्रास, उपमा और रूपक अलंकार प्रयुक्त हुए हैं।

आँखों में .... आत्मज्ञान।

शब्दार्थ– विषम = कठिन। आत्मज्ञान = स्वयं का ज्ञान।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग– अपने–मन मन्दिर में प्रियतम की मूर्ति स्थापितकर उर्मिला उसी के ध्यान में लग गई और उसे अपना भी ध्यान नहीं रहा। उसकी इस अवस्था का चित्रण करते हुए कवि कहता है–

व्याख्या– उसके नेत्रों में केवल प्रिय की मूर्ति समायी हुई थी। प्रिय के ध्यान में उसने सुख के समस्त भोगों को भुला दिया था। योगी योग साधना करते समय जिस प्रकार एक ही वस्तु पर ध्यान केन्द्रित कर लेता है, उसी प्रकार उर्मिला की चित्तवृत्तियाँ अपने पति पर केन्दित हो गई थीं और उसका यह वियोग योग से भी अधिक कठिन बन गया था।

उर्मिला को आठ प्रहर और चौसठ घड़ी अर्थात् दिन–रात अपने पति का ही ध्यान रहता था। इस ध्यान में वह इतनी तल्लीन हो गई थी कि स्वयं को भी भूल गई थी, अर्थात् प्रियतम के ध्यान में उसने स्वयं को भी भुला दिया था।

विशेष– आरम्भ से ही कवि योग से वियोग को कठिन बताते आ रहे हैं। उद्धव गोपी संवाद में भी इस प्रकार के वर्णन मिलते है। गोपियों का कहना है– 'जोगिन हैं बैठी वियोगिनी की अखियाँ।

यहाँ भी उर्मिला का विरह योग से प्रगाड़ है और अंतिम पदों पंक्तियों में उर्मिला का उन्माद झलक रहा है।

अलंकार– रूपक और उपमा अलंकार प्रयुक्त हुए हैं।

उस रुदन्ती .... सुवर्ण के ।

शब्दार्थ – रुदन्ती – औषधि विशेष (कहा जाता है यदि इसका रस तांबे पर मलकर उसे आग में तपाया जाय, तो ताँबा सोना बन जाता है) विक्षेप = भावोन्माद।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियों में रूपक के माध्यम से उर्मिला की विरहाकुल अवस्था का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि–

व्याख्या – ताम्रपत्र पर रुदन्ती औषधि का लेप करके उसे आग में तपाने पर जैसे वह सोना बन जाता है और फिर उससे कान के अनेक सुन्दर आभूषण बनाये जा सकते हैं, उसी प्रकार रुदन्ती औषधि के सदृश विरहिणी उर्मिला के रुदन के रस अर्थात् अश्रुओं के लेप से तथा उसके प्रियतम के वियोगजन्य भावातिरेक के ताप से कवियों के एक–एक अक्षर कर्णप्रिय बन जाते हैं। ताम्रपत्र पर लिखित उर्मिला के विरहजन्य स्थिति को व्यक्त करने के लिए

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कवियों के हृदय से निकले हुए शब्द जब जनमानस को प्रभावित करते हैं तो वे स्वतः ही स्वर्णमय हो जाते हैं क्योंकि उन पर उर्मिला के अश्रुओं का लेप रहता है।

विशेष – रूपक और श्लेष अलंकार के द्वारा कवि ने उर्मिला की विरहाकुल स्थिति को व्यक्त किया है। इन पंक्तियों में कवि का उक्ति–वैचित्र्य झलकता है। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि उसे रासायनिक प्रक्रिया का ज्ञान है।

अलंकार – यहाँ पर काकु वक्रोक्ति के द्वारा कवि ने अपनी बात स्पष्ट की है।

पहले आँखों में .... कब थे ?

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – उर्मिला की विरहाकुल अवस्था का मनोवैज्ञानिक विवेचन करते हुए गुप्त जी का कथन है कि–

व्याख्या– प्रियतम लक्ष्मण की मूर्ति पहले उर्मिला के नेत्रों में स्थापित थी अर्थात् सदैव उसके समक्ष रहते थे, परन्तु अब विरह की घड़ियों में वह स्मृति रूप में उर्मिला के मन में छाये हुए हैं। कहने का तात्पर्य है कि नेत्रों से कूदकर वह उसके मन रूपी सरोवर में निमग्न हो गए। लक्षण के सरोवर में कूदने पर जो छींटे उड़े थे वही बड़े–बड़े अश्रुओं के रूप में उर्मिला के नेत्र रूपी मार्ग में प्रवाहित हो रहे हैं।

विशेष – अपनी कल्पना के माध्यम से उर्मिला के रुदन का जो रूपक कवि ने बाँधा है, वह तार्किक है। इसी तरह की पंक्तियाँ रत्नाकर के 'उद्धवशतक' में मिलती हैं जहाँ ध्यान–नलिका के द्वारा गोपियों का अश्रु जल कृष्ण के लोचनों में फुहारों के रूप में छूटने लगता है–

> 'गोपिनि के नैर–नीर ध्यान नलिका ह्वै धाई
>
> दृगनि हमारे आइ छूटत फुहारे ह्वै।''

अलंकार – 'मानस' में श्लेष अलंकार है।

सींचे ही बस .... भिगोता बहे?

शब्दार्थ – कर्त्तरी = कैंची। यन्त्र जल– फव्वारे का जल। ससिक्त = सिंचन। सोता = झरना।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – उर्मिला विरह से व्यथित है परन्तु उसमें दूसरों के प्रति दया की भावना विद्यमान है। राजोद्यान में पहुँचकर वह मालिनों के प्रति कहती है–

व्याख्या – मालिने कलश लेकर केवल पौधों की सिंचाई ही करें। पौधों को काटते–छाँटने के लिए वह कैंची का कभी भी उपयोग न करें। वृक्षों की डालियाँ मुक्त भाव से इधर– उधर फैलकर अपना विकास करें और हरी–भरी लतायें भी स्वच्छन्द रूप से विकसित हों। क्रीड़ा–कानन का यह पर्वत भी सदैव फव्वारे के जल से सींचा जाता रहे। हे सखि, मेरे जीवन का स्रोत भी हर समय जलमय बना रहे अर्थात् मेरे जीवन में स्नेह का जल सब पर बिखरता रहे।

विशेष – यहाँ पर उर्मिला की उदारता का चित्रण किया गया है। स्वयं शोकातुर होते हुए भी वह सबको प्रसन्न देखना चाहती है।

अलंकार – 'जीवन' में श्लेष अलंकार है और शार्दूलविक्रीडित छन्द में ये पंक्तियाँ लिखी गई हैं।

लाई है क्षीर .... और क्या हा !,

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – पहले उर्मिला के भोजन की थाली वापिस कर दी थी, अब जब सखी दूध लाती है तो वह उसके लिए भी मना कर देती है और कहती है–

व्याख्या – अरे सखि, तू यह दूध किसके लिए लाई है। मैं यह दूध नहीं पिऊँगी। तू मूझसे इसे पीने के लिए जिद मत कर। तूने मुझे क्या कोई हठी शिशु समझ रखा है जो मुझे बहला रही है या तू मुझे राज्यशाली समझ रही है। मैं तो आज एक गरीब हूँ अर्थात् तू मेरे दूध न पीने का कारण मेरा हठ या मेरा राज्यशाली होना न समझ। तूने मुझे एक युवती विरहिणी के रूप में स्वीकार कर लिया है जिसका विवाह एक वीर युवक के साथ हुआ है। मुझ जैसी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विरहिणी के लिए नेत्रों का जल ही पर्याप्त है अर्थात् मैं अश्रु बहाकर ही तृप्त हो जाती हूं। अब मुझे और किसी चीज की आवश्यकता नहीं।

सिद्द शिलाओं .... उच्च–उदार।

शब्दार्थ – तने –खड़े। आड़ = छाया।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – उर्मिला चित्रकूट हो आई है, उसने वहाँ की भूमि को देखा है, प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन किया है। इन पंक्तियों में वह चित्रकूट पर्वत को सम्बोधित करती हुई कहती है–

व्याख्या – हे चित्रकूट पर्वत ! तू सिद्ध शिलाओं का आधार है अर्थात् तेरे ऊपर ऐसी शिलायें विद्यमान हैं जिन पर रहनेवाले व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। तू अत्यन्त ऊँचा और उदार है तथा अपनी महानता के कारण समस्त पर्वतों मे गौरव प्राप्त किये हुए है। तेरे ऊपर अनेक ऊँचे–ऊँचे झाड़ खड़े हैं। दूर से देखने पर उनके तने और पत्ते ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे वह पहाड़ के छत्र हों। तेरी छाया भी अपूर्व है जिसमें जंगल के अनेक जीव क्रीड़ा करते रहते हैं। ओ चित्रकूट, तू गौरवमय, उच्च और उदार है।

कौन–सा .... वाह–वाह ?

शब्दार्थ – अवगाह = गहरा। किंवा = अथवा।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – उर्मिला के मन में चित्र खींचने की इच्छा जाग्रत होती है। अतः वह अपनी सखी से पूछती है कि मैं वन में कौनसा चित्र बनाऊँ।

व्याख्या– हे सखि, आज मेरे मन में चित्र रचना की इच्छा जगी है। अतः तू मुझे बता कि मैं इस चित्र में वन का कौनसा दृश्य अंकित करूँ। क्या यह दृश्य खींचूँ कि रास्ते में कोई नाला पड़ा है, किनारे पर जेठ (राम) और जीजी (सीता) खड़े हुए हैं तथा आर्यपुत्र (लक्ष्मण) जल में उतरकर उसकी गहराई को नाप रहे हैं। अथवा वह दृश्य अंकित करूँ जिसमें सीता जीजी घूमकर प्रभु का सहारा लिए खड़ी हों और ये वेदना का भाव लिए हुए कराहकर उनके तलपे से काँटा खींच रहे हों। अथवा ये किसी लता को नीचे झुकाकर खड़े हुए हों और जीजी उसमें से फूल तोड़ रही हों तथा इस दृश्य को देखकर प्रभु वाह–वाह कहकर उन्हें प्रोत्साहित कर रहे हों।

विशेष– यहाँ उर्मिला की कल्पनाशीलता और उस कल्पना के सहारे उसके अभिनव चित्रकला–चातुर्य पर प्रकाश पड़ता है। सीता के काँटा लगा है, पर काँटा निकलते समय उसकी पीड़ा लक्ष्मण को हो रही है।

वह जीवन मध्याह्न .... जब मेरी।

शब्दार्थ– जीवन–मध्याह्न = यौवन काल। श्रान्ति–विश्राम। क्लान्ति = थकावट। प्रस्वेद = पसीना।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – शैशव के बाद यौवन आता है और सुबह के बाद दोपहर। इसी के संबंध में उर्मिला कहती है–

व्याख्या– शैशव के पश्चात् मेरे जीवन में यौवन आया और इस समय मुझे शांति के साथ–साथ थकावट भी बहुत मिली। अत्यधिक गर्मी के कारण जैसे पसीना आने लगता है, वैसे ही मेरी इस यौवन बेला में दुःख और सन्ताप के पसीने से पूर्ण प्रखर ताप छा गया है। मैने यौवन के आरम्भ में प्रगति रूपी जिस धन को प्राप्त किया था उसे आज खो दिया है। पति के साथ रहते हुए जो आनन्द मैंने प्राप्त किया था वह तो मुझसे छिन गया, परन्तु उस आनन्द को खोकर मैं कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकी। न तो मुझे राम ही मिले और न ही मुझे माया प्राप्त हुई अर्थात् सब कुछ खोकर मुझे व्यथा ही मिली। जीवन के आरम्भिक दिनों में वह खुशी जो हर समय मेरे साथ बनी रहती थी, अब कहीं दूर चली गई है। अब तो मेरे जीवन में सिर्फ विषाद ही विषाद छाया हुआ है।

विशेष– यौवन के आगमन के साथ ही उर्मिला को पति–विरह का दुःख सहन करना पड़ा है। इसी से वह यौवन–काल को मध्याह्न–काल से उपमित कर रही है। आनन्द के स्थान पर शोक मिलने के कारण वह गहन वेदना से पीड़ित है। उर्मिला के भावों को व्यक्त करने की दृष्टि से ये पंक्तियाँ सुन्दर हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अलंकार– उपमा और रूपक अलंकार है।

वेदने, तू भी .... प्राण धनी।

शब्दार्थ– हरि–कनी = हीरे का टुकड़ा। विशिख–अनी = बाण की नोंक। दृगम्बू = नेत्र जल। तपनमनी = सूर्यकान्तमणि। आत्मजा = पुत्री। अदृष्ट–जनी = अदृश्य द्वारा उत्पन्न की गई। उपमोचितस्तनी = स्तनों की उचित उपमा। उपल खनी= रत्नों की खान।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग– लक्ष्मण के वन चलेजाने के कारण उर्मिला विरह–वेदना से ग्रस्त है। अपनी वेदना को सम्बोधित करते हुए वह कहती है–

व्याख्या– हे वेदने ! और लोग चाहे तेरा तिरस्कार करें, पर मुझे तू अत्यन्त प्रिय है क्योंकि आज मैंने अपनी घनी इच्छा को तुझी में प्राप्त किया है। तू हीरकमणि के सदृश्य है जिसने मेरे जीवन में एक नयी किरण उत्पन्न की है। वाण की नोक के समान चुभनेवाली वेदना तू मेरे हृदय मे कसकती रह, जिससे मैं सजग बनी रहूँ। मेरी आँखों से निरन्तर अश्रु बहते रहते हैं, परन्तु तब भी मेरा हृदय ठण्डा नहीं हो पाएगा क्योंकि तू सूर्यकान्तमणि के समान अपनी तपन से उसे उष्ण बनाये रखेगी। हे वेदने! अभाव तेरा पिता है और अदृश्य तेरी माता है। जिसने तुझे जन्म दिया है। तेरी छाती को स्तनों की उपमा देना उचित ही है। बालकों को जो सुख माता की छाती से लगकर प्राप्त होता है। वही सुख मुझे तेरे द्वारा प्राप्त होता है। माता के समान ही तूने मुझे अपनी छाती से लगाये रखा है।

वियोग की समाधि के रूप में तूने अपना अनोखा स्वरूप बनाया है। मैं तेरे ही कारण स्वयं को, प्रियतम को और संसार को खिंचा और तना देखती हूँ। इस समय मेरा ध्यान समाधिस्थ योगी की भाँति अपने प्रियतम रूपी साधना में केन्द्रित हो गया है। हे रत्नों की खान वेदने! मुझे मन जैसा सच्चा माणिक तुझी से प्राप्त हुआ है। अब मैं तेरा परित्याग तभी करूँगी जब मुझे अपने प्रियतम मिल जाएंगे।

विशेष– 'वेदना' सभी के लिए दुःखदायिनी होती है, परन्तु उर्मिला को वह प्रिय है, क्योंकि इसके कारण उसके हृदय में प्रियतम का ध्यान बना रहता है।

अलंकार– यहाँ वेदना का मानवीकरण किया गया है। उपमा, रूपक और व्यतिरेक अलंकार प्रयुक्त हुए हैं।

विरह संग .... संसार भी।

शब्दार्थ– अभिसार = प्रियतम से मिलन। आभार = कृतज्ञता। गार = गलाना। हिये = हृदय।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग– उर्मिला के लिए विरह को सहना कठिन हो गया है अतः वह कहती है–

व्याख्या– विरह के साथ मिलन भी है। यह जहाँ भार के समान कठिन है, वहाँ कृतज्ञता और आभार–प्रदर्शन भी है। अपने उत्तरदायित्व का पालन करते समय जो कष्ट उठाया जाता है उसमें दूसरों का आभार निहित रहता है। यद्यपि मेरी आत्मा शरीर रूपी पिंजरे में पड़ी हुई है, किन्तु उसके लिए द्वार अभी भी खुला है कि वह जहाँ चाहे चली जाये। कहा जाता है कि काल सभी व्यक्तियों के लिए कठिन होता है। परन्तु मेरे लिए यह भी उदार है। इस विरह काल में ही मुझे प्रेम की स्मृतियों का सच्चा आनन्द प्राप्त हुआ है। इस विरह ने जहाँ एक ओर मेरे शरीर को गला दिया है वहीं दूसरी ओर उपकार भी किया है। इसने मेरी सुध–बुध हर ली है, किन्तु बदले में मुझे समय की विविध परिस्थितियों का ज्ञान करा दिया है। इसने मुझे बता दिया है कि विरह के कारण जन–जीवन भार हो जाता है अथवा यह जीवन केवल मनोरंजन के लिए न होकर उत्तरदायित्व का भार वहन करने के लिए भी है। इसने यह भी बताया है कि मृत्यु भी कभी–कभी हृदय के हार के समान प्रिय जान पड़ती है। इसी विरह के कारण मैं यह जान सकी हूँ कि मेरे हृदय में ज्वाला तो थी, पर उस ज्वाला की तपन को दूर करनेवाले आँसू भी थे। इस विरह के कारण मुझे इस बात का ज्ञान हुआ है कि इस धरती पर केवल प्रिय का ही और संसार का भी अलग नहीं, मेरा अस्तित्व है।

विशेष– प्रिय के विरह के कारण मरण भी उर्मिला को हृदय के हार के समान प्रिय लगता है। हृदय में ज्वाला और जलधारा का समान स्थान होने के कारण यहां विरोधाभास अलंकार है।

अलंकार– रूपक अलंकार भी प्रयुक्त हुआ है। मुहावरों का प्रयोग भी दर्शनीय है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दोनों ओर .... पलता है।

शब्दार्थ – सीस = सिर, दीपक की लौ। दहता= जलता।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग– उर्मिला की सखी ने दीपक जला दिया है। उस दीपक पर अनेक पतंगे गिरकर नष्ट हो रहे हैं। यह देखकर उर्मिला कहती है–

व्याख्या– प्रेम दोनों पक्षों में होता है। इधर दीपक की शिखा जलती है और उधर उस पर पतंगें गिर–गिरकर जलते हैं। दीपक अपने सिर को हिलाकर पतंगे से कहता है– हे भाई! तू व्यर्थ में क्यों जलता है परन्तु पतंग दीपक की इस बात पर ध्यान नहीं देता और उसकी लौ में जल जाता है। दोनों तरफ प्रेम की कितनी व्याकुलता है। इस प्रकार प्रेम दोनों ओर समान रूप से पलता है।

विशेष – यहाँ कवि ने प्रतीकात्मक शैली को अपनाया है।

अलंकार – हेतुत्प्रेक्षा अलंकार है।

बचकर हाय .... प्रेम पलता है।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – प्रेम के बिना पतंग का जीवन कुछ नहीं । प्रेम रहित जीवन व्यर्थ है।

व्याख्या– पतंग दीपशिखा पर जले नहीं तो और करे क्या? अपने प्रेम को छोड़कर वह जीवित कैसे रह सकता है। प्रणय का त्याग करके जीवित रहना तो उसके लिए मृत्यु से भी कठोर है। अतः वह जले नहीं तो करे क्या? प्रियतम पर बलि होना तो मृत्यु से श्रेष्ठ है। दीपक पर गिरकर जल जाना क्या प्रेम की असफलता है, नहीं, यह उसकी विजय है। वस्तुतः प्रेम दोनों ओर पलता है।

प्रेमी पतंग दीपक की बातों से उदासीन होकर कहता है– तुम महान् हो और मैं छोटा हूँ। तुम्हारे और मेरे में समानता नहीं है, पर क्या प्रेम की वेदी पर अपने प्राणों को न्यौछावर कर देने का अधिकार भी मेरे पास नहीं है। शरण किसी को नहीं छलता है। तात्पर्य है कि किसी की शरण में जाओ तो वह धोखा नहीं देगा। प्रेम दोनों ओर पलता है।

विशेष यहाँ पर दो प्रेमी हृदयों की भावनाओं की सरस व्यंजना हुई है। काकुवक्रोक्ति है।

दीपक के .... प्रेम पलता है।

शब्दार्थ– वणिग्वृत्ति = व्यापार की भावना।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – उर्मिला पतंग के भाग्य को पीड़ायुक्त बतलाते हुए कहती है–

व्याख्या– उर्मिला कहती है– हे सखि, दीपक के जलने में उसके जीवन की शोभा है, किन्तु पतंग का भाग्य निराशा और पीड़ा की गहन कालिमा से युक्त है। इस पर किसी और का क्या वश चल सकता है। प्रेम दोनों ओर पलता है।

संसार के सभी व्यक्ति प्रत्येक कार्य व्यापारिक भावना से करते हैं। वे उसी से प्रेम करते हैं जिससे उन्हें कुछ स्वार्थ होता है और लाभ की आशा होती है। मनुष्यों की यह भावना काम की अपेक्षा परिणाम पर ध्यान देती है। यह बात मुझे बहुत बुरी लगती है। प्रेम तो समान रूप से दोनों तरफ पलता है।

विशेष– दीपक और पतंग के माध्यम से उर्मिला और लक्ष्मण के प्रेम पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ पर कवि ने प्रेम के उभयपक्षीय रूप को मान्यता दी है। पूरे गीत का भाव–साम्य इन पंक्तियों से मिलता है–

'शमा जलती है महफिल में, उड़े हैं गिर्द परवाने,
ये दोनों मिल के जलते हैं, मुहब्बत का असर देखो।''

आ जा .... निंदिया गूंगी।

संदर्भ – पूर्ववत्।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग– उर्मिला सोना चाहती है। अतः वह नींद को निमंत्रण देती हुई कहती है–

व्याख्या– अरी मूक निद्रा! तू मेरे पास आ। तू आ जाएगी तो मैं प्रेम सहित तेरा स्वागत करूँगी और तुझे चन्द्र–खिलौना दूंगी। यदि तू प्रियतम के आने पर आएगी तो तुझे गर्दन पकड़कर बाहर निकाल दूंगी तब तो प्रिय से प्रेमालाप करने में ही रात्रि समाप्त हो जाएगी। तेरी उस समय कोई आवश्यकता नहीं होगी। परन्तु यदि आज तू स्वप्न में उन्हें ले आयेगी तो मैं उन्हें तुझसे ही प्राप्त कर लूंगी अर्थात् स्वप्न में ही उन्हें पाकर सन्तुष्ट हो जाऊंगी। हे मेरी गूंगी निंदिया, तू आ जा।

तू मेरे पलक रूपी पाँवड़ों पर पैर रखकर आ और मेरे नेत्रों के सलौने रस अर्थात् अश्रुओं को चख। तू मुझ जैसी दुखिया की ओर तनिक तो दृष्टिपात कर। आज मैं स्वयं को ही तेरे ऊपर न्यौछावर कर दूंगी। हे मेरी गूंगी निंदिया, आ जा।

विशेष– यहाँ उर्मिला दो कारणों से निद्रा को बुला रही है। एक तो नींद आ जाने पर रात कट जाएगी और दूसरे निद्रा आने पर प्रिय का स्वप्न आएगा।

अलंकार– 'चन्द्र खिलौना' और 'पलक–पाँवड़ों' में रूपक है। अनुप्रास का भी प्रयोग हुआ है।

स्नेह जलाता है ....यह बत्ती।

शब्दार्थ– साख = प्रतिष्ठा। तत्ती = गर्म।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग– स्नेह के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए उर्मिला कहती है–

व्याख्या– तेल दीपक की बत्ती को प्रज्वलित करता है, फिर भी उसमें इतनी शक्ति है कि उसके कारण सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु भी दिखाई देने लगती है। उसी प्रकार जब हृदय में प्रेम की शिखा जलती है तो अन्तःकरण प्रकाशित हो उठता है।

दीपक की बत्ती को सम्बोधित करती हुई उर्मिला कहती है– हे सखि, तू अन्धकार में भी अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखती है। प्रातःकाल होने पर तू सूर्य की किरणों में अपने को मिटाकर राख रूप में परिणत हो जाती है। तेरे इस त्याग को देखकर पत्ती–पत्ती खिल उठती है। इस प्रकार दीपक का तेल उसकी बत्ती को जलाता है।

हे बत्ती, तू भय से कंपित मत हो। मैं अपने अंचल की ओट में करके तुझे बुझने नहीं दूंगी। एक–एक ईंट को लेकर कोसों तक फैले हुए दुर्ग का निर्माण करने की शक्ति हम में निहित है। तू ठण्डी होकर बुझ मत, वरन् तप्त होकर जलती रह।

विशेष– उर्मिला की स्थिति भी दीपक की बत्ती के समान है। दुःख के अन्धकार में अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखकर वह प्रियतम लक्ष्मण के चरणों में खो जाना चाहती है। प्रियतम का सहारा लेकर अपने जीवन को चंचल नहीं बनाना चाहती, बल्कि उसे स्थायित्व प्रदान करना चाहती है।

अलंकार– 'स्नेह' का अर्थ प्रेम और तेल होने के कारण श्लेष अलंकार है।

सखि, नील नभस्सर .... डरता डरता।

शब्दार्थ– नील नभस्सर =आकाश रूपी नीले सरोवर। हिम–बिन्दु= ओस की बूंदें। कर = हाथ।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रभात होने पर सूय का वर्णन करती हुई उर्मिला अपनी सखी से कहती है–

व्याख्या– हे सखि, नीले आकाश में ऊपर चढ़ता हुआ यह सूर्य ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे कोई हंस मानसरोवर में उतरकर तैरता हुआ आ रहा हो। अब आकाश में तारक रूपी एक भी मोती शेष नहीं रहा है। लगता है सूर्य रूपी हंस ने तारे रूपी सभी मोतियों को चुग लिया है। इस समय जो ओस की बूंदे शेष रह गई थीं, उनको भी इसने अपने पास रख लिया है। (सूर्य की किरणों से ओस–बिन्दु सूख जाते हैं) उसके हाथ में कहीं पृथ्वी के काँटे चुभ न जायें इस कारण वह अपने किरण रूपी हाथों को धीरे–धीरे और डरते–डरते पृथ्वी पर डाल रहा है।

विशेष– ये पंक्तियां कवि की छायावादी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालती हैं। नाद–सौन्दर्य का इसमें सुन्दर प्रयोग हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अलंकार– यह सवैया श्लेष और रूपक अलंकारों से पुष्ट है।

सफल है .... को घोष।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग– मेघों के वर्षा करने के कारण सब उनकी सराहना करते हैं। उर्मिला भी मेघों के संबंध में कहती है–

व्याख्या– उन्हीं बादलों की गर्जना वास्तविक रूप से सफल है, जो प्रत्येक बाँस की वृद्धि करते हैं, उन्हें वैभव और सन्तोष प्रदान करते हैं, जो स्वयं आकाश में विचरण करते हुए भी अपने जल से पृथ्वी को हरा–भरा रखते हैं। जल को भी वे मोती का स्वरूप प्रदान कर देते हैं। उनका कोष अक्षय है और वह कभी समाप्त नहीं होता है। वास्तव में ऐसे मेघों का गर्जन ही सफल है।

इन पंक्तियों से एक दूसरा अर्थ भी ध्वनित होता है। उन्हीं मनुष्यों का गर्जना उचित है जो अपने कुल की ही नहीं, दूसरों की वृद्धि, वैभव और ऐश्वर्य में सहायक होते हैं। जो स्वयं महान् होकर भी साधारण व्यक्तियों को सुख प्रदान करते हैं और निःस्वार्थ भाव से दान देते हैं उनकी दया का कोष अक्षय रहता है।

विशेष– यहाँ पर परोपकार की महत्ता सिद्ध की गई है। कहा जाता है कि स्वाति नक्षत्र में यदि जल की बूँद सीपी में गिरे तो वह मोती बन जाती है। इसी से कवि ने लिखा है– 'जल में मोती भरते हैं जो।''

अलंकार– 'वंश वंश' में श्लेष और पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।

निरख सखी, ... भर लाये।

शब्दार्थ– रंजन = प्रसन्न करनेवाले, लक्ष्मण। आतप= धूप। सर = तालाब।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग– वर्षा ऋतु के बीतने पर शरद ऋतु का आगमन होता है। इस समय सरोवरों में कमल खिल जाते हैं और वहाँ आकर खंजन पक्षी क्रीड़ा करने लगते हैं। खंजन को देखकर उर्मिला को लक्ष्मण की याद आ जाती है और वह कहती है–

व्याख्या– हे सखि, देख यह खंजन पक्षी आ गये हैं। इन खंजनों को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरे मनभावन प्रिय ने अपने नेत्र मेरी तरफ फेरे हैं। हे सखि, मेरे प्रियतम के शरीर का प्रकाश ही यहाँ धूप बनकर फैला हुआ है और उनके मन की प्रसन्नता के कारण ही ये सरोवर सरसित हो गये हैं। आज उन्होंने इस तरफ अपनी दृष्टि अवश्य डाली होगी, तभी तो उनकी गति के मूर्त रूप से हंस इधर उड़ आये हैं आज मेरा ध्यान करके वह निश्चय ही मुस्कराए होंगे, इसीलिए सरोवरों में कमल खिल उठे हैं। उनके लाल लाल होठों की मुस्कराहट की तरह सब तरफ बन्दुक के लाल पुष्प सुशोभित हो रहे हैं।

हे शरद ऋतु ! तेरा स्वागत है क्योंकि अपने बड़े भाग्य के कारण मैंने तेरे रूप में अपने प्रियतम के दर्शन किए हैं। आकाश ने ओस की बूंदों के रूप में तेरे ऊपर मोती न्यौंछावर किये हैं। मैं भी अपने अश्रुओं का अर्घ्य लेकर तेरे स्वागत के लिए तैयार हूँ।

विशेष– यहाँ शरद के रूप में, उर्मिला को लक्ष्मण के दर्शन होते हैं। इन पंक्तियों का भाव जायसी की निम्न पंक्तियों से मिलता है–

''नयन जो देखा कंवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हँस भा, दसन जोति नग हीर।।'' – 'पद्मावत'

अलंकार– अपन्हुति, उत्प्रेक्षा और सांगरूपक अलंकारों को प्रयुक्त किया गया है। प्रकृति के आलंकारिक रूप का आश्रय लेकर कवि ने लक्ष्मण के नेत्र और अधरों के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

कोक, शोक मत .... की रात।

शब्दार्थ– कोक = चकवा।

संदर्भ – पूर्ववत्।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग– रात्रि में चकवा–चकती बिछुड़ जाते हैं और करुण क्रंदन करते हैं। उन्हें सम्बोधित करते हुए उर्मिला कहती है–

व्याख्या– हे चकवे, तू शोक मत कर। हे चकवी, तेरी तरह मैं भी तो अपने प्रियतम के विरह के दुःख से पीड़ित हूँ। अतः तू मेरी बात पर ध्यान दे। तू धैर्य धारण करके मिलन के मधुर अवसर की प्रतीक्षा कर और इस समय जो कठिन परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं उनको ठीक प्रकार से सह। विरह की रात्रि समाप्त होते ही मिलन का सुप्रभात आयेगा। मेरा वह सुप्रभात ही तेरे सुख–सुहाग की रात होगी। (चकवा–चकती रात्रि में बिछड़ जाते हैं और प्रभात होने पर उनका मिलन होता है। अतः प्रभात ही उनके सुहाग की रात होती है।)

विशेष– यहाँ उर्मिला ने कोक से अपनी तुलना की है। उसके प्रति सहानुभूति व्यक्त हुई है।

अलंकार– काव्यलिंग और अनुप्रास अलंकार प्रयुक्त हुए हैं।

10.7 सारांश

इस इकाई के माध्यम से द्विवेदी युग के सर्वाधिक चर्चित एवं महत्वपूर्ण कवि मैथिलीशरण गुप्त का अध्ययन प्रस्तुत किया गया। मैथिलीशरण गुप्त और उनकी रचना 'साकेत' के माध्यम से उनके काव्य वैशिष्ट्य का विवेन–विश्लेषण करते हुए गुप्त जी के महत्त्व को प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया। उक्त अध्ययन को संक्षेप में निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है–

- मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सर्वाधिक ख्यातनाम कवि हैं, जिन्होंने आचार्य द्विवेदी की प्रेरणा से आधुनिक दृष्टिसम्पन्न काव्य रचना के माध्यम से ख्याति अर्जित की।
- आचार्य द्विवेदी ने नित नवीन विषयों पर काव्यसर्जन के लिए गुप्त जी को प्रेरित किया। परिणाम स्वरूप वे 'सरस्वती' के प्रमुख कवि के रूप में जाने जाने लगे।
- आचार्य द्विवेदी की महत् प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने भारतभारती जैसी युगांतरकारी काव्य की रचना की जो उस समय सर्वाधिक चर्चित और लोकप्रिय रचना थी।
- आचार्य द्विवेदी के सरस्वती (1908) में छपे एक लेख (कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता) से गुप्तजी ने रामकथा की उपेक्षित पात्र लक्ष्मण–पत्नी उर्मिला को अपनी काव्य रचना का आधार बनाया। उन्होंने उर्मिला के उज्ज्वल चरित्र की प्रतिष्ठापना के लिए 'साकेत' की रचना की।
- 'साकेत' रामकथा की परंपरा में अंतिम श्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है।
- 'साकेत' का नवम सर्ग हर दृष्टि से 'साकेत' का मेरुदंड है।
- 'नवम सर्ग' उर्मिला की विरह वेदना की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के कारण बहुत महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय कहा जा सकता है।
- उर्मिला की विरह दशाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति साकेत के 'नवम सर्ग' में हुई है।
- मैथिलीशरण गुप्त ने मानों नवम सर्ग की रचना के कारण ही पूरे 'साकेत' की रचना की।
- 'साकेत' के नवम सर्ग के काव्यवैशिष्ट्य के कारण गुप्त जी का नाम हिंदी काव्य जगत में बहुत आदर के साथ लिया जाता है।

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. साकेत एक अध्ययन – डॉ. नगेंद्र।
2. नया साहित्य – नए प्रश्न– आचार्य नंददुलारे वाजपेयी।
3. हिंदी साहित्य – बीसवीं शताब्दी– आचार्य नंददुलारे वाजपेयी।
4. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास– डॉ. बच्चनसिंह।
5. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेंद्र।

7. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – डॉ. बच्चनसिंह।

10.9 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. मैथिलीशरण गुप्त का परिचय देते हुए द्विवेदी युग में उनका महत्त्व और स्थान निर्धारित कीजिए।
2. मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं का विस्तार से परिचय दीजिए।
3. 'मैथिलीशरण गुप्त एवं उनका साकेत विषय' पर एक समीक्षात्मक लेख लिखिए।
4. साकेत के नवम सर्ग का काव्यवैशिष्ट्य स्पष्ट कीजिए।
5. नवम सर्ग के आधार पर उर्मिला के विरह की विशेषताएं उदाहरण सहित समझाइए।
6. नवम सर्ग के आधार पर उर्मिला की चारित्रिक विशेषताओं को समझाइए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. मैथिलीशरण गुप्त का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. मैथिलीशरण गुप्त की दो प्रतिनिधि रचनाओं का परिचय दीजिए।
3. मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं के नाम लिखिए।
4. साकेत के नवम सर्ग का सार संक्षेप लिखिए।
5. उर्मिला के चरित्र की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. मैथिलीशरण गुप्त किस युग के महत्त्वपूर्ण कवि माने जाते हैं ?
2. खड़ीबोली में सबसे चर्चित और लोकप्रिय पहली रचना किसे मानते हैं ?
3. किस रचना के आधार पर मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रकवि कहलाते हैं ?
4. रामकथा का अंतिम महाकाव्य किसे माना जाता है ?
5. मैथिलीशरण गुप्त किसकी प्रेरणा से काव्य रचना में प्रवृत हुए ?
6. गुप्त जी किस उपनाम से काव्य रचना करते थे ?
7. 'साकेत' का कौन सा सर्ग सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है ?
8. 'साकेत' की सबसे महत्त्वपूर्ण देन क्या है ?
9. उर्मिला किसकी पत्नी थी ?
10. गुप्त जी किस भक्ति के समर्थक माने जाते हैं ?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 11 जयशंकर प्रसाद

संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 जयशंकर प्रसाद : एक परिचय
11.3 जयशंकर प्रसाद का काव्य सौष्ठव
11.3.1 प्रसाद–काव्य में छायावादी प्रवृत्तियाँ
11.3.2 सौंदर्य भावना
11.3.3 प्रेम भावना
11.3.4 जीवन के बदलते मूल्यों का चित्रण
11.3.5 मानवतावादी दृष्टिकोण
11.3.6 आत्माभिव्यंजना
11.3.7 वेदना एवं करुणा का आधिक्य
11.3.8 रहस्य भावना
11.3.9 कल्पना का प्राचुर्य
11.3.10 नारीविषयक नवीन दृष्टिकोण
11.3.11 श्रृंगार भावना और एन्द्रिकता
11.3.12 प्रकृतिप्रेम
11.3.13 देशप्रेम
11.3.14 बौद्धिकता
11.3.15 भाषा में प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता एवं चित्रात्मकता
11.3.16 नूतन अलंकारों का प्रयोग
11.3.17 गीत एवं प्रगीत मुक्तक शैली
11.3.18 प्रसाद–काव्य के दोष
11.4 कामायनी का भावविधान
11.4.1 प्रसाद और भावविधान
11.4.2 कामायनी का भावविधान और उसकी विशेषताएँ
11.4.3 नवीन वर्ण्यविषय
11.4.4 पूर्ण रसानुभूति
11.4.5 प्रकृति चित्रण
11.4.6 दर्शनाभिव्यक्ति
11.4.7 रूपकत्व का समावेश
11.4.8 मनोवैज्ञानिकता
11.5 कामायनी का शिल्पविधान
11.5.1 भाषा
11.5.2 शब्दावली
11.5.3 मुहावरे–लोकोक्ति
11.5.4 शब्दशक्ति
11.5.5 कामायनी में कतिपय दोष
11.6 कामायनी की रस योजना
11.6.1 प्रमुख रस
11.6.2 वीररस
11.6.3 कामायनी का अंगी (प्रधान) रस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.7 मनु का चरित्र चित्रण
11.7.1 मनु का परिचय
11.7.2 कामायनी और मनु
11.7.3 तपस्वी
11.7.4 हिंसक यजमान
11.7.5 आनन्द अन्वेषी
11.7.6 कुछ चारित्रिक दोष
11.7.7 रूपकत्व का समावेश
11.8 श्रद्धा का चरित्र चित्रण
11.8.1 परिचय
11.8.2 अनिंद्य अन्तर्बाह्य सौन्दर्य
11.8.3 आंतरिक सौन्दर्य
11.8.4 नारी–सुलभ गुण–दोष
11.8.5 कर्त्तव्यनिष्ठा
11.8.6 आदर्श भारतीय नारी
11.8.7 प्रतीकात्मकता
11.9 व्याख्या खंड
11.9.1 मूलपाठ
श्रद्धा सर्ग
लज्जा सर्ग
इड़ा सर्ग
11.9.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
श्रद्धा सर्ग
लज्जा सर्ग
इडा सर्ग
11.10 सारांश
11.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
11.12 अभ्यास प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.0 प्रस्तावना

छायावाद के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद युगप्रवर्तक कवि हैं। वे न केवल एक सफल कवि के रूप में ख्यात हैं, वरन् एक सफल नाटककार, एक सफल कहानीकार, निबंधकार, उपन्यासकार की दृष्टि से भी बहुत प्रसिद्ध रचनाकार माने जाते हैं।

प्रसाद आधुनिक हिंदी के सर्वश्रेष्ठ कलाकार कहे जा सकते हैं क्योंकि वे आधुनिक काल के अनुपम महाकाव्य 'कामायनी' के स्रष्टा हैं, अतीव मार्मिक काव्य 'आंसू' के विरही गीतकार हैं, 'बीती विभावरी जाग री' तथा हे, लाजभरे सौंदर्य' जैसे, अमर गीतों के रचयिता हैं।

आरंभ में ब्रजभाषा में काव्यरचना करनेवाले जयशंकर प्रसाद जब खड़ीबोली में लिखने लगे, तो खड़ीबोली को उन्होंने उसके उच्चस्तरीय स्वरूप में ढालकर प्रस्तुत कर दिया। 'कामायनी' प्रसाद की काव्य प्रतिभा का स्थायी आधार है, उनकी लोकप्रियता का उच्चशिखर भी।

'कामायनी' प्रसाद की प्रतीक बनचुकी है। शांति–प्रिय द्विवेदी ने 'कामायनी' को छायावाद का परमग्रंथ मानते हुए उसे 'छायावाद का उपनिषद' घोषित किया है। छायावादी काव्य, शिल्प का सुमेरु है, आनंदवाद का प्रतीक है। हालांकि 'कामायनी' अपने रूपकत्व अपने दर्शन एवं अपने प्रतीकत्व की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है, तथापि काव्यत्व की दृष्टि से उसका अमर साहित्यिक गौरव उसके श्रद्धा, काम, लज्जा और इड़ा सर्गों में प्राप्त महान कविता के कारण है। इन सर्गों में प्रसाद की काव्य प्रतिभा चरम पर दृष्टिगत होती है। 'काम' सर्ग का लालित्य, लज्जा सर्ग का बिंबालेखन और सौंदर्य, इड़ा सर्ग की उदात्तता प्रसाद को विश्वस्तरीय कवि घोषित करती है। वस्तुतः

'कामायनी' का अध्ययन इस दृष्टि से बहुत प्रासंगिक एवं रोचक होगा, क्योंकि वह हिंदी के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में ही नहीं विश्व के श्रेष्ठ महाकाव्यों में एक है।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई में छायावादी कविता के वास्तविक प्रणेता छायावाद के सर्वप्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद और उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण रचना 'कामायनी' के अध्ययन से संबंधित सामग्री दी गई है। जिसका उद्देश्य जयशंकर प्रसाद और 'कामायनी' का विस्तृत विवेचन – विश्लेषण प्रस्तुत करना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- छायावाद के प्रमुख स्तंभ जयशंकर प्रसाद का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रसाद की महत्त्वपूर्ण रचनाओं के विषय में जान सकेंगे।
- जयशंकर प्रसाद की काव्यगत विशेषताओं को छायावादी काव्य के परिप्रेक्ष्य में समझ सकेंगे।
- प्रसाद की सर्वाधिक सफल रचना 'कामायनी' का विस्तृत परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- 'कामायनी' के विविध पक्षों पर आलोचनात्मक दृष्टि से विचार कर सकेंगे।
- 'कामायनी' के श्रद्धा, लज्जा एवं इड़ा सर्गों के विषय में विशेष रूप से जान सकेंगे।
- उपर्युक्त तीनों सर्गों से संबंधित महत्त्वपूर्ण काव्यांशों की प्रामाणिक व्याख्याओं से परिचित हो सकेंगे।
- समग्रतः प्रसाद और उनकी रचना 'कामायनी' के परिप्रेक्ष्य में उनका समग्र दृष्टि से मूल्यांकन कर सकेंगे।

11.2 जयशंकर प्रसाद : एक परिचय

छायावाद के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिन्दी कविता में सांस्कृतिक चेतना के कवि हैं। ऐसे महान् साहित्यकार–काव्यकार एवं महाकाव्यकार का जन्म सन् 1889 में काशी के एक सुप्रसिद्ध कुलीन घराने में हुआ। उनके पिता एक बहुत बड़े व्यापारी थे तथा अपने गांव में अत्यन्त प्रसिद्ध थे। पिता का नाम देवीप्रसाद तथा पितामह का नाम शिवरतन था। दोनों ही तम्बाकू और सुंघनी के व्यापारी होने के कारण सुँघनी साहु कहलाते थे।

प्रसाद आरम्भ से ही साहित्यिक प्रवृत्ति से युक्त थे। बचपन में इनकी शिक्षा क्वींस कालेज में हुई, लेकिन सातवीं कक्षा तक स्कूली शिक्षा के बाद इन्हें घर पर ही अध्ययन करना पड़ा। इन्होंने घर पर ही संस्कृत, फारसी व अँगरेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। प्रसाद का अभी विद्यार्थी जीवन चल ही रहा था कि दुर्भाग्य अपना विकराल रूप लेकर प्रसाद के जीवन में प्रकट हो गया। बारहवें से सत्रहवें वर्षों के अन्तराल में माता, पिता व भाई, बहन के देहान्त से प्रसाद का कोमल हृदय चूर–चूर हो गया । इस आघात से उनका हृदय कचोट कर रह गया। समस्त गृहस्थी का उत्तरदायित्व इस प्रकार शीघ्र ही प्रसाद के कंधों पर आ गया। प्रसाद ने अपने पिता के कारोबार को संभाला, लेकिन मुकदमेबाजी इत्यादि से ऋण भी चढ़ गया, जिसको प्रसाद ने अपने परिश्रम से उतारा।

प्रसाद प्रारम्भ से कविता करते थे। यह प्रभाव शायद उनके पिता का था, क्योंकि पिता बड़े ही कला प्रेमी व कला निष्णात थे। उनके घर पर गोष्ठियाँ, सभाएँ व कवि सम्मेलन होते रहते थे। प्रसाद ने अपनी प्रथम कविता किस उम्र में प्रारम्भ की, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि प्रसाद अपने बड़े भाई से छिप–छिपकर कवितायें लिखते थे।

प्रारम्भ में तो ब्रजभाषा में ही उन्होंने कवितायें रचीं ये कवितायें 'इन्दु' नामक मासिक पत्रिका में छपीं। इनकी प्रारम्भिक रचनाओं का संग्रह 'चित्राधार' में मिलता है। प्रसाद ने अपने बहुत छोटे से जीवन में ही हिन्दी साहित्य की अत्यधिक सेवा की। प्रसाद भावुक, सहृदय व गहन विचारक थे। एक तरफ वह कवि थे, तो दूसरी तरफ दार्शनिक। एक तरफ वह शैव थे तो दूसरी तरफ बौद्ध धर्म में भी रुचि रखते थे। एक तरफ वह आधुनिक समस्याओं की तरफ आकृष्ट होकर उसके उपाय ढूंढ़ने में व्यस्त थे, तो दूसरी तरफ भारत की अतीतकालीन सभ्यता व संस्कृत से भी प्रभावित थे। यही कारण है कि प्रसाद की रचनाओं के विषय अधिकांशतः पौराणिक व ऐतिहासिक हैं। प्रसाद का जीवन अद्भुत सम्मिश्रण का जीवन था। उसमें एक विराट चेतना के दर्शन होते हैं। प्रसाद वास्तव में भारतीय संस्कृति का जीता जागता रूप थे। प्रसाद ने जीवन के कटुक्षणों को भोगा था, परन्तु ये संघर्ष उनको अधिक यातना न पहुंचा सके, क्योंकि 1937 में राज्यक्ष्मा से पीड़ित होकर वह स्वर्गवासी हुये। 48 वर्ष की अल्प अवस्था इतनी सारी साहित्यिक कृतियों की रचना करना केवल प्रसाद जैसी दिव्य प्रतिभा का ही काम था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसाद की प्रतिभा एकोन्मुखी नहीं थी बल्कि अपने समय की प्रचलित प्रत्येक साहित्यिक विधा में आपने रचनायें कीं । प्रसाद ने गद्य के साथ उपन्यास, नाटक, कहानी, रेखाचित्र व निबन्ध इत्यादि, इन सभी में विपुल साहित्य की रचना की।

उनके इसी प्रयास ने उन्हें उच्च साहित्यकारों की पंक्ति में आसीन किया है। प्रसाद जी की प्रसिद्ध रचनायें निम्न हैं –

काव्य–संग्रह – करुणालय (1913), प्रेम पथिक (1914), महाराणा का महत्त्व (1914), चित्राधार (1918), कानन कुसुम (1918), आँसू (1925), झरना (1927), लहर (1935) और कामायनी (1936)।

नाट्य रचनायें – सज्जन, कल्याणी, परिणय, करुणालय, प्रायश्चित, राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कंदगुप्त, एक घूँट, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी।

उपन्यास – 'कंकाल', तितली व इरावती।

कहानी संग्रह – छाया, प्रतिध्वनि, आकाशद्वीप, आँधी व इन्द्रजाल।

प्रसाद के कुछ मुख्य काव्य संग्रहों का परिचय –

कानन कुसुम : यह एक पौराणिक कथात्मक काव्य है जो हृदय की भावुकता, करुणा व आतुर वेदना से परिपूर्ण है। इसकी भाषा अधिक क्लिष्ट नहीं है। इसमें गत्यवरोध व प्रवाह नहीं है। शिथिलता है, लेकिन भाषा में सर्वत्र प्रसाद गुण विद्यमान है। कहीं–कहीं कवि ने अलंकारों का भी बहुलता में प्रयोग किया है।

करुणालय : प्रारंभ में यह 'इन्दु' पत्रिका में प्रकाशित होती रही। बाद में संग्रह रूप में प्रकाशित हुई। यह एक गीतिनाट्य है। इसमें भाव, भाषा व शैली का सुन्दर समन्वय है। तत्कालीन सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों पर व्यंग्य है। अतुकांतता होने के कारण इसमें कहीं–कहीं गति में शिथिलता है।

'नौके ! धीरे और जरा धीरे चलो,
आह ! तुम्हें क्या जल्दी है उस ओर की,
कहीं कहीं उत्पात प्रभंजन का यहाँ,
मलयानल अपने हाथों में है धरे,

प्रेमपथिक : इसमें कवि के उच्च कोटि के भावों का प्रसार हुआ है। इसमें भाषा भी अधिक संस्कृतनिष्ठ हो गई है। इसमें प्रेम, त्याग और बलिदान जैसी उच्च भावनाओं का समावेश है। कवि अपनी गम्भीर वाणी में कहता है – 'इस पथ का उद्देश्य नहीं है, शान्त भवन में टिके रहना, किन्तु पहुंचना उस सीमा पर, जिसके आगे राह नहीं।'

झरना : धीरे–धीरे प्रसाद की कविता निखरती ही चली गई। झरना में आकर प्रसाद का भावलोक व कल्पनालोक अधिक स्पष्ट हो गया। यहाँ पर भावों में गाम्भीर्य व भाषा में प्रभावोत्पादकता आ गई। कवि की भावना कहीं भी शिथिल नहीं, बल्कि इसमें बड़ी ही तीव्र गति से झर–झर करके बहती है। इसमें श्रृंगार रस की प्रमुखता है। छायावाद की काव्य प्रवृत्तियाँ भी दिखाई देती हैं। कवि का यह काव्य विलक्षण है। इसमें अभिव्यक्ति की सुन्दर छटा है। सूक्ष्म भावनाओं का सुन्दर व चित्रोपम वर्णन है। इसमें अभिव्यक्ति की सुन्दर छटा है। 'किरण' कविता में कवि कहता है–

'किरण तुम क्यों बिखरी हो आज, रंगी हो तुम किसके अनुराग।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली सी फिर भी मौन,
चपल ! ठहरो कुछ लो विश्राम, चल चुकी हो पथ अनन्त।।'

आँसू : आँसू प्रसाद के हृदय का विरह काव्य है। इसमें कवि की तीव्र अनुभूतिशीलता व भावुकता प्रगट हुई है। हृदय के उद्गार अगणित रूप से इस काव्यकृति के रूप में फैल गए हैं। यह भी श्रृंगार के विप्रलम्भ के रूप पर आधारित है। यह शुद्ध विरह काव्य है। आँसू काव्य में भौतिकता होने पर भी अश्लीलता या मांसलता नहीं है।

''छिल–छिल कर छाले फोड़े, मल–मल कर मृदुल चरण से।
धुल–धुल कर वह रह जाते, आँसू करुणा के कण से।''

लहर : लहर में कवि के हृदय से निकले हुये कोमल कांत उद्गार हैं, जिनमे कवि का आशावादी रूप मुखरित हुआ है। इन कविताओं में काव्यात्मकता व कल्पनामयता का अद्भुत सम्मिश्रण है। कवि का यह प्रसिद्ध गीत उसके प्रकृति प्रेम के रूप को भी स्पष्ट करता है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'बीती विभावरी, जाग री, अम्बर पनघट में डुबा रही
तारा घट ऊषा नागरी।''

कामायनी : प्रसाद का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है। प्रसाद की चरमकला का प्रतीक चिह्न, कल्पनाओं व प्रतीकों का अक्षय भण्डार। यह महाकाव्य एक शाश्वत काव्य है, क्योंकि इसमें मानव की स्वाभाविक मनोवृत्ति को ही मूर्तरूप दिया गया है। चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, ईर्ष्या, द्वन्द्व, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन व रहस्य इत्यादि सर्गों में इसका विस्तृत कथा भाग विभाजित है। यह ग्रन्थ भाषा व शैली दोनों ही दृष्टियों से पूर्णतः परिपक्व है।

भाषा व शैली : प्रसाद जी प्रारम्भ में ब्रज भाषा में रचना करते थे, लेकिन बाद में धीरे–धीरे खड़ीबोली में ही आपने काव्य की रचना प्रारम्भ की। प्रसाद जी को संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। अतः उनकी खड़ीबोली में संस्कृत के कुछ शब्दों की अधिकता है। प्रसाद जी की भाषा की यह विशेषता है कि वह अपने स्वरूप को निरन्तर बदलती रहती है। प्रसंगानुसार कहीं सरल, कहीं क्लिष्ट, कहीं अभिधात्मक, तो कहीं व्यंजनात्मक हो जाती है। उसमें सर्वत्र एक प्रभाव, प्रवाह व शिष्टता रहती है। प्रसाद जी की भाषा में गम्भीरता है परन्तु बोझिलता नहीं। उनकी भाषा में उनके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है।

भाषा के समान ही प्रसाद जी की शैली भी अतीव आकर्षक व विषयानुकूल है। प्रसाद जी की शैली में भी सर्वत्र मौलिकता व नवीनता है। प्रसाद जी की शैली गम्भीर, सरल, सरस, प्रभावपूर्ण व परिपक्व है। उनकी शैली की स्पष्टता ही उसका सबसे प्रधान गुण है। कवि ने बड़ी ही कुशलता व सतर्कता से शब्दों का चुनाव किया है और उसे अपने काव्यों में गूंथा है, जिससे कवि अनावश्यक विस्तार के दोष से बचा है।

प्रसाद ने मुख्य रूप से श्रृंगार रस को अपनाया है। वह प्रेम रस के कवि हैं, लेकिन उन्होंने करुण रस, वीर रस व शांत रस को भी यथा स्थान प्रयोग किया है। प्रसाद के काव्य में साधारणीकरण की अद्भुत क्षमता है। सहृदय पाठकों का शीघ्र ही तादात्म्य हो जाता है। रस की तरलता व सरसता से प्रसाद का सम्पूर्ण काव्य रोमांचित व नवीन है।

कवि ने जिन अलंकारों का प्रयोग किया है, प्रसंगानुकूलता व आवश्यकता को देखकर किया है। उन्होंने अपने काव्य को व्यर्थ में बोझिल बनाने का प्रयास नहीं किया है। यद्यपि प्रसाद ने प्राचीन परम्परागत अलंकारों का ही प्रयोग किया है, जैसे – उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, पुनरुक्तिप्रकाश, अनुप्रास, भ्रान्तिमान, सन्देह, प्रतीप, व्यतिरेक इत्यादि, लेकिन उनमें भी नवीनता है। प्रसाद की उपमान शक्ति बिल्कुल मौलिक है, उपमायें नितान्त अछूती व नई हैं। प्रसाद पर आधुनिक शैली तथा अलंकारों का भी प्रभाव पड़ा है। अतः उन्होंने मानवीकरण, मूर्त का अमूर्तीकरण व अमूर्त का मूर्तीकरण, विशेषण विपर्यय इत्यादि का भी सफल प्रयोग किया है। मानवीकरण ने तो प्रसाद के काव्य में प्राणों का संचार किया है, क्योंकि कवि को प्रत्येक वस्तु में एक सजीव सत्ता के दर्शन होते हैं।

प्रसाद को संगीत व लय का भी पर्याप्त ज्ञान था। वह कला, संगीत व काव्य तीनों में काफी निपुण थे। यही कारण है कि उनके गीतों व काव्य संग्रहों में संगीत का व लय का बन्धन है। वह निश्चित लय से चलती है। लय कहीं बिगड़ता नहीं। प्रसाद ने अपनी कविता को विविध छन्दों में लिखा। उन्हें संस्कृत व अंग्रेजी सभी प्रकार के छन्दों का ज्ञान था। प्रसाद जी की प्रतिभा ने विषयानुसार कई नवीन छन्दों का निर्माण किया। उन्होंने अंग्रेजी छन्दों त्रिपदी, सानेट इत्यादि के आधार पर भी कवितायें लिखीं तथा लावनी, नाटक, रूपमाला, रोला, श्रृंगार व पाराकुलक इत्यादि छन्दों में भी दक्षता दिखाई। प्रसाद वास्तव में छायावादी कवि थे। अतः उन पर छायावाद की सभी विशिष्टताओं का प्रभाव दिखाई देता है।

प्रसाद कोमल भावनाओं के कवि हैं। वेदना, प्रेम, देशप्रेम व प्रकृति चित्रण जैसे सुकुमार विषयों पर उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। उनका प्रकृति चित्रण बहुत ही विशद है। कवि ने पर्याप्त समय बचाकर प्रकृति सौन्दर्य को उन्मुक्त रूप से निहारा है और फिर प्रकृति की जड़ वस्तुओं को भी संवेदनशील बनाकर प्रस्तुत कर दिया है। उनका प्रकृति चित्रण सूक्ष्म व रहस्यमय है। वह प्रकृति के इन पदार्थों में भी उस चिरंतन ईश्वर की छवि देखता है। प्रसाद का प्रकृति चित्रण बेजोड़ है।

वास्तव में प्रसाद की अलौकिक प्रतिभा ने अपने युग का सफल प्रवर्तन किया, उनकी प्रतिभा चहुँमुखी होकर प्रवाहित हुई। समन्वयवादी होने के कारण दो विरोधी भावों का सुन्दर सम्मिश्रण उनके काव्य में हुआ है। प्रसाद की प्रतिभा ने आधुनिक जीवन के निराश व हताश मानव को उसकी अतीतकालीन गौरवान्वित संस्कृति की दुहाई देकर पुनर्जीवित किया। वस्तुतः प्रसाद का यह कार्य स्तुत्य है। प्रसाद केवल कल्पनालोक बिहारी ही नहीं, बल्कि उन्होंने यथार्थ जीवन की व समसामयिक युग की समस्याओं को लिया है और उस पर पर्याप्त विचारविमर्श भी किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वस्तुतः प्रसाद का काव्य केवल एक युग का नहीं, बल्कि युगों–युगों का साहित्य है। वह मानव की मनोवृत्तियों का शाश्वत इतिहास है।

11.3 जयशंकर प्रसाद का काव्य सौष्ठव

जयशंकर प्रसाद युग–प्रवर्त्तक कवि थे। उन्होंने अपनी दिव्य प्रतिभा के फलस्वरूप हिन्दी काव्य को नवीन दिशा एवं आलोक प्रदान किया। परम्पराओं और रूढ़ियों में जकड़ी कविता–कामिनी को प्रसाद ने मुक्त करके नव जीवन दिया। प्रसाद की नवोन्मेषशालिनी कल्पना ने कविता – कामिनी का ऐसा भव्य श्रृंगार किया जिसे देखकर आधुनिक काल में नूतन काव्य धारा का प्रवर्तन किया, जिसे हम 'छायावाद' के नाम से जानते हैं।

11.3.1 प्रसाद – काव्य में छायावादी प्रवृत्तियाँ

प्रसाद छायावाद के प्रवर्त्तक कवि हैं। उन्होंने द्विवेदीयुगीन काव्य–धारा में युगानुरूप क्रान्ति उपस्थित कर, छायावाद को स्थापित किया। प्रसाद की सभी कृतियों – ऑसू, लहर, झरना, प्रेमपथिक इत्यादि में छायावादी प्रवृत्तियाँ व्यापक रूप से देखने को मिलती हैं। प्रसाद कृत महाकाव्य 'कामायिनी' तो छायावाद का गौरव – ग्रन्थ है, जिसमें प्रसाद का छायावादी रूप चरमोत्कर्ष पर मुखर हुआ है। प्रसाद काव्य की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत हैं –

भाव–पक्षीय विशेषताएँ

11.3.2 सौंदर्य भावना

सौंदर्य – अंकन छायावादी कवियों की आधारभूत विशेषता है। छायावादी काव्य में सौंदर्य का व्यापक एवं सूक्ष्म चित्रण हुआ है। छायावादी कवि सृष्टि के कण–कण में सौंदर्य के दर्शन करता है। वह सौंदर्य की आभा से इतना अभिभूत है कि उसकी आंखों में 'सौंदर्य की चंचल कृतियाँ' रहस्य बनकर नाच रही हैं। प्रसाद भी सौंदर्य के उपासक हैं। उन्होंने अपने काव्य में सौंदर्य का अत्यन्त सूक्ष्म एवं विराट–चित्रण किया है। सौंदर्य की परिभाषा देते हुये प्रसाद 'कामायनी' के लज्जा सर्ग में कहते है –

''उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौंदर्य जिसे सब कहते हैं।
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं।''

'ऑसू' में प्रसाद अपनी प्रियतमा की छवि को अपलक नयनों से निहारते हैं–

''मैं अपलक इन नयनों से निरखा करता उस छवि को,
प्रतिभा – डाली भर कर लाता देता दान सुकवि को।''

11.3.3 प्रेम भावना

छायावाद मूलतः प्रेम–काव्य है। प्रसाद ने अपने काव्य में प्रेम का ऐसा दीप प्रज्वलित किया है जिसकी शिखा से प्रस्फुटित होनेवाली किरणों ने सम्पूर्ण मानवता को वशीभूत कर लिया है। 'प्रेम–तरु' नामक गीत में प्रसाद का प्रेम वर्णन उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है–

''घने प्रेम – तरु तले
बैठ छाह लो भव–आतप से तापित और जले।
छाया है विश्वास की श्रद्धा सरिता कूल
सिंची ऑसुओं से मृदुल है परागमय धूल,

मिलो स्नेह से गले।
घने प्रेम – तरु।''

'कामायनी' में प्रेम के उदात्त रूप के दर्शन होते हैं, जहां कवि की समस्त सृष्टि ही मूल शक्ति की प्रेमकला प्रतीत होती हैं –

''यह लीला जिसकी विकासमयी
वह मूल शक्ति की प्रेम कला।
उसका संदेश सुनाने को,
संसृति में आयी यह अमला।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.3.4 जीवन के बदलते – मूल्यों का चित्रण

छायावादी कवि प्राचीन जीवन मूल्यों को सड़ा – गला बताकर उनका विरोध करता है। उसे थोथी नैतिकता, रूढ़ि एवं परम्परा बिल्कुल स्वीकार्य नहीं है। वह समस्त पुरातन जीवन मूल्यों को बदलने का पक्षपाती है। इसीलिये आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन कवियों के विषय में कहा है– ''मानवीय आचारों, क्रियाओं, चेष्टाओं और विश्वासों के बदलते हुये मूल्य को अंगीकार करने की प्रवृत्ति'' इन कवियों में थी। यही इन कवियों की विद्रोह भावना है। छायावादी कवि प्रेम के क्षेत्र में स्वच्छन्दतावादी और धार्मिक बन्धनों के प्रति अवज्ञावादी हैं। प्रसाद ने भी छायावाद की इस प्रवृत्ति को अंगीकार करते हुये पुरातन जीवनमूल्यों को बदलने की बात अपने काव्य में यत्र–तत्र कही है।

11.3.5 मानवतावादी दृष्टिकोण

छायावाद मानवतावादी काव्य है, उसमें मानव का महत्त्व सर्वोपरि है। छायावाद की मानवतावादी दृष्टि का विकास रवीन्द्र और अरविन्द के दर्शन के आधार पर हुआ है। प्रसाद मानवता के प्रति असीम श्रद्धा रखनेवाले कवि हैं। उन्हें विश्वव्यापी मानवता के कल्याण की चिन्ता है। तभी तो वे 'कामायनी' में कहते हैं–

''चेतना का सुन्दर इतिहास,
अखिल मानव भावों का सत्य।
विश्व हृदय पटल पर दिव्य,
अक्षरों से अंकित हो नित्य।''

11.3.6 आत्माभिव्यंजना

छायावादी कवियों ने वैयक्तिक चिन्तन को विशिष्ट महत्त्व दिया है। इसीलिये छायावाद में वैयक्तिक भावनाओं का विकास हुआ हैं। छायावाद का कवि 'अहम्' के शिकन्जे में जकड़ा हुआ है। वह सम्पूर्ण वस्तु–जगत को 'अहम्' के तराजू पर तोलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आत्माभिव्यंजना की यह प्रवृत्ति ही छायावादी काव्य को व्यक्तिवादी बना देता है। प्रसाद का आँसू काव्य इस विशेषता का सुन्दर उदाहरण है, जिसमें कवि ने अपनी निजि अनुभूति को चित्रित किया है। कवि उस क्षण को याद करके भाव विभोर हो उठता है जब उसने प्रथम बार अपनी प्रेयसी को देखा था –

''मधु राका मुसक्याती थी पहले देखा जब तुमको,
परिचित से जाने कब के तुम लगे उसी क्षण हमको।''
कवि रो–रोकर, सिसक–सिसककर अपनी प्रणय कहानी को सुना रहा है –
''रो–रो कर, सिसक–सिसक कर,
कहता मैं करुण कहानी
तुम सुमन नोचते, फिरते,
करते जानी अनजानी।''

11.3.7 वेदना एवं करुणा का आधिक्य

छायावाद में वेदना एवं करुणा की तीव्र अनुभूति देखने को मिलती है। प्रसाद ने तो सृष्टि का आरम्भ ही वेदना से माना है –

''निकल रही थी मर्म वेदना,
करुणा विकल कहानी–सी।''

'कामायनी' के 'आशा' सर्ग में मनु की हार्दिक व्यथा कुछ इस प्रकार प्रस्फुटित होती है–

''कब तक और अकेले? कह दो,
हे मेरे जीवन बोलो ?
किसे सुनाऊँ कथा ? कहो मत,
अपनी निधि न व्यर्थ खोलो।''

'आँसू' प्रसाद की विरह – भावना का मार्मिक काव्य है, जिसमें वेदना और करुणा का असीम सागर लहरा रहा है–

''इस करुणा–कलित हृदय में अब विकल रागिनी बजती,
क्यों हा हाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मानस–सागर के तट पर क्यों लोल लहर की छातें,
कल–कल ध्वनि से कहती हैं कुछ विस्मृत बीतीं बातें ?''

11.3.8 रहस्य भावना

आत्मा और परमात्मा की चिन्तन शैली का नाम रहस्यवाद है। अनेक सुधी आलोचक रहस्यवाद को छायावाद का प्राण स्वीकार करते हैं। महादेवी वर्मा कहती हैं –

''विश्व के अथवा प्रकृति के सभी उपकरणों में चेतना का आरोप छायावाद की पहली सीढ़ी है तो किसी असीम के प्रति अनुरागजनित आत्म – विसर्जन का भाव अथवा रहस्यवाद छायावाद की दूसरी सीढ़ी है।'' प्रसाद–काव्य में रहस्यवादी भावना का व्यापक चित्रण देखने को मिलता है। प्रसाद की रहस्य भावना निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शनीय है –

''महानील उस परम व्योम में
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान,
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण,
जिसका करते थे संधान।

11.3.9 कल्पना का प्राचुर्य

छायावादी कवि होने के कारण प्रसाद के काव्य में कल्पना का प्राचुर्य है। प्रसाद की कल्पना नवोन्मेषशालिनी है, जिसमें सौंदर्य के शत–शत चित्र साकार हो उठते हैं –

''चंचला स्नान कर आवे चन्द्रिका पर्व में जैसी,
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी।''

11.3.10 नारीविषयक नवीन दृष्टिकोण

छायावाद ने नारी के उदात्त स्वरूप का उच्च मूल्यांकन किया। छायावादी कवियों के लिये नारी भोग की वस्तु नहीं, अपितु प्रेम, ममता और श्रद्धा की साकार प्रतिमा है। तभी तो प्रसाद कहते हैं –

''तुम देवि ! आह कितनी उदार,
वह मातृभूमि है निर्विकार !
हे सर्व मंगले ! तुम महती,
सबका दुःख अपने पर सहती !
मैं भूला हूँ तुमको निहार,
नारी–सा ही ! वह लघु विचार।''

11.3.11 शृंगार – भावना और ऐन्द्रिकता

छायावाद मूलतः सौंदर्य और प्रेम का काव्य है। लेकिन कहीं – कहीं ऐन्द्रिकता और अश्लीलता की भावना कवियों में पायी जाती है। प्रसाद की कृतियों में शृंगार–भावना की सूक्ष्मता, शुद्धता एवं सत्यता दर्शनीय है। 'आँसू' काव्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है, जिसमें शृंगार–भावना का भव्य रूप मुखर हुआ है–

''शशि मुख पर घूंघट डाले
आँचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली में
कौतूहल–से तुम आये।।''

11.3.12 प्रकृति प्रेम

छायावादी कवियों को प्रकृति से विशेष प्रेम है, इसीलिये वे प्रकृति को कभी नारी के रूप में देखते हैं तो कभी उसकी छवि में किसी प्रेयसी के सौंदर्य – भाव का साक्षात्कार करते हैं। प्रसाद ने प्रकृति का विशद चित्रण किया है। प्रसाद ने प्रकृति को संचेतन रूप में देखा है, यही कारण है कि उनके काव्य में प्रकृति का मानवीकरण हुआ है। 'कामायनी' में रात्रि को नारी के रूप में प्रस्तुत करते हुये प्रसाद कहते हैं –

''पगली हॉं, सम्भाल कैसे छूट पड़ा तेरा ऑंचल ?
देख बिखरती है मणिराशि अरी उठा वेसुध चंचल ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

फटा हुआ था नील वसन क्या, ओ यौवन की मतवाली।
देख अंकिचन जगत् लूटता तेरी छवि भोली–भाली।''

11.3.13 देशप्रेम

छायावादी कविता अपने युग के प्रति उदासीन न थी। राजनैतिक क्षितिज पर उभरता हुआ क्रान्ति का स्वर एक नवीन इतिहास का पृष्ठ पलट रहा था। इसलिये इस काव्य में स्वदेश–प्रेम की भावना व्यापक रूप में निरूपित हुई है–

''अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।
सरस, तामरस गर्भ–विभा पर
नाच रही तरु–शिखा मनोहर ;
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।''

अन्यत्र स्थल पर प्रसाद लिखते हैं –

''जिए तो सदा इसी के लिये,
रहे अभिमान, रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व,
हमारा प्यारा भारतवर्ष ।''

11.3.14 बौद्धिकता

छायावादी काव्य पर विज्ञान के विकास का भी प्रभाव पड़ा है, इसी कारण इस काव्य में बौद्धिकता का पर्याप्त समावेश हुआ है। प्रसाद ने 'कामायिनी' में इड़ा का सौंदर्य वर्णन करते समय बौद्धिकता का परिचय दिया है–

''बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल
यह विश्व–मुकुट–सा उज्ज्वलतम,
शशि खण्ड सदृश था स्पष्ट भाल।''

कला पक्षीय विशेषताएँ

11.3.15 भाषा में प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता एवं चित्रात्मकता

छायावादी कवियों ने भाषा के क्षेत्र में अनेक नूतन विशिष्टताओं का उन्मेष किया है। प्रसाद ने भाषा सौष्ठव में प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता एवं चित्रात्मकता का विशिष्ट आकर्षण है।। प्रतीकों के माध्यम से प्रसाद ने अपने अन्तस् की गहनता, विदग्धता, भावुकता और मार्मिकता को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है। हिमगिरि, नर्तित नरेश, मानसरोवर आदि ऐसे ही प्रमुख प्रतीक हैं जिनका प्रयोग 'कामायनी' महाकाव्य में हुआ है। भाषा में ध्वन्यात्मकता से विशिष्ट सौंदर्य उत्पन्न हो जाता है–

''धंसती धरा धधकती ज्वाला,
बन ज्वालामुखियों के निश्वास,
और संकुचित क्रमशः उनके,
अवयव का होता था ह्रास।''

भाषा में लाक्षणिकता का उदाहरण देखिए–

''मानस सागर के तट पर क्यों लोल लहर की घातें।
कहती हैं कलकल ध्वनि से कुछ विस्मृत बीती बातें।''

11.3.16 नूतन अलंकारों का प्रयोग

छायावाद में अनेक नूतन अलंकारों का प्रयोग किया गया है। प्रसाद ने भी मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, ध्वन्यार्थ व्यंजना आदि नूतन अलंकारों का प्रयोग किया है।

प्रसाद द्वारा प्रयुक्त विशेषण विपर्यय अलंकारों का उदाहरण प्रस्तुत हैं –

''अभिलाषाओं की करवट फिर तुम सुप्त व्यथा का जगना।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उपचार वक्रता अलंकार का उदाहरण –

"बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।"

11.3.17 गीत एवं प्रगीत मुक्तक शैली

छायावादी काव्य में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से देखने को मिलती है। प्रसाद ने चिन्ता, आशा, लज्जा, श्रद्धा आदि अमूर्त भावों को भी मूर्त स्वरूप प्रदान किया है। 'चिन्ता' जैसे अमूर्त भाव का मूर्त रूप देखिये –

"ओ चिन्ता की पहली रेखा
अरी विश्व वन की व्याली।
ज्वालामुखी स्फोट को भीषण
प्रथम कम्प–सी मतवाली।"

11.3.18 प्रसाद –काव्य के दोष

प्रसाद के काव्य में जहाँ छायावादी काव्य की विशेषताएँ विद्यमान हैं वहीं छायावादी काव्य के अनेक दोष भी उनमें देखने को मिलते हैं, यथा –

1. घोर वैयक्तिकता।
2. प्रतीकात्मकता के कारण भावों में गूढ़ता।
3. वास्तविकता के स्थान पर कल्पना और भावना का प्राचुर्य।
4. केवल प्रेम का ही अंकन।
5. जीवन के केवल कोमल पक्ष का अंकन।

प्रसाद के काव्य में छायावाद के उपरोक्त दोष होने पर भी उनके महत्त्व पर किसी प्रकार का आघात नहीं लगता।

11.4 कामायनी का भावविधान

11.4.1 प्रसाद और भावविधान

अपने वैयक्तिक जीवन में और कवि होने के नाते भी प्रसाद जी स्वभावतः ही भावुक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनकी तो स्पष्ट धारणा (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध) थी कि "काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है। .... वह एक श्रेयमयी प्रेम रचनात्मक ज्ञान–धारा है।" तथा .... "जहाँ आत्मानुभूति की प्रधानता है, वहीं अभिव्यक्ति अपने क्षेत्र में पूर्ण हो सकी है।" उसी से प्रसाद जी ने अपने सम्पूर्ण काव्य–कृतित्व में भावानुभूति को प्रधानता दी है और अलंकारादि को साधन मात्र ही माना है।

11.4.2 कामायनी का भावविधान और उसकी विशेषताएँ

प्रसाद जी मुख्यतः आनन्दवादी थे। मानवता, राष्ट्रीयता, सौन्दर्य–प्रेम, नारी–महत्ता, भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा , अन्तः प्रकृति–चित्रण की प्रमुखता आदि उनके काव्य की सामान्य विशिष्टताएँ हैं। 'कामायनी' में भी ये सभी मुखर हुयी हैं और वह भी अपने पूर्णतम रूप में। 'कामायनी' की कथा का रूपकत्व, घटना–विरलता, चरित्रों की प्रधानता आदि ने 'कामायनी' को मुख्यतः भावप्रधान रचना बना दिया है। सामान्यतः इस भाव–चित्रण की विशेषताएँ निम्नांकित हैं –

11.4.3 नवीन वर्ण्यविषय

बाह्यतः 'कामायनी' की वर्ण्यकथा है– मनु श्रद्धा की कथा जो पूर्णतया ऐतिहासिक–पौराणिक है। भारतीय वेद, पुराणादि और मिस्र, यूनान, ऑस्ट्रेलिया आदि विविध देशों तथा बाइबिल, अवेस्ता आदि विदेशी ग्रन्थों में उपलब्ध तत्संबंधी कथाएँ इसी सत्य की परिचायक हैं। प्रलयोपरान्त आदि पुरुष मनु का अवसादमय होकर अतीत–चिंतन, श्रद्धा–भेंट और विवाह, श्रद्धा–परित्याग, सारस्वत प्रदेश में इड़ा से भेंट, किलात–आकुलि के निर्देश पर यज्ञ करना एवं प्रजा का विद्रोह करना आदि सभी घटनाओं से युक्त 'कामायनी' की यह कथा पूर्णतः ऐतिहासिक है। फिर भी, द्रष्टव्य बात यह है कि, कम से कम हिन्दी–साहित्य में, इस विषय को सर्वप्रथम प्रसाद जी ने ही अपनाया है। दूसरे, कवि ने उपलब्ध कथा को ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं किया वरन् उस पर सांस्कृतिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक रूपकत्व का आरोपकर उसको एकदम नया रूप प्रदान कर दिया है। फलस्वरूप वर्ण्यकथा एक इतिहास कथा मात्र न रहकर विविधमुखी हो गयी है, **श्री विश्वम्भरनाथ मानव** ने ठीक ही कहा है "कामायनी एक विराट सामंजस्य की सनातन गाथा है। उसमें हृदय और मस्तिष्क का सामंजस्य, वासना–संयम का सामंजस्य, दुःख–सुख का सामंजस्य,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परिवर्तन–स्थिरता का सामंजस्य, प्रवृत्ति–निवृत्ति का सामंजस्य और सबसे अधिक भेद और अभेदयता और इकाई का सामंजस्य है।'' इन्हीं कारणों ने 'कामायनी' के वर्ण्य विषय को एकदम नवीन और अछूता बना दिया है।

11.4.4 पूर्ण रसानुभूति

'कामायनी' की रस योजना विविधमुखी है। इसमें लगभग सभी रस एकदम सरस बनकर प्रकट हुए हैं। कवि ने जिस रस का जहाँ अंकन किया है, वह एकदम सटीक , मार्मिक गहन और सब मिलाकर प्रभावोत्पादक बन पड़ा है।

1. **वियोग शृंगार –**

"बिखरी अलकें ज्यों तर्क–जाल,
वह विश्व मुकुट–सा उज्ज्वलतम शशिखण्ड सदृश–सा स्पष्ट भाल।
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल,''

2. **वियोग शृंगार –**

"कामायनी कुमुल वसुधा पर पड़ी, न वह मकरंद रहा।
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहाँ।''

वीर रस – ''धूमकेतु–सा चला रुद्र नाराज भयंकर।
लिए पूँछ में ज्वाला अपनी अति प्रलयंकर।।

भयानक रस – 'पंचभूत का भैरव मिश्रण।
शंपाओं के शकल–निपात।
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ,
खोज रहीं ज्यों खोया प्रात।।''

शान्त रस– 'समरस थे जड़ या चेतन।
सुन्दर साकार बना था।।
चेतनता एक विलसती।
आनन्द अखण्ड घना था।

इसी प्रकार वात्सल्य (श्रद्धा मानव) करुणा (मनु चिंतन और अवसाद), अद्भुत (रहस्य सर्ग में त्रिपुर वर्णन), वीभत्स (पशु–वध–प्रसंग) आदि रस भी देखे जा सकते हैं। **श्री सुधाकर पाण्डे** (प्रसाद की कविताएँ) के शब्दों में ''कामायनी .... का आदर्श संकल्पात्मक होने के कारण स्वतः सहज रसात्मक है। इसलिए उच्च कलाकृति होते हुए भी साधारणीकरण की श्रेष्ठता उसमें वर्तमान है और सहज ही भावानुकूल परिपुष्ट रस निष्पत्ति उसमें मिलेगी।''

11.4.5 प्रकृति चित्रण

कामायनी छायावादी महाकाव्य है जिसमें प्रकृति चित्रण एक विशेष महत्त्व का वर्ण्यविषय रहा है। स्वयं प्रसाद जी के प्रकृति प्रेम से भी इसको पर्याप्त बल प्राप्त हुआ है। शास्त्रीय दृष्टि से भी यह प्रकृति पात्रों के भावों को प्रकट करने में सहायक बनकर रसोद्रेक मनोवृत्ति–विश्लेषण और पृष्ठभूमि अंकन में सहायक होती मिलती है। इस महाकाव्य 'कामायनी' में कवि ने प्रकृति को वर्ण्य विषय बनाया है। सम्पूर्ण महाकाव्य का आदि, मध्य और अन्त सभी प्रकृति की गोद में हुआ है। **श्री रामलाल सिंह** (कामायनी अनुशीलन) ने ठीक कहा है कि ''आनन्द की खोज में विकृति की ओर दौड़ते हुए भ्रान्त जगत् को कवि, कामायनी द्वारा प्रकृति की ओर लौटने का सन्देश दे रहा है।'' हिमगिरि के उत्तुंग शिखर से सरस्वती और सरस्वती से कैलास शिखर तक कवि ने प्रकृति के विविध अंगों – समुद्र, पर्वत, जल, घन, वर्षा, आँधी, उल्का, उषा, रात्रि, प्रभात, संध्या, आकाश, नक्षत्र, नगर, नदी से लेकर हिमाद्रि तक का विस्तृत और विविधरूपी अंकन किया है। प्रधानतया यहाँ प्रकृति उद्दीपन और पृष्ठभूमि रूप में आयी मिलती है। ग्रन्थ का प्रारम्भ 'हिमगिरि के उत्तंग शिखर' और अंत 'कैलास वर्णन' से होता है। आलम्बन रूप में यहाँ पर प्रकृति दृश्य स्फुट रूप में ही है। (यथा 'स्वर्णशालियों की कलमें थीं, दूर–दूर तक फेल रहीं)। उद्दीपन रूप में तो प्रकृति हर स्थान पर भावोद्दीपन में पूर्ण सहायक रही है। **निराला** (चयन) ने ठीक कहा है कि– 'कामायनी की प्रकृति वातावरण के अनुसार अपनी शक्ति का संयोजन, प्रस्फुटन और अभिव्यक्ति करने में अपनी शक्ति की स्थापना करती है।'' इसके अतिरिक्त मानवीकरण (यथा सरस्वती प्रदेश का वर्णन) रहस्यपरक (हिमालय–वर्णन), अलंकार योजनान्तर्गत (उपमान योजना), आदि में भी कवि ने प्रकृति को 'कामायनी' का प्रमुख वर्ण्य विषय बनाया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.4.6 दर्शनाभिव्यक्ति

दर्शन 'कामायनी' का प्रमुख वर्ण्य विषय है जिसके सर्वाधिक दर्शन ग्रंथ के उत्तरार्द्ध में (निर्वेद सर्ग से लेकर आनन्द सर्ग तक) अंतिम चार सर्गों में विपुल मात्रा में होते हैं। मूलतः कामायनी का प्रतिपाद्य है– आनन्दवाद जो शैव दर्शन के प्रत्यमिज्ञा का प्रमुख अंश। मनु की कैलास यात्रा त्रिपुर रहस्य, मनु की चिति अवस्था, नटराज दर्शन और आनन्द की अखण्ड अवस्था आदि सभी प्रसंगों में इसके दर्शन बहुतायत से किए जा सकते हैं। यहाँ तक कि दर्शन प्रधानता के फलस्वरूप ही, मूल कथा अत्यन्त झीनी, विरल और अल्प घटनाओं में सिमटकर रह गयी है। कवि ने स्थान–स्थान पर आत्मा, जीव, परमशक्ति, माया, विश्व–प्रपंच आदि के विषय में भी अनेक उल्लेख किए हैं। साथ ही, बौद्धों का दुःखवाद, क्षणिकवाद और शून्यवाद भी यहाँ मुखर हुआ मिलता है। मनु का पलायन, अवसादपरक चिन्तन, समरस अवस्था और भौतिकवाद का विरोध, आदि इसी के कुछ प्रमाण है। कवि ने अपने समस्त दर्शन को भावमय और सरस बनाकर प्रस्तुत किया है। उदाहरण स्वरूप निम्न काव्यांश देखिये –

"चितिमय चिता धधकती अविरल,
महाकाल का विषम नृत्य था।
विश्व–रन्ध्र ज्वाला से भरकर,
करता अपना विषम कृत्य था। ('रहस्य' सर्ग)

11.4.7 रूपकत्व का समावेश

कामायनी का वर्ण्य मूलतः 'इतिहास' सिद्ध होने पर भी विविधोन्मुखी है। इसी से इसमें रूपकत्व का समावेश होना स्वाभाविक ही था। स्वयं प्रसाद जी ने ग्रन्थ–आमुख में संकेत कर दिया है कि "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु, श्रद्धा और इडा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।" अपने कल्पना अधिकार का प्रयोग भी प्रसाद जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में आद्योपांत किया है। फलतः मनु, श्रद्धा, इड़ा, आकुलि–किलात आदि सभी प्रमुख चरित्र (और उनकी कथा) पूर्णतया प्रतीकमय या रूपकमय बन गये हैं। वे सभी मानवीय भावनाओं के प्रतीक तो हैं ही, आधुनिक क्या सनातन युग के भी प्रतीक है। **श्री शिवदानसिंह चौहान** (काव्यधारा) की मान्यता है कि 'मनु आज के आत्मचेतना व्यक्तिवादी व्यक्ति के प्रतीक है। इडा आधुनिक पूँजीवादी समाज के वर्गभेद और शोषण की मान्यताओं पर आधारित बुद्धि तत्त्व का प्रतीक है और श्रद्धा मनुष्य की सहज मानवीय भावनाओं, नैतिक मूल्यों और सौहार्द्र से युक्त मानव–हृदय के आस्थाशील श्रद्धा तत्त्व का प्रतीक है।" **डॉ. नगेन्द्र** (कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ) ने तो मानव को नवमानव का, आकुलि किलात को आसुरी वृत्तियों का, देवों को इन्द्रियों का, श्रद्धा के पशु को सहज जीवदया अर्थात् अहिंसा का, वृषभ को धर्म का, यहाँ तक कि सोमलता को भोग का प्रतीक कहा है। इतना ही नहीं वरन् उनके मतानुसार तो जलप्लावन, त्रिलोक और मानसरोवर भी क्रमशः कोश–लिप्सा, जय–वृत्तियों और समरसता की अवस्था के प्रतीक हैं।

11.4.8 मनोवैज्ञानिकता

यदि उदारतापूर्वक सोचें तो समस्त भाव–विधान मनोविज्ञान के अन्तर्गत आ जाता हैं। अतएवं प्रत्येक–काव्य–रचना किसी न किसी रूप में मनोविज्ञान से संबद्ध होती है। कामायनी की विशेषता तो इसमें है कि यहाँ भाव–वृत्ति अंकन और चरित्रांकन दोनों ही मनोवैज्ञानिक भी हैं और सरस काव्यमय भी। कामायनी में कथा तो ढाँचामात्र है, मूल तो भाव ही है। इसमें भी द्रष्टव्य बात यह है कि कवि ने मनोभावों के लगभग प्रत्येक रूपगुण को हमारे सम्मुख उपस्थित किया है। सभी सर्गों का नामकरण विविध मनोभावों के अनुसार है जो भाव–विविधता का भी परिचायक है। भाव–अंकन का एक उदाहरण देखिये –

'हे अभाव की चपल बालिके
    री ललाट की खल लेखा,
हरी–भरी–सी दौड़–धूप आ
    जल–माया की चल–रेखा।" (चिन्ता)

द्रष्टव्य यह भी है कि यहाँ पहली पंक्ति के चिन्ता के 'कारण', दूसरी में उसे 'संचारी', तीसरी में उसके एक और चौथी में विशिष्ट गुण की अभिव्यक्ति हुयी है और वह भी काव्यत्व की चरम सीमा पर।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में कवि सर्वाधिक सफल बन पड़ा है 'लज्जा' सर्ग में। यहाँ आकर कथा एकदम शून्य हो गयी है कि किन्तु भाव लड़ी निरन्तर वृद्धिगत होती गयी है। यह भी द्रष्टव्य है कि सम्पूर्ण हिन्दी काव्य में 'लज्जा मनोभाव का इतना अधिक विस्तृत, सूक्ष्म और मार्मिक अंकन अन्यत्र कहीं नहीं हो सका है। **डॉ. कन्हैयालाल सहल** तो यहाँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तक कहते हैं कि 'छायावादी' शैली का सुन्दतम एवं प्रौढ़ रूप यदि हमें कामायनी में देखने को मिला है तो वह 'लज्जा' सर्ग में। 'उदाहरणस्वरूप लज्जाकालीन तन–मन की एक स्थिति देखिये–

''सब अंग मोम से बनते हैं
कोमलता से बल खाती हूँ
मैं सिमट रही सी अपने में,
परिहास गीत सुन पाती हूँ

प्रसाद जी रस–सिद्ध कवि हैं और मनोभावों के कुशल चितेरे भी। उनका यही गुण–प्रौढ़ता उनके प्रौढ़ महाकाव्य 'कामायनी' में पग पग पर मुखर हुयी है। गत सहस्रों वर्षों में उपेक्षित विषय को ग्रहण कर, नवीन समावेशकर और मार्मिक तथा पूर्णतया प्रभावोत्पादक बनाकर कवि ने प्रस्तुत तो किया ही है, पग–पग पर नाना मनोभावों और उनके विविध रूप–गुण और स्थितियों का सूक्ष्म और काव्यमय अंकन भी किया है। विविध रस यहाँ सरस और मनोहर बनकर प्रस्फुटित हुये हैं। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने काव्य रस का परिपाक और निर्वाह बखूबी किया है। उसका भाव–विधान सुगठित है, भावपक्ष व्यापक है, अनुभूति चित्रण सूक्ष्म है। निष्कर्ष स्वरूप **श्री विश्वम्भर मानव** के शब्दों में कह सकते हैं, 'यदि खड़ीबोली का सब कुछ नष्ट हो जाये और किसी प्रकार 'कामायनी' का कोई–सा केवल एक सर्ग बच जाय तब भी किसी देश को कोई पारखी यही निर्णय देगा कि भारत में कभी कोई महान् कलाकार वास करता था।''

11.5 कामायनी का शिल्प–विधान

'कामायनी' छायावादीयुग की रचना है। कवि चेतना की दृष्टि से भी यह उसकी प्रौढ़कालीन कृति है। यही कारण है कि प्रस्तुत कृति में एक ओर तो छायावादी शिल्प–विधान की सभी विशेषताएँ मिलती हैं और दूसरी ओर कवि की कलागत विशषताएँ भी अपने उन्नत रूप में मुखर हुयी हैं। प्रमाण हैं– कामायनी में व्यवहृत भाषा, छंद, अलंकार तथा काव्य–रूपादि।

11.5.1 भाषा

श्री नलिनविलोचन शर्मा ने प्रसाद जी की काव्यभाषा को 'फील–पानी' कहा है। यह शब्द भाषा की अनावश्यक स्फीति और मंथर गति को सूचित करता है। मामूली–सी बात के लिये बड़े–बड़े शब्दों का प्रयोग और एक ही वस्तु के लिये अनेक शब्दों का अपव्यय इसके लक्षण कहे जा सकते हैं। आज का लेखक–कवि इस भाषा को शायद ही पंसद करे किन्तु सत्य यह भी है कि प्रयत्न करने पर भी वह इस भाषा–रूप को मोहक और प्रभावशाली रूप में ग्रहण नहीं कर पायेगा। ध्यान से देखें तो प्रसाद जी की यह भाषा तत्कालीन सम्पूर्ण काव्य–जगत् (छायावाद) की देन है। डॉ. नामवर सिंह ने कहा है "प्रसाद के पद चयन का एक ओर बहुत दूर तक निराला, पंत और महादेवी के पदचयन से साम्य है तो दूसरी ओर प्रत्यक्ष रूप से रवीन्द्रनाथ के पदचयन की भी इसमें झलक है और परोक्षतः गुजराती और मराठी के स्वच्छन्दतावादी कवियों के पदचयन की।" फिर भी, प्रसाद जी की भाषा नाना विशिष्टताओं से ओतप्रोत है। श्रुतिकटु शब्दों का अभाव, कठोर भावों में भी कोमल वर्णों का प्रयोग, संगीतात्मकता, सुन्दर शब्द–मैत्री, और माधुर्य–गुण की प्रधानता आदि का बाहुल्य इसी सत्य के परिचायक हैं। सामान्यतः काव्यभाषा के अन्तर्गत शब्दावली, मुहावरे–लोकोक्ति, शब्द–शक्ति आदि आते हैं। अतएव कामायनी की भाषागत विशेषताओं के लिये इनका अध्ययन करना आवश्यक है।

11.5.2 शब्दावली

'कामायनी', विषय की दृष्टि से, ऐतिहासिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक रचना है। इसी से इसकी भाषा–शब्दावली में तीनों ही प्रकार के शब्द प्रयुक्त मिलते हैं। संस्कृत–युगीन कथा–पात्रों की शब्दावली में तत्समप्रधान शब्दावली का होना स्वाभाविक ही है। इसी से कामायनी में तत्सम–प्रधान शब्दों की भरमार है। इसमें चरण, विकल, समीर, जलद, पीयूष जैसे अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित शब्द तो है ही, तिमिंगलों, ज्योतिकणों, व्रज्या, अवर्जना, प्रवाल, जवनाराय, अलम्बुसा, मवारिवयों जैसे दुष्प्राप्य शब्द भी हैं। साथ ही साथ भूमा, सविता, मधु, समरस, देव, जैसे शास्त्रीय शब्द भी उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त तद्भव, देशज, स्थानीय, अनुकरणमूलक, पुनरुक्त और विदेशी शब्द भी पर्याप्त मात्रा में हैं।

11.5.3 मुहावरे – लोकोक्ति

भाषा को सबल और स्वाभाविक बनाने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है – मुहावरे–लोकोक्ति का प्रयोग। अन्य छायावादी कवियों की भाँति प्रसाद जी ने भी इस ओर विशेष ध्यान तो नहीं दिया है फिर भी, कम से कम कामायनी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में, अनेक प्रचलित मुहावरे अपने स्वाभाविक रूप में आ गये हैं । गहरी नींव डालना, व्योम चूमना, साँस उखड़ना, रंग बदलना, दाव हारना, कान खोलकर सुनना, तिल का ताड़ बनाना, आदि ऐसे ही कुछ मुहावरें है । कुछ मुहावरे पूर्णतया काव्यात्मक हैं, यथा भीगे नयनों से देखना, ताराओं की कल्पना, खोया प्रात खोजना, लुटे–से, भग्न हृदय आदि । कुछ में छायावादी सौन्दर्य पूर्णतया उभरा है यथा आशा का कुसुम, छुई–मुई बनना, सुख के बीन बजाना, नभ में रेखा खींचना । कुछ में लोक–प्रचलित रूप भी व्याप्त मिलता है, यथा फेराडालना, ओस चाटना, लहू का घूँट पीना और रात काटना आदि ऐसे ही कुछ प्रमाण हैं।

11.5.4 शब्दशक्ति

शब्द की मुख्यतः तीन शक्तियाँ हैं–अभिधा, लक्षणा और व्यंजना । कामायनी में तीनों का ही प्रयोग किया गया है । अभिधा शक्ति प्रायः वर्णनपरक स्थलों, कथा–सूत्र–संयोजन के स्थलों, स्वप्न सर्ग में सारस्वत नगर–वर्णन और आनन्द सर्ग के प्रारम्भिक छन्दों में देखी जा सकती है । ध्यान से देखें तो लक्षणा प्रसाद जी की प्रिय शब्द–शक्ति है । कामायनी में तो इसकी भरमार है । चित्रमयता का यह प्रमुख साधन रही है– यथा कुछ काव्यांश देखिये –

प्रयोजनवजी लक्षणा – "पगली हाँ सम्हाल ले कैसे,
छूट पड़ा तेरा आँचल ।
देख बिखरती है मणिराजी,
अरी उठा बेसुध अंचल ।। "

इस प्रकार स्पष्ट है कि कामायनी में लक्षणा प्रयोगें की प्रधानता है । इसके लिये कवि ने निर्जीव तत्वों का मानवीकरण (यथा मनोभावों का), प्रतीकात्मक प्रयोग (यथा काँटे, कुसुम) भाववाचक संज्ञाओं का मूर्त–विधान(यथा लज्जा, चिन्ता आदि) सभी साधनों का प्रयोग किया है ।

दूसरी विशिष्टता है – ध्वननशीलता या ध्वन्यात्मकता जिसको भाव – चित्रों की स्वरलिपि कह सकते हैं। इसमें राग का रस भी सन्निहित रहता है।

"घिर रहे थे घुंघराले बाल,
अंस अवलंबित मुख के पास,
नील घन–शावक से सुकुमार,
सुधा भरने को विधु के पास ।

तीसरी विशिष्टता है – वक्रोक्तिगत सौन्दर्य । इसके लिये कवि ने वर्ण–विन्यास, उपचार वक्रता, संवृति, संख्या, उपसर्ग, निर्यात आदि से सम्बद्ध वकताओं का उपयोग किया है । काव्य–रचना के अन्य क्षेत्रों में स्वच्छन्द रहकर भी उन्होंने छन्द–योजना को पूर्णतया स्वीकार किया है । यह अवश्य है कि शास्त्रसम्मत होते हुए भी उन्होंने अपनी छन्द–योजना को स्वर–संगीत के उपयुक्त बनाने में स्वच्छन्दता का भी प्रयोग किया है।

कामायनी का प्रारम्भ वीर छन्द से होता है किन्तु 16 मात्राओं का एक चरण और 15 मात्राओं का दूसरा चरण बनाकर साधारणतः यति के स्थान पर चरणपूर्ति मानकर इसका शास्त्रीय रूप बदल दिया गया है। 'चिन्तासर्ग' में ही 'कुसुम' के समकक्ष 16–14 की यति पर चरणपूर्ति वाला छन्द है पर उसके अन्त में पदों गुरुओं का नियम नही माना गया है। 'आशा' में भी ऐसे ही छन्द हैं। 'श्रद्धा' में छन्द बदल कर 16–16 मात्राओं के हो गये हैं। यह 'शृंगार छन्द' है जिसके अन्त में दीर्घ–लघु तो होता है, यद्यपि प्रसाद जी ने

इसमें भी कहीं–कहीं दीर्घ ही रखा है । 'इड़ा' में गीति पद है किन्तु वे भी 16 मात्राओं के चरणों का है । टेक 16 की ही है । 'आनन्द' मे 'सखी' छंद है जो 14 मात्राओं का होता है । साथ ही साथ 'कामायनी' में नाटक और लावनी, पदपादाकुलक, पद्धरि, रूपमाला, रोला, रार, मत्तरावैया, आनंद आदि अन्य छन्द भी हैं जिनको कहीं–कहीं कवि ने बदल दिया है तो कहीं पदो छन्दों को मिलाकर एक तीसरा नवीन छन्द बना दिया है । इस प्रकार कामायनी में कुल छंद बारह हैं जिनका प्रयोग कवि ने सफलतापूर्वक किया है ।

'कामायनी' में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही है यद्यपि प्रधानता दूसरे प्रकार के अलंकारों की है । इसी से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, उदाहरण और अतिशयोक्ति की यहाँ प्रमुखता है । प्रतीक और मानवीकरण भी बहुतायत से है । इनमें भी सर्वाधिक द्रष्टव्य बात यह है कि समी स्थानों पर अलंकार सटीक और एकदम भावाभिव्यंजक बन पड़े हैं। कुछ अलंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

"बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल ।

वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम, शशिखण्ड सदृश था स्पष्ट भाल ।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(1) उपमा : चॉदनी सदृश खुल जाये कहीं ।
अवगुण्ठन आज संवरता सा,
जिसमें अनंत कल्लोल भरा,
लहरों में मस्त विचरता सा ।''

(2) रूपक : '' मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूं,
मैं शालीनता सिखाती हूं ।
मतवाली सुन्दरता पग में,
नूपुर सी लिपट मनाती हूं ।

(3) सांगरूपक और मानवीकरण :
''सिन्धु सेज पर धरा वधू अब,
तनिक संकुचित बैठी सी ।
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में,
मान किये–सी ऐंठी सी । ''

इसमें प्राप्त महाकाव्य के अन्य आवश्यक तत्त्व भी इसको महाकाव्य की श्रेणी में परिगणित करने के लिए पर्याप्त है; यद्यपि 'इड़ा' जैसे सर्ग में प्राप्त गीत प्रधानता इसमें मुक्तक गुणों का समावेश भी सिद्ध करती है ।

11.5.5 कामायनी में कतिपय दोष

(1) लिंग दोष – ''कौन तुम ? संसृति जलनिधि तीर,
तरगों से फेंकी मणि एक ।''

(2) वाक्य रचना दोष – ''कौन हो तुम बसन्त के दूत,
विरस पतझड़ में, अति सुकुमार ।''

(3) कर्ण कटु शब्दों का प्रयोग यथा कुही, उत्तुंग आदि ।

(4) तुक के लिये शब्द तोड़ना यथा 'आराधना का अराधना' ।

(5) वचन–दोष यथा 'अरे अमरता के चमकीले पुतलो ? तेरे वे जयनाद।

(6) क्रिया–दोष यथा 'उषा सुनहले तीर बरसती' (बरसाती होना चाहिए)

(7) अन्य 'आकुलि ने तब कहा ....' में किलात होना चाहिये क्योंकि उत्तर किलात का है, 'श्रद्धा ने सुमन बिखेरा (आनन्द सर्ग) के स्थान पर बिखरे होना चाहिये ।

कामायनी का शिल्प–विधान अनेक गुणों से युक्त है । उनमें छायावादी और कवि के शिल्प की सभी विशेषतायें अपने चरम रूप में अवस्थित हैं।

11.6 कामायनी की रसयोजना

काव्य–विधा की दृष्टि में 'कामायनी' एक महाकाव्य है, जिसमें मनुष्य जीवन के अनेक पक्ष अंकित किये गये हैं। अतएव स्वभावतः ही यहाँ पर रसों की विविधता का होना अनिवार्य है । यद्यपि इस ग्रन्थ में प्रायः सभी रस (हास्य को छोड़कर) उपस्थित हैं, फिर भी विशेष परिपाक कुछ ही रसों का हुआ है । महाकाव्य होने के नाते यह आवश्यक भी है । प्रत्येक महाकाव्य में, शास्त्रीय दृष्टि से, प्रमुखता तो कुछ ही रसों की रहती है, शेष तो अल्प मात्रा में ही रहते हैं। इस दृष्टि से कामायनी में उपलब्ध रसों को दो वर्गों में रखा जा सकता हैं – (1) प्रमुख रस तथा (2) गौण रस ।

11.6.1 प्रमुख रस

संयोग शृंगार

कामायनी में संयोग शृंगार के विविध चित्र हैं। मनु – श्रद्धा के प्रणय – क्षणों में इसका रूप मुख्यतः उभरा है। साथ ही मनु–चिंतन (चिन्ता सर्ग) के अन्तर्गत देवताओं विषयक विलास–वैभव में भी यह स्पष्ट है। इन प्रसंगों में मति, आवेग, अलसता, मोह, लज्जा, धृति, चपलता आदि नाना संचारियों को मुखरित किया गया है । मनु श्रद्धा का सौन्दर्य, श्रद्धा की लज्जा तथा आत्मसमर्पण के रूप भी इसी के अन्तर्गत सहायक बनकर प्रकट हुये हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वियोग श्रृंगार

कामायनी में वियोग श्रृंगार का आरंभ मनु द्वारा श्रद्धा के परित्याग से होता है । इड़ा सर्ग में मनु की वियोगावस्था का और स्वप्न सर्ग में श्रद्धा की वियोगवस्था का विस्तृत अंकन किया गया है । इसके अन्तर्गत एक ओर तो अभिलाषा, चिंता, स्मृति, उद्वेग आदि विरह दशाओं का अंकन है और दूसरी और पूर्वराग, मान और प्रवास की विरह–अवस्थाओं का ।

प्रवास – ''अरे बता दो मुझे दया कर
कहाँ प्रवासी है मेरा ?
उसी बावले से मिलन को
डाल रही हूँ मैं फेरा

विरह दशा – ''कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरन्द रहा,
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहां । ''

कामायनी के चिन्ता और निर्वेद नामक सर्गों में निर्वेदमूलक और 'रहस्य' तथा आनन्द सर्गों में शममूलक शांत रस व्याप्त है । मनु श्रद्धा की समरस अवस्था की प्राप्ति के प्रसंग में यही शान्त रस मुखर हुआ है ।

(1) निर्वेदमूलक शान्त रस –

''सोच रहे थे'' जीवन सुख है ? ना, यह विकट पहेली है,
भाग, अरे मनु इन्द्रजाल से कितनी व्यथा न झेली है ?''

(2) शममूलक शान्त रस – ''समरस थे जड़ या चेतन,
सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती,
आनन्द अखण्ड घना था ।''

गौण रस – इस वर्ग में उन काव्य–रसों को रखा गया है जो ''कामायनी'' में गौण और अल्पमात्रा में ही आए हैं।

11.6.2 वीर रस

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है । 'कामायनी' में इसके अधिक अवसर नहीं मिल पाया है । फिर भी 'सघर्ष' सर्ग में मनु–प्रजा–संघर्ष मे इसकी कुछ झाँकियां मिलती हैं, जिनमें निस्सन्देह वीरत्व भाव प्रकट हुआ है –

''अंधड़ सा बढ़ रहा, प्रजा–दल सा झुँझलाता,
रण वर्षा में शास्त्रों–सा, बिजली चमकाता, ।
किन्तु क्रूर मनु वारण करते उन बाणों को,
बढ़े कुचलते हुए खडग से जन–प्राणों को । ''

करुण रस– करुण रस का प्रयोग 'चिन्ता' सर्ग मे हुआ है । देव–सृष्टि का प्रलय में नष्ट होना, मनु के प्रिय देवताओं का विनाश और उस पर मनु का विषाद आदि करुण रस की उत्पत्ति करते हैं, यथा–

''विस्मृति आ अवसाद घेर ले,
नीरवते । बस चुप कर दे,
चेतनता चल आ, जड़ता से,
आज शुन्य मेरा भर दे । ''

रौद्र रस

रौद्र रस के वर्णन में जब तक आलम्बन का चित्रण इस रूप में न प्रस्तुत किया जाये कि वह मानव–मात्र के कोध का आलम्बन बन सके, तब तक इस रस की सफल अभिव्यक्ति नहीं होती । 'कामायनी' के 'संघर्ष' सर्ग में मनु का यही रूप मुखर हुआ मिलता है ।

भयानक रस

भयानक रस के कुछ चित्र चिन्ता, 'स्वप्न' और 'संघर्ष' नामक सर्गों में मिलते है ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वीभत्स रस

वीभत्स रस का सम्पूर्ण ग्रन्थ से एक स्थल पर ही अंकन हुआ है, जहाँ श्रद्धा के पशु की बलि के पश्चात् यज्ञ–वेदी का अंकन किया गया है–

> ''दारूण दृश्य, रुधिर के छींटे, अस्थि खंड की माला।
> वेदी की निर्मम प्रसन्नता, पशु की कातर वाणी,
> मिलकर वातावरण बना था कोई कुत्सित प्राणी।''

अद्भुत रस

अद्भुत रस का परिपाक मिलता है – 'रहस्य सर्ग के त्रिपूर–वर्णन और नटराज–नृत्य प्रसंगों में ।

वात्सल्य रस

वात्सल्य की झलक श्रद्धा के पशु–प्रेम और 'ईर्ष्या' तथा 'स्वप्न' सर्गों में मानव के प्रति श्रद्धा–इड़ा प्रेम में मिलती है, यथा–

> ''माँ–फिर एक किलक दूरागत, गूंज उठी कुटिया सूनी,
> माँ उठ दौड़ी भरे ह्रदय में लेकर उत्कंठा दूनी ।
> लुटरी खुली अलक, रज–धूसर बाँहें आकर लिपट गई ।''

11.6.3 कामायनी का अंगी (प्रधान) रस

'कामायनी' में (हास्य के अतिरिक्त) प्रायः सभी रसों की स्थिति को देखकर प्रश्न उठता है कि इनमें अंगी अर्थात प्रधान रस कौन–सा है ?

कामायनी का विवेचन करने पर एकदम स्पष्ट हो जाता है कि शृंगार और शांत रस के अतिरिक्त अन्य सभी रस तो संचारी हैं। वे अल्प, प्रासंगिक और फुटकर मात्र हैं। केवल शृंगार और शान्त रस सम्पूर्ण ग्रन्थ में व्याप्त है । इनमें भी ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में शृंगार की और उत्तरार्द्ध में शान्त रस की प्रधानता है यद्यपि शृंगार के कुछ चित्र उत्तरार्द्ध में और शान्त के उदाहरण पूर्वार्द्ध में भी उपस्थित हैं। अंगी रस के लक्षणों की दृष्टि से शान्त रस पूर्णतया अंगी रस ठहरता है । शैव–दर्शन में शृंगार और शान्त को एक आनन्द रस के अन्तर्गत रखा जाता है । इस सम्बन्ध में स्वयं प्रसाद जी ने स्पष्ट कर दिया है, ''शैवागम के आनन्द सम्प्रदाय के अनुगामी रस की दोनों सीमाओं–शृंगार और शान्त को स्पर्श करते थे । यह शान्त रस निस्तरंग महोदधिकल्प समरसता ही है।'' कहना न होगा कि यह 'समरसता' आनन्द का ही पर्याय है–

> ''समरस थे जड़ या चेतन
> सुन्दर साकार बना था,
> चेतनता एक विलसती
> आनन्द अखण्ड घना था ।।''

डा. नगेन्द्र के शब्दों में ''कामायनी का अंगी रस भारतीय रस सिद्धांत का आधारभूत आनन्द रस ही है, जिसका दूसरा नाम मौलिक अर्थ में शान्त भी है । यही कामायनी के वस्तु–विधान, प्रतिपाद्य तथा रूप–विधान के अनुकूल है । यही प्रसाद के काव्य–दर्शन के अनुकूल है ।

11.7 मनु का चरित्र चित्रण

11.7.1 मनु का परिचय

जयशंकर प्रसाद – (कामायनी : आमुख) के अनुसार ''आर्य साहित्य में मानवों के आदि पुरूष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराणों और इतिहासों में बिखरा हुआ मिलता है। इसलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष ही मानना उचित है । ''मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरूष हैं। राम,कृष्ण और बुद्ध इन्हीं के वशंज है।''

11.7.2 'कामायनी' और मनु

'कामायनी' में मनु की गाथा है । ग्रन्थ के प्रारम्भ ('एक पुरूष, भीगे नयनों से..........) से फलागम ('आनन्द अखण्ड घना था) तक मनु और उनकी जीवन–गाथा ही व्याप्त है । इस जीवन–गाथा में मनु का चरित्र शरीरी और अशरीरी अर्थात् इतिहास पुष्ट और काल्पनिक–आरोपित दोनों रूपों में अंकित किया गया मिलता है । मनु की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विलासिता, आत्ममोह, ममत्व, स्वार्थ, अहं, आसक्ति, शरीर सौन्दर्य, श्रद्धा के प्रति प्रेम और दाम्पत्य, श्रद्धा–परित्याग, इड़ा–सम्पर्क, यज्ञ–कर्म, आदि प्रथम चरित्र रूप में आते हैं।

'कामायनी' के अनुसार प्रलयोपरांत समस्त देव–जाति में केवल मात्र मनु ही शेष बचते हैं। शारीरिक रूप में वे अतुलित सौन्दर्यवान हैं–

''अयवय की दृढ़ मांस पेशियां
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार,
स्फीति शिराएँ, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें संचार ।''

''चिंता कातर वदन हो रहा
पौरुष जिसमें ओत–प्रोत,
उधर उपेक्षामय यौवन का
बहता भीतर मधुमय स्रोत।''

यह मनु का ब्रह्मचारी रूप है । इसी भाँति गृहस्थ आदि की अवस्थायें भी देखी जा सकती हैं।

11.7.3 तपस्वी

ऋग्वेद में ही मनु को ऋषि माना गया है । 'कामायनी' के प्रारम्भ में भी कवि ने उनके इसी ऋषि अथवा तपस्वी रूप को सुरक्षित रखा है –

''तरुण तपस्वी सा–वह बैठा
साधन करता सुर श्मशान............
उसी तपस्वी से लम्बे, से
देवदारू दो चार खड़े''

11.7.4 हिंसक यजमान

चिंता मनन से मुक्त होकर और श्रद्धा के साथ दाम्पत्य जीवन अपनाकर मनु यजमान के रूप में मुखर होते हैं। 'रक्त लोलुप किलाताकुलि को पुरोहित बनाकर यज्ञ में पशु बलि करने वाला सोम और पुरोडास का सेवन करने वाला, मृगया में मस्त तथा हिंसा को सब कुछ समझने वाला, स्वच्छन्द वासना–तृप्ति का प्रतिपादक पुरुष यह हिंसक यजमान मनु का चित्र है ।''

''पुरोडास के सकथ सोम का
पान लगे मनु करने;
लगे प्राण के रिक्त अंश को
मादकता से भरने ।''

''कर्म–यज्ञ से जीवन के
सपनों का स्वर्ग मिलेगा;
इसी विपिन में मानस की,
आशा का कुसुम खिलेगा । ''

कामायनी में मनु–चरित्र का यह पक्ष मुखरित होता है–'इड़ा–प्रसंग' में श्रद्धाविहीन होकर मनु का सारस्वत प्रदेश में आना, सारस्वत का पुनर्निर्माण करना, अधिकार–भावना और नियामक भाव से भर कर प्रजा (इड़ा) पर एकाधिकार करने का सफल प्रयत्न आदि कार्य उनके इसी रूप के सूचक हैं।

11.7.5 आनन्द – अन्वेषी

'संघर्ष के उपरान्त मनु पुनः श्रद्धा का समीप्य प्राप्त करते हैं। स्वनिर्मित नव–सृष्टि की असफलता और एकांगिता उनमें निर्वेद का संचार करती है और वे श्रद्धा के पथ–प्रदर्शन में जीवन–रहस्य से परिचित होते हैं । यह रहस्य–परिचय उनको आनन्दोन्मुखी कर देता है। फलतः ''यह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल उन चरणों तक'' का अनुरोध करते हुए वे कैलास–शिखर पर जा पहुंचते हैं और समरस अवस्था को प्राप्त करते हैं। यही आनन्द की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्थिति है जिसमें सभी भेद–भाव समाप्त हो जाते हैं, इच्छा–कर्म ज्ञानमय बन जाते हैं और मनु आनन्द का अन्वेषण कर लेते हैं–

''सब की सेवा न पराई वह अपनी सुख–संसृति है;
अपना ही अणु–अणु कण–कण, द्वयता ही तो विस्मृति है.....
सब भेद भाव भुलवा कर दुख–सुख के दृश्य बनाता......
समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड धना था ।''

11.7.6 कुछ चारित्रिक दोष

मनु के चरित्र में कुछ दोष भी हैं। पलायन–प्रियता, नैराश्य, हिंसक–वृत्ति, ईर्ष्या, वासना, सोमरस–पान और पुरोडास–लक्षण, इड़ा पर बलात्कार की चेष्टा, अधिकार–लिप्सा आदि ऐसे ही कुछ दोष हैं।

11.7.7 रूपकत्व का समावेश

जयशंकर प्रसाद ने स्वंय स्पष्ट कर दिया है, ''यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है । इसलिये मनु........अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं''। कवि ने स्वयं ही सायास मनु–चरित्र में रूपकत्व का समावेश किया है । यही कारण है कि मनु–ऐतिहासिक मानव होने के साथ–साथ मनौवैज्ञानिक रूप में 'मन अथवा मन' के और दार्शनिक रूप में 'जीव' के भी प्रतीक हैं।

(1) मनोवैज्ञानिक (मत)–

''यह जलन नही सह सकता मैं
चाहिए मुझे मेरा ममत्व;
इस पंचभूत की रचना में
मैं रमण करूं बन एक तत्त्व ।''

(2) दार्शनिक–

''स्वप्न,स्वाप, जागरण भस्म हो इच्छा किया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत के निनाद पर श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे ।''

जीव के प्रतीक रूप मनु हमें प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार....दिखते हैं ''मनु आज के आत्म–चेतन व्यक्तिवादी व्यक्ति के प्रतीक हैं ।'' मनु आधुनिक पुरुष ही नहीं, शाश्वत पुरुष के प्रतीक हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'कामायनी' में मनु का चरित्र विविध गुणों और रूपों में ढलकर प्रकट हुआ है। शास्त्रीय दृष्टि से वह आदर्शोन्मुख, विश्वसनीय, कथा–सम्बन्धित और विकासोन्मुख है। अन्य पुरुष–चरित्रों (मानव, किलात–आकुलि, कामादि) की तुलना में यह आद्योपांत प्रभावशाली और कथा–विकास में सहायक बन पड़े हैं। महाकाव्योचित चारित्रिक गुणों का मनु में पूर्ण समावेश है और इस दृष्टि में मनु, धीरोदात्त नायक बन गये हैं। कथा का प्रारंभ, विकास और अन्त, अन्य चरित्रों से सम्बन्ध, घटना–चक्र का विकास आदि भी उनके नायकत्व के साक्षी हैं। फलागम–प्राप्ति भी मनु को ही होती है । सब मिलाकर सर्वाधिक प्रभावशाली पुरुष–चरित्र भी उन्हीं का है । अतएव, निःसन्देह मनु ही 'कामायनी' के नायक हैं और अपने ऐतिहासिक, मनौवैज्ञानिक और दार्शनिक सभी रूपों में पाठकों को आकृष्ट करते हैं।

11.8 श्रद्धा का चरित्र चित्रण

11.8.1 परिचय

जयशंकर प्रसाद(कामायनीःआमुख) के मतानुसार, ''ऋग्वेद मे श्रद्धा और मनु दोनों का नाम ऋषियों की तरह मिलता है,....श्रद्धा काम गोत्र की बालिका है, इसलिये श्रद्धा नाम के साथ उसे कामायनी भी कहा जाता है ।......मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है ।''

'कामायनी' की श्रद्धा के चरित्रांकन में कवि इन सभी पूर्व सूत्रों से परिचालित रहा है क्योंकि स्वयं उसी के कथनानुसार ''इन्हीं सब के आधार पर 'कामायनी' की कथा–सृष्टि हुई है। हाँ, कामायनी की कथा–शृंखला मिलाने के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लिए कहीं–कहीं थोड़ी–बहुत कल्पना को भी काम मे ले आने का अधिकार मैं नहीं छोड़ सका हूँ।'' श्रद्धा का चरित्र भी इतिहास–पुष्ट, और आरोपित दोनों ही रूपों को ग्रहण किए हुए।

कामायनी में श्रद्धा के प्रथम दर्शन श्रद्धा सर्ग में होते हैं। हिम–शिखर पर बैठे निराश और दुखी मनु यकायक अपने सामने एक सुन्दर नवयुवती को देखते हैं। शीघ्र ही यह देखना प्रेम में और प्रेम दाम्पत्य सम्बन्ध में बदल जाता है । दाम्पत्य सम्बन्ध में बाधक बनता है– श्रद्धा का मातृत्व और मनु की पुरुषोचित वासना–प्रवृति । परिणाम ? मनु का पलायन जिससे श्रद्धा अपने पुत्र मानव के साथ अकेली रह जाती है। फिर भी उसका पति–प्रेम ठंडा नहीं पड़ता। स्वप्न मात्र में मनु को दुखी देखकर वह वास्तव में उनके समीप पहुंचती है, सेवा करती है और रहस्य समझाने के लिए कैलास यात्रा पर ले जाती है। उसकी कृपा से मनु त्रिपुर–रहस्य से अवगत होते हैं, नटराज–दर्शन करते हैं और समरस की अवस्था को प्राप्त करते है।

11.8.2 अनिंद्य अन्तर्बाह्य सौन्दर्य

गांधार प्रदेश श्रद्धा काम गोत्रजा होने के साथ–काम–रति की पुत्री है । इसी से वह सौन्दर्य अनुपममेय है । उसका यह सौन्दर्य बाह्य और आन्तरिक दोनों ही दृष्टियों से अपूर्व, अद्वितीय और अनिद्य है। उदाहरण स्वरूप उसके अन्तर्बाह्य सौन्दर्य के दो उदाहरण देखिये –

''हृदय की अनुकृति वाह्य उदार, एक लम्बी काया, उन्मुक्त,
नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ बन बीच गुलाबी रंग ।
आह! वह ! मुख पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घनश्याम,
अरूण रविमण्डल उनको भेद दिखाई देता हो छवि–धाम । ......
और उस मुख पर वह मुसक्यान, रक्त किसलय पर ले विश्राम,......
नित्य यौवन छवि से हो दीप्त विश्व की करुण कामना मूर्ति ।''

11.8.3 आन्तरिक सौन्दर्य

''दया,माया, ममता लो आज, मधुरिमा लो, अगाध विश्वास
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ तुम्हारे लिये खुला है पास।''

इसी सौन्दर्य के निकट वह मनु को प्रथम दर्शन में ही 'नयन का इन्द्रजाल अभिराम', 'चन्द्रिका में लिपटा घनश्याम', 'वसंत के दूत', 'घन–तिमिर में चपला की रेख' आदि न जाने क्या–क्या लगती हैं और समगतः उनकी 'मानस–हलचल को शान्त करती है ।

11.8.4 नारी–सुलभ गुण–दोष

श्रद्धा नारी है (और कम से कम भारतीय मान्यता के अनुसार) समस्त नार्योचित गुणों का साकार रूप। उसके मानस में समस्त कोमल वृत्तियाँ हैं। दया, ममता, करुणा आत्मसमपर्ण, धैर्य, साहस, प्रेम व वात्सल्य आदि नाना वृत्तियाँ इसी का प्रमाण हैं। इसी से कभी वह दुःखी मनु पर करुणा करती है तो कभी कर्म का भोग, भोग के कर्म की प्रेरणा देती है, कभी उनसे प्रेम करती है तो कभी आत्मसमर्पण, कभी कल्पना मात्र तक से लज्जा का अनुभव करती है तो कभी विरहावस्था में धैर्य धारण करती है –

'' इस अर्पण में कुछ और नहीं,
केवल उत्सर्ग छलकता है,
मैं दे दूँ और फिर कुछ न लूँ,
इतना ही सरल झलकता है ''

अपने इसी गुण–समुच्चय के कारण मनु के लिये वह पथ–प्रदर्शिका (''यह क्या श्रद्धे ! बस तू ले चल उन चरणों तक दे निज सम्बल'') और इड़ा के लिये देवी भगवती, बन जाती है । स्वयं कवि के अनुसार–

''वह कामायनी जगत् की मंगल कामना अकेली ।''

नारी के विविध रूपों की प्रतिनिधि – कामायनी की श्रद्धा में नारी–जीवन के विविध पक्ष उद्घाटित किये गये हैं। कौमार्य, अनुरागी, आत्मसमर्पिता, प्रेमिका, पत्नी, विरहणी और माता आदि उसके ऐसे ही कुछ रूप हैं। अपने इन रूपों में वह एकदम स्वाभाविक, विश्वसनीय और आदर्श–पुंज है । शास्त्रीय दृष्टि से वह मुग्धा नायिका है और उसके सभी रूप, यथा प्रथमावर्तीर्ण यौवन, मानमृदु, लज्जावती आदि उसमें उपलब्ध हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(1) ''झुक चली सव्रीड़ वह सुकुमारता के भार,
लद गई पाकर पुरुष का वर्ममय उपचार ।''

(2) ''छूने में हिचक, देखने में पलकें आँखों पर झुकती हैं,
कलरव परिहास भरी गूँजों अँधरों पर सहसा रुकती हैं।''

(3) ''मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ''
भुज–लता फँसा कर नर–तरु से झूले सी झोंके खाती हूँ ।::

11.8.5 कर्त्तव्यनिष्ठा

कर्त्तव्य–पालन के लिये श्रद्धा आद्योपांत सक्रिय मिलती है । यही कारण है कि मनु को कर्मपथ पर प्रेरित करना, समर्पण से पूर्व लज्जानुभव करना, मातृत्व भाव से परिचालित होकर मनु की उपेक्षा सहना, मनु के आसुरी यज्ञ और पशु–वध का विरोध करना, स्वप्न मे मनु की दुर्दशा को देख उसको ढूँढ़ने के लिये निकल पड़ना, मनु की सेवा–शुश्रूषा करना, मनु को साथ ले कैलास यात्रा पर जाना, त्रिपुर–रहस्य बताना और मनु को समरसता की स्थिति में पहुंचा देना आदि उसके सभी कार्य उसकी अटूट कर्त्तव्यनिष्ठता का परिचय देते हैं।

11.8.6 आदर्श भारतीय नारी

अपने चारित्रक गुणों से श्रद्धा आदर्श है और भारतोय नारी के आदर्श रूप को मुखर करती है । पुरूष (मनु और मानव) के प्रति समर्पण भाव में उसका अबला और मनु–खोज और मनु–पथ–प्रदर्शन में उसका सबला रूप प्रतिफलित हुआ मिलता है ।

(1) ऑसू से भीगे अंचल पर,
मन का सब कुछ रखना होगा।
तुमको अपनी स्मित रेखा से,
यह सन्धिपत्र लिखना होगा ।

(2) ''नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में ।''

11.8.7 प्रतीकात्मकता

श्रद्धा मात्र नारी–चरित्र नहीं है । वह मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक प्रतीक भी है । मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वह दया – विश्वास, सत्य–शोध–भाव और सात्विक भावनाओं की प्रतीक है । एक प्रकार से चरित्र का मूलाधार भी यही है क्योकि चरित्र का निर्माण प्रेरणा से और प्रेरणा श्रद्धा या दया से होती है। दार्शनिक अर्थो में वह 'सत्य को धारण करनेवाली, उसका अन्वेषण करनेवाली और साक्षात्कार करानेवाली शक्ति है'। ग्रन्थ के अन्तिम तीन सर्गों में तो वह शिवशक्ति ही बन गयी है।

11.8.8 कामायनी में स्थान

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रद्धा अपने वैयक्तिक और प्रतिकात्मक दोनों ही रूपों में विविध गुणों से युक्त है । इसी से अन्य सभी चरित्र उससे प्रभावित हैं और उसके प्रशंसक भी । नारी–चित्रण के कुशल चितेरे प्रसाद जी का मन भी सबसे अधिक उसी के चरित्रांकन में रमा है । शास्त्रीय दृष्टि से भी कथा का मूल विषय और चरित्र वही है । प्रायः सभी घटनायें और चरित्र उससे किसी न किसी रूप में और कुछ न कुछ मात्रा में प्रभावित–परिचालित हैं। घटना क्रम को गतिशील बनाने और फलागम तक ले जाने में भी वहीं सर्वाधिक सक्रिय रही है । यहाँ तक कि ग्रन्थ का नामकरण भी उसी के नाम पर किया गया है । सुधाकर पाण्डे के शब्दों में ही कह सकते हैं, ''प्रसाद की कामायनी के चरित्रों में सर्वाधिक सुसंगत, गम्भीर, श्रेयस्कर, सहअस्तित्ववादी, मंगलविधायक, प्रेरणाप्रद चरित्र श्रद्धा का है जो रचना–कौशल की दृष्टि से इतना अधिक पूर्ण, जीवंत एवं सुन्दर है जितना पूर्ण प्रसाद का कोई नारी–चरित्र नहीं हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.9 व्याख्या खण्ड

11.9.1 कामायनी / मूल पाठ

श्रद्धा सर्ग

"कौन तुम ? संसृति–जलनिधि–तीर
तरंगों से फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप
प्रभा की धारा से अभिषेक !

मधुर विश्रांत और एकांत –
जगत् क सुलझा हुआ रहस्य,
एक करुणामय सुन्दर मौन
और चंचल मन का आलस्य !"

सुना यह मनु ने मधु गुंजार
मधुकरी का–सा जब सानन्द,
किये मुख नीचा कमल – समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द,

एक झिटका – सा लगा सहर्ष,
निरखने लगे लुटे–से, कौन–
गा रहा यह सुन्दर संगीत ?
कुतूहल रह न सका फिर मौन।

और देखा वह सुन्दर दृश्य
नयन का इन्द्रजाल अभिराम,
कुसुम – वैभव में लता – समान
चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम।

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लम्बी काया, उन्मुक्त;
मधु – पवन – क्रीड़ित ज्यों शिशु–शाल
सुशोभित हो सौरभ – संयुक्त।

मसृण गांधार देश के, नील
रोम वाले मेषों के चर्म,
ढंक रहे थे उसका वपु कान्त
बन रहा था वह कोमल वर्म।

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ–वन–बीच गुलाबी रंग।

आह! वह मुख ! पश्चिम के व्योम –
बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रवि–मण्डल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम।

या कि, नव–इन्द्रनील–लघुश्रृंग
फोड़कर धधक रही हो कांत
एक मधु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

घिर रहे थे घुंघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास
नील घन–शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।
और उस पर वह मुसक्यान।
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।

नित्य – यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण–कामना–मूर्ति;
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।
उषा की पहली लेखा कान्त,
माधुरी से भीगी भर मोद;
मदभरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक – द्युति की गोद।
कुसुम, कानन–अंचल में मंद–
पवन–प्रेरित सौरभ साकार,
रचित–परमाणु – पराग – शरीर
खड़ा हो, ले मधु का आधार !
और, पड़ी हो उस पर शुभ्र
नवल मधु–राका मन की साध;
हँसी का मद–विह्वल प्रतिबिम्ब
मधुरिमा–खेला–सदृश अबाध
कहा मनु ने, "नभ–धरणी बीच
बना जीवन रहस्य निरुपाय,
एक उल्का–सा जलता भ्रांत,
शून्य में फिरता हूं असहाय।
शैल निर्झर न बना हतभाग्य
गल नहीं सका जो कि हिम–खण्ड,
दौड़ कर मिला न जलनिधि–अंक
आह वैसा ही हूँ पाषंड।
पहेली–सा जीवन है व्यस्त
उसे सुलझाने का अभिमान
बताता है विस्मृति का मार्ग,
चल रहा हूँ बनकर अनजान।
झुलता ही जाता दिन–रात
सजल अभिलाषा कलित अतीत;
बढ़ रहा तिमिर–गर्भ में नित्य,
दीन जीवन का यह संगीत।
क्या कहूँ, क्या हूँ मैं उद्‌भ्रांत?
विवर में नील गगन के आज;
वायु की भटकी एक तरंग,
शून्यता का उजड़ा – सा राज।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

एक विस्मृति का स्तूप अचेत,
ज्योति का धुंधला–सा प्रतिबिंब;
और जड़ता की जीवन–राशि,
सफलता का संकलित विलम्ब।

''कौन हो तुम वसंत के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार !
घन–तिमिर में चपला की रेख,
तपन में शीतल मंद बयार !
नखत की आशा–किरण–समान,
हृदय के कोमल कवि की कांत–
कल्पना की मधु लहरी दिव्य
कर रही मानस–हलचल शांत !''
लगा कहने आगंतुक व्यक्ति
मिटाता उत्कंठा सविशेष;
दे रहा हो कोकिल सानन्द
सुमन को ज्यों मधुमय संदेश :–
''भरा था मन में नव उत्साह
सीख लूँ ललित कला का ज्ञान,
इधर रह गन्धर्वों के देश
पिता की हूँ प्यारी संतान।
घूमने का मेरा अभ्यास
बढ़ा था मुक्त–व्योम–तल नित्य;
कुतूहल खोज रहा था व्यस्त
हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य।
दृष्टि जब जाती हिमगिरि ओर
प्रश्न करता मन अधिक अधीर,
धरा की यह सिकुड़न भयभीत
आह, कैसी है ? क्या है पीर ?
मधुरिमा में अपनी ही मौन
एक सोया सन्देश महान,
सजग हो करता था संकेत;
चेतना मचल उठी अनजान।
बढ़ा मन और चले ये पैर,
शैल–मालाओं का शृंगार;
आँख की भूख मिटी यह देख
आह ! कितना सुन्दर सम्भार !
एक दिन सहसा सिंधु अपार
लगा टकराने नग तल क्षुब्ध;
अकेला यह जीवन निरुपाय
आज तक घूम रहा विश्रब्ध।
यहाँ देखा कुछ बलि का अन्न
भूत–हित–रत किसका यह दान !
इधर कोई है अभी सजीव
हुआ ऐसा मन में अनुमान।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तपस्वी ! क्यों हो इतने क्लांत ?
वेदना का यह कैसा वेग ?
आह ! तुम कितने अधिक हताश
बताओ यह कैसा उद्वेग !

हृदय में क्या है नहीं अधीर,
लालसा जीवन की निश्शेष ?
कर रहा वंचित कहीं न त्याग
तुम्हें, मन में धर सुन्दर वेश !

दुःख के डर से तुम अज्ञात
जटिलताओं का कर अनुमान,
काम से झिझक रहे हो आज,
भविष्यत् से बनकर अनजान।

कर रही लीलामय आनन्द,
महाचिति सजग हुई—सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।

काम—मंगल से मण्डित, श्रेय
सर्ग, इच्छा का है परिणाम
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
बनाते हो असफल भवधाम।

"दुःख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात
एक परदा यह झीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत् की ज्वालाओं का मूल;
ईश का वह रहस्य वरदान
कमी मत इसको जाओ भूल।

विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पंदित विश्व महान;
यही दुःख—सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।

नित्य समरसता का अधिकार
उमड़ता कारण जलधि — समान;
व्यथा की नीली लहरों बीच
बिखरते सुख—मणिगण द्युतिमान !"

लगे कहने मनु सहित विषाद :—
"मधुर मारुत्—से ये उच्छ्‌वास
अधिक उत्साह तरंग अबाध
उठाते मानस में सविलास

किन्तु जीवन कितना निरुपाय !
लिया है देख, नहीं सन्देह,
निराशा है जिसका परिणाम,
सफलता का वह कल्पित गेह।"

कहा आगंतुक ने सस्नेह :—
"अरे, तुम इतने हुए अधीर !
हार बैठे जीवन का दाँव,
जीतते मरकर जिसको वीर ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तप नहीं केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन, अवसाद;
तरल आकांक्षा से है भरा
सो रहा आशा का आह्लाद ।

प्रकृति के यौवन का शृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल;
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र
आह, उत्सुक है उनकी धूल !

पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक;
नित्य नूतनता का आनन्द
किये हैं परिवर्तन में टेक।

युगों की चट्टानों पर सृष्टि
डाल पद –चिह्न चली गम्भीर;
देव, गंर्धव असुर की पंक्ति
अनुसरण करती उसे अधीर।

"एक तुम, यह विस्तृत भू–खण्ड
प्रकृति–वैभव से भरा अमंद;
कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनन्द।

अकेले तुम कैसे असहाय
यजन कर सकते ? तुच्छ विचार !
तपस्वी ! आकर्षण से हीन
कर सके नहीं आत्म विस्तार।

दब रहे हो अपने ही बोझ
खोजते भी न कहीं अवलम्ब;
तुम्हारा सहचर बन कर क्या न
उऋण होऊँ मैं बिना विलम्ब ?

समर्पण लो सेवा का सार
सजल संसृति का यह पतवार
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद–तल में विगत – विकार।

दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास;
हमारा हृदय–रत्न–निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिये खुला है पास।

बनो संसृति के मूल रहस्य
तुम्हीं से फैलेगी वह बेल;
विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलों सुन्दर खेल"

"और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान–
शक्तिशाली हो, विजयी बनो
विश्व में गूंज रहा जय – गान।

डरो मत अरे ! अमृत सन्तान
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि ;
पूर्ण आकर्षण जीवन – केन्द्र
खिंची आवेगी सकल समृद्धि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

देव–असफलताओं का ध्वंस
प्रचुर उपकरण जुटाकर आज;
पड़ा है बन मानव–सम्पत्ति,
पूर्ण हो मन का चेतन राज।

चेतना का सुन्दर इतिहास–
अखिल मानव भावों का सत्य
विश्व के हृदय – पटल पर दिव्य
अक्षरों से अंकित हो नित्य।

विधाता की कल्याणी सृष्टि
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण
पटें सागर, बिखरें ग्रह – पुंज
और ज्वालामुखियां हों चूर्ण

उन्हें चिनगारी–सदृश सदर्प
कुचलती रहे खड़ी सानन्द;
आज से मानवता की कीर्ति
अनिल, भू, जल में रहे न बन्द।

जलधि के फूटें कितने उत्स
द्वीप कच्छप, डूबें–उतरायँ ;
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ़ मूर्ति
अभ्युदय का कर रही उपाय।

विश्व की दुर्बलता बल बने,
पराजय का बढ़ता व्यापार
हँसाता रहे उसे सविलास
शक्ति का क्रीड़ामय संचार।

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय !"

लज्जा सर्ग

"कोमल किसलय के अंचल में
नन्हीं कलिका ज्यों–छिपती–सी,
गोधूलि के धूमिल पट में
दीपक के स्वर में दीपती–सी;

मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों,
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों;

वैसी–ही माया में लिपटी
अधरों पर उँगली धरे हुए,
मानव के सरस कुतूहल का
आँखों में पानी भरे हुए;

नीरव निशीथ में लतिका–सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल बाहें फैलाये–सी
आलिंगन का जादू भरती ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किन इन्द्रजाल के फूलों से
लेकर सुहाग–कण राग–भरे,
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
माला, जिससे मधु धार–ढरे ?

पुलकित कदंब की माला–सी
पहना देती हो अन्तर् में;
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फलभरता के डर में।

वरदान–सदृश हो डाल रही
नीली किरनों से बुना हुआ,
यह अंचल कितना हलका–सा
कितने सौरभ से सना हुआ !

सब अंग मोम–से बनते हैं
कोमलता में बल खाती हूँ;
मैं सिमट रही–सी अपने में
परिहास–गीत सुन पाती हूँ।

स्मित बन जाती है तरल हँसी
नयनों में भर कर बांकपना;
प्रत्यक्ष देखती हूँ सब जो
वह बनता जाता है सपना।

मेरे सपनों में कलरव का
संसार आँख जब खोल रहा;
अनुराग समीरों पर तिरता
था इतराता–सा डोल रहा;

अभिलाषा अपने यौवन में
उठती उस सुख के स्वागत को,
जीवनभर के बल–वैभव से
सत्कृत करती दूरागत को;

किरनों का रज्जु समेट लिया
जिसका अवलम्बन ले चढ़ती;
रस के निर्झर में धँसकर मैं
आनन्द – शिखर के प्रति बढ़ती।

छूने से हिचक, देखने में
पलकें आँखों पर झुकती हैं;
कलरव – परिहास–भरी गूँजें
अधरों तक सहसा रुकती हैं।

संकेत कर रही रोमाली
चुपचाप बरजती खड़ी रही;
भाषा बन भौंहों की काली
रेखा–सी भ्रम में पड़ी रही।

तुम कौन ? हृदय की परवशता ?
सारी स्वतन्त्रता छीन रही;
स्वच्छंद सुमन जो खिले रहे
जीवन–वन से हो बीन रही !"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संध्या की लाली में हँसी,
उसका ही आश्रय लेती–सी;
छाया–प्रतिमा गुनगना उठी
श्रद्धा का उत्तर देती–सी :–

''इतना न चमत्कृत हो बाले !
अपने मन का उपकार करो;
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती–
ठहरो, कुछ सोच–विचार करो।

अंबर–चुम्बी हिम–शृंगों से
कलरव कोलाहल साथ लिये;
विद्युत की प्राणमयी धारा
बहती जिसमें उन्माद लिये;

मंगल–कुंकुम की श्री जिसमें
निखरी हो ऊषा की लाली;
भोला सुहाग इठलाता हो
ऐसी हो जिसमें हरियाली;

हो नयनों का कल्याण बना
आनन्द–सुमन–सा विकसा हो;
वासन्ती के वन–वैभव में
जिसका पंचम स्वर पिक–सा हो;

जो गूँज उठे फिर नस–नस में
मूर्च्छना समान मचलता–सा;
आँखों के साँचे में आकर
रमणीय रूप बन ढलता–सा;

नयनों की नीलम की घाटी
जिस रस–घन से छा जाती हो;
वह कौंध कि जिससे अन्तर् की
शीतलता ठंडक पाती हो;

हिल्लोल–भरा हो ऋतुपति का
गोधूली की–सी ममता हो;
जागरण प्रात–सा हँसता हो
जिसमें मध्याह्न निखरता हो;

हो चकित निकल आई सहसा
जो अपने प्राची के घर से;
उस नवल चन्द्रिका के बिछले
जो मानस की लहरों पर से;

फूलों की कोमल पंखुड़ियाँ
बिखरें जिसके अभिनन्दन में;
मकरंद मिलाती हों–अपना
स्वागत के कुंकुम–चंदन में;

कोमल किसलय मर्मर–रव से
जिसका जय–घोष सुनाते हों;
जिसमें दुःख–सुख मिलकर मन के
उत्सव आनन्द मनाते हों;

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौंदर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं;
मैं उसी चपल की धात्री हूँ
गौरव–महिमा हूँ सिखलाती;
ठोकर जो लगनेवाली है
उसको धीरे से समझाती।
मैं देव–सृष्टि की रति रानी
निज पंचबाण से वंचित हो,
बन आवर्जना–मूर्ति दीना
अपनी अतृप्ति–सी संचित हो;
अवशिष्ट रह गयी अनुभव में
अपनी अतीत असफलता–सी;
लीला विलास की खेद–भरी
अवसादमयी श्रम–दलित–सी।
मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
मैं शालीनता सिखाती हूँ;
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर–सी लिपट मनाती हूँ।
लाली बन सरल कपोलों में
आँखों में अंजन–सी लगती;
कुंचित अलकों–सी घुँघराली
मन की मरोर बनकर जगती।
चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली;
मैं वह हलकी–सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली !"
"हाँ ठीक, परन्तु बताओगी
मेरे जीवन का पथ क्या है?
इस निविड़ निशा में संसृति की
आलोकमयी रेखा क्या है?
यह आज समझ तो पायी हूँ
मैं दुर्बलता में नारी हूँ;
अवयव की सुन्दर कोमलता
लेकर मैं सब से हारी हूँ।
पर मन भी क्यों इतना ढीला
अपने ही होता जाता है ?
घनश्याम–खंड–सी आँखों में
क्यों सहसा जल भर आता है ?
सर्वस्व–समर्पण करने की,
विश्वास–महा तरु–छाया में
चुपचाप पड़ी रहने की क्यों
ममता जगती है माया में ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

छायापथ में तारक–द्युति–सी
झिलमिल करने की मधु–लीला,
अभिनय करती क्यों इस मन में
कोमल निरीहता श्रमशीला ?

निस्संबल होकर तिरती हूँ
इस मानस की गहराई में
चाहती नहीं जागरण कभी
सपने की इस सुघराई में।

नारी–जीवन का चित्र यही
क्या ? विकल रंग भर देती हो;
अस्फुट रेखा की सीमा में
आकार कला को देती हो ?

रुकती हूँ और ठहरती हूँ
पर सोच–विचार न कर सकती;
पगली–सी कोई अंतर् में
बैठी जैसे अनुदिन बकती।

मैं जभी तोलने का करती
उपचार, स्वयं तुल जाती हूँ;
भुज–लता फंसा कर नर–तरु से
झूले–सी झोंके खाती हूँ।

इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग छलकता है;
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ
इतना ही सरल झलकता है।''

''क्या कहती हो ठहरो नारी !
संकल्प अश्रु–जल से अपने,
तुम दान कर चुकी पहले ही
जीवन के सोने–से–सपने।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास–रजत–नग–पग–तल में–
पीयूष–स्रोत–सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।

देवों की विजय, दानवों की
हारों का होता युद्ध रहा;
संघर्ष सदा उर–अन्तर् में
जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा।

आँसू से भीगे अंचल पर
मन का सब–कुछ रखना होगा;
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह सन्धि–पत्र लिखना होगा।''

इड़ा सर्ग

''किस गहन गुहा से अति अधीर
झंझा–प्रवाह–सा निकला यह जीवन विक्षुब्ध महा समीर ?
ले साथ विकल परमाणु–पुंज–नभ, अनिल, अनल, क्षिति और नीर
भयभीत सभी को भय देता, भय की उपासना में विलीन,
प्राणी कटुता को बाँट रहा जगती को करता अधिक दीन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

निर्माण और प्रतिपद विनाश में दिखलाता अपनी क्षमता,
संघर्ष कर रहा–सा जब से, सब से विराग सब पर ममता।
अस्तित्व–चिरंतन–धनु से कब यह छूट पड़ा है विषम तीर–
किस लक्ष्य–भेद को शून्य चीर ?

देखे मैंने वे शैल–शृंग
जो अचल हिमानी से रंजित, उन्मुक्त, उपेक्षा–भरे तुंङ्ग,
अपने जड़ गौरव के प्रतीक, वसुधा का कर अभिमान भंग !
अपनी समाधि में रहे सुखी, बह जाती हैं नदियाँ अबोध,
कुछ स्वेद – बिन्दु उसके लेकर, वह स्तिनित–नयन गत शोक–क्रोध !
स्थिर मुक्ति, प्रतिष्ठा मैं वैसी चाहता नहीं इस जीवन की,
मैं तो अबाध गति मरुत–सदृश, हूँ चाह रहा अपने मन की,
जो चूम चला जाता अग–जग प्रति पग में कम्पन की तरंग।
वह ज्वलनशील गतिमय पतंग !

अपनी ज्वाला से कर प्रकाश
जब छोड़ चला आया सुन्दर प्रारंभिक जीवन का निवास,
वन, गुहा, कुंज, मरु अंचल में हूँ खोज रहा अपना विकास।
पागल मैं किस पर सदय रहा ? क्या मैंने ममता ली न तोड़ ?
किस पर उदारता से रीझा ? किससे न लगा दी कड़ी होड़ ?
इस विजन प्रांत में बिलख रही मेरी पुकार उत्तर न मिला
लू–सा झुलसाता दौड़ रहा कब मुझसे कोई फूल खिला ?
मैं स्वप्न देखता हूं उजड़ा कल्पना – लोक में कर निवास
देखा कब मैंने कुसुम – हास ?

इस दुखमय जीवन का प्रकाश
नभ–नील लता की डालों में उलझा अपने सुख से हताश !
कलियाँ जिनको मैं समझ रहा वे काँटे बिखरे आस–पास।
कितना बीहड़ पथ चला और पड़ रहा कहीं थककर नितांत,
उन्मुक्त शिखर हँसते मुझ पर रोता मैं निर्वासित अशांत।
इस नियति–नटी के अति भीषण अभिनय की छाया नाच रही।
खोखली शून्यता में प्रतिपद असफलता अधिक कुलाँच रही।
पावस – रजनी में जुगुनूगण को दौड़ पकड़ता मैं निराश,
उन ज्योति–कणों का कर विनाश।

जीवन–निशीथ के अंधकार।
तू नील तुहिन जल–निधि बनकर फैला है कितना वार–पार।
कितनी चेतनता की किरनें हैं डूब रहीं ये निर्विकार ?
कितना मादक तम, निखिल भुवन भर रहा भूमिका में अभंग ?
तू मूर्तिमान हो छिप जाता प्रतिपल के परिवर्तन अनंग।
ममता की क्षीण अरुण रेखा खिलती है तुझमें ज्योति–कला,
जैसे सुहागिनी की उर्मिल अलकों में कुंकुम्चूर्ण भला।
रे चिर–निवास विश्राम प्राण के मोह–जलद–छाया उदार !
माया रानी के केश – भार !

जीवन निशीथ के अंधकार ।
तू घूम रहा अभिलाषा के नव ज्वलन धूम–सा दुर्निवार;
जिसमें अपूर्ण लालसा, कसक, चिनगारी–सी उठती पुकार,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यौवन–मधुवन की कालिंदी बह रही चूम कर सब दिगन्त,
मन–शिशु की क्रीड़ा–नौकाएँ बस दौड़ लगाती हैं अनन्त।
कुहुकिनि अपलक दृग के अंजन ! हँसती तुझमें सुन्दर छलना,
धूमिल रेखाओं से सजीव चंचल चित्रों की नव–कलना,
इस चिर–प्रवास श्यामल पथ में छायी पिक प्राणों की पुकार–
बन नील प्रतिध्वनि नभ अपार –

यह उजड़ा सूना नगर – प्रांत
जिसमें सुख–दुःख की परिभाषा विध्वस्त शिल्प–सी हो नितांत–
निज विकृत वक्र रेखाओं से, प्राणी का भाग्य बनी अशांत।
कितनी सुखमय स्मृतियाँ अपूर्ण रुचि बन कर मँडराती विकीर्ण,
इन ढेरों में दुखभरी कुरुचि दब रही अभी बन पत्र जीर्ण।
आती दुलार को हिचकी–सी सूने कोनों में कसकभरी,
इस सूखे तरु पर मनोवृत्ति आकाश–बेलि–सी रही हरी।
जीवन समाधि के खण्डहर पर जो जल उठते दीपक अशांत,
फिर बुझ जाते वे स्वयं शांत।''

यो सोच रहे मनु पड़े श्रांत।
श्रद्धा का सुख–साधन–निवास जब छोड़ चले आये प्रशांत,
पथ–पथ में भटक अटकते वे आये इस ऊजड़ नगर–प्रांत।
बहती सरस्वती वेगभरी, निस्तब्ध हो रही निशा श्याम;
नक्षत्र निरखते निर्निमेष वसुधा की वह गति विकल वाम।
वृत्रघ्नी का वह जनाकीर्ण उपकूल आज कितना सूना !
देवेश इंद्र की विजय – कथा की स्मृति देती थी दुःख दूना।
वह पावन सारस्वत प्रदेश दुःस्वप्न देखता पड़ा क्लांत,
फैला था चारों ओर ध्वांत !

''जीवन का लेकर नव विचार
जब चला द्वंद्व था असुरों में प्राणों की पूजा का प्रचार !
उस ओर आत्म–विश्वास–निरत सुर–वर्ग कह रहा था पुकार–
'मैं स्वयं सतत – आराध्य आत्म – मंगल – उपासना में विभोर,
उल्लासशील मैं शक्ति–केन्द्र, किसकी खोजूँ फिर शरण और ?
आनन्द – उच्छलित शक्ति–स्रोत जीवन–विकास वैचित्र्यभरा,
अपना नव–नव निर्माण किये रखता यह विश्व सदैव हरा।'
प्राणों के सुख–साधन में ही, संलग्न असुर करते सुधार –
नियमों में बँधते दुर्निवार।

था एक पूजता देह दीन,
दूसरा अपूर्ण अहंता में अपने को समझ रहा प्रवीण।
दोनों का हठ था दुर्निवार, दोनों ही थे विश्वास–हीन।
फिर क्यों न तर्क को शस्त्रों से वे सिद्ध करें, क्यों हो न युद्ध ?
उनका संघर्ष चला अशान्त वे भाव रहे अब तक विरुद्ध ।
मुझमें ममत्वमय आत्म–मोह स्वातंत्र्यमयी उच्छृङ्खलता,
हो प्रलय–भीत तन–रक्षा में पूजन करने की व्याकुलता।
वह पूर्व–द्वंद्व परिवर्तित हो मुझको बना रहा अधिक दीन–
सचमुच मैं हूँ श्रद्धा – विहीन !''

''मनु ! तुम श्रद्धा को गये भूल !
उस पूर्ण आत्मविश्वासमयी को उड़ा दिया था समझ तूल।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तुमने तो समझा असत विश्व जीवन – धागे में रहा झूल,
जो क्षण बीतें सुख–साधन में उनको ही वास्तव लिया मान,
वासना–तृप्ति ही स्वर्ग बनी, यह उलटी मति का व्यर्थ ज्ञान।
तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की,
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की।''
जब गूँजी यह वाणी तीखी कम्पित करती अम्बर अकूल–
मनु को जैसा चुभ गया शूल।

''यह कौन ? अरे फिर वही काम !
जिसने इस भ्रम में है डाला छीना जीवन का सुख –विराम ?
प्रत्यक्ष लगा होने अतीत जिन घड़ियों का अब शेष नाम।
वरदान आज उस गत युग का कम्पित करता है अन्तरंग,
अभिशाप ताप की ज्वाला से जल रहा आज मन और अंग।'
बोले मनु ''क्या मैं भ्रान्त – साधना में ही अब तक लगा रहा,
क्या तुमने श्रद्धा को पाने के लिए नहीं सस्नेह कहा ?
पाया तो, उसने भी मुझको दे दिया हृदय निज अमृत – धाम
फिर क्यों न हुआ मैं पूर्ण काम ?''

''मनु ! उसने तो कर दिया दान।
वह हृदय प्रणय से पूर्ण सरल जिसमें जीवन का भरा, मान,
जिसमें चेतनता ही केवल निज शान्त प्रभा से ज्योतिमान।
पर तुमने तो पाया सदैव उसकी सुन्दर जड़ देह–मात्र,
सौन्दर्य – जलधि से भर लाये केवल तुम अपना गरल–पात्र।
तुम अति अबोध, अपनी अपूर्णता को न स्वयं तुम समझ सके,
परिणय जिसको पूरा करता उससे तुम अपने आप रुके।
''कुछ मेरा हो यह राग–भाव संकुचित पूर्णता है अजान।
मानस–जलनिधि का क्षुद्र यान।

हाँ, अब तुम बनने को स्वतंत्र
सब कलुष ढाल कर औरों पर रखते हो अपना अलग तंत्र।
द्वंद्वों का उद्‌गम तो सदैव शाश्वत रहता वह एक मंत्र,
डाली में कंटक–संग कुसुम खिलते मिलते भी है नवीन,
अपनी रुचि से तुम बिंधे हुए जिसको चाहे ले रहे बीन।
तुमने तो प्राणमयी ज्वाला का प्रणय–प्रकाश न ग्रहण किया,
हाँ, जलन–वासना को जीवन –भ्रम–तम मे पहला स्थान दिया।
अब विकल प्रवर्त्तन हो ऐसा जो नियति–चक्र का बने यंत्र –
हो शापभरा तब प्रजातंत्र ।

यह अभिनव मानव – प्रजा– सृष्टि
द्वयता में लगी निरन्तर ही वर्णों की करती रहे वृष्टि।
अनजान समस्याएँ गढ़ती, रचती हो अपनी ही विनष्टि।
कोलाहल–कलह अनंत चले, एकता नष्ट हो बढ़े भेद,
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद।
हृदयों का हो आवरण सदा अपने वक्षस्थल की जड़ता,
पहचान सकेंगे नहीं परस्पर चले विश्व गिरता–पड़ता।
सब कुछ भी हो यदि पास भरा पर दूर रहेगी सदा तुष्टि।
दुःख देगी यह संकुचित दृष्टि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनवरत उठे कितनी उमंग
चुम्बित हों आँसू–जलधर से अभिलाषाओं के शैल–शृंड्ग।
जीवन–नद हाहाकार–भरा, हो उठती पीड़ा की तरंग।
लालसा–भरे यौवन के दिन पतझड़ सूखे जायँ बीत,
संदेह नये उत्पन्न रहें, उनसे संतप्त सदा सभीत–
फैलेगा स्वजनों का विरोध बनकर तमवाली श्याम अमा,
दारिद्र्य–दलित बिलखाती हो यह शस्य–श्यामला प्रकृति–रमा।
दुख–नीरद में बन इंद्रधनुष बदले नर कितने नये रंग –
बन तृष्णा–ज्वाला का पतंग !

वह प्रेम न रह जाये पुनीत
अपने स्वार्थों से आवृत हो मंगल–रहस्य सकुचे सभीत।
सारी संसृति हो विरह भरी, गाते ही बीतें करुण गीत।
आकांक्षा–जलनिधि की सीमा हो क्षितिज निराशा सदा रक्त,
तुम राग–विराग करो सबसे अपने को कर शतशः विभक्त।
मस्तिष्क हृदय के हो विरुद्ध – दोनों में हो सद्भाव नहीं,
वह चलने को जब कहे कहीं तब हृदय विकल चल जाय कहीं।
रोकर बीतें सब वर्तमान क्षण, सुन्दर सपना हो अतीत।
पेंगों में झूले हार–जीत !
संकुचित असीम अमोघ शक्ति !
जीवन को बाधामय पथ पर ले चले भेद से भरी भक्ति।
या कभी अपूर्ण अहंता में हो रागमयी–सी महासक्ति।
व्यापकता नियति–प्रेरणा बन अपनी सीमा में रहे बंद,
सर्वज्ञ ज्ञान का क्षुद्र अंग विद्या बन कर कुछ रचे छंद।
कर्तृत्व सकल बन कर आवे नश्वर छाया–सी ललित–कला,
नित्यता विभाजित हो पल–पल में काल निरन्तर चले ढला।
तुम समझ न सको, बुराई से शुभ इच्छा की है बड़ी शक्ति।
हो विफल तर्क से भरी युक्ति !

जीवन सारा बन जाय युद्ध !
उस रक्त – अग्नि की वर्षा में बह जायँ सभी जो भाव शुद्ध।
अपनी शंकाओं से व्याकुल तुम अपने ही होकर विरुद्ध,
अपने को आवृत्त किये रहो दिखलाओ निज कृत्रिम स्वरूप,
वसुधा के समतल पर उन्नत चलता–फिरता हो दंभ स्तूप।
श्रद्धा इस संसृति की रहस्य व्यापक विशुद्ध विश्वासमयी
सब कुछ देकर नव–निधि अपनी तुमसे ही तो वह छली गयी।
हो वर्तमान से वंचित तुम अपने भविष्य में रहो रुद्ध !
सारा प्रपंच ही हो अशुद्ध !

तुम जरा–मरण में चिर अशांत
जिसको अब तक समझे थे सब जीवन में नरिवर्तन अनंत
अमरत्व वही अब भूलेगा तुम व्याकुल उसको कहो अंत।
दुखमय चिर–चिंतन के प्रतीक ! श्रद्धा –वंचक बनकर अधीर
मानव–संतति ग्रह – रश्मि–रज्जु से भाग्य बाँध पीटे लकीर।
कल्याण–भूमि यह लोक यही श्रद्धा–रहस्य जाने न प्रजा,
अतिचारी मिथ्या मान इसे परलोक–वंचना से भर जा।
आशाओं में अपने निराश निज बुद्धि – विभव से रहे भ्रांत
वह चलता रहे सदैव श्रांत !''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अभिशाप–प्रतिध्वनि हुई लीन ।
नभ–सागर के अंतस्तल में जैसे छिप जाता महा मीन।
मृदु मरुत – लहर में फेनोपम तारागण झिलमिल हुए दीन।
निस्तब्ध मौन था अखिल लोक, तंद्रालस था वह विजन प्रांत,
रजनी–तम–पुंजीभूत–सदृश मनु श्वास ले रहे थे अशांत।
वे सोच रहे थे ''आज वही मेरा अदृष्ट बन फिर आया,
जिसने डाली थी जीवन पर पहले अपनी काली छाया।
लिख दिया आज उसने भविष्य ! यातना चलेगी अंत–हीन।
अब तो अवशिष्ट उपाय भी न !''

करती सरस्वती मधुर नाद
बहती थी श्यामल घाटी में निर्लिप्त भाव सी अप्रमाद।
सब उपल उपेक्षित पड़े रहे जैसे वे निष्ठुर जड़ विषाद।
वह थी प्रसन्नता की धारा जिसमें था केवल मधुर गान,
थी कर्म–निरंतरता–प्रतीक, चलता था स्ववश अनंत ज्ञान।
हिम–शीतल लहरों का रह–रह कूलों से टकराते जाना,
आलोक–अरुण–किरणों का उन पर अपनी छाया बिखराना–
अद्‌भुत था ! निज–निर्मित पथ का वह पथिक चल रहा निर्विवाद !
कहता जाता कुछ सु–संवाद !

प्राची में फैला मधुर राग
जिसके मंडल में एक कमल खिल उठा सुनहला भर पराग।
जिसके परिमल से व्याकुल हो श्यामल कलरव सब उठे जाग।
आलोक–रश्मि से बुने उषा – अंचल में आदोलन अमंद
करता, प्रभात का मधुर पवन सब ओर वितरने को मरंद।
उस रम्य फलक पर नवल चित्र–सी प्रकट हुई सुन्दर बाला–
वह नयन–महोत्सव की प्रतीक, अम्लान नलिन की नव माला:
सुषमा का मंडल सुस्मित–सा बिखराता संसृति पर सुराग।
सोया जीवन का तम विराग।

बिखरी अलकें ज्यों तर्क–जाल !
वह विश्व मुकुट–सा उज्ज्वलतम शशिखंड–सदृश था स्पष्ट भाल।
दो पद्म–पलाश–चषक–से दृग देते अनुराग–विराग ढाल।
गुंजरित मधुप से मुकुल –सदृश वह आनन जिसमें भरा गान,
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान–ज्ञान।
था एक हाथ में कर्म–कलश वसुधा–जीवन–रस सार लिये,
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये।
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक–वसन लिपटा अराल–
चरणों में थी गति –भरी ताल !

नीरव थी प्रणों की पुकार !
मूर्च्छित जीवन–सर निस्तरंग नीहार घिर रहा था अपार।
निस्तब्ध अलस बन कर सोयी चलती न रही चंचल बयार।
पीता मन मुकुलित–कंज आप अपनी मधु बूँदें मधुर मौन।
निस्वन दिगंत में रहे रुद्ध सहसा बोले मनु, ''अरे कौन–
आलोकमयी स्मिति चेतनता आयी वह हेमवती छाया !''
तंद्रा के स्वप्न तिरोहित थे बिखरी केवल उजली माया।
वह स्पर्श–दुलार–पुलक से भर बीते युग को उठता पुकार।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वीचियाँ नाचती बार–बार !

प्रतिभा – प्रसन्न मुख सहज खोल
वह बोली ''मैं हूं इड़ा; कहो तुम कौन यहाँ पर रहे डोल ?''
नासिका नुकीली के पतले पुट फरक रहे कर स्मित अमोल।
''मनु मेरा नाम सुनो बाले मैं विश्व–पथिक सह रहा क्लेश।''
''स्वागत ! पर देख रहे हो तुम यह उजड़ा सारस्वत प्रदेश।
भौतिक हलचल से यह चंचल हो उठा देश ही था मेरा,
इसमें अब तक हूँ पड़ी इसी आशा से आये दिनमेरा ।''

● ● ●

मैं तो आया हूँ, देवि, बता दो जीवन का क्या सहज मोल।
भव के भविष्य का द्वार खोल !

''इस विश्व–कुहर में इंद्रजाल !
जिसने रच कर फैलाया है ग्रह–तारा–विद्युत–नखत–माल।
सागर की भीषणतम तरंग–सा खेल रहा वह महाकाल।
तब क्या इस वसुधा के लघु–लघु प्राणी को करने को सभीत,
उस निष्ठुर की रचना कठोर केवल विनाश की रही जीत।
तब मूर्ख आज तक क्यों समझे हैं सृष्टि उसे जो नाशमयी ?
उसका अधिपति ? होगा कोई, जिस तक दुःख की न पुकार गयी।
सुख–नीड़ों को घेरे रहता अविरत विषाद का चक्रवाल।
किसने यह पट है दिया डाल ?

शनि का सुदूर वह नील लोक
जिसकी छाया–सा फैला है ऊपर–नीचे यह गगन शोक।
उसके भी परे सुना जाता है कोई प्रकाश का महाओक।
वह एक किरन अपनी देकर मेरी स्वतंत्रता में सहाय
क्या बन सकता है ? नियति – जाल से मुक्ति –दान का कर उपाय।''

● ● ●

''कोई भी हो वह क्या बोले, पागल बन कर निर्भर न करे,
अपनी दुर्बलता – बल सम्हाल, गंतव्य मार्ग पर पैर धरे;
मत कर पसार, निज पैरों चल, चलने की जिसको रहे झोंक–
उसको कब कोई सके रोक ?

''हाँ तुम ही हो अपने सहाय !
जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर किसकी नर शरण जाय ?
जितने विचार संस्कार रहे उनका न दूसरा है उपाय।
यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्य– भरी शोधक–विहीन,
तुम उसका पटल खोलने में परिकर कस कर बन कर्मलीन,
सबका नियमन शासन करते बस बढ़ा चलो अपनी क्षमता
तुम ही उसके निर्णायक हो, हो कहीं विषमता या समता।
तुम जड़ता को चैतन्य करो विज्ञान सहज साधन उपाय।
यश अखिललोक में रहे छाय ।''

हँस पड़ा गगन वह शून्य लोक
जिसके भीतर बस कर उजड़े कितने ही जीवन–मरण–शोक,
कितने हृदयों के मधुर मिलन क्रंदन करते बन विरह कोक।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ले लिया भार अपने सिर पर मनु ने यह अपना विषम आज।
हँस पड़ी उषा प्राची नभ में, देखे नर अपना राज्य–काज;
चल पड़ी देखने वह कौतुक चंचल मलयाचल की बाला;
लख लाली प्रकृति–कपोलों में गिरता तारा–दल मतवाला;
उन्निद्र कमल–कानन में होती थी मधुपों की नोक–झोंक।
वसुधा विस्मृत थी सकल शोक।

''जीवन–निशीथ का अंधकार
भग रहा क्षितिज के अंचल में मुख आवृत्त कर तुमको निहार।
तुम इड़े ! उषा–सी आज यहाँ आयी हो बन कितनी उदार !
कलरव कर जाग पड़े मेरे ये मनोभाव सोये विहंग,
हँसती प्रसन्नता चाव–भरी बनकर किरनों की–सी तरंग;
अवलंब छोड़ कर औरों का जब बुद्धिवाद को अपनाया,
मैं बढा सहज, तो स्वयं बुद्धि को मानो आज यहाँ पाया।
मेरे विकल्प संकल्प बनें, जीवन हो कर्मों की पुकार –
सुख साधन का हो खुला द्वार।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

11.9.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

श्रद्धा–सर्ग

सर्ग परिचय श्रद्धा का अर्थ है – 'सत्य को धारण करनेवाली'। श्रद्धा का प्रयोग मनोवैज्ञानिक अर्थों में किया गया है– विश्वासातिशय, ऐश्वर्यदाता हृदय – भाव, दृढ़ विश्वास तथा इच्छा मन का रूपान्तरण, शुचिता आदि। अपने सांस्कृतिक अर्थों में श्रद्धा देवी और भावना (ऋग्वेद) मनोवांछित फलप्रदाता, विश्व–रूप (तैत्तरीय उपनिषद), तथा सत्य – संतान और विश्व का भरण – पोषण करनेवाली सत्ता (तैत्तरीय उपनिषद) है।

'कामायनी' में श्रद्धा के उपर्युक्त तीनों प्रकार के रूप तो मिलते ही हैं, वह यहाँ नायिका भी है। स्वयं जयशंकर प्रसाद (कामायनी : आमुख) के शब्दों में, ''श्रद्धा कामगोत्र बालिका है, इसीलिए श्रद्धा नाम के साथ उसे कामायनी भी कहा जाता है। .... मनु अर्थात् मन के दोनों पक्षों, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।'' श्रद्धा हृदय का पर्याय है।

'कामायनी' की श्रद्धा, ग्रंथ की नायिका है।

कथा के अनुसार किसी दिन एकाकी मनु हिमालय – शिखर पर बैठे विचार मग्न थे। अचानक एक नारी – स्वर उनके कानों में पड़ा। मनु को झटका – सा लगा, जिज्ञासा उत्पन्न हुई। और वे कोमल स्वरवाली नारी को देखने लगे। परिचय का आदान–प्रदान किया। यही नारी श्रद्धा थी जो गांधार प्रदेश की निवासिनी और कामगोत्रजा षोड़शी थी। मनु द्वारा रखे गये यज्ञ – अवशिष्ट को देखकर घूमती–फिरती मनु तक आ पहुंची थी। मनु की निराशा, अवसाद, खिन्नता और एकाकी जीवन को देख वह मनु के प्रति न केवल समर्पित हो गयी, वरन उसने अपने अपूर्व शारीरिक – मानसिक सौन्दर्य से मनु को आकर्षित भी कर लिया। इतना ही नहीं वरन् उसी ने मनु को कर्म करने की प्रेरणा भी दी। फलतः प्रकृति– परिवर्तन, जीवन–आकर्षण और मानवता – विजय आदि की श्रद्धा – सलाह को सुनकर मनु कर्मठ हो गये। वे अपने विकल्पों को संकल्प, जीवन को कर्म की पुकार और सुख–साधन के नये द्वार खोलने के लिये तैयार हो गए।

काव्यात्मक दृष्टि से प्रस्तुत सर्ग सम्पूर्ण ग्रन्थ की भूमिका है। इसके प्रमुख वर्ण्य – विषय हैं – श्रद्धा का अन्तर्बाह्य सौन्दर्य – चित्रण, मनु का अवसाद, श्रद्धा द्वारा प्रदत्त मनु – उद्‌बोधन, काम, कर्म और जीवन के प्रति नवीन दृष्टिकोण, आत्म–समर्पण और मानवतावाद का संदेश। श्रद्धा का अन्तर्बाह्य सौंदर्य चित्रण रीतिकालीन नख–शिख प्रणाली का होने पर भी सभी छायावादी गुणों से युक्त है।

मनु और श्रद्धा दोनों के ही चरित्रांकन की दृष्टि से भी यह सर्ग सबल बन पड़ा है। नामकरण की दृष्टि से प्रस्तुत सर्ग एकदम समीचीन है। आशा के पश्चात् ही श्रद्धाभाव जाग्रत होता है, यह एक मनोवैज्ञानिक नियम है और

यहां पर कवि ने उसी के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। श्रद्धा – सौन्दर्य जैसे प्रसंगों में कला अर्थात् अलंकारों का कौशल, अभिव्यक्ति – क्षमता भाषा, और शब्द कौशल तथा छंदीय संगीतात्मकता आदि भी पूरे काव्यमय बनकर प्रकट हुए हैं।

कौन तुम ? संसृति .... मन का आलस्य।''

शब्दार्थ – संसृति = संसार। जलनिधि – तीर = सागर के तट। तरंग = लहरों। निर्जन = नीरवता। प्रभा की धारा = प्रकाश । अभिषेक = राजतिलक, पवित्रीकरण। विश्रांत = शान्ति। मन का आलस्य = विमन, उदासीनता।

संदर्भ – प्रस्तुत काव्यांश छायावाद के प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद की रचना 'कामायनी' के श्रद्धा सर्ग से संगृहीत है।

प्रसंग – प्रलय के पश्चात मनु एकाकी रह गये है। एकाकी मनु हिमालय शिखर पर अनेक प्रकार की कल्पनाओं में उलझे रहते हैं। आशावान होने पर भी अभी वे प्रायः खिन्नता का अनुभव करते – करते समय व्यतीत करते हैं। किसी दिन वे इसी प्रकार उदास से बैठे हैं। इसी समय एक षोडशी (श्रद्धा) उनके पास आकर उनका परिचय पूछती है।

व्याख्या – इस संसार रूपी समुद्र के तट पर लहरों की भाँति फेंकी गयी किसी मणि के समान दैदीप्यमान कांतिवाले पुरुष, तुम कौन हो ? तुमको इस निर्जन में एकाकी बैठे हुए देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अपने सौन्दर्य – प्रकाश से चुपचाप इस व्याप्त नीरवता का पवित्रीकरण कर रहे हो।

इसी नीरव वातावरण में तुम एक मधुर (लगनेवाले) आलस्य से युक्त होकर बैठे हो और जगत के सुलझे हुए रहस्य से युक्त लगत हो।

विशेष – (1) 'कौन' के माध्यम से रहस्य और रोमांच के साथ जिज्ञासा की सृष्टि द्रष्टव्य है।

(2) यह जिज्ञासा वातावरण निर्माण में सहायक है।

''सुना जब .... फिर मौन।''

शब्दार्थ – मधु = मधुर। गुंजार = गुंजन, ध्वनि। मधुकरी = भ्रमरी। प्रथम कवि = वाल्मीकि । झिटका = चौंकना। निरखने = देखने। कुतूहल = आश्चर्य, जिज्ञासा।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – श्रद्धा की ध्वनि ने विचारमग्न मनु की तल्लीनता को तोड़ दिया । वे आश्चर्यचकित होकर श्रद्धा को देखने लगे। मनु की इसी भाव स्थिति को स्पष्ट करते हुए कवि बताता है।

व्याख्या – जब मनु ने श्रद्धा की ध्वनि सुनी तो उनको ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई भ्रमरी पुष्प–रस से भरकर गुंजन– ध्वनि कर रही हो। तात्पर्य यही है कि मनु को श्रद्धा की वाणी मधु की भांति मधुर और आनंददायक लगी। इस प्रकार वे अपने मुख को नीचा किए हुए इस प्रकार बैंठे थे मानो कोई कमल (मनु – मुख) नीचे की ओर झुक रहा हो। उनको श्रद्धा की बातें उसी प्रकार मर्मस्पर्शी और प्रभावोत्पादक प्रतीत हुयीं जैसे कि प्रथम कविवाल्मीकि की काव्य – रचना का प्रथम छंद ('मा निषाद ! प्रतिष्ठाम् त्वमगमः शाश्वतीः समाः यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्') है।

(श्रद्धा की वाणी को सुनकर) मनु को (आश्चर्य भाव के कारण) झटका सा लगा अर्थात् वे चौंक पड़े और प्रसन्नतापूर्वक श्रद्धा को देखने लगे और प्रभावित हो गए। उन्हें आश्चर्य हुआ कि इतनी अधिक मधुर वाणी में यह सुन्दर संगीत कौन गा रहा है? उनका आश्चर्य भाव मौन नहीं रह सका (क्योंकि वे श्रद्धा के विषय में जानने के लिये जिज्ञासु हो उठे।)

विशेष – (1) प्रथम पुरुष नारी की प्रथम भेंट का यह अकन एकदम स्वाभाविक सूक्ष्म और मनोविज्ञान सम्मत है।

(2) आदि कवि का आदि छंद यानी वाल्मीकि प्रथम कविता और मानिषाद ... की ओर संकेत है।

''और देखा .... सौरभ संयुक्त''

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग : मनु आश्चर्यचकित होकर श्रद्धा का सौन्दर्य देखने लगे। उसी के रूप–सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है।

व्याख्या : मनु ने (श्रद्धा के सौन्दर्य से युक्त) उस सुन्दर दृश्य को देखा जो (मनु के) नेत्रों के लिए सुन्दर मायाजाल की भांति था। तात्पर्य यही है कि श्रद्धा का मोहक रूप उनको अपने पर जादू करता सा प्रतीत हुआ। मनु को श्रद्धा का शरीर ऐसा लगा मानो वह पुष्पों से युक्त किसी लता के समान हो अथवा काले मेघ खंडों से घिरी हुई चांदनी हो। (तात्पर्य यही है कि श्रद्धा का समस्त शरीर चांदनी की भांति गौरवर्णीय था और उस पर स्थान–स्थान पर काले मेघों के वर्णवाले वस्त्रादि सुशोभित थे)।

श्रद्धा की बाह्य आकृति उसके हृदय की ही नकल थी अर्थात् उसका अन्तर्बाह्य दोनों ही सौन्दर्यमय थे। उसका शरीर लम्बा और उन्मुक्त था। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो मधु पवन से खेलता हुआ और वायु के मादक झोंकों से लहराता हुआ कोई साल वृक्ष का शिशु अर्थात् छोटा साल – पौधा हो। तात्पर्य यही है कि सौरभमयी वायु उसके अंग–प्रत्यंगों से अठखेलियां कर रही थी और उससे मधु गंध आ रही थी।

विशेष : 1. यहाँ पर छायावादी शैली में श्रद्धा का नख–शिख वर्णन किया गया है जो कवि की भावांकन–क्षमता का परिचाक है।

2. श्रद्धा के चरित्रांकन की दृष्टि से यह काव्यांश महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ उसके अन्तर्बाह्य का अंकन है।

3. काव्यशास्त्रीय शब्दावली में श्रद्धा उत्तमा अथवा पद्मिनी श्रेणी की नायिका है। उसके अन्तर्बाह्य का सात्विक रूप, उन्मुक्त – लम्बी काया और सौरभमय होना आदि इसी की पुष्टि करते हैं। सामुद्रिक विद्या के अनुसार भी गोरी, लम्बी स्त्री सत्यशील और पतिपरायणा होती है।

4. अलंकार – (प) उपमा – कुसुम ...... घनश्याम

(पप) उत्प्रेक्षा – मधुपवन ..... शिशु साल

(पपप) मानवीकरण – शिशु साल

(पअ) अनुप्रास – सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।

5. यहां पर प्रकृति का अलंकार रूप में प्रयोग है।

''मसृण गांधार देश के .... गुलाबी रंग।''

शब्दार्थ : मसृण = चिकने । गांधार = आज का अफगानिस्तान। रोम = रोयें । मेषों = भेड़ों। चर्म = चमड़ा। वपु = शरीर । कांत = सुन्दर । धर्म = कवच। बिजली का फूल = दीप्ति।

संदर्भ : पूर्ववत्।

प्रसंग : श्रद्धा के बाह्य सौंदर्य का वर्ण करते हुए प्रसाद कहते है–

व्याख्या : गांधार प्रदेश के नीचे रोयेंवाले भेड़ों के चिकने चमड़ों से निर्मित वस्त्र उसके सुन्दर शरीर को ढक रहे थे। ये वस्त्र उस शरीर के लिये (रक्षा करने के कारण) कवच बने हुए थे। (अपने शरीर पर धारण किये हुए) इन नीले वस्त्रों में से कहीं–कहीं पर इसके (श्रद्धा के) कोमल अंग अधखुले थे। वे सुन्दर अंग–प्रत्यंग ऐसे लगते थे मानो नीलवर्णी मेघों के बीच में गुलाबी रंगवाला बिजली का पुष्प विकसित होकर प्रकट हो रहा हो। तात्पर्य यही है कि श्रद्धा के अंग–प्रत्यंग गौर और यौवन की लालिमा से परिपूर्ण थे।

विशेष – 1. रीतिकालीन नख–शिख–वर्णन की परम्परा में होने पर भी श्रद्धा का यह सौन्दर्य – वर्णन एकदम नवीन है। यहाँ उपमेय – उपमान की गणना मात्र नहीं वरन् सार्थक उपमान योजना है।

2. स्थूल सौंदर्य – चित्रण से अधिक यहां पर अनुमति अथवा प्रभाव मात्र का अंकन है।

3. 'खिला हो .... रंग' में एकदम नवीन और सार्थक उपमान योजना है।

4. 'खिला हो .... रंग' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आह ! वह मुख ! .... अश्रांत ।"

शब्दार्थ : आह = आश्चर्य अथवा प्रशंसासूचक शब्द। व्योम = आकाश। घनश्याम = काले मेघ । अरुण = लालिमायुक्त। रविमडल = सूर्य – मण्डल । छविधाम = सौन्दर्य – कोश । इंद्रनील = नीलम। लघु = छोटा। श्रृंग = शिखर, कामोद्रेक । कांत = सुन्दर। अचेत = चेतना शून्य, आनन्दमय । माधवी = बसन्ती। रजनी = रात्रि। अश्रांत = निरन्तर।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग : श्रद्धा के सौन्दर्यशाली मुखमण्डल का परिचय देता हुआ कवि कहता है।

व्याख्या : श्रद्धा का वह मुख तो कितना अधिक सुन्दर है। उसको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार संध्या के समय पश्चिम दिशा के आकाश में घिरे काले मेघों को भेदकर लालिमामय सूर्य मण्डल सौन्दर्य का कोश लगता है । उसी भाँति नील चर्म के वस्त्रों को भेदकर अथवा मुख पर हुए काले केशों को भेदकर वह मुख लालिमा से युक्त सौन्दर्य–कोष प्रतीत होता है। इतना ही नहीं वरन् श्रद्धा का मुख ऐसा लगता है मानो वसन्ती रात में नीलम के छोटे–छोटे शिखरों को भेदकर लघु ज्वालामुखी की अग्नि निरन्तर प्रकट हो रही हो।

विशेष – 1. आह ! और मुख ! आश्चर्य के सूचक हैं।

2. अलंकार (प) उपमा – पश्चिम – छविधाम

(पप) संदेह – या कि नव – अश्राँत

(पपप) श्लेष – श्रृंग

(पअ) उत्प्रेक्षा – समस्त पदों में।

3. यहाँ पर प्रयुक्त समस्त उपमान योजना एकदम उचित बन पड़ी है, क्योंकि इसमें गुण, धर्म या वर्णसाम्य है।

घिर रहे थे घुंघराले .... अलसाई हो अभिराम।

शब्दार्थ : अंस = कंधा। अवलंबित = सहारा लिये हुए। घन शावक = बादलों के शिशु । विधु = चन्द्रमा, मुख। किसलय = कोंपल। अम्लान = विकसित, प्रफुल्लित। अलसाई = आलस्य से भरना। अभिराम = सुन्दर।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग : श्रद्धा के सौंदर्य से आकृष्ट मनु का कथन है कि –

व्याख्या : श्रद्धा के मुख का सहारा लिये हुए उसके कंधों पर उसके घुंघराले बाल घिर रहे थे। ये बाल ऐसे लगते थे मानो चन्द्रमा (मुख) के पास स्थित अमृत रस (मुख – कांति) को प्राप्त किरण (मुस्कान की रेखा) सुन्दरता से भरकर और अधिक आलस्य से भरकर विश्राम करने लगी हो।

विशेष – 1. अलंकार – (प) अनुप्रास – अंस अवलम्बित
(पप) उपमा – घन शावक से
(पपप) श्लेष – सुधा, विधु,
(पअ) उत्प्रेक्षा – रक्त – अभिराम

2. 'पास' का प्रयोग खटकता है और कवि की असावधानी का सूचक है।

3. उपमान योजना एकदम नवीन है।

कहा मनु ने .... हूं पाखंड।

शब्दार्थ : नभ = आकाश। धरणी = पृथ्वी। रहस्य = भेद। निरुपाय = असहाय। उल्का = निहार खंड। भ्रांत = भ्रमवश ! शून्य = एकान्त, आकाश। शैल = पर्वत। निर्झर = झरना। हतभाग्य = दुर्भाग्य। हिम – खंड = बर्फ । जलनिधि = समुद्र । अंक = गोद । पाखण्ड = ढोंग।

संदर्भ – पूर्ववत्।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – श्रद्धा द्वारा परिचय पूछे जाने पर भी, मनु पर्याप्त समय तक उत्तर नहीं दे सके और ठगे से उसके रूप – सौन्दर्य को देखते रहे। कुछ समय पश्चात् उनका ध्यान भंग हुआ और उनको परिचय की बात याद आयी। दुखी और एकाकी तो वे थे ही, अपनी उसी निराशामय स्थिति का परिचय श्रद्धा को देते। हुए मनु अपनी व्यथा प्रकट कर रहे हैं–

व्याख्या – मनु ने कहा इस पृथ्वी और आकाश के बीच में मुझ अकेले का जीवन एक रहस्य बन गया है, जिसको सुलझाने–समझाने में मैं निरुपाय बनकर रह गया हूं। मैं अपने जीवन की वास्तविकता को नहीं जान पा रहा हूं। फलस्वरूप मैं तो उस उल्का – खंड के समान हूं जो अपनी ही (दुख और निराशा की) अग्नि में इस शून्य (एकान्त वातावरण अथवा आकाश) में जलता रहता है, भ्रम से ग्रस्त रहता है और (अकेले होने के कारण) निस्सहाय बन जाता है। तात्पर्य यही है कि अपने जीवन से दुखी, भ्रमित निरुपाय और असहाय बनकर मैं रह गया हूं।

यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं पर्वत के झरने की भांति सक्रिय नहीं बन सका (जिसका एक निश्चित लक्ष्य सागर से मिलना होता है और जो निरन्तर गतिमान रहता है) । मैं तो एक जड़ हिम – खंड की भांति हूं, जो पिघल नहीं पाता और एक ही स्थान पर जड़ बना रहता है। जड़ अथवा एक ही स्थान (स्थिति) पर स्थिर हो जाने से वह हिम – खंड दौड़कर (प्रवाहित होकर) सागर की गोद में नहीं मिल पाता, उसी भांति मैं भी लक्ष्यहीन और निष्क्रिय होने के कारण जीवन लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका हूं । हाय ! मैं तो ढोंग मात्र बन गया हूं, जिसमें कोई वास्तविकता नहीं है। तात्पर्य यही है कि मैं तपस्वी की भांति प्रतीत होने पर भी तपस्वी नहीं हूं। मुझको शान्ति नहीं भ्रांति मिली है। मैं सक्रिय नहीं निष्क्रिय हूं और असहाय हूं।

विशेष – 1. मनु की यह निराशा एकदम स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है।

2. अलंकार – (अ) उपमा – एक उल्का सा ..... असहाय, शैल .... पाखंड (ब) श्लेश – शून्य

3. मनु की निराशा दुःख में मानवमात्र की निराशा है।

पहेली सा जीवन है .... यह संगीत

शब्दार्थ : व्यस्त = उलझा हुआ। विस्मृति = भूल, निराश । अभिलाषा = इच्छा । कलित = सुसज्जित। अतीत = भूतकाल। तिमिर गर्भ = अन्धेरी गुफा। दीन = करुण।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – अपनी निराशा को बहुत अनमने ढंग से व्यक्त करते हुए दुःखी मनु कहते हैं कि –

व्याख्या – "मेरा जीवन एक पहली की भांति उलझा हुआ है। मैं उसको सुलझा सकने का अभिमान करता हूं किन्तु सुलझा नहीं पाता। फलतः मेरा यह गर्व मुझको निराशा के मार्ग का दिशा–निर्देश करता है जिसमें, मैं इसी निराशा के मार्ग पर अनजान की भांति बढ़ता जा रहा हूं।

(अपने जीवन की पहेली को सुलझा न सकने के कारण) मैं अधिकाधिक निराश होता जा रहा हूं। यहां तक कि नाना सुन्दर अभिलाषाओं से सुसज्जित अपने अतीत को भी दिन रात भूलता जा रहा हूं। मेरा जीवन एक अन्धेरी गुफा की भांति है, जिसमें मैं निरन्तर बढ़ता जा रहा हूं। मेरे जीवन का संगीत (सुख) भी अब करुणापरक बनकर रह गया है। तात्पर्य यही है कि मेरे जीवन में निराशा बढ़ रही है। और उल्लास – आनन्द समाप्त प्राप्त हो गये हैं।

विशेष – 1. **अलंकार**– (अ) उपमा – पहेली सा जीवन (ब) मानवीकरण – सजल ...... अतीत

2. भावसाम्य –

(अ) को छुट्यो इहि जाल परि कत कुंरग अकुलात।
ज्यों – ज्यों छूटि भज्यो चहत त्यों – त्यों उरझत जात।'' –बिहारी

(ब) जीवन आशामय उद्गार कि जीवन आशाहीन पुकार
दिवा–निशि की सीमा पर बैठ निकालूं भी तो क्या परिणाम ? – बच्चन

(स) आदि से अन्त रुदन ही रुदन
एक अनियंत्रित हाहाकार
इसी को कहते हैं जीवन।' – भगवतीचरण वर्मा

(द) कौन–सी मंजिल में हूं अब कुछ भी याद आता नहीं
अपनी तन्हाई से अक्सर पूछता हूं अपना नाम।'' — खलील आजमी

(ड) चलने को चल रहा हूं पर इसकी खबर नहीं
मैं सफर में हूँ या मेरी मंजिल सफर में है। — शमीम

(क) न कोई जादा न कोई मंजिल न रोशनी का सुराग
भटक रही है खलाओं में जिन्दगी मेरी। — साहिर लुधियानवी

क्या कहूं क्या हूं .... संकलित विलम्ब।

शब्दार्थ : उद्भ्रान्त = खोया हुआ, विक्षिप्त । विवर = बिल । तरंग –लहर । शून्यता = नीरवता। विस्मृति = भूल। स्तूप = चिता – भस्मादि का स्मारक । अचेत = चेतना रहित। प्रतिबिम्ब = परछाई। संकलित = एकत्र।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – गहरे अवसाद में डूबे मनु आर्द्रमन से कहते हैं –

व्याख्या – मैं अपने और अपने जीवन के विषय में क्या कहूँ ? (कुछ समझ नहीं आता) । क्या मैं विक्षिप्त हूं ? अब तो मैं वायु में भटकी हुयी उस तरंग की भांति हूं जो विशाल नीलाकाश रूपी बिल में निराधार होकर इधर–उधर भटक रही है। मैं तो नीरवता के ऐसे राज्य की भांति हूं जो (प्रलय – काल में) उजड़ गया है और जिसके अब अवशेष मात्र शेष हैं। तात्पर्य यही है कि मेरे जीवन में अब केवल नीरवता और एकाकीपन ही शेष रहे हैं।

मैं तो (चिता – भस्मादि से युक्त) एक ऐसा स्तूप हूं जिसमें विस्मृति भी चेतनारहित होकर रह गयी है, अर्थात् मैं सब कुछ भूल चुका हूं। केवल कुछ स्मृतियां धुंधलके की भांति प्रतिबिम्ब (स्मृति) रूप में शेष है। मेरा जीवन जड़ बन चुका है। जिसमें सफलता के संकलन होने में भी देरी है। तात्पर्य यही है कि मेरे निष्क्रिय जीवन में सफलतायें भी दूर हैं, क्योंकि अभी तक तो मुझे असफलतायें ही प्राप्त हुयी हैं।

विशेष – 1. यहां पर मनु की निराशा और पलायन प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक अंकन है।

2. अलंकार – (i) रूपक – विवर में नील गगन के

(ii) उपमा – वायु उजड़ा सा राज, धुंधला–सा प्रतिबिम्ब

3. भावसाम्य : धुंधले से कुछ नक्श हैं वो भी कहीं – कहीं
तस्वीर जिन्दगी की तुम्हें क्या दिखायें हम।''

कौन हो तुम बसंत .... हलचल शान्त।

शब्दार्थ : विरस = नीरस । तिमिर = अंधकार । चपल की रेख = आकाश – विद्युत की रेखा। बयार = वायु का झोका । नखत = नक्षत्र । कांत = सुन्दर । दिव्य = दैवी। मानस = मन।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग : मनु ने श्रद्धा को अपनी निराशाजन्य स्थिति से अवगत करा दिया और उसकी प्रशंसा करते हुये उसका परिचय भी पूछा। मनु श्रद्धा से पूछते हैं–

व्याख्या : ''पतझड़ की भांति मेरे नीरस बने जीवन में बसंत (सुखानन्द) का संदेश लानेवाले सुकुमार दूत की भांति आनेवाले तुम कौन हो ? तुम्हारा यह आगमन ऐसा है जैसे कि मेघों में व्याप्त अंधकारमय आकाश में बिजली की रेखा (अचानक) कौंध जाती है। जिस प्रकार गर्मी में (व्याकुल व्यक्ति को) शीतल और वायु का झोंका शान्ति प्रदान करता है, उसी भांति नाना तापों से ग्रस्त मुझको भी तुम्हारे आगमन ने शान्ति प्रदान की है।

जिस प्रकार मेघाच्छन्न आकाश में नक्षत्र की रेखा चमकती है उसी भांति तुमने भी मेरे निराशा के मेघों से घिरे हृदयकाश में आशा की प्रकाश – किरण चमका दी है। जिस प्रकार किसी कोमल भावों वाले कवि के हृदय की भाव–हलचल को छोटी – सी सुन्दर कल्पना भी शान्त कर देती है, उसी भांति तुमने भी मेरे हृदय में होनेवाली भाव–हलचल को शांत कर दिया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष – 1. नारी की ओर पुरुष का आकर्षण स्वाभाविक और प्रकृतिजन्य है। यहां पर मनु का यह कथन इसी सत्य की उद्घोषणा करता है।

2. समस्त काव्यांश में उपमा अलंकार है।

3. छायावादी शैली है।

लगा कहने आगंतुक व्यक्ति .... प्यारी संतान।

शब्दार्थ : आगंतुक = आनेवाला, श्रद्धा। उत्कंठा = जिज्ञासा। सविशेस = अत्यधिक । कोकिल = कोयल। मधुमय = आनंदमय । गंधर्वो = एक मानवेतर पौराणिक जाति।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग : मनु द्वारा पूछे जाने पर अपना परिचय श्रद्धा ने दिया। इसी का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है।

व्याख्या : मनु की अतिशय जिज्ञासा का समाधान करते हुए आनेवाले व्यक्ति अर्थात् श्रद्धा ने अपना परिचय देना प्रारम्भ किया। उसकी वाणी इस समय (मनु का) ऐसी प्रतीत हुयी मानो कोई कोयल आनन्द में भर कर किसी पुष्प को मधु–रस से युक्त संदेश दे रही हो।

''मेरे हृदय में इस बात के लिये नया–नया उत्साह भरा था कि मैं ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त करुं। इसी उद्देश्य से मैं इधर गन्धर्वो के देश में रहती हूं। और अपने पिता की प्यारी संतान हूं।

विशेष – 1. 'दे रहा हो कोकिल' में लिंग – दोष है।

2. 'सुमन .... संदेश' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

3. श्रद्धा के चरित्र – चित्रण की दृष्टि से यह अंश द्रष्टव्य है, क्योंकि यहां उसका ललित कला – प्रेम, पिता – प्रेम और कोकिल – वाणी आदि गुण प्रकट हुए हैं।

दुःख के डर .... अनजान।

शब्दार्थ – जटिलताओं = जीवन की कठिनाइयों या समस्याओं। काम = कामना या जीने की इच्छा।

संदर्भ – पूर्ववत ।

प्रसंग – मनु को दुःखी – निराश देखकर श्रद्धा उन्हें समझाती है।

व्याख्या – श्रद्धा पुनः मनु से इस तरह कहने लगी कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम दुःख से भयभीत होकर जीवन को अज्ञात कठिनाइयों अथवा अनजान समस्याओं का अनुमान करके तथा अपने भविष्य के बारे में अनजान बनकर काम से झिझक रहे हो, अर्थात् आनन्द सहित जीवित रहने की अभिलाषा नहीं रखते हो।

टिप्पणी – (1) अज्ञात जटिलताओं द्वारा कवि ने मानव की उन कठिनाइयों एवं समस्याओं की ओर संकेत किया है, जिनके कारण वह रात–दिन बेचैन रहता है तथा जिनका उसे पहले कभी आभास नहीं मिलता।

(2) 'काम' शब्द कामायनी में एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जिससे बिना जीवन का कोई कार्य नहीं होता। 'काम' यहाँ वासना का द्योतक न होकर जीवन की उस मूल इच्छा का द्योतक है जो आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है, जिससे जीवन के सभी कार्य सम्पन्न होते हैं और जो मानव का मूलाधार है।

काम मङ्गल .... असफल भवधाम।

शब्दार्थ – मंगल से मंडित = कल्याण से सुशोभित। श्रेय = मंगलमय परिणाम से युक्त। सर्ग = सृष्टि, विश्व । इच्छा = कामना, अभिलाषा या काम (क्मेपतम) । तिरस्कृत कर = उसकी उपेक्षा करके। असफल = निष्फल। भवधाम = विश्व।

प्रसंग – निराश मनु के हृदय में आशा का संचार करती हुई श्रद्धा कहती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्याख्या – यह विश्व काम के मंगलमय स्वरूप से सुशोभित है, इसी कारण यह अन्ततः मंगलमय है, श्रेयस्कर है और फिर इस विश्व का विकास ही जब काम से हुआ है अथवा चित् शक्ति की इच्छा से हुआ है, तब इस विश्व को काम या इच्छा–शक्ति से सर्वथा परे समझना तुम्हारी भूल है। सम्भवतः तुम काम के इसी रहस्य को न जानने के कारण इसकी उपेक्षा कर रहे हो और इस तरह काम की उपेक्षा करके तुम इस विश्व को निष्फल बना रहे हो।

टिप्पणी – (1) प्रसाद ने इस विश्व को काम के मंगलमय स्वरूप से सुशोभित कहा है और उस काम को ही इच्छा का रूप कह कर उसी से विश्व की उत्पत्ति सिद्ध की है। इस तरह प्रसाद ने यहा ब्रह्म की 'इच्छा शक्ति' का निरूपण किया है। प्रसाद की इस विचारधारा का मूलाधार शैवागम हैं।

(2) श्रद्धा का यह सम्पूर्ण कथन प्रवृत्तिमूलक है। वह मनु की निवृत्तिमयी भावना का खण्डन करती हुई उन्हें वैराग्य, संन्यास आदि के स्थान पर सांसारिक कार्यों की ओर प्रवृत्त करने की सलाह दे रही है।

दुःख की पिछली .... सुख गात।

शब्दार्थ – रजनी – रात, विकसता – खिलता, उदित – होना,

नवल – नया, प्रभात – सवेरा, सुख।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – अब श्रद्धा को इस संसार के सुख–दुःख के क्रम को समझाती हुई कहती है –

व्याख्या – जिस तरह रात्रि के पिछले पहर के व्यतीत होते ही नवीन प्रभात का विकास होता, उसी तरह दुःख की अन्तिम घड़ियों के बीतते ही मानव को सुख की प्राप्ति होती है। अतः जिस तरह रात में आकाश के इस महीन नीले परदे के पीछे प्रभात अपना शरीर छिपाए बैठा रहता है और समय आते ही तुरन्त निकल आता है, उसी तरह दुःख के इस महीन नीले परदे के पीछे सुख भी अपना शरीर छिपाये बैठा है और वह भी समय आते ही तुरन्त निकल आयेगा, अर्थात् दुःख के उपरान्त अवश्य ही तुम्हें सुख की प्राप्ति होगी।

टिप्पणी – (1) दुःख–सुख के इस क्रम का वर्णन कितने ही प्राचीन कवियों ने किया है। महाकवि भास ने अपने 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक में लिखा है कि ''चक्रवत परिवर्त्तते दुःखानि च सुखानि च।''

(2) यहाँ 'रजनी' और 'प्रभात' के वर्णन द्वारा दुःख और सुख का अत्यन्त मार्मिक भाव –बिम्ब अंकित किया गया है।

(3) यहाँ पर कवि ने दुःख में रजनी का तथा सुख में प्रभात का आरोप किया है। अतः यहाँ परम्परित रूपक है तथा 'नील परदा' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

जिसे तुम समझे .... जाओ मूल।

संदर्भ – पूर्ववत्

प्रसंग – मनु की दुःखमयी स्थिति को देखकर श्रद्धा कहती है –

व्याख्या – तुम जिस दुःख को अपने लिए अमंगल समझ रहे हो और जिसे संसार को सम्पूर्ण आपत्तियों का उत्पादक मान बैठे हो, वह दुःख भी परमेश्वर का रहस्यपूर्ण वरदान है, इस बात को तुम्हें कदापि भूलना नहीं चाहिए।

टिप्पणी – संसार में प्रायः दुःख को अमंगलमय तथा समस्त आपदाओं का मूल माना गया है परन्तु कवियों ने उस दुःख को भी ईश्वर की देन या ईश्वर का उपहार कहकर उसे दृढ़तापूर्वक सहन करने का आग्रह किया है; जैसा कि महाकवि बिहारी ने लिखा है –

> दीरघ साँस न लेहि दुःख, सुख साँइहिं न भूलि।
> दई–दई क्यों करतु है, दई–दई सु कबूलि।।
> दियौ, सु सीस चढ़ाइ लै, आछी भाँति अहेरि।
> जापै सुखु चाहत लियौ, ताके दुखहि न फेरि।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विषमता की पीड़ा .... मधुमय दान।

शब्दार्थ – विषमता = प्रकृति की साम्यावस्था के विरुद्ध संसार की वह स्थिति जिसमें निरन्तर सृष्टि, स्थिति, संहार आदि कार्य होते रहते हैं। स्पंदित = गतिशील, प्रगतिमय । भूमा = विराट शक्ति। मधुमय दान = माधुर्यपूर्ण देन या रमणीक वरदान।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – दुःख के रहस्यमय स्वरूप को समझाने के उपरानत अब श्रद्धा मनु को दुःख और सुख के वैषम्य से भरे हुए इस जगत् के स्वरूप का बोध कराती हुई कहती है –

व्याख्या – इस विश्व में कभी एक स्थिति दिखाई नहीं देती। यहाँ कभी सृष्टि होती है, तो कभी संहार होता है, कभी स्थिति दिखाई देती है, तो कभी तिरोधान का कार्य चलता है। अतः इन्हीं विषम स्थितियों से उत्पन्न होने वाली पीड़ा में लीन होकर यह महान् विश्व निरनतर गतिशील बना रहता है। इन्हीं विषम परिस्थितियों से सुख और दुख का भी विकास होता है। अतः विषमता की सृष्टि के साथ–साथ सुख और दुःख की भी जननी है। यह विषमता हमें किसी और से प्राप्त नहीं होती, अपितु यह भी उस विराट् शक्ति तथा महाचित्ति (भूमा) की माधुर्यपूर्ण देन है, जो हमें विश्व के उन्मीलन के साथ प्राप्त होती है।

टिप्पणी – (1) सुख–दुख और विषम परिस्थितियों का नाम ही जीवन है।

(2) जीवन में सुख–दुःख आते – जाते रहते हैं।

(3) सुख–दुख को ईश्वर का वरदान मानना चाहिए।

नित्य समरसता .... मणि गण द्युतमान।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – श्रद्धा मनु को पुनः समझाते हुए उनसे कहती है कि जब यह सम्पूर्ण विश्व विषमता से भरा हुआ है, तब इससे घबड़ाने की आवश्यकता नहीं।

व्याख्या – यहां रह कर शुभ कर्म करते हुए इस विषमता से भरे हुए संसार में ही समरसता की उस स्थिति को प्राप्त करना चाहिए, जो कि अखंड आनन्द की अवस्था है और जिसे प्राप्त करने का अधिकार प्रत्येक प्राणी को है, परन्तु इस अवस्था को यहाँ प्राप्त कौन करता है ? यहाँ तो प्राणी अपने तुच्छ सुखों की खोज में पागल बना रहता है, इसलिए उसे समरसता की बजाय केवल विषमता ही हाथ लगती है अथवा समरसता का अधिकारी होकर भी यह प्राणी तुच्छ सुखों की लालसा में लीन होने के कारण विषमता को ही प्राप्त करता है। इसीलिए श्रद्धा कह रही है– यहाँ पर प्रत्येक प्राणी को समरसता प्राप्त करने का अधिकार है, किन्तु वह समरसता को प्राप्त न कर प्रायः तुच्छ सुखों के मोह में लीन होकर विषमता को प्राप्त करता है; क्योंकि संघर्षयुक्त संसार को जन्म देनेवाली अथवा संसार की कारणस्वरूपा यह विषमता ही नित्यप्रति एक समुद्र के समान उमड़ती रहती है, जिसमें व्यथा से नीली–नीली लहरें उठती रहती हैं और उनके के बीच में प्राणियों के समस्त सुख देदीप्यमान मणियों की भांति इधर–उधर बिखरते रहते हैं अर्थात् उसे समरसता की प्राप्ति न होने के कारण सुखदुःख से भरी हुई इस विषमता की पीड़ा सहनी पड़ती हैं।

टिप्पणी – (1) प्रसाद ने 'समरसता' शब्द का प्रयोग प्रत्यभिज्ञादर्शन के आधार पर किया है।

(2) यहाँ पर कवि ने विषमता को हलचलपूर्ण जगत् का कारण और इस हलचलपूर्ण स्पंदित जगत् को उसका कार्य कहा है और बताया है कि जिस तरह कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है, उसी तरह विषमता रूपी कारण से संघर्षमय जगत् की उत्पत्ति होती है।

(3) यहाँ पर कवि ने विषमता का संघर्षमय जगत् का कारण कहकर उसकी उपमा समुद्र से दी है।

प्रकृति के यौवन .... उनकी धूल।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – श्रद्धा फूलों के उदाहरण द्वारा मनु को प्रेरणा देती हुई कहती है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – देखो, जिस तरह एक युवती अपने यौवन का शृंगार करती है, उसी तरह यह प्रकृति भी नित्य अपने लावण्यपूर्ण अंगों का शृंगार करती है, परन्तु वह सदैव नवविकसित पुष्पों को ही अपने शृंगार के लिए काम में लेती है, वह कभी मुरझाए हुए फूलों से अपनी सजावट नहीं करती। वे मुरझाये हुये फूल तो तुरन्त ही उस धूल में जाकर मिल जाते हैं, जो उनके लिए बड़ी लालायित रहती है। अतः मुरझाये हुए फूलों की तरह हृदय में छाये हुए दैन्य, शैथिल्य एवं अवसाद को दूर करके उनके स्थान पर नव–विकसित फूलों की तरह तरल आकांक्षा एवं आशा के आह्वान से अपने इस यौवन का शृंगार करो।

टिप्पणी – (1) कवि ने फूलों के उदाहरण द्वारा आशा – आकांक्षा को अपनाने के लिए जो प्रेरणा दी है, उसमें अलंकृतभाव – बिम्ब के साथ–साथ कवि के राष्ट्रीय विचारों की झलक भी विद्यमान है।

(2) यहाँ पर मानवीकरण तथा उदाहरण अलंकार हैं।

पुरातनता का यह .... परिवर्तन में टेक।

संदर्भ – पूर्ववत् ।

प्रसंग – श्रद्धा मनु को जीवन का वास्तविक स्वरूप बतलाते हुए कहती है–

व्याख्या – नित्य मुरझाये हुए फूलों का परित्याग करके नये–नये फूलों से शृंगार करने के कारण यह स्पष्ट है कि प्रकृति प्राचीनता की केंचुली को पल भर भी सहन नहीं करती, वह सदैव परिवर्तन द्वारा नवीनता का आनन्द प्राप्त किया करती है। इसलिए यह सिद्ध है कि परिवर्तन में ही सदैव नवीनता का आनन्द विद्यमान रहता है।

टिप्पणी – (1) यहाँ 'निर्मोक' शब्द का प्रयोग करके कवि ने यह संकेत किया है कि जिस तरह साँप अपनी केंचुली को छोड़ देता है, उसी तरह प्रकृति भी मुरझाये हुए बासी फूलों के रूप में प्राचीनता की केंचुली छोड़ देती है और नवीन फूलों के रूप में नित्य नवीनता प्राप्त करती रहती है।

(2) 'नूतनता का आनन्द' द्वारा कवि ने इन पंक्तियों में राष्ट्र को नवीन विचारों के अपनाने का आग्रह किया है।

(3) पुरातनता के निर्मोक में रूपक अलंकार है और यहाँ परिवर्तन का एक सुन्दर अलंकृत बिम्ब प्रस्तुत किया गया है।

समर्पण लो .... विगत विकार।

शब्दार्थ – समर्पण = अपना सर्वस्व अर्पण करना। लो = स्वीकार करो। सेवा का हार = सेवा का मूल तत्त्व। सजल संसृति = जलमय जगत् या भवसागर। पतवार = नौका को पार लगाने का साधन। उत्सर्ग = न्यौछावर । पद तल में = चरणों में आपकी सेवा में। विगत विकार = निर्विकार, शुद्ध हृदय से।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – श्रद्धा मनु के प्रति स्वयं का समर्पण करते हुए कहती है –

व्याख्या – मैं तुम्हारी जीवन – संगिनी बनने के लिए आत्म – समर्पण कर रही हूँ। इस समर्पण को स्वीकार करो। यह समर्पण सेवा का मूलतत्त्व है और व्यथा के जल से भरे हुए इस संसार रूपी सागर में तुम्हारी जीवन – नौका को पार ले जाने के लिए पतवार के समान है। अतः आज से मैं निर्विकार होकर एकमात्र सेवा की भावना से तुम्हारे चरणों में अपने इस जीवन को न्यौछावर करती हूं।

टिप्पणी – (1) प्रसाद ने समर्पण को सेवा का सार इसलिए कहा है कि सच्ची सेवा वही होती है, जिसमें आत्म – समर्पण की भावना रहती है।, किन्तु जो कुछ धन लेकर या स्वार्थ के कारण किसी की सेवा करता है, वह सच्ची सेवा नहीं होती।

(2) जिस तरह जलमय जगत् या चारोंओर भरे हुए जल में से नौका को पार करने के लिए पतवार की आवश्यकता होती है, उसी तरह व्यथा और वेदना से भरे संसार में जीवन – यापन हेतु एक ऐसे जीवन साथी की आवश्यकता होती है, जो व्यथा और कष्ट की घड़ियों में अपनी निस्वार्थ सेवा से सहायता करता हुआ जीवन व्यतीत कराने में सहायक होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दया, माया .... खुला है पास।

शब्दार्थ – माया = मोह। मधुरिमा = माधुर्य। अगाध = गहन, गम्भीर। रत्न निधि = रत्नाकर, रत्नों का भंडार। तुम्हारे लिए खुला है = समर्पित है।

संदर्भ –

प्रसंग – श्रद्धा मनु के प्रति समर्पण भाव व्यक्त करते हुए कहती है –

व्याख्या – श्रद्धा कहती है – हृदय स्वच्छ रत्नों का भण्डार है, जिसे मैं आज बड़ी प्रसन्नता के साथ तुम्हें समर्पित करती हूं। इसमें दया, माया, ममता, माधुर्य, गम्भीर विश्वास आदि अनेक भाव–रत्न भरे हैं, जिन्हें तुम इच्छानुसार ले सकते हो।

टिप्पणी –(1) श्रद्धा के हृदय में दया, माया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास आदि का निवास कह कर, प्रसाद ने श्रद्धा को हृदय की सम्पूर्ण सात्विक वृत्तियों का प्रतीक सिद्ध किया है।

(2) यहाँ दया, माया, ममता, मधुरिमा आदि समान भाषिक वाक्यांशों के माध्यम से नारी–गुणों को स्पष्ट किया गया है।

विश्व की दुर्बलता .... क्रीड़ामय संचार।

शब्दार्थ – पराजय = हार, असफलता। उसे = मानव सृष्टि को। सविलास = क्रीड़ा सहित, आनन्दपूर्वक । शक्ति का क्रीड़ामय संचार = मानव सृष्टि में भरी हुई व्यापक शक्ति का वेग।

संदर्भ –

प्रसंग – मानव सृष्टि के प्रति अगाध विश्वास प्रकट करते हुए श्रद्धा कहती है–

व्याख्या – आगे चलकर यह मानव सृष्टि इतनी अधिक शक्ति – सम्पन्न हो जाय जिसके परिणामस्वरूप विश्व में कहीं भी दुर्बलता दिखाई न दे और यदि कहीं किसी दुर्बलता के कारण इसे पराजित भी होना पड़े, तो उस पराजय के कारण यह मानव – सृष्टि दुःखी न हो, अपितु इसकी व्यापक शक्ति इसे आनन्दपूर्वक सदैव हंसाती रहे।

टिप्पणी – 'दुर्बलता बल बने' में विरोधाभास अलंकार है।

शक्ति के विघुत्कण .... मानवता हो जाय।

शब्दार्थ – विद्युत्व = बिजली के कण, इलैक्ट्रॉन्स ;म्समबजतवदेद्ध । व्यस्त = एक–एक होकर या पृथक् – पृथक् होकर (समस्त के विपरीत)। विकल = खण्डित, एक एक टुकड़े के रूप में। निरुपाय = जिनके इकट्ठे करने का कोई उपाय न हो। समन्वय उसका = उस मानवसृष्टि का समन्वित स्वरूप। करें समस्त = उन्हें इकट्ठा करें, उनका संग्रह करें। विजयिनी = सफल। मानवता = मानव – सृष्टि।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – अन्त में श्रद्धा सम्पूर्ण शक्ति – कणों के सम्न्वय पर बल देती हुई कहती है–

व्याख्या – आज शक्ति के सम्पूर्ण विद्युत्कण पृथक्–पृथक् होकर एक–एक टुकड़े के रूप में बिखरे हुए पड़े हैं और उनके एकत्र करने का कोई उपाय नहीं दिखाई देता, किन्तु यह मानव–सृष्टि यदि समन्वय का रूप अपनाकर चले और उसका यह समन्वित स्वरूप उन बिखरे हुए शक्ति–कणों को इकट्ठा कर ले, तो मैं निश्चयपूर्वक कह सकती हूं कि तुम्हारी यह मानवता या नवीन – सृष्टि एक दिन अवश्यमेव सफल होगी।

टिप्पणी – (1) श्रद्धा के इस सम्पूर्ण कथन में 'गीतों' के कर्म–रहस्य की भांति कर्मण्यता का संदेश छिपा हुआ है, जो सम्पूर्ण विश्व के लिए समन्वय की भावना को अपनाकर सफल होने की प्रेरणा दे रहा है।

(2) शक्ति के व्यस्त विद्युत्कणों को समन्वित करने की प्रेरणा देकर कवि ने यहाँ आधुनिक विज्ञान के इलेक्ट्रॉन सिद्धांत ;म्समबजतवद जैमवतलद्ध की ओर संकेत किया है, जिसके अनुसार वैज्ञानिकों की यह राय है कि विद्युत अपार संख्या में जगत् में निरन्तर चक्कर काटते रहते हैं, जिन्हें इलैक्ट्रॉन ;म्समबजतवदद्ध, प्रोटीन ;च्तवजवदद्ध और न्यूट्रॉन ;छमनजतवदद्ध नाम दिये गये हैं। यदि इन विद्युत्कणों को इकट्ठा कर लिया जाय, तो अपार मात्रा में शक्ति एकत्र की जा सकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लज्जा सर्ग

परिचय

इस सर्ग में यद्यपि कथानक के नाम पर कुछ नहीं है, फिर भी बहुत मनोवैज्ञानिक ढंग से श्रद्धा और लज्जा का वार्तालाप दिया गया है, जिसमें श्रद्धा जैसे मनोभाव का सम्यक् निरूपण करते हुए नारी–जीवन का चित्र अंकित किया गया है। इसमें कवि ने नारी जीवन की अन्तर्बाह्य स्थितियों, प्रेम के कारण उत्पन्न अन्तःकरण की मनोवृत्तियों, नारी के सुकुमार अंगों के परिवर्तन आदि का जो चित्रण किया है, वह विश्व – साहित्य में अपना अभूतपूर्व स्थान रखता है। विशेषकर लज्जा मनोभाव का जो सजीव, स्वाभाविक एवं मार्मिक चित्र यहां अंकित किया गया है, वैसा चित्र अन्यत्र मिलना सर्वथा कठिन है। इस सर्ग को पढ़कर अनायास ही पता चल जाता है कि कवि अन्तर्वृत्तियों अथवा मनोभावों के निरूपण में कितना कुशल है, क्योंकि कवि ने लज्जा का मानवीकरण करके अन्तर्बाह्य समस्त रूपों, व्यापारों, चेष्टाओं, प्रभावों आदि का जो वर्णन किया है, वह कला और मनोविज्ञान की दृष्टि से उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ है। कविता की दृष्टि से यह सर्ग प्रसाद की श्रेष्ठ कवित्व शक्ति का निदर्शन है, जहां काव्यत्व के उच्च स्तरीय मानदंड अवस्थित हैं। इस सर्ग में नारी के उस गौरव की ओर भी संकेत किया गया है, जिसके कारण नारी श्रद्धामयी होती है, वह मानव–जीवन को अमृतरस से सींचकर हरा–भरा बनाती है. वह आत्म – विश्वास का सुन्दर वातावरण निर्माण करती है और अपने त्याग एवं बलिदान द्वारा पुरुष को महान् बनाने का प्रयत्न करती है। अतः लज्जा मनोभाव के साथ–साथ नारी–जीवन का सम्यक् निरूपण होने के कारण यह सर्ग 'कामायनी' का सर्वश्रेष्ठ सर्ग है; इसमें भाषा, भाव, प्रतीक, बिम्ब और अलंकार सभी का उत्कृष्ट रूप विद्यमान है और कवि की रमणीक कल्पनाओं, गहन अनुभूतियों एवं अभिव्यंजना की लाक्षणिकतापूर्ण विलक्षण प्रणालियों का यह संचित भण्डार है।

प्रस्तुत कविता महाकवि जयशंकर प्रसाद के युग–प्रवर्त्तक महाकाव्य 'कामायनी' के लज्जा सर्ग का एक अंश है। 'कामायनी' में प्रसादजी ने मानव के विकास का इतिहास प्रस्तुत करने के साथ ही मन में उठने वाले भावों का क्रमिक विकास भी दर्शाया है। 'कामायनी' की सर्ग योजना मनोवृत्तियों के इस विकास का सूचक हैं 'कामायनी' का प्रथम सर्ग है 'चिंता'। चिन्ता मानव मन में उठनेवाला प्रथम मनोभाव है और फिर क्रमशः आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, ईर्ष्या, निर्वेद इत्यादि भावों का उदय हुआ।

इतना न .... करो।

शब्दार्थ – चमत्कृत होना– चौकन्ना। बाले– हे बालिका, श्रद्धा। पकड़– रोकनेवाली शक्ति जो युवतियों को स्वच्छन्द आचरण से रोकती है।

सन्दर्भ – प्रस्तुत पंक्तियां कविवर जयशंकर प्रसाद के अमर महाकाव्य 'कामायनी' के लज्जा सर्ग से उद्धृत हैं।

प्रसंग– संध्या के समय एकान्त में बैठी श्रद्धा मनु से मिलने के बाद हुए अपने शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों पर आश्चर्यचकित हो कर सोच रही है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उसके मन पर किसी ने जादू कर दिया है। श्रद्धा का शरीर कुछ कोमल है, उसके पलकों पर रोमांच झुक जाता है। वह खुलकर हंस नहीं पाती, वरन् होठ के भीतर ही उसकी हँसी दबी रह जाती है। इन समस्त तथा अन्य परिवर्तनों को अपने भीतर देख श्रद्धा आत्मलीन–सी बैठी है कि अचानक एक छायामूर्ति आकर उसे टोकती है और उसे अपना परिचय देती है कि मैं लज्जा हूँ और मेरे ही कारण तुम्हारी यह दशा है।

व्याख्या– लज्जा श्रद्धा को बताती है कि मेरे ही कारण तुम्हारे शरीर और मन में परिवर्तन हुआ है, किन्तु इसमें चौकन्ने या डरने की कोई बात नहीं है। किसी प्रकार आशंकित होने का कोई कारण इसमें नहीं है। यह तो स्वाभाविक परिवर्तन है। तुम्हें ऐसा कार्य करना चाहिए, जिससे तुम्हारे मने को सांत्वना मिले, तुम्हारा लाभ हो। लज्जा कहती है कि मैं युवतियों को रोकने और टोकनेवाली एक शक्ति हूं जो अल्हड़ यौवन में मदमस्त कुमारियों को यह समझाती है कि कुछ भी करने से पहले भला–बुरा सोच लो। यौवन में प्रायः विचारणाशक्ति का अभाव होता है और भावुकता में हम कभी–कभी ऐसा कुछ कर बैठते हैं, जिसका दुष्परिणाम हमें शेष सम्पूर्ण जीवन में भुगतना पड़ता है।

टिप्पणी– (1) 'लज्जा' मनोभाव का स्वाभाविक वर्णन यहाँ द्रष्टव्य है। लज्जा ही युवतियों को प्रेम–पथ पर आगे बढ़ने से रोकती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(2) स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक भावुक होती हैं। पुरुष उनकी इस अच्छाई या दुर्बलता का अनुचित लाभ उठाकर उन्हें बहका लेता है। ऐसे अवसरों पर अनेक बार 'लज्जा' नारी की रक्षा कर लेती है।

(3) 'मैं एक पकड़ हूं' में रूपक अलंकार।

(4) संबोधन शैली है।

अम्बर चुम्बी .... लिए।

शब्दार्थ – अम्बरचुम्बी–आकाश को छूनेवाले। हिमशृंग– हिनाच्छादित पर्वत चोटियाँ। कलरव– मधुर शब्द। कोलाहल– शोर। कलरव कोलाहल– झरनों का मधुर शब्द। विद्युत् की धारा– विद्युत धारा के समान गतिवाली। प्राणमयी– प्रखर वेगयुक्त। उन्माद– पागलपन, मस्ती।

सन्दर्भ – 'कामायनी' के लज्जा सर्ग से उद्धृत प्रस्तुत पंक्तियां प्रसाद की अमर लेखनी से अवतरित हैं।

प्रसंग – इन पंक्तियों में प्रसाद जी ने लज्जा के मुख से रमणी–सौंदर्य का मनोहारी वर्णन कराया है और यह दर्शाया है कि लज्जा इसी सौन्दर्य की रक्षा करने, इस सौन्दर्य को कलंक और कल्मष से बचाने के लिए नव युवतियों के शरीर में प्रवेश करती है।

व्याख्या– लज्जा कहती है कि जिस प्रकार हिम से ढके हुये ऊँचे पर्वत–शिखरों से बहनेवाले झरने में कल–कल के मधुर संगीतमय शब्द के साथ प्रचण्ड वेग भी होता है और उस वेग में उसकी कल–कल ध्वनि कोलाहल बन जाती है, उसी प्रकार युवतियों के सुन्दर अंगों से (जो पर्वत चोटियों के समान उच्च तथा गौर वर्ण के होने के कारण बर्फ से धवल कहे जा सकते हैं) फूटनेवाले सौन्दर्य रूपी झरने में भी माधुर्य और वेग, अर्थात् तीक्ष्णता होती है। जैसे पहाड़ी झरना विद्युत गति से प्रवाहित होता है और धड़–धड़ करता हुआ पहाड़ से उतरता है, उसी प्रकार नारी के अंगों का सौन्दर्य भी गतिवान् होता है। झरने के बहने में एक उन्माद है, मस्ती है, उसी प्रकार युवतियों का सौन्दर्य भी उन्मत्त, मस्त, निश्चित भाव से उनके शरीर के अंगों में प्रवहमान रहता है। लज्जा रमणी के इसी उद्दाम, मधुर, मादक सौन्दर्य की रक्षा करती है।

टिप्पणी – (1) नारी–सौन्दर्य का सटीक वर्णन है। सौन्दर्य में वेग की कल्पना अत्यन्त मनोहारी है। सौन्दर्य की परिभाषा में उसकी आवेगशीलता को प्रमुख स्थान दिया गया है–

'क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः

(2) सौन्दर्य के साथ उन्माद का सम्मिश्रण कवि के सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिचायक है।

(3) 'विद्युत की धारा' से कवि का वैज्ञानिक ज्ञान स्पष्ट होता है।

(4) रूपक अलंकार है।

(5) छायावादी प्रवृत्ति के अनुरूप प्रकृति को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

मंगल ....याली।

शब्दार्थ – मंगल= शुभ अथवा मांगलिक अवसरों पर प्रयुक्त। कुंकुम= रोली। सुहाग= सौभाग्य। हरियाली= प्रसन्नता।

सन्दर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – इन पंक्तियों में कवि ने सौभाग्यवती रमणी के मुख्यमण्डल पर दीप्त होनेवाले सौन्दर्य की एक मधुर झाँकी प्रस्तुत की है।

व्याख्या – लज्जा कहती है कि सरल चित्तवाली सौभाग्यवती स्त्रियां अपने सौन्दर्य पर प्रसन्न रहती हैं। इठलाती रहती हैं, मस्त रहती हैं। ये स्त्रियां अपने मस्तक पर मंगल सूचक सिन्दूर–बिन्दु लगाती हैं। रोली या सिन्दूर का यह टीका उनके सौभाग्य का प्रतीक होता है और इस मंगल बिन्दु को लगाते ही उनकी शोभा, उनका सौन्दर्य बढ़ जाता है। सौभाग्यवती स्त्री के मुख पर उसके सौन्दर्य की झलक ऐसी लगती है जैसे प्रातःकालीन लाली, जो पूर्व के क्षितिज पर अरुणोदय से पहले दिखाई पड़ती है। लज्जा उसी सौन्दर्य की रक्षिका बनकर नारी में प्रवेश करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

टिप्पणी – (1) नारी के उपर्युक्त सौन्दर्य वर्णन में लाक्षणिकता का समावेश है। प्रसाद जी का भाव यह है कि नारी सौन्दर्य कुंकुम या केसर के समान कांतिमान होता है। सौन्दर्य की कांति उषा की लाली के समान होती है तथा सौन्दर्य में एक सहज भोलापन होता है।

(2) अलंकार योजना–

(अ) उत्प्रेक्षा अलंकार– निखरी .... लाली।

(ब) रूपकातिशयोक्ति– हरियाली में (प्रसन्न्ता)

(3) सुहाग से तात्पर्य है सौभाग्यवती या सुहागिन स्त्री। अतः यहां लक्षणा है।

हो नयनों .... पिक–सा हो।

शब्दार्थ– नयनों का कल्याण = नेत्रों के लिए लाभकारी, सुन्दरता युक्त। विकसा = विकसित, खिला हुआ। वासन्ती = वसन्त। वन–वैभव = बसन्त के आगमन से उद्भूत वन की शोभा। पंचम स्वर = मधुर स्वर। पिक = कोयल।

सन्दर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग– इन पंक्तियों में श्रद्धा के प्रति लज्जा का यह भाव अभिव्यक्त हुआ है कि लज्जा नारी के यौवन में प्रस्फुटित अंग–सौन्दर्य एवं वाणी–सौन्दर्य की देखभाल करनेवाली है।

व्याख्या– युवतियों का अंग–सौन्दर्य यौवन के आगमन पर उनमें इस प्रकार खिल उठता है, जैसे वसन्त ऋतु में वन के पौधे पुष्प–संभार से सुशोभित हो जाते हैं। सुन्दरी रमणी का यह सौन्दर्य पुरुष के नेत्रों को सार्थक कर देनेवाला है। नेत्रों का कल्याण अनिन्द्य सौन्दर्य का दर्शन करते रहने में है। सुन्दर फूलों को देखकर भी मनुष्य के नेत्र सुख प्राप्त करते हैं और सुन्दर युवती की अंग–छवि भी उसके नेत्रों को सुख देती है । जिस प्रकार वसन्त ऋतु में वन में फूल खिल जाने पर कोयल का मधुर स्वर वसन्त की मादकता को और भी बढ़ा देता है, उसी प्रकार यौवन आने पर नारी के स्वर में एक विचित्र लोच, एक अभिनव माधुर्य भर जाता है। लज्जा नारी के इस रूप और स्वर की रक्षा करती है।

टिप्पणी– (1) उपमा अलंकार–

(अ) आनन्द सुमन–सा विकसा हो।

(ब) पंचम स्वर पिक–सा हो।

(2) 'नयनों का कल्याण' में उक्ति–सौन्दर्य है।

(3) कोमल पद–योजना द्रष्टव्य है।

नयनों .... पाती हो।

शब्दार्थ– नीलम = एक रत्न विशेष। रस–धन = शृंगार रस के बादल। कौंध = विद्युत का क्षणिक किन्तु तीव्र प्रकाश। अन्तर् = हृदय। शीतलता ठंडक पाती हो = यह लाक्षणिक प्रयोग है। इसका आशय शीतलता से है।

सन्दर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियां श्रद्धा के प्रति कहे गये लज्जा के उस कथन का अंश हैं जिसमें वह नारी जाति के लिए लज्जा की आवश्यकता और उपयोगिता का बखान करती है। लज्जा कहती है कि वह स्त्रियों के उस रूप की रखवाली करती है जो उनके नेत्रों में शृंगार–रस बनकर रहता है।

व्याख्या– जिस प्रकार नीलम पर्वतों की घाटियों में जो सरल बादल छाये रहते हैं, वे बिजलियों की कौंध के बीच जब बरस जाते हैं तो समस्त भूमि शीतल हो उठती है। धरती की तपन मिट जाती है और जल बिन्दु पृथ्वीतल तक पहुंचकर वहां के अपेक्षाकृत शीतल प्रदेश को भी और अधिक ठंडा बना देता है, इसी प्रकर सुन्दरियों के नेत्रों में शृंगार–रस के बादल छाये रहते हैं जो उनके कटाक्षों की कौंध के बीच जब बरसते हैं, तो मन–प्राण चिर शीतलता में डूब जाते हैं। लज्जा स्त्रियों के सुन्दर नेत्रों में रहनेवाले इसी सौन्दर्य की रक्षा करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

टिप्पणी– (1) कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति द्रष्टव्य है। कृष्ण या नील नेत्रों को 'नीलम की घाटी' कहना बहुत सटीक है। घाटी और नेत्रों की आकृषि–रचना में पर्याप्त साम्य है।

(2) अलंकार–विधान–

(अ) रूपक–नयनों .... घाटी।

(ब) रूपकातिशयोक्ति–– 'रस' तथा 'कौंध' में।

(3) 'शीतलता ठंठक पाती है' में लक्षणा।

हिल्लोल .... निखरता हों

शब्दार्थ– हिल्लोल = मस्ती की लहरें। ऋतुपति =ऋतुराज वंसत। गोधूली= संध्या का समय, जब वन प्रदेश से चरकर लौटती गायों की खुरों से धूल उड़ती है।

सन्दर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग– यहां युवतियों के सौंदर्य की अनेक विशेषताओं का चित्रण करते हुए लज्जा, श्रद्धा को यह बताती है कि श्रद्धा को उसके आगमन से चौकना नहीं चाहिए, क्योंकि वह तो युवतियों के उन्माद, ममत्व, जागरण एवं ओज भरे यौवन की समुचित देखभाल और रक्षा के लिए ही उनके शरीर पर शासन करती हैं।

व्याख्या– लज्जा, श्रद्धा से कहती है कि मैं नवोदित यौवनाओं के शरीर में प्रविष्ट होकर उनके उस रूप–सौन्दर्य की रखवाली करती हूं, जिसमें वसंत की मादकता होती है। वसन्त के आगमन पर मन–हृदय तक विचित्र मस्ती और उन्माद से भर उठती हैं, उनके भीतर मद की लहरें उठने लगती हैं। जिस प्रकार गोधूली बेला में ग्राम की ओर लौटती गायें अपने बछड़ों के लिए ममता से भरी होती हैं, उसी प्रकार युवतियों में भी अपने प्रियतम के प्रति एक उत्कृष्ट लालसा होती है। लज्जा इस उन्माद और ललक भरे सौन्दर्य को ठगे जाने से रक्षा करती है। पुनः लज्जा कहती है कि यौवन प्रातःकाल के समान जागरण और स्फूर्ति का काल है। युवावस्था में सौन्दर्य के प्रभाव से युवती एक विचित्र स्फूर्ति से दीप्त हो उठती है। साथ ही यौवन में प्रखरता भी है। जिस प्रकार दोपहर के समय सूर्य अपनी तेजी पर होता है, इसी प्रकार सौन्दर्य के वेग से युक्त रमणियां भी ओजस्विनी बन जाती हैं। लज्जा नारी के इस स्फूर्तिमय, ओजमय सौन्दर्य की रक्षा करती है।

टिप्पणी– (1) नारी सौन्दर्य का विशद चित्रण हुआ है।

(2) उपमा अलंकार की सुन्दर योजनाएं दर्शनीय हैं–

(अ) हिल्लोल के लिए वसन्त का उपमान लिया गया है।
(ब) ममता की उपमा के लिए गोधूली का ग्रहण भी गम्भीर अर्थ–ध्वनि–संयुक्त है।
(स) जागरण के लिए प्रातःकाल का प्रयोग हुआ है।
(द) यौवन की प्रखरता मध्याह्न से व्यंजित की गई है।

कोमल .... मानते हों।

शब्दार्थ– किसलय = नवीन पत्ते, कोंपलें। मर्मर = पत्तों के टकराने से उत्पन्न शब्द।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियों में 'कामायनी' महाकाव्य के प्रणेता महाकवि जयशंकर प्रसाद ने लज्जा के कथन द्वारा सौन्दर्य को एक व्यापक रूप ग्रहण कराया है। लज्जा इसी व्यापक सौन्दर्य की रखवाली करती है।

व्याख्या– लज्जा कहती है कि सौन्दर्य ऐसा व्यापक गुण है जिसका प्रसार मात्र–जगत् तक ही सीमित नहीं है। वनस्पतियाँ भी सौन्दर्य से प्रभावित होती हैं। कोंपलों के हिलकर टकराने से जो शब्द उत्पन्न होता है, वह भी मानो सौन्दर्य की विजय का शंखनाद है। इस प्रकार चेतन सृष्टि ही नहीं, जड़ प्रकृति भी जिस सौन्दर्य की आराधना में लीन है, लज्जा युवतियों के उसी सौन्दर्य की संरक्षिका है। लज्जा प्रसाद जी के इस मत की अभिव्यक्ति है कि सौन्दर्य के दर्शन से मनुष्य का हृदय राग–द्वेष, सुख–दुख से मुक्त होकर एक आनन्दमयी स्थिति को प्राप्त हो जाता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। यही तो सौन्दर्य का प्रभाव है। लज्जा कहती है कि वह नारी के इस लोकोत्तर सौन्दर्य की रक्षा करती है जो आनन्द का जनक है।

टिप्पणी— कवि का आशय सौन्दर्य के आदर्श स्वरूप की कल्पना से है। सच्चा सौन्दर्य हमारे मनोविकारों को उत्तेजित नहीं करता, अपितु उनका शमन करता है।

उज्ज्वल .... रहते हैं।

शब्दार्थ— उज्ज्वल = निर्मल, विकार रहित, सात्विक। चेतना = व्यापक चेतना शक्ति , महाशक्ति अनन्त = जिसका पार न हो।

सन्दर्भ — पूर्ववत।

प्रसंग — प्रस्तुत पंक्तियों में प्रसाद जी सौन्दर्य की व्यापक परिभाषा देने का प्रयत्न करते हैं। सौन्दर्य को मांसल या भौतिक न मानकर प्रसाद जी उसे चेतना शक्ति का वरदान कहते हैं। लज्जा इसी व्यापक सौन्दर्य की रक्षिका है।

व्याख्या— जिस वस्तु को संसार के प्राणी सौन्दर्य कहते हैं, वह कोई साधारण वस्तु नहीं। सौन्दर्य प्रत्येक को नहीं मिलता। किसी भाग्यशाली को ही सच्चा सौन्दर्य प्राप्त होता है। यह सौन्दर्य कहां से मिलता है? प्रसाद जी का विचार है कि सौन्दर्य एक वरदान है जो महाचिति नामक विश्व की नियन्ता शक्ति से केवल विरले लोगों को ही उनके उज्ज्वल या सात्विक कर्मो के फलस्वरूप प्राप्त होता है। आगे कवि कहता है कि सौन्दर्य कभी संतुष्ट या अकर्मण्य होकर नहीं बैठता। सुन्दरियां अपने सुन्दर भविष्य की आकांक्षा के स्वप्न हमेशा देखती रहती हैं। उनके हृदय में भावी सुख की अभिलाषा कभी शान्त नहीं होती। वे अपने भविष्य में कल्पनाएँ करती ही रहती हैं। लज्जा इसी कल्पनाशील, स्वप्नद्रष्टा सौन्दर्य की देखरेख करती है।

टिप्पणी— प्रसाद जी सौन्दर्य को महाचिति या चेतना शक्ति का वरदान कह कर उसकी पवित्रता एवं शिवता की ओर भी संकेत करते हैं। महाचिति का वरदान होने के कारण ही सौन्दर्य आनन्दमूलक है। इसी महाचिति की आनन्दमयी लीला प्रसाद जी को सर्वत्र दिखाई देती है।

'कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त।'

मै. उसी चपल .... समझाती।

शब्दार्थ — चपल = चंचल (यहाँ सौन्दर्य की चंचलता या गतिशीलता लक्षित है।) धात्री = धाय, पोषिका। गौरव = बड़प्पन। महिमा= महत्त्व, असाधारण होने का भाव।

सन्दर्भ — प्रस्तुत पंक्तियां जयशंकर प्रसाद जी द्वारा लिखित 'कामायनी' नामक महाकाव्य के लज्जा सर्ग से गृहीत हैं।

प्रसंग — सौन्दर्य का विविध प्रकार वर्णन करने के पश्चात् लज्जा, श्रद्धा से कहती है कि मैं इस चंचल सौन्दर्य की वैसे ही देखभाल करती हूं जैसे कोई धाय बच्चे की देखभाल करती है।

व्याख्या — लज्जा स्वयं को नवयुवतियों के गतिशील और चंचल सौन्दर्य की पोषिका एवं संरक्षिका घोषित करती है। जिस प्रकार किसी बालक का लालन–पालन करनेवाली धाय बच्चे के विकास एवं सुरक्षा का पूर्ण ध्यान रखती है, उसी प्रकार मैं युवा सुन्दरियों के सौन्दर्य को बिगड़ने से बचाती हूँ, साथ ही उन्हें यह भी बतलाती हूँ कि उनका यह सौन्दर्य कोई साधारण वस्तु नहीं है । अतः वे इसे संभालकर रखें। जिस प्रकार बच्चे की संरक्षिका बच्चे को व्यवहार–ज्ञान की शिक्षा देती है, ऊँच–नीच समझाती है, उसे हानि या संकट से पूर्व सूचित या सावधान कर देती है, उसी प्रकार लज्जा भी प्रेमपथ पर अग्रसर हुई या उस ओर जाने के लिए लालायित युवतियों को प्रेम–मार्ग की कठिनाइयों एवं खतरों का ज्ञान पहले ही करा देती है। इस प्रकार श्रद्धा जो लज्जा को देखकर चमत्कृत हो गयी थी, चौंक गयी थी, उसे लज्जा यह विश्वास दिलाती है कि वह कोई ठगिनी या दूती नहीं है, जिससे श्रद्धा को भयभीत होना चाहिए, वरन् वह उसकी संरक्षिका, पोषिका एवं पथ–प्रदर्शिका है, जिसके आगमन पर उसे हर्षित होना चाहिए।

टिप्पणी — (1) 'चपल' का संबंध पूर्व छंद के 'सौन्दर्य' से है।

(2) 'ठोकर लगाना' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मैं देव .... सिंचित हो।

शब्दार्थ– देव–दृष्टि = देवजाति जो प्रलय में लुप्त हो गयी है। रति= कामदेव की पत्नी। रानी = रानी शब्द में यह व्यंजना है कि उस समय मेरा सम्मान था क्योंकि मैं अपने पति के पास थी, अब बिछुड़ने से वह मान नहीं रहा। पंचवाण = कामदेव (जिसके पास पाँच कुसुम–शर है)। वंत्रित = पृथक, विरहित। आवर्जना = निषेध, अभाव। अतृप्ति = प्यास न बुझना, अपूर्ण कामनावाली।

सन्दर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – इन पंक्तियों में श्रद्धा को अपने कर्त्तव्य–कर्म से अवगत कराने के बाद लज्जा अपना परिचय देती है।

व्याख्या – लज्जा बतलाती है कि वह देव जाति के समय, प्रलय से पूर्व 'रति' नाम से जानी जाती थी। फूलों के पांच वाणों को धारण करनेवाला कामदेव मेरा पति था। उस समय मैं रानी–सदृश्य थी, क्योंकि पति के राज्यों में, उनकी छत्रछाया में हर स्त्री रानी ही होती है, किन्तु दुर्भाग्य कि प्रलय के कारण मैं अपने प्रियतम से बिछुड़ गई हूँ। प्रलय से पूर्व हम दोनों का मिलन होता था। तब मैं सौभाग्य की प्रतीक समझी जाती थी और आज दीन हूँ आवर्जना की मूर्ति हूँ अर्थात् मुझे कहीं जाने की मनाही है, क्योंकि आज मुझे अशुभ माना जाता है। इसका कारण यह है कि देव सृष्टि में कामदेव देवों के ह्रदय में आकांक्षा बनकर समाते थे और मैं देव–स्त्रियों में तृप्ति बनकर रहती थी। इस प्रकार उन दोनों के मिलन के साथ ही हम दोनों का मिलन स्वतः हो जाता था। आज वे देवांगनाएँ नहीं रहीं। अतः मैं भी तृप्ति रूप नहीं बन सकती और अतृप्ति से भरकर घूम रही हूं। मेरे भीतर प्रिय मिलन के अभाव से अतृप्ति की मात्रा बहुत बढ़ गई है।

टिप्पणी –(1) लज्जा के ह्रदय में स्थित वेदना बड़ी मार्मिकता से इन पंक्तियों में उजागर होती है।

(2) कामदेव के पांच वाणों को पाँच फूलों से निर्मित मानने की कवि प्रसिद्धि को प्रसाद जी ने अपनाया है।

(3) अलंकार विधान– 'बन आवर्जना मूर्ति दीना' में लज्जा का मानवीकरण किया गया है।

मैं रति की .... मनाती हूँ।

शब्दार्थ – प्रतिकृति=प्रतिमूति, मूर्ति की नकर अर्थात् वही। शालीनता = भद्रता। सुन्दरता = सुन्दर युवती से आशय है। नुपुर = घुंघरू। मनाती हूँ = मनुहार करती हूँ, रूठापन दूर करने का प्रयत्त करती हूँ।

सन्दर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – श्रद्धा को अपना परिचय देती हुई लज्जा उसे बताती है कि वह देव–सृष्टि में रति रानी के रूप में जानी जाती थी, किन्तु अब पति से बिछोह हो जाने पर उसका अस्तित्व एक भावना मात्र तक सीमित रह गया है।

व्याख्या – लज्जा कहती है कि अपने अशरीरी या भावात्मक रूप में मैं उस रति का ही प्रतिनिधित्व करती हूँ। उस समय मेरा नाम रति था और आज लज्जा है। मेरा कार्य है– नवयुवतियों को शालीनता या बड़प्पन की शिक्षा देना। मैं उन्हें सिखाती हूँ कि वे किस प्रकार व्यवहार करें, जिससे उनमें छिछोरापन न आये। साथ ही मैं उन्हें संयम की शिक्षा भी देती हँ। जिस प्रकार नृत्य में मग्न होकर कोई नर्तकी अपनी सुध–बुध खो देती है, मतवाली हो जाती है और उसे ध्यान नहीं रहता है कि वह कहाँ है, क्या कर रही है, उसी प्रकार यौवन आने पर सौन्दर्य के मद में डूब कर युवतियाँ अपने आपको भूल जाती है, आपे में नहीं रहतीं। जैसे नर्तकी के पैरो में बँधे घुंघरू बज–बजकर उसे याद दिलाते रहते है कि बस बहुत हो चुका, एक पग और बढ़ा कि मंच से नीचे गिर जाओगी, वैसे ही लज्जा प्रेम–पथ पर बहुत दूर निकल जाने से युवतियों को रोकती रहती है।

टिप्पणी – (1) लज्जा के कार्य का बड़ा स्वाभाविक चित्रण है।

(2) उपमा अलंकार– 'नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।

लाली बन .... जगती।

शब्दार्थ – सरल = (1) जो विरल या गड्ढेदार नहीं है, भरे हुए, सुन्दर (2) भोले। संजन = सुरमा या काजल। कुंचित = टेढ़े, उलझे हुए। अलकों = लटों। मरोर = ऐंठन।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सन्दर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियों में जयशंकर प्रसाद लज्जा के अशरीरी या भावात्मक रूप का स्पष्टीकरण करते हुए यह बताते हैं कि लज्जा को कैसे पहचाना जा सकता है। स्वयं लज्जा अपने निवास स्थान और स्वरूप की व्याख्या करती है।

व्याख्या – लज्जा कहती है कि मैं भोली युवतियों के गालों पर लाली के रूप में निवास करती हूँ। भाव यह कि लज्जा का उदय होते ही स ुकुमार बालाओं के गाल लाल पड़ जाते हैं। इसी प्रकार सुन्दरी युवतियों के नेत्र लज्जा युक्त होकर काले पड़ जाते हैं। लज्जा की स्थिति में काजल विहीन नेत्र भी सकाजल प्रतीत होने लगते हैं। लज्जा कहती है कि मैं नवयुवतियों के हृदय में उलझे, घुंघराले बालों की लट के समान सरलता से न सुलझ पानेवाली गुत्थी बनकर प्रकट होती हूँ। भाव यह है कि लज्जा के कारण युवतियां प्रेम–पथ पर आगे बढ़ने में संकोच करती हैं। उनके सामने यह उलझन उपस्थिति हो जाती है कि वे बढ़ें या रुकें। यदि लज्जा न हो तो युवा सुन्दरियां अपने मनचाहे, मनमाने, स्वच्छंद मार्ग पर चलने लगें। इस प्रकार लज्जा एक ओर नारी के कपोलों की लाली बनकर और नेत्रों की कालिमा बनकर प्रकट होती है, वहीं दूसरी ओर मन के भीतर एक ऐंठन, एक खिंचाव, एक अन्तर्द्वन्द्व बन कर आती है।

टिप्पणी – (1) लज्जा के प्रकट होने के भाव का स्वाभाविक चित्रण है। प्रसाद जी की सूक्ष्म सौन्दर्य दृष्टि एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है।

(2) मालोपमा अलंकार।

चंचल .... लाली।

शब्दार्थ – किशोर सुंदरता = किशोरावस्था वाली सुन्दरियाँ। मसलन = रगड़।

सन्दर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – लज्जा अपने स्वरूप का बखान करती हुई कहती है कि –

व्याख्या – मैं उन सुन्दरियों की जो किशोर वय में होने से सहज चंचल होती हैं, रक्षा करती हूँ। कहीं वे अपनी चंचलता के कारण किसी ऐसे मार्ग पर पग न बढ़ा दें, जहाँ उनका सौन्दर्य नष्ट हो जाय और फिर वे पश्चात्ताप करें। अतः मैं उनके शरीर में कैशोर्य प्रवेश होते ही स्वयं ही वहां पहुँच जाती हूँ और उनकी चंचलता का नियंत्रण करती हूँ। जिस प्रकार बच्चों को दण्ड देने के लिए उनके कान ऐंठ या मसल–मसलकर उन्हें दण्ड दिया जाता है, वैसे ही मै उनके कानों की लाली बनकर दण्ड पाने से बचने के लिए उन्हें सावधान रखती हूँ और सतर्क रखती हूँ।

टिप्पणी – लज्जा के कार्य का बार–बार उल्लेख करके प्रसाद जी यह बताना चाहते है कि लज्जा के कारण ही युवतियाँ नियंत्रण में रहती हैं। यदि लज्जा का आवरण न हो तो वे स्वेच्छाचारिणी बन जायें।

यह आज .... हारी हूँ।

शब्दार्थ – दुर्बलता में नारी हूँ = नारी होने के कारण पुरुष से दुर्बल हूँ अथवा दुर्बल होने से ही मैं नारी हूँ, यदि सबल होती तो पुरुष कहलाती। अवयव = अंग। सबसे = समूची नर जाति से, पुरुष मात्र से।

सन्दर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – इन पंक्तियों में श्रद्धा अपनी नारी सुलभ दुर्बलता को स्वीकार करती है। वह इसलिए अकेले भावी जीवन के विषय में कोई निर्णय नहीं ले पाती क्योंकि वह दुर्बल नारी है।

व्याख्या – श्रद्धा कहती है कि हे लज्जे ! मैं आज यह जान पाई हूं कि मै एक दुर्बल स्त्री हूँ और पुरुष की समता मैं नहीं कर सकती। यद्यपि मेरे शरीर का प्रत्येक अंग सुंदर है और पुरुष उस एक–एक अंग की कमनीयता पर मर–मिटने को प्रस्तुत है, किन्तु फिर भी वे अंग सुकुमार हैं, कोमल हैं, बलहीन हैं। पुरुष की बराबरी नहीं कर सकते। यह प्रकृति का विधान है। प्रकृति ने नारी को नर की अपेक्षा कोमल एवं दुर्बल बनाया है। इसलिए उसका सौन्दर्य, उसका सौकुमार्य गुण की दृष्टि से बहुत मूल्यवान होकर भी वह पुरुष के सामने दुर्बल है, उससे पराजित हो जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

टिप्पणी – (1) यहां प्रसाद जी ने एक गहन सत्य का उद्घाटन किया है। नारी पुरुष के सम्मुख आत्मसमर्पण क्यों करती है? इसका अचछा विश्लेषण प्रस्तुत पंक्तियों में किया गया है।

(2) 'सब' शब्द से सम्पूर्ण पुरुष जाति की व्यंजना होती है।

नारी जीवन .... देती हो।

शब्दार्थ– चित्र = यथार्थ स्वरूप। विकल रंग = व्याकुल बना देनेवाले भाव। अस्फुट = अस्पष्ट, धूमिल।

सन्दर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – इन पंक्तियों में प्रसाद जी ने श्रद्धा के माध्यम से स्त्री–जीवन की विवशता, विकलता और संवेदनशीलता का चित्रण किया है।

व्याख्या – श्रद्धा पूछती है कि क्या स्त्री का जीवन ऐसा ही है, जैसा लज्जा ने बताया है? लज्जा ने नारी–जीवन की अस्पष्ट–सी रूपरेखा श्रद्धा के सामने रखी है और यह बताया है कि वह युवतियों के सुखमय भविष्य के लिए उनकी भावनाओं का नियंत्रण करती है। एक ओर तो लज्जा किशोरियों के शरीर मे प्रवेश करके उन्हें यौवन के आगमन की सूचना देती है और दूसरी ओर भावनाओं के निरोध की शिक्षा भी देती है। श्रद्धा की समझ में ये दोनों बाते एक साथ नहीं आतीं। वह इससे व्याकुल हो जाती है और निर्णय नहीं ले पाती कि क्या करे, क्या न करे। अतः वह लज्जा से स्पष्ट शब्दों में यह पूछना चाहती है कि नारी–जीवन की अस्पष्ट रूप रेखा खींची है, उन रेखाओं से जो नारी मूर्ति निर्मित हुई है, वह श्रद्धा के लिए अबूझ है। अतः वह स्पष्ट चित्र चाहती है– ऐसा जिसकी कला को, जिसकी रेखाओं और रंगों को श्रद्धा पढ़ सके।

टिप्पणी – (1) विशेषण विपर्यय– विकल रंग।

(2) रूपकातिशयोक्ति– रंग (भावनाएँ)

(3) छायावादी शैली।

इस अर्पण .... झलकता है।

शब्दार्थ – अर्पण = देना, सौंपना, हृदय दान। उत्सर्ग = त्याग, बलिदान।

सन्दर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियों में श्रद्धा के निःस्वार्थ समर्पण द्वारा आदर्श भारतीय नारी के हृदय की उज्ज्वलता का दिग्दर्शन कराया गया है। भारतीय नारी प्रेम को बलिदान मानती है, प्राप्ति नहीं। प्रेम में प्रतिदान की भावना श्रद्धा में नहीं है।

व्याख्या – श्रद्धा कहती है कि मनु के प्रति समर्पण की एक उत्कृष्ट अभिलाषा उसके हृदय को मथ रही है। वह सोचती है कि कहीं इसमें उसका कोई स्वार्थ तो नहीं है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि उसका समर्पण भाव निष्काम है, निःस्वार्थ है। वह मनु को सुख देना चाहती है, उसके निराश जीवन में आशा की ज्योति जलाना चाहती है। सागर–तट पर उदास बैठे मनु को उसी ने तो जाकर टोका था, समझाया था। यह भेंट आकस्मिक थी और मनु की विरक्ति और उदासीनता, निराशा और वेदना ने ही उसे मनु के प्रति सहानुभूति से भर दिया था। श्रद्धा की यह समर्पण–आकांक्षा मनु के लिए, मनु के हित के लिए, उसकी प्रसन्नता के लिए ही है, न कि इसमें उसका कोई निजी लाभ या स्वार्थ चिपका हुआ है। वह तो सरल सीधे भाव से मनु को अपना प्रेम देना चाहती है, बदले में कुछ पाने की इच्छा उसमें नहीं है।

टिप्पणी – प्रसाद जी ने श्रद्धा के रूप में एक आदर्श प्रेमिका का चित्रण किया है जो प्रेम का आदर्श ग्रहण नहीं, त्याग मानती है। प्रसाद जी ने अन्यत्र भी प्रेम का यही आदर्श रखा है। एक स्थान पर वे लिखते है–

'पागल रे ! वह मिलता है कब।
उसको तो देते ही हैं सब।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नारी .... सममतल में।

शब्दार्थ – श्रद्धा = आस्था, विश्वास इत्यादि। रजत नग = चांदी का पहाड़ा अर्थात् बर्फ से ढ़का पहाड़। पदतल = पैर के नीचे। पीयूष = अमृत। स्रोत = नदी।

सन्दर्भ, – पूर्ववत।

प्रसंग – श्रद्धा के यह पूछने पर कि नारी जीवन का वास्तविक चित्र कया है, उसके जीवन का उदेश्य क्या है, लज्जा यह उत्तर देती है कि –

व्याख्या – नारी जीवन त्याग और तपस्या का प्रतीक है। लज्जा कहती है कि स्त्री और कुछ नहीं बस श्रद्धा है। वह हृदय के समस्त सद्‌गुणों की प्रतीक है। लज्जा, श्रद्धा के यह सन्देश या आदेश देती है कि नारी ! तुम पुरुष के विश्वास का संबल लेकर, अमृत की नदी बनकर, जीवन को भूमि को समतल बना दो। अर्थात् जिस प्रकार एक नदी हिमाच्छादित पर्वत के नीचे बहती हुई, वहां की भूमि को समतल बनाकर उसे सुन्दरता प्रदान करती है, वैसे ही तुम भी अपने मधुर व्यवहार और आचरण से जीवन की विषमता को समाप्त कर दो। भाव यह है कि तुम अपने पति का आश्रय ग्रहण करके उसके विश्वास का संबल पकड़कर, अपने गृहस्थ को सुखमय बनाकर दूसरों को भी सुख प्रदान करो।

टिप्पणी – (1) नारी के आदर्श स्वरूप का चित्रण किया गया है। उसे 'श्रद्धा' स्वरूप बताकर उसमें सभी महान् गुणों की प्रतिष्ठा कर दी गयी है।

(2) अलंकार सौष्ठव–

(अ) रूपक – 'विश्वास – रजत नग' में।

(ब) उपमा – 'पीयूषस्रोत सी' में।

इड़ा सर्ग

मनु विचारों में लीन होकर अज्ञात दिशा में चले जा रहे थे । चलते–चलते वे सारस्वत नगर में आये। मनु को अपने अतीत जीवन का स्मरण हो गया और देव–जाति के उत्कर्ष की गाथाएं उनके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगीं। आज श्रद्धा–हीन होने के कारण मनु के हृदय में भी संघर्ष चल रहा था। इसलिए मनु को आज प्रतीत हुआ कि 'सचमुच मैं श्रद्धा विहीन हूं।

इसी क्षण मनु को काम की शाप–ध्वनि सुनाई दी। काम ने आकाशवाणी के रूप में मनु से कहा – ''मनु ! तुम उस परम विश्वासमयी श्रद्धा को भूल गये। उसने तो तुम्हारे लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था, किन्तु तुम्हारे हृदय में बराबर अविश्वास एवं स्वार्थ बना रहा और तुम सदैव 'सब कुछ मेरा हो' की संकुचित भावना से भरे रहे। अब इसी संकुचित भावना के कारण तुम्हें तनिक भी सुख नहीं मिलेगा।

सहसा प्रभात हुआ। इसी क्षण एक अनुपम सुन्दर युवती मनु को दिखाई दी। उसे देखते ही मनु ने उसका परिचय पूछा। उस बाला ने कहा – मेरा नाम इड़ा है, किन्तु बताओ तुम कौन हो और यहाँ क्यों घूम रहे हो? मनु बोले – हे बाले ! मेरा नाम मनु है, मैं इस संसार का पथिक हूं और नाना प्रकार के कष्ट झेलता हुआ इस पथ पर चला जा रहा हूं। तब इड़ा बोली – तुम्हारा स्वागत है !

मनु ! तुम्हें आत्मविश्वासी बनना है। याद रखो, जो व्यक्ति दूसरों पर निर्भर न रहकर स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होकर आगे बढ़ता है, उसे कोई रोक नहीं सकता। इसलिए अपने जीवन को उन्नत बनाने के लिए तुम्हें भी अपने पैरों पर स्वयं खड़ा होना है, आगे बढ़ना है और अपनी बुद्धि का कहना मानकर इस प्रकृति के सम्पूर्ण रहस्यों का उद्‌घाटन करना है।

इडा की ऐसी प्रेरणामयी वाणी सुनकर मनु के हृदय में नवीन स्फूर्ति का संचार हुआ। उन्होंने सारस्वत प्रदेश का भार अपने कन्धों पर ले लिया।

इस सर्ग में मनु के संघर्षपूर्ण जीवन का चित्र अंकित किया गय है और यह दिखाया गया है कि श्रद्धा–विहीन मानव किस तरह इधर–उधर भटकता हुआ अन्त में बुद्धि का सहारा लेता है, किन्तु बुद्धि के क्षेत्र में पहुंचकर विज्ञान के सहारे भौतिक सुखों की लालसा में पागल होकर न तो संसार के किसी नियामक को कुछ समझता है और न उसे किसी दूसरे पर विश्वास रहता है, अपितु वह आत्म – निर्भर होकर अपनी ही सुख – सुविधा का ध्यान रखता हुआ सदैव सारे सुखों को अपने तक ही सीमित रखने का प्रयत्न करता रहता है। इसमें काम की शाप–ध्वनि भी अत्यन्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

महत्त्वपूर्ण है, जिसमें यह स्पष्ट बताया गया है कि जो मानव श्रद्धा या विश्वासमयी गृहिणी का परित्याग करके सुख की खोज में अन्य किसी स्त्री का अवलम्बन लेता है, वह कभी सुखी नहीं रह सकता, क्योंकि श्रद्धा–विहीन मनुष्य का सारा जीवन नष्ट हो जाता है और वह स्वार्थ, दम्भ, काम तथा अलंकार के वशीभूत होकर अपने भविष्य को बिगाड़ लेता है। यहाँ काम के द्वारा दिया गया समरसता का संदेश भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मनु अभी तक हृदय के क्षेत्र में चल रहे थे। अब वे बुद्धि के क्षेत्र में आते हैं। अतः प्रसाद ने दोनों क्षेत्रों का चित्रण करके यह दिखाया है कि मानव न तो अकेले हृदय या भाव–क्षेत्र में ही सुखी रहता है और न अकेले बुद्धि या विचार – क्षेत्र में ही उसे सुख अथवा जीवन का आनन्द प्राप्त हो सकता है। कला की दृष्टि से भी सम्पूर्ण सर्ग अत्यनत उत्कृष्ट है। रूपक, सांगरूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के सहारे कवि ने बड़ी सुन्दरता से भावों का निरूपण किया है। कवि का बिम्ब – विधान भी अत्यन्त सजीव एवं मार्मिक है। कवि की शैली लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक है और अपनी इसी शैली के द्वारा कवि ने मनु का अन्तर्द्वन्द्व, इड़ा के रूप – सौन्दर्य आदि का सुन्दर एवं सजीव निरूपण किया है।

किस गहन .... को शून्य चीर।

शब्दार्थ – झंझा = आँधी, तूफान। विक्षुब्ध = कुपित, किन्तु लक्षणा से इसका अर्थ है अत्यन्त तीव्रगतिवाला। महासमीर = अत्यन्त तेज आँधी। परमाणु–पुंज = अणु–परमाणुओं का समूह। विलीन = लगा हुआ, संलग्न। कटुता को बाँट रहा = पारस्परिक द्वेष बढ़ा रहा। विराग = उदासीनता। अस्तित्व = जीवन की सत्ता। चिरन्तन = शाश्वत, सनातन। विषम – भयंकर, तीक्ष्ण। लक्ष्य भेद को = लक्ष्य का भेदन करने के लिए। शून्य चीर = अन्तरिक्ष को चीरता हुआ या पार करता हुआ।

संदर्भ – प्रस्तुत काव्यांश छायावाद के उपनिषद 'कामायनी' के 'इड़ा' सर्ग से अवतरित है, जिसके रचयिता महाकवि जयशंकर प्रसाद हैं।

प्रसंग – श्रद्धा को हिमालय की शून्य गुफा में छोड़कर जब मनु अकेले ही पर्वत–शृंखलाओं के बीच में भटकते फिर रहे थे, तब वे अपने जीवन की तुलना झंझावात से कहते हुए करते हैं –

व्याख्या – जैये भयंकर तूफान किसी गहरी गुफा से निकल कर किसी अज्ञात स्थान की ओर बढ़ता हुआ सा दिखाई देता है, वैसे ही मेरा यह व्यथित जीवन भी अज्ञात स्थान की ओर निकल पड़ा है। जिस तरह आँधी में अनेक प्रकार की मिट्टी, धूल आदि सम्मिलित रहते हैं, उसी तरह मेरे इस जीवन में भी वे तत्त्व मिला हुआ है। जैसे भयंकर आँधी सभी को भयभीत बनाती है, वैसे ही मेरा यह जीवन भी आज सभी को भयभीत बनाता हुआ सा जान पड़ता है। जिस तरह आँधी पेड़ों को उखाड़ कर जीवन में कटुता एवं विषमता पैदा कर देती है और संसार को असहाय बना देती है, उसी तरह मेरा यह जीवन भी श्रद्धा का परित्याग करके इसने अपने उस छोटे से जगत् को भी अनाथ एवं विवशता से परिणूर्णण बना लिया है। जैसे आँधी का तीव्र प्रवाह रेगिस्तान की बालू तथा अन्य उपजाऊ मिट्टी के कणों को खेतों में जहाँ–तहाँ फैलाता हुआ एवं समुद्र, सरोवर, नदी आदि में लहरें उत्पन्न करता हुआ जहाँ निर्माण का कार्य करता है, वहीं वह पेड़ों को उखाड़ कर, तथा अन्य वस्तुओं को इधर से उधर फेंक कर नष्ट–भ्रष्ट करता हुआ विनाश का कार्य भी करता है। मेरे इस जीवन में निर्माण एवं विनाश करने की शक्ति भरी हुई है। जिस तरह तूफान की तीव्र वायु संसार के प्रत्येक पदार्थ से संघर्ष करती हुई और आगे बढ़ती चली जाती है और वह सृष्टि के सभी पदार्थों से उदासीन भी रहती है और सबसे प्रेम भी रखती है, उसी तरह यह मेरा जीवन भी निरन्तर संघर्ष करता चला आ रहा है; आज उसकी दृष्टि में भी संसार के सभी पदार्थ एक–समान हैं, वह भी आज सबसे उदासीन है। जिस तरह किसी लक्ष्य को भेदने के लिए धनुष से कोई तीर छूट कर अन्तरिक्ष को चीरता हुआ आगे बढ़ता है,उसी तरह मेरा यह शाश्वत जीवन भी न जाने अपने किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आज निकल पड़ा है औन न जाने कब से इस जगत् की शून्यता को पार करता हुआ आगे बढ़ता चला जा रहा है ?

(3) 'झंझा प्रवाह सा' में उपमा हैं। 'जीवन विक्षुब्ध महासमीर' में रूपक है।

इस दुखमय .... का कर विनाश।

शब्दार्थ – जीवन का प्रकाश = जीवन की आशा। नभ नील लता = नीले आकाश रूपी श्याम लता, लक्षणा से इसका अर्थ है निराशा। सुख से हताश = सुख से वंचित होकर। कलियाँ = सुखमय पदार्थ (लक्षणा)। काँटे = दुःखद वस्तुएं (लक्षणा)। उन्मुक्त शिखर = पर्वत की सर्वथा स्वतन्त्र चोटियाँ। निर्वासित = घर से निकला हुआ। नियति नटी = नियामिका शक्ति। भीषण अभिनय = नियति की प्रेरणा से होनेवाले संसार के भयंकर कार्य। खोखली शून्यता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

= नीरव जगत् । कुलांच रही = उछल–कूद मचा रही। पावस रजनी = वर्षा की रात, किन्तु लक्षणा से इसका अर्थ दुर्दिन या बुरा दिन भी है। जुगनूगण = खद्योत – समूह, किन्तु लक्षणा से इसका अर्थ ऐसे पदार्थ भी है,जो दिखाई तो देते हैं कि सुख देंगे, किन्तु जिनसे सुख नहीं प्राप्त होता। ज्योतिकण = प्रकाश के कण, किन्तु लक्षणा से इसका अर्थ है सुखद वस्तुएँ।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – यहाँ मनु अपने असफल एवं निराश जीवन के बारे में विचार करते हुए कहते हैं –

व्याख्या – जिस तरह इस नीले आकाश में नक्षत्र आदि प्रकाश के कण उलझे हुए से दिखाई देते हैं उसी तरह सुख से वंचित होने के कारण इस दुःखमय जीवन की समस्त आशा एवं आकांक्षाएँ भी आज निराशा में उलझी हुई जान पड़ती हैं और मुझे अब सुख–प्राप्ति की कोई आशा नहीं दिखाई देती। अरे, जीवन में प्राप्त होनेवाले जिन पदार्थों को मैं अभी तक आनन्द देनेवाला समझता था, वे तो सब काँटे की तरह दुःख एवं पीड़ा पहुंचानेवाले ही सिद्ध हुए। मैं श्रद्धा के समीप से चलकर अब तक जीवन के इस शून्य मार्ग पर बढ़ता चला जा रहा हूँ। आज मेरी इस दयनीय दशा को देखकर पर्वत की ये स्वतन्त्र चोटियां भी मुझ पर हँसती – सी जान पड़ती हैं और मैं अशान्त होकर इस नीरव पथ पर इस तरह रोता हुआ भटकता चला जा रहा हूं जिस तरह अपने देश से निकाल दिए जाने पर कोई व्यक्ति बीहड़ जंगलों में रोता–रोता भटकता फिरता है। आज इस बीहड़ जंगल और अपनी इस भयंकर स्थिति को देखकर ऐसा जान पड़ता है, जैसे इस संसार का नियमन करनेवाली वह शक्ति भी अपना भयंकर अभिनय करती हुई मेरे चारों ओर नाच रही है। आज अपने जीवन के इन बुरे दिनों में मैं जिस वस्तु को सुखद जानकर ग्रहण करता हूँ, उसी वस्तु से मुझे निराश होना पड़ता है, और मेरी दशा आज उस व्यक्ति के समान है जो वर्षाकाल की घोर अन्धकारमयी रात्रि में प्रकाशित होनेवाले सम्पूर्ण पदार्थों को स्वयं नष्ट करके पुनः प्रकाश पाने की इच्छा से जुगुनुओं को दौड़कर पकड़ता है, परन्तु जुगुनुओं से उसे भला क्या प्रकाश मिल सकता है?उनके पकड़ने से तो उसे प्रकाश के स्थान पर घोर अन्धकार ही हाथ लगता है।

टिप्पणी – (1) मनु के भीतर 'मची अशांत हलचल' का बहुत सजीव अंकन है।

(2) यहां मनु का मनोविज्ञान विवृत हुआ है।

जीवन निशीथ .... रानी के केश भार।

शब्दार्थ – निशीथ = अर्द्धरात्रि। नील तुहिन जलनिधि = श्याम रंग के तुषार कणों का समुद्र। चेतनता की किरण डूब रही = चेतना लुप्त हो रही अथवा सुधबुध जाती रही। मादक तम = पागलपन या बुद्धि भ्रम उत्पन्न करनेवाला अन्धकार। अभंग = पूर्णतया। अनंग परिवर्तन = आकृतिहीन परिवर्तन। क्षीण अरुण रेखा = उषा की सूक्ष्म लालिमा। उर्मिल अलक = लहराती हुई घुँघराली लटें। चिर निवास विश्राम प्राण के = प्राणों के विश्राम करने का स्थायी स्थान। मोह – जलद = मोह रूपी बादल। छाया उदार = विस्तीर्ण छाया।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – यहाँ मनु अपने जीवन की घोर निराशा को अर्धरात्रि के समय फैले हुए घने अन्धकार के तुल्य बताते हुए कहते हैं कि –

व्याख्या – जिस तरह में आधी रात के समय घना अन्धकार नीले रंग के तुषारकणों से भरे हुए समुद्र की भाँति एक सिरे से दूसरे सिरे तक अंतरिक्ष में सर्वत्र फैल जाता है, उसी तरह यह घोर निराशा भी मेरे जीवन में पूर्णतया फैल गई है। साथ ही जिस तरह आकाश में चमकते हुए तारे उस घने अन्धकार में अपने प्रकाश की किरणें फैलाते हैं, परन्तु वे प्रकाश की किरणें उस अन्धकार को नहीं हटा पाती, अपितु वे उसी में डूब जाती हैं, उसी तरह इस घोर निराशा में मेरी शुद्ध चेतना भी पूर्णतया डूब गई है, मुझे कुछ भी सुधबुध नहीं रही है और मैं अपने जीवन को उन्नत बनाने के लिए कुछ सोच–विचार नहीं कर पाता। जिस तरह रात्रि का घना अन्धकार जगती में व्याप्त होकर सम्पूर्ण संसार को मतवाला बना देता है और सारा जगत् नशे में चूर व्यक्ति की भाँति सोता हुआ पड़ा रहता है, उसी तरह निराशा भी इस निखिल जगत् में पूर्ण रूप से व्याप्त हो रही है। तूने पृथ्वी के प्रत्येक भाग को अपने प्रभाव से मतवाला बना दिया है, जिससे सभी पदार्थ नशे में चूर होकर बेहोश पड़े से जान पड़ते हैं। जिस तरह रात्रि का घना अन्धकार कालिमा का रूप धारण कर संसार में प्रकट होता है, फिर प्रभात होते ही छिप जाता है, किन्तु रात्रि के आते ही फिर प्रकट हो जाता है और प्रतिक्षण अपने नाना प्रकार के आकृतिहीन परिवर्तन प्रस्तुत किया करता है, उसी तरह निराशा भी मेरे हृदय में कभी तो बड़े वेग से प्रकट होती है, कभी सुखमय भविष्य की आशा के कारण कुछ क्षणों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लिए छिप जाती है, किन्तु उस आशा के लुप्त होते ही फिर हृदय में आ घिरती है। इस तरह अपने नाना प्रकार के आकृतिहीन परिवर्तनों द्वारा मुझे व्यथित करती रहती है। जिस तरह किसी सौभाग्यवती कामिनी की लहराती हुई घुँघराली लटों के बीच निकली हुई माँग में भरे हुए सिंदूर की भाँति रजनी के घने अन्धकार में से उषा की लालिमा से भरी हुई एक क्षीण रेखा दिखाई देती है और उसमें से प्रकाश की किरणें निकलती सी प्रतीत होती हैं, उसी तरह घोर निराशा से भरे हुए मेरे व्यथित हृदय में ममता या स्नेह की अनुराग – भरी एक क्षीण रेखा दिखाई देती है, जिससे कुछ क्षणों के लिए मेरे अन्धकारपूर्ण हृदय में भी आशा की किरणें प्रकाश करती हुई–सी जान पड़ती हैं। जिस तरह रात्रि का घोर अन्धकार सभी चेतन प्राणियों को अपनी गोद में सुलाकर विश्राम प्रदान करता है और विश्राम देने के कारण प्राणियों के आराम का एक स्थायी निवास बना हुआ है, उसी तरह निराशा भी मेरे इन व्यथित प्राणों को विश्राम प्रदान करती हुई मेरे लिए आराम का एक अविचल स्थान बन गई है, क्यों कि मेरे हृदय से वह कभी दूर नहीं होती और घोर निराशा में डूबे रहने के कारण मेरा हृदय अकर्मण्य होकर बराकर उसकी गोद में सोता रहता है। अरी निराशा ! जिस प्रकार अन्धकार हमें काले–काले बादलों की विस्तृत छाया के रूप में दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार तू हमें मोह की विस्तृत छाया के रूप में दिखाई देती है, क्योंकि मानव के हृदय में जितना अधिक मोह होता है, उसे अपने जीवन में उतनी ही अधिक निराशा का अनुभव होता है। जिस तरह अन्धकार काले रंग के होने के कारण इस विराट प्रकृति देवी के काले – काले बालों के समूह जैसा दिखाई पड़ता है, उसी तरह निराशा इस संसार में व्याप्त माया–जाल के रूप में दिखाई देती है क्यॅकि इस माया–जाल के कारण ही मनुष्य संसार के पदार्थों के प्रति अधिकाधिक लालायित होता है और उनके न मिलने पर उसे अधिकाधिक निराशा का सामना करना पड़ता है।

जीवन निशीथ .... प्रतिध्वनि नग अपार।

शब्दार्थ – नव ज्वलन धूम सा = नई – नई जलाई हुई आग में से उठने वाले धुएँ के समान। अपूर्ण लालसा = अतृप्त अभिलाषा। कसक = टीस। मधुवन = ब्रज प्रदेश का वह वन जिसमें मधुदैत्य रहता था और जहाँ शत्रुघ्न ने मथुरा नगरी बसाई थी। कालिन्दी = यमुना। दिगन्त = दिशाओं के छोर । मन शिशु = मनरूपी बालक। क्रीडा नौकाएँ = मनोरंजन के लिए अथवा सैर के लिए चलनेवाली नावें। अनन्त = अनेक । कुहुकिनि = माया या जादू चलानेवाली स्त्री। अपलक दृग = खुले हुए जागरूक नेत्र। अंजन = काजल । छलना = धोखा, प्रवंचना । धूमिल रेखा = धुँधली रेखाएँ। नव कलना = नवीन रचना। चिर प्रवास = सदैव के लिए प्राप्त हुआ विदेश। पिक प्राण = कोयल रूपी प्राण। नील प्रतिध्वनि = वेदना तथा व्यथा की गूँज।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – मनु जीवन में व्याप्त निराशा की तुलना पुनः रात्रि के अन्धकार से करते हुए कहते हैं –

व्याख्या – हे निराशा ! तू मेरे जीवन में अर्धरात्रि के अन्धकार की तरह फैली हुई है। जिस तरह कृष्ण पक्ष में आधी रात के समय घना अन्धकार नई – नई जलाई हुई आग में से उठनेवाले काले –काले धुएँ के समान सर्वत्र फैल जाता है और सब ओर घूमता–सा दिखाई देता है, उसी तरह तू भी मेरे हृदय में नित्य नई–नई अभिलाषाओं के रूप में छाई रहती है और तुझे मैं बार–बार अपने हृदय से दूर करने का प्रयत्न करता हूँ, परन्तु तू तनिक भी दूर नहीं होती हे निराशा ! जिस प्रकार धुएँ के अन्दर कभी–कभी आग की चिनगारी भी चमक कर उठती दिखाई देती है, उसी प्रकार तेरे कारण मेरे हृदय में भी लालसा के अपूर्ण रहने से कसकपूर्ण कराह उठती है। जिस तरह सावन–भादों के महीने में मथुरा के अन्दर यमुना नदी दूर–दूर तक जल फैलाती हुई तीव्र गति से बहती है, उसी तरह मेरे शरीर में भी यौवन की धारा बड़ी तीव्र गति से बह रही है। अरी निराशा ! जिस तरह आधी रात का अन्धकार किसी मायावी जादूगरनी के जागरूक नेत्रों में लगे हुए काजल की तरह दिखाई देता है, उसी तरह तू भी मुझे किसी मायाविनी की आँखों के काले अंजन जैसी जान पडती है अरी निराशा ! जिस तरह हमें रात्रि का अन्धकार धुँधली रेखाओं में बनाई गई एक सजीव एवं चंचल चित्रकला के रूप में दिखाई देता है, उसी तरह तू भी मुझे स्मृतियों की धुँधली रेखाओं से बनी हुई एक ऐसी नवीन रचना के रूप में दिखाई देती है, जिसमें सजीवता और चंचलता भरी हुई है। जैसे अंधेरा मधुर गूँज बनकर सारे आकाश में फैल जाता है, उसी तरह निराशा भी मेरे प्राणों की व्यथा भरी पुकार के समान मेरे हृदय में छा गई है और वेदना की गूँज बनकर निराशा अनन्त काल से परदेश में भटकनेवाले तथा अन्धकारपूर्ण पथ पर चलनेवाले मुझ व्यथित व्यक्ति को सर्वत्र सुनाई पड़ रही है।

टिप्पणी – रूपक, उत्प्रेक्षा एवं उपमा के माध्यम से मनु क जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है।

जीवन का लेकर .... में बँधते दुर्निवार।

शब्दार्थ – असुर = वरुण के अनुयायी देवता। सुर = इन्द्र के अनुयायी देवता। आराध्य = पूजने योग्य। आत्म मंगल उपासना में विभोर = अपनी कल्याण–कामना में लीन। आनंद उच्छलित = आनंद से परिपूर्ण। शक्ति स्रोत = शक्ति का उद्‌गम । वैचित्र्य = विचित्रता । हरा = प्रफुल्लित। संलग्न = लीन । दुर्निवार = अविचल, दृढ़।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – मनु निराशा के गहन अन्धकार में सारस्वत प्रदेश की पूर्व स्थिति पर चिंतन कर रहे हैं। सारस्वत प्रदेश के खंडहरों में लेटे हुए मनु सोचने लगे –

व्याख्या – पहले इस प्रदेश में सुर और असुर दोनों साथ–साथ निवास करते थे, परन्तु जीवन के विषय में नवीन विचारों के उदय होते ही दोनों में संघर्ष आरम्भ हो गया। असुर लोग वरुण के अनुयायी थे और सुर इन्द्र के । असुरों में अपने शरीर की चिन्ता अधिक थी, इसलिए उसकी रक्षा के लिए प्राणों के स्वामी वरुण की पूजा किया करते थे और उधर सुर लोग इन्द्र के अनुयायी होने के कारण किसी अन्य की पूजा नहीं करते थे। हमें स्वयं कल्याण–कामना के लिए अपनी आत्मा की उपासना में ही लीन रहना चाहिए। हम स्वयं सम्पूर्ण उल्लासमयी शक्ति के केन्द्र हैं। हमारा यह जीवन ही आनन्द से परिपूर्ण शक्ति का उद्‌गम है,जो नाना प्रकार की विकासशील विचित्रताओं से भरा हुआ है और हम स्वयं अपनी शक्ति द्वारा ही नई–नई वस्तुओं का निर्माण करते हुए अपने इस जगत् को सदैव प्रफुल्लित रख सकते हैं। इस तरह असुर लोग निरन्तर शरीर की उपासना में लीन रहते थे और सुर आत्मा को सब कुछ समझने के कारण आत्मवादी बने हुए थे।

मनु ! तुम श्रद्धा .... चुभ गया शूल।

शब्दार्थ – आत्मविश्वासमयी = आत्मप्रेरणा में विश्वास रखनेवाली और तदनुकूल आचरण करनेवाली। तूल समझ उड़ा दिया = रूई के समान तुच्छ समझकर उपेक्षा की। असत विश्व = नाशवान संसार । जीवन धागे में रहा झूल = जीवन कच्चे धागे में झूल रहा है जो शीघ्र ही एक झटके में नष्ट हो जानेवाला है। वास्तव = यथार्थ, सार्थक। स्वर्ग = जीवन का अभीष्ट आनन्द। उलटी मति = विपरीत बुद्धि। पुरुषत्व मोह = मनुष्यता का अहंकार । सत्ता = अस्तित्व । समरसता = सामरस्य, समान भाव या समानता। तीखी = तीव्र तीक्ष्ण। अकूल = असीम, अत्यन्त। चुभ गया शूल = काँटा लग गया अर्थात् हृदय में कसक पैदा हो गई।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – जिस समय मनु सारस्वत प्रदेश के खंडहरों में पड़े हुए अपने जीवन के विषय में सोच–विचार कर रहे थे, उसी समय उन्हें काम की शापध्वनि सुनाई दी।

व्याख्या – काम बोला – "अरे मनु ! आज तुम श्रद्धा को बिल्कुल भूल गये। वह श्रद्धा तो सदैव अपनी आत्मा से प्रेरणा लेकर तदनुकूल कार्य किया करती थी, परन्तु तुम पूर्णरूप से आत्मा में विश्वास रखनेवाली उस तपस्विनी नारी को सदैव रूई की भाँति फूँक से उड़ाते हुए उसके विचारों को तुच्छ समझकर उसकी उपेक्षा किया करते थे। तुम तो इस संसार को सदैव नाशवान समझते थे और तुम्हें यह विश्वास हो गया था कि इस क्षणिक संसार की भाँति मानव–जीवन भी क्षणिक है, क्योंकि यह कच्चे धागे में झूलनेवाली किसी वस्तु के समान शीघ्र ही टूटकर नष्ट हो जानेवाला है। इस क्षणभंगुरता के विचार ने तुम्हारे हृदय में यह भावना पैदा कर दी थी कि सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने में जो क्षण बीतते हैं, वे ही सार्थक हैं और वही यथार्थ जीवन है। मिथ्या ज्ञान के कारण ही तुम अहंकार एवं मोह में लीन हो गये और यह भूल गये कि संसार में नारी का भी कुछ अस्तित्व है। तुम यह भी भूल गए कि शासित या अधिकृत वस्तु (नारी) तथा शासक या अधिकारी इन दोनों में परस्पर समरसता या समानता का सम्बन्ध है। पुरुष की यह भूल है कि वह अधिकृत तथा अधिकारी शासित तथा शासक और सेवक तथा स्वामी की भाँति पत्नी तथा पति में भी ऊँच–नीच का भेदभाव मानता है।" यह सुनते ही मनु के हृदय में ऐसी कसक उत्पन्न हुई जैसी कि पैर में काँटे के चुभ जाने पर हुआ करती है।

टिप्पणी – काम के शाप के माध्यम से मनु को उनके कर्त्तव्यों की याद दिलाई गई है।

"यह कौन ? .... मैं पूर्ण काम ?"

शब्दार्थ – विराम = विश्राम, शान्ति। अतीत = बीता हुआ समय। गत युग का वरदान = अतीत का सुखमय जीवन। अन्तरंग = अन्तःकरण। अभिशाप ताप = भयंकर क्लेष और पीड़ा। अंग = शरीर । भ्रान्त–साधना = मिथ्या कार्य। सस्नेह = प्रेमपूर्वक। अमृत धाम = मधुर भावनाओं का स्थान। पूर्ण काम सन्तुष्ट।

संदर्भ – पूर्ववत्।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – सारस्वत प्रदेश के खण्डहर में काम की वाणी को सुनकर मनु बोले –

व्याख्या – अरे यह अचानक ही कौन बोल उठा ? जान पड़ता है कि फिर वही कामदेव आया है, जिसने पहले स्वप्न में मुझे लालायित करके श्रद्धा को अपनाने का आग्रह किया था और इस चक्कर में डालकर मेरे जीवन के सम्पूर्ण सुख और आनन्द छीन लिये थे। आज पुनः इसकी तीक्ष्ण वाणी को सुनकर अतीतकाल की वे सभी घटनाएँ एक–एक करके मेरी आँखों के सामने आने लगी हैं, जिन्हें मैं बिल्कुल भूल चुका था और जिनका नाम मात्र ही शेष रह गया था। आज अतीत का वह सुखमय जीवन मेरे अन्तःकरण में हलचल उत्पन्न कर रहा है और उसे याद करके मेरा शरीर तथा मेरा मन दोनों भयंकर क्लेश ओर पीड़ा की आग से जल रहे हैं। इतना सोचने के उपरान्त मनु कामदेव से बोले– ''अरे, मुझे यह तो बताओ कि अब तक जो कुछ कार्य मैंने किया क्या वह सब भ्रान्तिपूर्ण था ? क्या तुमने बड़े प्रेमपूर्वक श्रद्धा को प्राप्त करने के लिए उस दिन स्वप्न में नहीं कहा था। मैंने तुम्हारा आग्रह स्वीकार करके ही श्रद्धा को प्राप्त करने की चेष्टा की और उस श्रद्धा ने भी मधुर भावनाओं से भरा हुआ अपना हृदय मुझे अर्पण कर दया। फिर यह तो बताओ कि इतने पर भी मुझे पूर्ण संतुष्टि क्यों नहीं मिली ?

टिप्पणी – भटकाव और अतृप्ति मानवीय दुर्बलताएं हैं, जो व्यक्ति को चैन से नहीं रहने देतीं।

वह प्रेम न .... झूले हार जीत।

शब्दार्थ – पुनीत = पवित्र । आवृत = ढका हुआ । मंगल रहस्य = छिपी हुई कल्याण की भावना। संसृति = सृष्टि,सारी प्रजा। करुण गीत = दुःख भरे गाने। आकांक्षा–जलनिधि = अभिलाषा रूपी समुद्र। रत = लीन, डूबी हुई। राग–विराग – प्रेम और द्वेष । कर शतशः विभक्त = सैंकड़ों में बाँटकर । सद्भाव = मेल, अच्छे भाव। सुन्दर सपना हो = फिर न प्राप्त हो सके।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – सारस्वत प्रदेश के खंडहरों में जब मनु निराश वातावरण में चिंतन कर रहे होते हैं तब अचानक काम प्रकट होकर मनु को शाप देते हैं। मनु अपने जीवन की इस दशा का कारण 'काम' को ही ठहराते हैं।

व्याख्या – मनु को शाप देता हुआ काम कहने लगा – हे मनु ! तुम्हारी प्रजा के हृदय में वह पवित्र प्रेम नहीं रहेगा। सभी व्यक्ति अपने–अपने स्वार्थों में लीन होकर परस्पर प्रेम करेंगे, जिससे प्रेम में जो कल्याण की भावना छिपी हुई है वह संकुचित हो जायेगी और पारस्परिक प्रेम दिखाते हुए भी सभी व्यक्ति भयभीत दिखाई देंगे। तुम्हारी सारी मानव – सृष्टि सदैव वियोग से भरी हुई दिखाई देगी और उसका जीवन सदैव दुःख से भरे हुए गीत गाने में ही व्यतीत होगा। इतना ही नहीं तुम्हारी उस प्रजा के हृदय में विद्यमान अभिलाषाओं की कोई सीमा न रहेगी और जिस तरह अनन्त समुद्र की सीमा क्षितिज तक दिखाई देती है किन्तु उसका कोई आर–पार नहीं दिखाई देता, उसी तरह प्रजा की इच्छाएँ भी अनन्त एवं असीम हो जायेंगी। वह प्रजा अपनी अनन्त अभिलाषाओं के कारण सदैव निराशा में डूबी रहेगी। उस समय तुम और तुम्हारे सभी मानव अपने सैंकड़ों सम्बन्ध स्थापित करके किसी से प्रेम और किसी से द्वेष करने लगेंगे, क्योंकि पारस्परिक प्रेम नष्ट हो जायेगा। यहाँ तक कि मानव की बुद्धि और उसका हृदय ये दोनों भी परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध हो जायेंगे दोनों में तनिक भी मेल नहीं रहेगा और जिस समय बुद्धि हृदय को कुछ कार्य करने के लिए कहेगी, उस समय हृदय उसका विरोध करके उससे क्षुब्ध होकर कुछ और ही करने का विचार करने लगेगा। उस समय वर्तमान जीवन का प्रत्येक क्षण सदैव रोते–रोते ही व्यतीत होगा और अतीत काल का वह आनन्दमय जीवन एक सुन्दर स्वप्न बन जायेगा, जो फिर कभी प्राप्त न हो सकेगा तथा मानव सदैव सफलता एवं असफलता के झूले में झूलता हुआ अपना जीवन व्यतीत करेगा।

जीवन सारा बन .... हो अशुद्ध।

शब्दार्थ – रक्त = युद्ध में बहने वाला खून। अग्नि की वर्षा = बन्दूक या तोप से बरसानेवाली आग। शुद्ध भाव = परोपकार, सेवा, त्याग आदि के पवित्र भाव। आवृत किए रहो = छिपाये रहो। कृत्रिम स्वरूप = बनावटी रूप। वसुधा = पृथ्वी। उन्नत = ऊँचा। दम्भ स्तूप = अहकार का ऊँचा टीला। संसृति = संसार । नवनिधि = हृदय की सात्विक भावनाएँ (लक्षणा)। छली गई = विश्वासघात किया गया। वंचित = ठगे गये । प्रपंच = संसार और उसके आडम्बर।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – मनु को शाप देता हुआ काम कहने लगा – हे

व्याख्या – मनु ! तुम्हारा सारा जीवन एक युद्ध बन जायेगा और उस युद्ध में बहनेवाले खून तथा बन्दूक, तोप आदि से होनेवाली आग की वर्षा में तुम्हारे हृदय में रहने वाले परोपकार, सेवा, त्याग आदि के सम्पूर्ण पवित्र भाव बह जायेंगे

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तुम्हारे हृदय में यहाँ तक संदेह बढ़ जायेगा कि तुम अपनी शंकाओं से व्याकुल होकर अपनी आत्मा के विरुद्ध कार्य करने लगोगे और अपने वास्तविक रूप को छिपाकर तुम सदैव दूसरों को अपना आडम्बरपूर्ण स्वप्न ही दिखाओगे। उस समय तुम्हारे हृदय में दम्भ भी अधिक मात्रा में भर जायेगा और अपने उस दंभ एवं अहंकार से उन्नत होकर इस पृथ्वी पर चलते हुए तुम ऐसे जान पड़ोगे जैसे इस समतल पृथ्वी पर कोई दम्भ का ऊँचा टीला चलता – फिरता दिखाई देता है। अरे मनु ! अगाध विश्वास एवं व्यापक पवित्रता से भरे हुए हृदयवाली श्रद्धा का रहस्य है, क्योंकि मानव सृष्टि का विकास उसकी उन पवित्र भावनाओं के द्वारा ही संभव है, तुम्हारे जैसे संकुचित विचारों से सम्भव नहीं। उस पवित्र नारी ने तो अपने हृदय की समस्त सात्विक भावनाओं को तुम्हें अर्पण कर दिया था, परन्तु तुमने उसके साथ विश्वासघात किया, क्योंकि तुम सृष्टि का विकास करने के लिए उसके सात्विक एवं पवित्र विचारों को अपना न सके। इसी कारण आज तुम अपने वर्तमान जीवन से वंचित होकर भविष्य की आशा में अटक रहे हो। परन्तु याद रखो, श्रद्धा–विहीन होने के कारण तुम्हें भविष्य में प्राप्त होनेवाला सम्पूर्ण संसार और उसके सभी आडम्बर अपवित्र ही मिलेंगे और कहीं भी तुम्हें पवित्रता एवं विशुद्धता के दर्शन न होंगे।

तुम जरा मरण .... रहे सदेव श्रान्त।

शब्दार्थ – अशान्त = व्याकुल। अनन्त = असीम । अमरत्व = अमरता। चिन्तन = मनन। श्रद्धावंचक = श्रद्धा को छलनेवाले। मानव संतति = मानव सृष्टि । ग्रह – रश्मि– रज्जु = नक्षत्रों की किरण रूपी रस्सी। पीटे लकीर = अंधानुसरण करना। अतिचारी = स्वेच्छाचारी। परलोक वंचना = परलोक में प्राप्त होनेवाले सुख का मिथ्या विश्वास। बुद्धि – विभव = बौद्धिक उन्नति।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – मनु को शाप देते हुए काम ने अन्त में मनु से कहा –

व्याख्या – हे मनु ! देव होकर भी अब तुम सदैव वृद्धावस्था और मृत्यु के भय से बेचैन बने रहोगे। अब तुम इस विचार को भूल जाओगे कि जीवन में होनेवाले अनन्त परिवर्तनों का नाम ही अमरता है, किन्तु तुम जीवन से घबड़ाकर अमरता की परिभाषा इस तरह करने लगोगे कि जीवन का अन्त होना ही अमरता कहलाता है, क्योंकि जीवन का अन्त होते ही मानव संसार के संकटों से छूट जाता है। हे मनु ! तुम्हरा स्वभाव पहले ही मननशील था, किन्तु अब आगे चलकर तुम दुःख से भरे हुए सतत् चिन्तन की मूर्ति बन जाओगे और विश्वासमयी नारी श्रद्धा को छलने के कारण सदैव बेचैन बने रहोगे। हे मनु ! एक श्रद्धालु व्यक्ति ही इस रहस्य को जानता है कि "संसार कल्याण भूमि है" अर्थात् इसी पृथ्वी पर मानव को कल्याण की प्राप्ति होती है, परन्तु तुम्हारी प्रजा श्रद्धा – विहीन होगी। इसलिए संसार के इस रहस्य को वह कदापि नहीं जान सकेगी। तुम्हारी सम्पूर्ण प्रजा सदैव निराश बनी रहेगी और उसकी कोई भी आशा पूर्ण न होगी। वह बौद्धिक उन्नति तो पर्याप्त मात्रा में करेगी; परन्तु बुद्धि का पर्याप्त विकास होने पर भी वह सदैव भटकती रहेगी, उसे कभी शान्ति की प्राप्ति न होगी और वह थककर भी सदैव अपने मार्ग पर आगे बढ़ती रहेगी।

प्राची में फैला .... तन विराग।

शब्दार्थ – प्राची = पूर्व दिशा। राग = अरुणिमा, लालिमा । कमल = सूर्य (लक्षणा) । पराग = पीला प्रकाश (लक्षणा)। परिमल = सुगन्ध, किन्तु लक्षणा से इसका अर्थ है किरणें। व्याकुल हो = सचेत होकर, जाग्रत होकर। श्यामल कलरव = हरी–भरी डालों पर पक्षियों की सोई हुई मधुर ध्वनि । आन्दोलन = हलचल। मरन्द = मकरन्द, पुष्प–रस = रम्य फलक = सुन्दर चित्रपट। नयन महोत्सव का प्रतीक = नयनों को अत्यन्त सुन्दर लगनेवाले किसी महान् उत्सव की प्रतिभूति । अम्लान नलिन = विकसित कमल। सुषमा का मण्डल = सौन्दर्य पूर्ण मुख । सुस्मित =सुन्दर मुस्कान से युक्त ।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – सारस्वत प्रदेश में मनु को प्रभात का दृश्य बहुत मनोरम दिखाई देता है। उस दृश्य का वर्णन करते हुए कवि का कथन है–

व्याख्या – प्रभात होते ही पूर्व दिशा में मधुर लालिमा फैल गई और उस लालिमा के घेरे में से सहसा सुनहली आभा से परिपूर्ण सूर्योदय हुआ, जिसे देखकर ऐसा जान पड़ता था मानों सुनहले पराग से भरा हुआ एक अरुण कमल पूर्व दिशा में खिल उठा हो। सूर्य की किरणों से सचेत होकर हरी–भरी डालों पर सोये हुए पक्षी भी मधुर वाणी में कलरव करने लगे, जिन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था मानों पूर्व दिशा में खिले हुए कमल की मधुर गन्ध से आन्दोलित होकर सभी पक्षी उस कमल का गुणगान गाते हुए जाग उठे हों। उषा की अरुणिमा से भरे हुए प्रभात का समय ऐसा

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University Ladnun

जान पड़ता था मानो आलोक की किरणों से बुना हुआ उषा का अँचल हो। उसी सुरम्य वातावरण में प्रभात की शीतल वायु सर्वत्र फूलों की मधुर गन्ध का वितरण करने के लिए तीव्रगति से हलचल मचा रही थी। पूर्व दिशा में उसी रमणीक चित्रपट पर सहसा नवीन चित्र के समान एक सुन्दर युवती अवतीर्ण हुई, जो नेत्रों को अत्यधिक सुन्दर लगनेवाले किसी महान् उत्सव की प्रतिमूर्ति जान पड़ती थी और अपने खिले हुए कमल के फूलों की नवीन माला के तुल्य ज्ञात होती थी। उसके अतुलित सौन्दर्य से सुशोभित मुखमण्डल पर सुन्दर मुस्कान छाई हुई थी और वह मुस्कान से भरा हुआ मुख सारे संसार में मधुर प्रेम की वर्षा कर रहा था। जिस तरह प्रभातकालीन आलोक में जगती का सम्पूर्ण अन्धकार तिरोहित हो जाता है, उसी तरह उस सुन्दर बाला के अवतीर्ण होते ही (मनु के) जीवन की सम्पूर्ण वैराग्य भावना भी तिरोहित हो गई।

इस विश्व कुहर में .... है दिया डाल।

शब्दार्थ – विश्व = आकाश के नीचे फैला हुआ संसार रूपी छिद्र अथवा अन्तरिक्ष । इन्द्रजाल = जादू–टोना। नखत माल = नक्षत्रों का समूह । महाकाल = ईश्वर, शिव। सृष्टि = सृजन–कार्य, निर्माण – कार्य। अधिपति = स्वामी । सुख – नीड़ = सुख का घोंसला।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – जीवन जगत का वास्तविक चित्रण करते हुए मनु कहते हैं–

व्याख्या – जिस परम शिव ने अन्तरिक्ष में अपना जादू फैलाकर बड़े–बड़े ग्रह, तारागण, बिजली तथा नक्षत्र – समूह की रचना की है, वही महाकाल का रूप धारण करके समुद्र की अत्यन्त भयंकर लहरों के समान सदैव इस विश्व में क्रीड़ा करता रहता है। तब फिर क्या उस निष्ठुर ने इस संसार का निर्माण इसीलिए किया है कि वह पृथ्वी के छोटे से छोटे प्राणी को भी डराता रहे ? क्या उसकी इस कठोर रचना में सदैव विनाश की ही विजय होती रहेगी ? जब इस संसार की समस्त वस्तुएँ नष्ट होने के लिए ही हैं, तब फिर मूर्ख मानव आज तक इसे सृजन – कार्य क्यों समझता चला आ रहा है ? मैं कैसे मानूँ कि इस संसार का कोई स्वामी भी है ? यदि कोई स्वामी होता, तो यहाँ के दीन – दुखियों की कातर ध्वनि सुनकर वह अवश्य पसीजता, परन्तु उसके कानों तक कोई भी दुःखभरी आवाज नहीं पहुँचती इसलिए कैसे कहें कि जगत् का कोई स्वामी है ? अरे, वह कोई होगा ! यहाँ तो निरन्तर शोक का समूह सुख के नीड़ों को घेरे रहता है अर्थात् कोई भी घर शोक रहित नहीं दिखाई देता और किसी घर में सुख का निवास नहीं है। नजाने किसने सम्पूर्ण विश्व पर ऐसा पर्दा डाल दिया है कि सारा संसार अपने वास्तविक रूप को देख नहीं पाता और निरन्तर दुःखों में लीन रहता है।

विशेष – (1) मनु के माध्यम से जीवन – जगत् का वास्तविक चित्रण हुआ है।

(2) उनकी मानवीय संवेदना भी यहां प्रकट हुई है।

11.10 सारांश

छायावादी काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि जयशंकर प्रसाद की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे एक साथ विविध विधाओं में काव्य–रचना करने में समर्थ थे। प्रस्तुत इकाई में प्रसाद तथा उनकी रचनाओं, विशेषकर 'कामायनी', के आलोक में उनका मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया गया है। इस इकाई में किए गए अध्ययन को संक्षेप में निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है –

- जयशंकर प्रसाद आधुनिक हिंदी कविता में छायावादी काव्य में प्रवर्तक कवि के रूप में ख्यात हैं।
- ब्रजभाषा से आरंभकर खड़ीबोली को उच्चतम स्तर पर पहुंचाने और प्रतिष्ठित करने का कार्य प्रसाद जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से किया।
- 'कामायनी' के रूप में प्रसाद ने आधुनिक हिंदी कविता को एक सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य दिया है।
- कामायनी इतनी लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध रचना प्रमाणित हुई कि इसे छायावाद का उपनिषद् तक कहा जाने लगा।
- श्रद्धा–मनु के माध्यम से मनुष्य जीवन का सम्पूर्ण सारतत्व प्रसाद ने 'कामायनी' में प्रस्तुत कर दिया है।
- 'कामायनी' में छायावादी काव्य की समस्त प्रवृत्तियां बहुत उच्च्य स्तरीय रूप में विद्यमान हैं।
- कामायनी का दर्शन, उसका रूपकत्व एवं उसकी प्रतीकात्मकता उसे उच्चकोटि का काव्यग्रंथ प्रमाणित करती है।
- उच्च स्तरीय काव्यत्व की दृष्टि से 'कामायनी' के श्रद्धा, काम, लज्जा और इड़ा सर्ग विशेष उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं, जिनमें लज्जा और इड़ा सर्ग काव्यकला की दृष्टि से विश्वस्तरीय मानदंड सुनिश्चित करने में समर्थ हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- वस्तुतः 'कामायनी' प्रसाद की काव्यप्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन होकर उनके काव्यत्व की प्रतीक रचना कही जा सकती है।

11.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. नया साहित्य – नए प्रश्न – आचार्य नंददुलारे वाजपेयी।
2. हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी – आचार्य नंददुलारे वाजपेयी।
3. छायावाद – नामवरसिंह।
4. प्रसाद, निराला और पंत, अधुनातन आकलन – रामप्रसाद मिश्र।
5. आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियां – नामवरसिंह

11.12 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. प्रसाद का परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का विस्तार से परिचय दीजिए।
2. प्रसाद की काव्यगत विशेषताओं को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
3. प्रसाद के काव्यसौष्ठव पर एक निबंध लिखिए।
4. प्रसाद के काव्य में छायावादी विशेषताओं का उदाहरण सहित उल्लेख कीजिए।
5. 'कामायनी' प्रसाद की प्रतिनिधि रचना है, सिद्ध कीजिए।
6. कामायनी के भावविधान को स्पष्ट कीजिए।
7. कामायनी के शिल्पविधान की समीक्षा कीजिए।
8. कामायनी की रस योजना पर एक लेख लिखिए।
9. मनु का चरित्र चित्रण कीजिए।
10. श्रद्धा का चरित्र चित्रण कीजिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. प्रसाद की महत्त्वपूर्ण रचनाओं का परिचय दीजिए।
2. 'कामायनी' का संक्षेप में परिचय दीजिए।
3. श्रद्धा सर्ग का परिचय दीजिए।
4. श्रद्धा सर्ग का महत्त्व बतलाइए।
5. लज्जा सर्ग का परिचय दीजिए।
6. लज्जा सर्ग की समीक्षा कीजिए।
7. इड़ा सर्ग का परिचय दीजिए।
8. इड़ा सर्ग का महत्त्व समझाइए।

अतिलघूतरीय प्रश्न

1. जयशंकरप्रसाद की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना कौनसी है ?
2. छायावाद का उपनिषद किस रचना को कहा जाता है ?
3. कामायनी को छायावाद का उपनिषद नाम किसने दिया था ?
4. कामायनी का प्रथम सर्ग कौन सा है ?
5. कामायनी में कुल कितने सर्ग हैं ?
6. कामायनी में श्रद्धा किसका प्रतीक है ?
7. कामायनी में इड़ा किसका प्रतीक है ?
8. कामायनी का दर्शन क्या है ?
9. मनु किसका प्रतीक हैं ?
10. कामायनी का रचनाकाल क्या है ?
11. कामायनी किसका नाम है ?
12. कामायनी का अंतिम सर्ग कौनसा है ?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 12 सूर्यकान्तत्रिपाठी 'निराला'

संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 सूर्यकान्तत्रिपाठी 'निराला' : एक परिचय
12.3 सूर्यकान्तत्रिपाठी 'निराला' का काव्य सौष्ठव
- 12.3.1 छायावादी प्रवृत्ति
- 12.3.2 प्रगतिवादी प्रवृत्ति
- 12.3.3 रहस्यवादी प्रगति
- 12.3.4 सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण
- 12.3.5 प्रकृति चित्रण
- 12.3.6 राष्ट्र प्रेम की भावना
- 12.3.7 निराशावाद की प्रचुरता
- 12.3.8 मानवतावादी दृष्टिकोण
- 12.3.9 रसनिरूपण
- 12.3.10 भाषा
- 12.3.11 अलंकार विधान
- 12.3.12 प्रतीक योजना
- 12.3.13 छन्द योजना
- 12.3.14 स्वच्छंद छंदवाली कवितायें

12.4 राम की शक्तिपूजा का काव्य सौन्दर्य
- 12.4.1 कथावस्तु की नवीनता
- 12.4.2 सुगठित कथानक
- 12.4.3 प्रतीकात्मकता
- 12.4.4 विशिष्ट भाव चित्रण
- 12.4.5 सफलतम रसयोजना
- 12.4.6 महाकाव्यात्मक कविता
- 12.4.7 शब्दावली संबंधी नवीनता
- 12.4.8 नवीन छन्द योजना
- 12.4.9 ध्वन्यर्थ व्यंजना की पराकाष्ठा
- 12.4.10 नाद सौन्दर्य

12.5 व्याख्या खंड
12.6 सारांश
12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
12.8 अभ्यास प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

"वह कवि अपराजेय निराला
जिसको मिला गरल का प्याला
ढहा और तन टूट चुका है
पर जिसका माथा न झुका है
शिथिल त्वचा दलदल है छाती
लेकिन अभी संभाले थाती

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और उठाए विजय पताका
यह कवि है अपनी जनता का''   – डॉ. रामविलास शर्मा

छायावाद के सशक्त वाहक– उन्नायक, प्रगतिवाद के उद्घाटनकर्त्ता, प्रयोगवादी कविता के शिल्प आदि के प्रणेता, सरोज स्वमृति जैसी आत्मपरक करुण कविता के प्रस्तोता, 'राम की शक्ति पूजा' जैसी अमर महाकविता के सर्जक, भिक्षुक, दीन, विधवा, 'वह तोड़ती पत्थर' जैसी यथार्थपरक कविताओं के रचयिता सूर्यकांतत्रिपाठी 'निराला' हिंदी साहित्य के ही नहीं, भारतीय साहित्य के ही नहीं, विश्व साहित्य के कतिपय गिने चुने कवियों में गणनीय एवं उल्लेखनीय कवि हैं।

'निराला' का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व दोनों इतने विलक्षण और महान् हैं कि आधुनिक हिंदी काव्य में निराला के परवर्ती कमोबेश सभी कवि किसी न किसी रूप में उनसे प्रभावित हैं। चाहे छायावादी पंत हो, या प्रगतिवादी मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, गिरिजा कुमार माथुर हों, चाहे प्रयोगवादी अज्ञेय हों, या प्रखराष्ट्रवादी – सांस्कृतिक चेतनावादी दिनकर हों, कहीं न कहीं निराला से प्रभावित प्रेरित हैं। निराला की मौलिकता एवं उनकी काव्यदृष्टि से प्रेरणा ग्रहण करनेवाले अनेक कवि एवं साहित्यकार मिल जाएंगे। किसी बंधन, परिधि या परंपरा में नहीं बंधनेवाले निराला ने काव्य में परंपरागत छंदों के बंधन को तोड़कर 'मुक्तछंद' का जो रास्ता दिखाया, उस पर कौन चलने को आतुर नहीं।

निराला की उसी मौलिक प्रतिभा एवं बंधन मुक्तता से सर्जित उनकी महाकविता 'राम की शक्तिपूजा' है, जो आधुनिक हिन्दी काव्य में 'लंबी कविताओं', की भूमिका प्रस्तुत करने के कारण विशेष चर्चित और उल्लेखनीय तो है ही, अपनी विविध विशेषताओं के कारण वह आधुनिक हिंदी काव्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। संभवतः यहीं कारण है कि 'राम की शक्ति पूजा' हिंदी साहित्य में 'महाकविता', 'सम्पूर्ण कविता', संश्लिष्ट कविता, आदि विशेषणों से अभिहित की जाती है। अपनी विशेषताओं के कारण यह कविता प्रत्येक प्रबुद्ध पाठक का ध्यान अपनी और आकृष्ट करती है।

12.1 उद्देश्य

यह इकाई छायावाद के सर्वाधिक ओजस्वी, मौलिक एवं प्रखर प्रतिभासम्पन्न कवि सूर्यकांतत्रिपाठी 'निराला' के विवेचन – विश्लेषण से संबंधित है। इकाई का उद्देश्य निराला की युगांतरकारी रचना 'राम की शक्ति पूजा' के परिप्रेक्ष्य में 'निराला' के काव्य व्यक्तित्व का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- छायावादी कवियों में 'निराला' के स्थान और महत्त्व से भलीभांति परिचित हो सकेंगे।
- 'निराला' के व्यक्तित्व एवं उनकी रचनाओं से अभिज्ञ हो जाएंगे।
- 'निराला' काव्य के परिप्रेक्ष्य में उनकी काव्यगत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- 'निराला' की सबसे ओजस्वी रचना 'राम की शक्ति पूजा' के काव्य–सौंदर्य से पूरी तरह परिचित हो जाएंगे।
- 'राम की शक्ति पूजा' के प्रमुख स्थलों की व्याख्या से भी अभिज्ञ हो जाएंगे।
- निराला काव्य के प्रामाणिक आकलन कर पाने में सक्षम हो जाएंगे।

12.2 सूर्यकान्तत्रिपाठी 'निराला' : एक परिचय

छायावाद के प्रमुख स्तम्भों – प्रसाद 'निराला', पंत एवं महादेवी में 'निराला' का प्रमुख स्थान है। द्विवेदी कालीन इतिवृत्तात्मक और नीरस काव्यधारा छायावाद में आकर पुनः सरस, ओजस्विनी व प्रवाहपूर्ण हो गयी। इसने कविता के क्षेत्र में युगान्तरकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिया। छायावादी समस्त कवियों ने अपने मौलिक योगदान से कविता का श्रृंगार किया। इन सभी कवियों में निराला का अपना निजी स्वरूप और भी महत्त्वपूर्ण है। विद्रोह और पौरुष का इतना ओजस्वी घोष हिन्दी में युगों की उपलब्धि है, जिस पर आनेवाली पीढ़ियां गौरव कर सकेंगी। व्यापक संवेदना के कवि निराला के वेदान्तिक, अद्वैतवादी, पौरुष, विद्रोही व्यक्तित्व ने स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा को भी एक नई दृष्टि दी है। जहां तक निराला के काव्य का सम्बन्ध है, वह एक ऐसी ऐतिहासिक उपलब्धि है, जो हिन्दी कविता में प्रकाश स्तम्भ का कार्य करती है।

ऐसे महान् कवि, दार्शनिक व साहित्यकार का जन्म बंगाल प्रान्त के महिषादल राज्य में हुआ। निराला का बचपन माँ स्नेह से वंचित ही रहा। निराला का अध्ययन कार्य बंगला भाषा में 'महिषादल' राज्य के हाई स्कूल में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हुआ। निराला प्रारम्भ से ही अभिनय में रुचि रखते थे। बड़े होने पर उन्हें क्लर्क की नौकरी मिली। वहीं पर स्थित एक मंदिर में इन्होंने पूजा कार्य शुरू किया। इनका हृदय धार्मिक व आध्यात्मिक भावनाओं से पूर्ण हो गया था।

निराला का जीवन असाधारण व उच्च कोटि का था। उनके व्यक्तित्व के कई ऐसे पहलू हैं जो उन्हें जनसाधारण से पृथक कर देते हैं। यही कारण है कि 'निराला अभिनन्दन ग्रन्थ' में अनेक कवियों ने निराला के व्यक्तित्व व स्वभाव इत्यादि पर प्रकाश डाला। जनमत को देखकर भी निराला की श्रेष्ठता का अनुमान लगाया जा सकता है। महिला कवियों में महादेवी वर्मा की निराला के प्रति बहुत आस्था थी। एक बार उन्होंने अपने काव्य में कहा था – ''यह तो कलकत्ता जाने भर की बात है, यदि कोई मुझसे कहे कि नरक जाकर निराला जी के लिये रुपया लाना है तो मैं वहाँ भी जाऊं।''

इसी प्रकार से भारत कोकिला सरोजनी नायडू के शब्द भी द्रष्टव्य हैं– ''मुझे वह यूनानी दार्शनिक से लगते हैं। यदि वह राजनीति में प्रवेश करते तो चुम्बक की भाँति जनता को खींच लिया करते और आज के जगविख्यात नेताओं में भी अधिक प्रख्यात होते।'' वास्तव में निराला के जीवन में ऐसे विस्मरणीय तत्व हैं कि वह पाठक को बरबस ही आकृष्ट कर लेते हैं। निराला का व्यक्तित्व भी महान् था। वह लम्बे चौड़े कद के थे। उनका जीवन संघर्षों से गुजरा। अतः उनमें कोमलता उदारता व स्पष्टवादिता, ओज व माधुर्य, सुकुमारता व पौरूष आदि का अद्भुत सम्मिलन था। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के होने के कारण वह स्पष्टवादी भी थे।

निराला की रचनायें – उनका व्यक्तित्व विराट होने के साथ–साथ उनका कृतित्व भी महान् है। अतः न केवल काव्य जगत में वरन् सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं में उन्होंने रचनायें की हैं। उनका मौलिक चिन्तन, उनकी कला व उनके भाव सभी कुछ नये हैं, उनमें पुरानापन व बासीपन नहीं है। उपन्यास, कहानी, निबन्ध इत्यादि संग्रहों के अतिरिक्त उनके काव्य संग्रह भी काफी हैं।

उपन्यास – अप्सरा, निरुपमा, अलका, प्रभावती, उच्छृंखल, चोरी की पकड़, कालेकारनामे और अनामिका आदि।

कहानी – लिली, सखी, चतुरी चमार, सुकुल की बीबी आदि।

रेखाचित्र – कुल्लीभाट, बिल्लेसुर बकरीहा आदि।

निबन्ध संग्रह – प्रबन्ध पद्य, प्रबन्ध प्रतिमा, प्रबंध परिचय, कवि कानन इत्यादि।

जीवन चरित – राणा प्रताप, भीम, प्रहलाद, ध्रुव, शकुन्तला आदि।

अनुदित ग्रन्थ – महाभारत, श्रीरामकृष्ण रसनामृत, स्वामी विवेकानन्द जी के भाषण, देवी चौधरानी, आनन्दमठ, दुर्गेशनन्दिनी, युगलांगुलीय, वात्स्यायन कामसूत्र, तुलसीरामायाण की टीका, गोविन्ददास पदावली (पद्य में) इत्यादि।

काव्य संग्रह – अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, बेला, अणिमा, अपरा और नये पत्ते आदि।

निराला जी भारतीय संस्कृति के विश्वासी थे। उनमें देश प्रेम की भावना कूट–कूट कर भरी थी। वह समाज से अनावश्यक तत्वों को निकालने के क्रम में वे क्रांति के लिये भी तत्पर थे। निराला जी में इतिहास, धर्म, परमात्मा एवं प्रकृति के प्रति भी अटूट प्रेम था। अतः इन सभी विषयों पर निराला जी ने साहित्यिक रचनायें कीं। निराला वास्तव में विराटता के कवि थे। उनकी भाषा हो, चाहे शैली, विषय हो या व्यक्तित्व सभी में यह गुण विद्यमान है। कवि निराला पर चूंकि रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द जैसे दार्शनिकों व चिन्तकों का प्रभाव पड़ा था। अतः उन्होंने भी उपनिषदवाद, अद्वैतवाद इत्यादि विषयों पर गहन चिन्तन किया। निराला ने जिस श्रृंगार का चित्रण किया, वह भी अत्यन्त सूक्ष्म व विराट है। निराला का विषय व काव्य रस अनोखा है। हर प्रकार की सामग्री उसमें मिल सकती है। इसी समन्वयात्मक प्रवृत्ति के कारण ही निराला को इतनी प्रसिद्धि मिल सकी है। जड़ चेतन के मूल सम्बंध को जानने की उत्कृट इच्छा, परमात्मा सत्ता के प्रति जिज्ञासा, कठोर वैयक्तिक साधना और आत्मचिन्तन निराला में बीज रूप में वर्तमान थे। इस आध्यात्मिकता का समुचित विकास होता तो सचमुच उनकी परिणति संत में ही होती।

निराला की प्रतिभा चूँकि प्राचीनता का बन्धन स्वीकार नहीं करती थी, इसीलिये उनका भावपक्ष व कलापक्ष नवीन है। उनकी भाषा में भी नवीनता व मौलिकता है। निराला चूँकि संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी व उर्दू के निपुण कलाकार थे। अतः उनकी भाषा खड़ीबोली होने के साथ–साथ संस्कृतनिष्ठ है। उसमें क्लिष्ट शब्दों की बहुलता है। सामासिक शब्दों के होने के कारण भाषा कई स्थानों पर क्लिष्ट है। उन्होंने आवश्यकतानुसार उर्दू, फारसी व अंग्रेजी शब्दों को भी ग्रहण किया है, जिससे भावों के प्रस्तुतीकरण में सरलता है। वस्तुतः निराला की भाषा पर निराला के व्यक्तित्व की पूर्ण छाप है। उनके काव्य में हृदय की सहृदयता के साथ–साथ मस्तिष्क की गुरुता भी व्यक्त है। फिर भी निराला की भाषा बिल्कुल अपने विषय के अनुकूल ही है।

छन्दों के क्षेत्र में निराला ने अनोखा चमत्कार दिखाया है। उन्होंने तुकान्त व अतुकान्त, दोनों ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। वह मुक्त छंदों के विश्वासी थे। इसलिये कवि निराला ने मुक्तकों का उचित प्रयोग किया। मुक्त – छन्द की साधना के बाद गीतों में भी नये प्रयोग उन्होंने किये हैं। मुक्त छन्दों की साधना में भी लय और प्रवाह की रक्षा करते हुये उन्होंने उसे स्वच्छन्दता की उच्छृंखलता से बचाया है।

निराला ने अलंकारों का भी बहुत ही स्वाभाविक प्रयोग किया है। उनके अलंकारों में उपमा, अनुप्रास, श्लेष, उत्प्रेक्षा, रूपक इत्यादि उन्हें प्रिय हैं। आधुनिक अलंकारों में मानवीकरण प्रमुख है। छायावादी कवि होने के कारण निराला ने छायावाद की समस्त काव्यगत विशेषताओं को ग्रहण किया ही है।

निराला का व्यक्तित्व व कृतित्व दोनों ही उत्कृष्ट हैं। स्वच्छन्दतावादी युग की सम्पूर्ण कविता में जितना अर्थपूर्ण वैविध्य निराला में मिलता है, उतना कदाचित् कहीं नहीं है। उनका सम्पूर्ण काव्य एक अर्थ में पूरे युग के काव्य इतिहास का प्रतीक है। युग के समस्त मूल्यों को वह प्रस्तुत करता है। मुक्ति के साथ विस्तार और व्यापकत्व का आख्यान अप्रतिम है। उनकी व्यापकता स्वप्रेरित, स्वभावगत और आत्मपरक है। उनके प्रत्येक विकास के साथ व्यापकता की वृद्धि होती गई है। 'परिमल' में जहां 'जूही की कली' का उन्मुक्त प्रेम व्यापार है, वहीं तुम और मैं की दार्शनिकता भी है। 'बादल राग' और 'जागो फिर एक बार' का क्रांति घोष भी है, 'यमुना के प्रति' की सांस्कृतिक चेतना है; 'शिवाजी के पत्र' की राष्ट्रीयता भी, 'विधवा' व 'भिक्षुक' की प्रगतिशीलता भी।

निराला का कृर्तृत्व अमर है। उसमें भाव, भाषा, शैली अलंकार, रस व छन्दों का सौष्ठव है। विषय की विविधता है। बुद्धि व मस्तिक का सुन्दर सम्मिलन है। प्राचीनता व नवीनता, सांस्कृतिकता व आधुनिकता, राष्ट्रीयता व वैयक्तिक्ता, पूर्व व पश्चिम का अद्भुत संयोग है।

12.3 सूर्यकान्तत्रिपाठी 'निराला' का काव्य सौष्ठव

''हे कवि कुल गुरु ! हे महिमामय ! हे संन्यासी ! तुझे समझता है साधारण भारतवासी।

राज्यपाल या राज्यप्रमुख क्या समझें तुमको,
कुचल रही जिनकी संगीनें कुसुम–कुसुम को।
सुखमय, कृतज्ञ, समदृष्टि वह जनयुग जल्दी आ रहा,
इस मिट्टी का कण–कण सुनो गीत तुम्हारे गा रहा।'' – नागार्जुन

आधुनिक युग की स्वच्छन्द काव्य–धारा में निराला का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे युगान्तकारी कवि हैं; उन्होंने अपने काव्य में तत्कालीन मानव की पीड़ा को अभिव्यंजित किया; अन्याय और विषमता के प्रति विद्रोह का शंखनाद किया। निराला का व्यक्तित्व जितना विषम है, कर्तृत्व भी उतना ही वैविध्यपूर्ण और विषम है।

काव्यगत विशेषताएँ

निराला काव्य का भाव – पक्ष अत्यन्त समृद्ध एवं प्रौढ़ हैं। निराला ने स्वयं कहा है– ''मेरे पास कवि की वाणी है, कलाकार के हाथ, पहलवान की छाती और दार्शनिक के पैर हैं।'' उनके काव्य में भावों का वैविध्य पाया जाता है।

12.3.1 छायावादी प्रवृत्ति

छायावाद सौंदर्य और प्रेम का काव्य है। निराला को छायावाद का उन्नायक कवि माना जाता है, क्योंकि उनके काव्य में छायावाद का सौंदर्य एवं कलात्मक रूप मुखरित हुआ हैं। छायावाद की सभी विशेषताएँ निराला में मिलती हैं। छायावाद की रोमेंटिक भावुकता निराला की निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शनीय है–

''भर देते हो,
बार–बार – प्रिय, करुणा की किरणों से,
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो।
....
कुसुम–कपोलों पर वे लोल शिशिर – कण;
तुम किरणों से अश्रु पोछ देते हो,
नव प्रभात जीवन में भर देते हो।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.3.2 प्रगतिवादी प्रवृत्ति

प्रगतिवाद में निराला की वे विशेषताएँ आती हैं जिनमें उन्होंने पूँजीवाद का विरोध करके मजदूर एवं शोषित मनुष्यों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है। निराला का मन समाज की दुर्दशा देखकर बिलख उठता है। प्रगतिवादी भावना को लेकर लिखी गई उनकी कविताएँ 'वह तोड़ती पत्थर' तथा 'भिक्षुक' विशेष उल्लेखनीय हैं। भिक्षुक की दयनीय अवस्था का चित्र निराला ने इस प्रकार खीचा है–

''वह आता।
दो टूक कलेजे के करता
पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक।''

'कुकुरमुत्ता', 'बेला' और 'नये पत्ते' तीनों काव्य – कृतियाँ प्रगतिवादी कविता का सुन्दर उदाहरण है– 'कुकुरमुत्ता' में निराला ने व्यंग्यात्मक ढंग से पूंजीपतियों की घोर निन्दा की है–

''अबे, सुन बे गुलाब,
भूल मत गर पायी खुशबू, रंगों – आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।

12.3.3 रहस्यवादी प्रवृत्ति

गहन चिन्तन, गम्भीर अध्ययन ने निराला को रहस्यवादी कवि बना दिया। निराला के रहस्यवाद में बौद्धिकता के साथ कल्पना का प्रयोग देखने को मिलता है। उनका रहस्यवाद अद्वैतवाद है। 'तुम' और 'मैं' शीर्षक कविता में निराला का रहस्यवादी मन पुकार उठता है –

''तुम तुंग हिमालय श्रृंग
और मैं चंचल गति सुर सरिता।''

12.3.4 सौंदर्य और प्रेम का चित्रण

निराला सौंदर्य और प्रेम के कवि हैं। उनका भावुक मन सौंदर्य के सागर में डूबकर प्रेम के मधुर गीत गाता है। सौंदर्य निराला की प्रेरणा है, प्रेम उनकी उपासना है। इसीलिये उनके क्रांन्तिकारी व्यक्तित्व में पुनीत प्रेम की सरिता भी प्रवहमान है।

''कुछ न हुआ, न हो
मुझे विश्व का सुखश्री, यदि केवल
पास तुम रहो !
मेरे नभ के बादल यदि न कटे
चन्द्र रह गया ढका,
तिमिर रात को तिरकर यदि न अटे
पथ पर तुम
हाथ यदि गहो।''

12.3.5 प्रकृति चित्रण

निराला प्रकृति – प्रेमी थे। उन्होंने छायावादी शैली के अनुरूप अपने काव्य में प्रकृति का मानवीकरण किया है।

''अरे कौन तुम दमयन्ती–सी ?
इस तरु के नीचे सोई।
हाय! तुम्हें भी त्याग गया क्या।
अलि–नर–सा निष्ठुर कोई।''

निराला की सुप्रसिद्ध कविता 'बादल राग' प्रकृति – चित्रण की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण ळें

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.3.6 राष्ट्र–प्रेम की भावना

निराला के काव्य में हमें राष्ट्र–प्रेम के दर्शन होते हैं। 'जागो फिर एक बार' नामक कविता में निराला ने भारत की चिर प्रसुप्त शक्तियों को झकझोरा है जो परतन्त्रता की गहरी नींद में सोई पड़ी हैं। कवि ने राष्ट्र–प्रेम की पुनीत भावना से प्रेरित होकर भारत माता की वन्दना इस प्रकार की है –

''भारति, जय, विजय करे कनक शस्य कमल धरे।
लंकापदतल शतदल, गर्जितोर्मि सागर–जल,
धोता शुचि चरण युगल, स्तवन कर बहु अर्थ–भरे !''

12.3.7 निराशावाद की प्रचुरता

निराला का जीवन दुःखों की एक करुण कहानी है। इसीलिये उनके कर्तृत्व में निराशाद की गहरी अनुभूति विद्यमान है। कवि एकाकीपन से ऊबकर कहता है–

''मैं अकेला
देखता हूँ आ रही।
मेरे दिवस की सान्ध्यबेला।''

12.3.8 मानवतावादी दृष्टिकोण

निराला मनुष्य को सर्वोपरि मानते हैं। उनका सम्पूर्ण काव्य मानव महत्त्व की सुदृढ़ स्थापना करता है। उन्होंने अपना सारा जीवन मानवतावादी मूल्यों के हितसंरक्षण में बलिदान कर दिया।

12.3.9 रस निरूपण

निराला का कहना है– ''नवरसों को समझने और उन्हें उनके यथार्थ रूप में दर्शाने की शक्ति जिसमें जितनी ज्यादा है, वह उतना ही बड़ा कवि है।'' निराला के काव्य में हमें श्रृंगार, वीर, करुण, रौद्र, भयानक इत्यादि सभी रसों का अद्‌भुत परिपाक देखने को मिलता। करुण रस का एक उदाहरण देखिये –

''वह तोड़ती पत्थर,
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर
                    – वह तोड़ती पत्थर।
नहीं छायादार पेड़, वह जिसके तले बैठी हुई
                    स्वीकार ;
श्याम तन, भर बँधा यौवन, नत नयन,
                    प्रिय – कर्म रत मन ;
गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार–बार प्रहार –
सामने तरु–मालिका अट्टालिका, प्राकार।

निराला–काव्य का कला–पक्ष

कला–पक्ष के अन्तर्गत भाषा, अलंकार, प्रतीक और छंद आते हैं। निराला–काव्य में इन्हीं अभिव्यक्ति के साधनों पर विचार करेंगे।

12.3.10 भाषा

भाषा भावों की अभिव्यक्ति का सबसे अधिक सशक्त साधन है। निराला का कथन है –

''जो मनुष्य जितना गहरा है, वह भाव तथा भाषा की उतनी ही गम्भीरता तक पैठ सकता है।'' निराला ने भावों के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है। इसीलिये उन्की भाषा में एकरूपता का सर्वत्र अभाव है। उनकी भाषा भावों की अनुगामिनी है। विद्वानों ने निराला की भाषा को चार प्रकार की बताया है–

(प) सरल एवं व्यावहारिक भाषा – निराला ने जीवन की यथार्थता को अभिव्यंजित करने के लिए सरल, सुबोध एवं व्यावहारिक भाषा का प्रयोग किया है। 'वह तोड़ती पत्थर' शीर्षक कविता की यही व्यावहारिक भाषा देखने को मिलती है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"चढ़ रही थी धूप:
गर्मियों के दिन ;
दिवा का तमतमाता रूप ;
उठी झुलसाती हुई लू,
रूई ज्यों जलती हुई भू ?
गर्द चिनगी छा गई ;
प्रायः हुई दोपहर
वह तोड़ती पत्थर ।"

(पप) बोलचाल की साधारण भाषा – निराला ने जहाँ सामाजिक अनाचार, शोषण एवं समाज विरोधी कार्यों का पर्दाफाश किया है, वहाँ उनकी भाषा बोलचाल के अधिक निकट है। 'कुकुरमुत्ता' नामक कृति में निराला की इसी प्रकार की भाषा देखने को मिलती है, जिसमें निराला ने अंगरेजी, अरबी, फारसी और हिन्दी के शब्दों का प्रयोग करके दैनिक बोलचाल की भाषा का सर्जन किया है–

"अबे सुन बे गुलाब
भूल मत, गर तूने पायी खुशबू, रंगों आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट।"

(पपप) माधुर्य गुण पूर्ण सौष्ठवयुक्त भाषा – निराला जहाँ प्रेम और सौंदर्य की व्यंजना करते हैं वहाँ उनकी भाषा में माधुर्यपुण का मार्दव छलकता है। इस भाषा में कोमल भावों को अभिव्यक्त करने के लिए निराला ने प्रायः कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया है। 'संध्यासुन्दरी' नामक कविता में भाषा का माधुर्य दर्शनीय है –

'दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी–सी
धीरे–धीरे–धीरे।"

(पअ) प्रौढ़ सशक्त एवं ओजस्वी भाषा – निराला का शब्द – भंडार अत्यन्त विशाल है। अनेक स्थानों पर निराला की भाषा संस्कृत शब्दावली से युक्त है। दीर्घ समासान्त पदावली का प्रयोग होने के कारण उनकी भाषा में प्रौढ़ता आ गयी है। 'राम की शक्ति पूजा' इस दृष्टि से स्मरणीय कृति है जिसमें भाषा – सौष्ठव अपने चरमोत्कर्ष पर है। यथा –

"रावण – प्रहार – दुर्वार – विकल – वानर – दल बल, मूर्च्छित – सुग्रीवांगद, भीषण – गवाक्ष गय – नल – वारित – सौमित्र – भल्लपति – अगणित – मल्ल – रोध – गर्जित – प्रत्याब्धि – क्षुब्ध – हनुमत केवल – प्रबोध।"

इस प्रकार हम देखते है कि निराला की भाषा में सर्वत्र भावनुकूलता है। जहाँ कवि के भावों में गहनता, गम्भीरता, एवं प्रौढ़ता है वहाँ भाषा में भी गुरुता, गम्भीरता एवं प्रौढ़ता है, जहाँ कवि कोमल और सुकुमार भावों की अभिव्यक्ति करता है वहाँ भाषा स्वयं ही मृदुल एवं मधुर है। समग्र रूप में कहा जा सकता है कि निराला आधुनिक हिन्दी – भाषा के डिक्टेटर हैं।

12.3.11 अलंकार – विधान

निराला ने अलंकारों ने द्वारा और विचारों के मार्मिक चित्र प्रस्तुत किये हैं। निराला ने प्रायः उपमा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, मानवीकरण अलंकारों का प्रयोग ही अधिक किया है। उनका सर्वाधिक प्रिय अलंकार उपमा है। कवि पग–पग पर इसका उपयोग करता है। 'विधवा' शीर्षक कविता में कवि उपमानों की माला – सी पिरोकर मालोपमा अलंकार का किस प्रकार चित्ताकर्षक प्रयोग करत है, यह दर्शनीय है –

"वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा – सी,
वह दीपशिखा – सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल – तांडव – की स्मृति रेखा–सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता–सी दीन–
दलित भारत की ही विधवा है।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.3.12 प्रतीक योजना

निराला ने अपने काव्य में प्रतीकों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। उन्होंने अधिकाशंतः प्रतीकों का चयन प्रकृति के उन्मुक्त सौंन्दर्य सिन्धु से किया हैं 'जूही की कली' कविता में कवि ने एक नववधू का रूपचित्र प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त किया है, इसमें 'जूही की कली' नववधू का प्रतीक है–

''सोती थी,
जाने कहो कैसे प्रिय आगमन वह ?
नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी बल्लरी की लड़ जैसी हिंडोल
इस पर भी जागी नहीं,
चूक क्षमा मांगी नहीं,
निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही –
किंवा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये
कौन कहे ?''

12.3.13 छंद योजना

निराला छंद के क्षेत्र में क्रांतिकारी कवि हैं। उन्होंने सम्पूर्ण रूढ़िग्रस्त छंद – योजना को एक चुनौती दी थी तथा छंद सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओं में आमूल–चूल परिवर्तन करके 'मुक्तछंद' की पद्धति का शुभारम्भ किया। 'राम की शक्ति पूजा' में निराला की नूतन छंद सम्बन्धी मान्यतायें अवतरित हुई हैं।

12.3.14 स्वच्छन्द छंदवाली कवितायें

स्वच्छन्द छंद के वर्ग में निराला की वे रचनायें आती है जहाँ न तो तुक है और न ही मात्राओं का क्रम है। सम्पूर्ण छंद स्वच्छन्द सरिता की भाँति आगे बढ़ता है। तात्पर्य यह है कि इस छंद में कोई बन्धन नहीं होता है, यथा–

''विजन वन बल्लरी पर
सोती थी सुहाग – भरी – स्नेह – स्वप्न – मग्न –
अमल – कोमल – तनु – तरुणी – जुही की कली
दृग बन्द किए, शिथिल – पत्रांक में।

यद्यपि आलोचकों ने इस छंद को 'रबड़ छंद' 'केंचुआ छंद' कहकर इसका मजाक उड़ाया, लेकिन आगे चलकर बाद में यही छंद लोकप्रिय हुआ।

निराला का काव्य भाव भाषा, छंद आदि विविध दृष्टियों से आधुनिक हिन्दी साहित्य में अपना स्वतंत्र एवं विशिष्ट स्थान रखता है। वे युगान्तरकारी एवं क्रान्तिकारी कवि थे– उन्होंने हिन्दी काव्य को नूतन रचनामूल्य प्रदान किये। माहाप्राण निराला के समान दार्शनिक, गम्भीर विद्वान् और अमिनवोन्मेषशालिनी प्रतिभावाला कवि हिन्दीसाहित्य में कोई दूसरा नहीं है। 'वे काव्य शिल्प की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी के कवि गुरु हैं ।' अंत में वियोगि हरि के शब्दों में कहा जा सकता है –

''निराला चला गया। भारत माता ने एक अमूल्य रत्न खो दिया। निराला सच्चे अर्थों में कवि था, द्रष्टा था, क्रान्ति – दर्शी था। लोक हृदय के स्पन्दन का स्पर्श उसने किया था, कितने ही छन्दों में अपनी कोमल कठोर अंगुलियों से निराला का हास्यगर्भित रुदन और करुणा सिंचित हास्य हम में से कितनों ने समझा होगा। निराला ने अपनी अमरवाणी को कभी बेचा नहीं और उसे खरीदने का साहस कर भी कौन सकता था। उनके महान् जीवन से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।''

12.4 राम की शक्तिपूजा का काव्य सौन्दर्य

'राम की शक्ति–पूजा' महाकवि सूर्यकान्तत्रिपाठी 'निराला' कृत महाकाव्यात्मक–रचना है । इस लघु रचना महाकविता का निराला काव्य और आधुनिक हिन्दी काव्य – जगत् में भी महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट स्थान है।

12.4.1 कथावस्तु की नवीनता

'राम की शक्तिपूजा' की प्रधान कथा है – युद्धकाल में रावण की वीरता से आंतकित होकर राम का महाशक्ति की उपासना करना। थोड़े –बहुत हेर–फेर के साथ, यह कथा 'वाल्मीकि रामायण', 'देवी–भागवत',

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'शिव–महिमा स्त्रोत' और 'रामचरितमानस' में है। मूल–कथा सुपरिचित पौराणिक आख्यान पर आधारित है। 'राम की शक्तिपूजा' की कथा का मूलाधार बंगला का 'कृतिवासी रामायण' है क्योंकि इसका अधिकांश घटना–चक्र उसी से सर्वाधिक मिलता – जुलता है।

'राम की शक्तिपूजा' में वर्णित प्रमुख घटनाएं हैं – राम–रावण का भयंकर युद्ध, संध्या होने पर दोनों पक्ष की सेनाओं की वापसी, राम और उनके साथियों का रात्रि में सभा करना, राम की अवसादपूर्ण मनःस्थिति, हनुमान का क्रोधावेश में आकर महाकाश पर पहुंचना, शिव की सलाह पर महाशक्ति का अंजना–रूप धारण कर हनुमान को शांत करना, विभीषण – प्रबोध, जाम्बवान की सलाह पर राम द्वारा शक्ति–पूजा करने का निश्चय, राम का शक्ति – पूजन करना, शक्ति द्वारा परीक्षा हेतु अन्तिम कमल – पुष्प चुराया जाना, राम का अपने कमल तुल्य दाहिने नेत्र को चरणार्पित करने को तैयार होना, देवी का प्रसन्न होना तथा राम की विजय–प्राप्ति का आशीष देकर उन्हीं के मुख में समा जाना आदि।

12.4.2 सुगठित कथानक

इसके कथानक का सुगठित होना इस कविता की बड़ी विशेषता है। नाटक की पांचों कार्यावस्थाएं यहां स्पष्ट रूप में मिलती हैं। युद्ध के वातावरण को उत्तेजना और उसकी भूमिका में राम सभा का विषादपूर्ण चित्रण प्रारम्भ अवस्था है। राम की निराशा, हनुमान का रौद्र रूप धारण करके अपनी शक्ति का प्रदर्शन और विभीषण के द्वारा उद्बोधन प्रयत्न अवस्था है। जाम्बवान के द्वारा राम को शक्तिपूजा का परामर्श प्राप्त्याशा है। राम द्वारा पूजा का विधान करना नियताप्ति है और शक्ति द्वारा विजय का वरदान फलागम है।

12.4.3 प्रतीकात्मकता

डॉ. द्वारकाप्रसाद सक्सेना ने इस सम्बन्ध में कहा है, ''यहाँ रावण निःसन्देह तत्कालीन विदेशी क्रूर एवं अधर्मी शासक का प्रतीक है, जो सभी प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न होने के कारण ऐसा ही जान पड़ता है, मानों महाशक्ति उसी के पक्ष में है। राम तत्कालीन देशभक्त के प्रतीक हैं जो अनेक प्रयत्न करने पर भी अपनी सीता रूपी स्वतन्त्रता का उद्धार नहीं कर पाते और सदैव जीवन में विरोध ही विरोध प्राप्त करते हैं। राम के अन्य महारथी उनके अन्य देशभक्त साथियों के प्रतीक हैं।'' डॉ. रामविलास शर्मा इस सम्बन्ध में एक मौलिक कल्पना करते हैं। 'राम की शक्तिपूजा' की प्रतीकात्मकता को निराला के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित बताकर उन्होंने ('राम की शक्तिपूजा' और निराला में) ''राम को निराला का प्रतीक, सीता को छायावादी कविता का प्रतीक, लक्ष्मण को सुमित्रानन्दन पन्त का प्रतीक, शिव को जयशंकर प्रसाद का प्रतीक, महाशक्ति को महादेवी वर्मा का प्रतीक तथा रावण को छायावाद के विरोधी आलोचक तथा रूढ़िवादी कवियों का प्रतीक'' स्वीकार किया है। इसी भांति डॉ. रमेश कुन्तल मेघ कहते हैं, ''अगर 'सरोज–स्मृति' (1935) में नायक स्वयं कवि निराला हैं ... तो उसी तनाव की सामाजिक यंत्रणा तथा आधुनिक फूहडता (एब्सर्डिटी) को भोगनेवाले निराला ने अब 'राम की शक्तिपूजा' (1936) में राम को चुनकर उन सबको अभिव्यक्त किया है ... पहले के निरर्थक एवं हारते रहनेवाले निराला के नवीन पुरुषोत्तम राम अब शक्ति के सिद्धसाधक तथा विजयी हो जाते हैं।''

12.4.4 विशिष्ट भाव चित्रण

भाव चित्रण की दृष्टि से 'राम की शक्तिपूजा' में निराला विशेष सफल कहे जा सकते हैं। राम–रावण युद्ध में रावण की अपूर्व वीरता और तद्जनित सफलता देखकर राम की चिन्ता, निराशा और अवसाद से ग्रस्त होना, स्मृति में अतीतकालीन वीरता और सीता से प्रथम–भेंट पर विचार करना, जय–पराजय के द्वन्द्व में पड़ना, यहां तक कि रो पड़ना आदि सभी भाव पूर्णतया भावपरक, मनोवैज्ञानिक क्रम और सजीव रूप में चित्रित किये गये हैं। विभीषण का उत्साहित करना हो या जाम्बवान का सुझाव देना अथवा हनुमान का क्रोधावेश में आना और महाशक्ति को सिद्ध करने के लिये राम का अटल भक्ति–भाव रखना, सभी में कवि ने अपनी सजीव प्रतिभा का परिचय दिया है।

12.4.5 सफलतम रसयोजना

रस–योजना की दृष्टि से 'राम की शक्तिपूजा' सफलतम रचना है। 'राम की शक्तिपूजा' में वीर और भक्ति या शान्त रस की प्रधानता है। श्रृंगार मूलतः वीर रस का ही सहायक बन कर आया है। इस प्रकार ये तीन रस प्रस्तुत रचना में प्रमुख बन गये हैं। इनमें ''शान्त, वीर और श्रृंगार का यह योग अप्रतिम है।

वीर रस – ''विच्छुरित–वह्नि–राजीवनयन–हत–लक्ष्य–बाण,
लोहित–लोचन–रावण–मदमोचन–महीयान,
राघव–लाघव–रावण–कारण–गत–युग्म–प्रहर,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उद्धत–लंकापति–मर्दित–कपि–दल–बल–विस्तर,...
विद्धांग–बद्ध–कोदण्ड–मुष्टि–रव–रुधिर–स्राव,
रावण–प्रहार–दुर्वार–विकल–वानर–दल–बल–"

शान्त रस– "आठवां दिवस मन–ध्यान–युक्त चढ़ता ऊपर
कर गया अतिक्रम ब्रह्मा–हरि–शंकर का स्तर,
हो गया विजित ब्रह्माण्ड पूर्ण, देवता स्तब्ध,
हो गये दग्ध जीवन के तप के समारब्ध।।"

श्रृंगार रस– "देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का, प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का – नयनों से गोपन–प्रिय सम्भाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन–"

वस्तुतः 'राम की शक्तिपूजा में उदात्त–भाव–रस–सृष्टि की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय रचना कही जा सकती है।

12.4.6 महाकाव्यात्मक कविता

'राम की शक्तिपूजा' लगभग दस पृष्ठों की एक कविता है। अपने लघु–आकार और शास्त्रीय दृष्टि से यह 'खण्डकाव्य' के अधिक निकट है, यद्यपि इसमें महाकाव्य के भी अनेक तत्व पाये जाते हैं। साथ ही नाटकीयता और संवाद–अधिकता के समावेश से इसमें नाटक–धर्म भी पूरी–पूरी मात्रा में मिलता है। डॉ. रमेशकुन्तल मेघ ने ('निराला') इस सम्बन्ध में कहा है, 'कवि निराला की 'राम की शक्तिपूजा' एक ऐसी रचना है, जिसे आज की भाषा में 'संश्लिष्ट कविता (टोटल पोएट्री) कह सकते हैं। ...... 'शक्ति पूजा' न तो महाकाव्य है और न ही काव्यात्मक नाटक .... काव्यभूमि पर चित्रकला, काव्यकला, नाट्यकला, संगीत–कला आदि का विवेचन करने के कारण एक संश्लिष्ट कविता बन गई है।"

12.4.7 शब्दावली सम्बन्धी नवीनता

'राम की शक्तिपूजा' की भाषा संस्कृतनिष्ठ और समासबहुल खड़ीबोली है। यह भाषा डॉ. द्वारकाप्रसाद सक्सेना के शब्द में, "अत्यन्त प्रौढ़, परिमार्जित एवं सुसंस्कृत है तथा संस्कृत की तत्सम पदावली का प्रयोग, अधिक मात्रा में ओजगुण की प्रधानता है।

चतुरसेन शास्त्री ने कहा है, "वे जब आवेश में भावमग्न हो विचार–प्रवाह करते हैं तो भाषा को उसका बोझ वहन करना दूभर हो जाता है, वह लड़खड़ाने और अटकने लगती है। उनकी कविता का आनन्द लेना दुर्लघ्य गौरीशंकर शैलशिखर पर चढ़ने के समान साहस और परिश्रम–साध्य है।" सन्धियुक्त शब्दावली (यथा गर्जितोर्मि, लतान्तराल, समुदय, ज्योतिर्मय और घूर्णावर्त्त आदि), ध्वनशीलता (यथा तीक्ष्ण–शर–विधृत क्षिप्र–कर), प्रतीकात्मकता (यथा सुमित्रानन्दन, दिगम्बर, महावीर आदि) और समासयुक्त वाक्य – विन्यास (यथा – 'शत – शैल– सम्वरण – शील') आदि इसकी अन्य विशेषतायें हैं। कहीं – कहीं कवि ने सरल शब्दावली का भी प्रयोग सफलतापूर्वक किया है, यथा –

"रघुकुल गौरव लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण,
तुम फेर रहे हो पीठ, हो रहा जब जय – रण।"

सब मिलाकर कह सकते हैं कि 'राम की शक्तिपूजा' की शब्दावली पूर्णतया प्रसंग और पात्रानुकूल है।

12.4.8 नवीन छंद योजना

निराला का छन्दों पर न केवल एकाधिकार है वरन् वे अनेक नवीन छन्दों के निर्माता भी हैं। "वास्तव में निराला का निरालापन सबसे अधिक उनके छन्द प्रयोग में प्रतिफलित हुआ है।"

12.4.9 ध्वन्यर्थ व्यंजना की पराकाष्ठा

'राम की शक्तिपूजा' का प्रधान अलंकार है– ध्वन्यर्थ – व्यंजना। कवि ने स्थान–स्थान पर ऐसी आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है, जो दृश्य को पाठकों के सम्मुख तुरन्त साकार कर देती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो शब्द स्वयं बोल रहे हैं, यथा –

"आज का तीक्ष्ण–शर–विधृत–क्षिप्र–कर वेग–प्रखर
शत–शैल–संवरण–शील–नील–नभ गर्जित स्वर।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

साथ ही साथ प्रायः सभी प्रमुख प्रचलित अलंकारों की छटा यहाँ देखी जा सकती है। विविध अलंकारों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

'देखा कपि ने, चमके नभ में ज्यों तारा–दल;
ये नहीं चरण राम के, बने श्यामा के शुभ–
सोहते मध्य में हीरक–युग या दो कौस्तुभ ...
व्याकुल–व्याकुल कुछ चिर – प्रफुल्ल मुख निश्चेतन।

यहाँ पर उत्प्रेक्षा, निषेध, सन्देह, अनुप्रास, उपमा अलंकार एक–एक साथ आये हैं।

12.4.10 नाद सौन्दर्य

काव्य की प्रभाव–शक्ति को बढ़ाने में नाद–सौन्दर्य का विशेष महत्त्व होता है। 'राम की शक्तिपूजा' में कवि इस क्षेत्र में विशेष सफल बन पड़ा है। ध्वनिशीलता, गति–लय आदि से संयुक्त मुक्त छंद आदि का प्रयोग हमारे इसी मत की पुष्टि करते हैं।

उर्पुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'राम की शक्तिपूजा' काव्य–कला की दृष्टि से एक गुणयुक्त, सफल और विशिष्ट रचना है। इन्हीं गुणों के कारण आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी इसको ''आलंकारिकता प्रधान उदात्त काव्य मानते हैं तो डॉ. रामविलास शर्मा ''एपिक क्वालिटी से ओतप्रोत रचना'' कहते हैं। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री कहते हैं, कि 'राम की शक्तिपूजा' के से स्वल्प आकार–प्रकार का परम प्रौढ़ प्रबन्धकाव्य विश्व की किसी भी भाषा में नहीं लिखा गया।'' वास्तव में निराला की यह रचना .... हिन्दी साहित्य की अनुपम कृति है। .... वह महाकाव्यों की शैली पर किया गया एक ऐसा नूतन प्रयोग है जिसमें साहित्यिक सौन्दर्य की अद्भुत सृष्टि के लिये अभिव्यंजनाओं की नूतन प्रणाली को भी अपनाया गया है। निःसंदेह सभी दृष्टियों से प्रस्तुत रचना अपने में विशिष्ट स्थान की अधिकारी है। अपने काव्यगत – सौन्दर्य से यह एक ओर जहाँ निराला की 'प्रतिनिधि रचना' है वहीं दूसरी ओर इसको 'आधुनिक हिन्दी – काव्य की सबसे बड़ी उपलब्धि कहा जा सकता है। नाद सौंदर्य का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

"बोले भावस्थ चन्द्र–मुख–निन्दित रामचन्द्र,
प्राणों में पावन कम्पन भर, स्वर मेघमन्द्र –
''देखों बन्धुवर, सामने स्थित जो यह भूधर
शोभित शत–हरित–गुल्म–तृण से श्यामल सुन्दर,
पार्वती कल्पना है इसकी, मकरन्द–बिन्दु;
गरजता चरण–प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु"

12.5 व्याख्या खण्ड

12.5.1 मूल पाठ

राम की शक्ति–पूजा

रवि हुआ अस्त : ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम–रावण का अपराजेय समर
आज का, तीक्ष्ण–शर–विधृत–क्षिप्र–कर, वेग–प्रखर,
शतशैलसम्वरणशील, नील नभ गर्ज्जित–स्वर,
प्रतिपल–परिवर्तित–व्यूह–भेद–कौशल–समूह, –
राक्षस–विरुद्ध प्रत्यूह,–क्रुद्ध–कपि–विषम–हूह,
विच्छुरितवह्नि–राजीवनयन–हत लक्ष्य–बाण,
लोहितलोचन–रावण–मदनमोचन–महीयान,
राघव–लाघव–रावण–वारण–गत–युग्म–प्रहर,
उद्धत–लंकापति मर्दित–कपि–दल–बल विस्तर,
अनिमेष–राम–विश्वजिद्दिव्य–शर–भंग–भाव,–
विद्धांग–बद्ध–कोदंड–मुष्टि–खर–रुधिर–स्राव
रावण–प्रहार–दुर्वार–विकल वानर–दल–बल–
मूर्च्छित–सुग्रीवांगद–भीषण–गवाक्ष–गय–नल,–
वारित–सौमित्र–भल्लपति–अगणित. मल्ल–रोध,

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

गर्ज्जित–प्रलयाब्धि–क्षुब्ध–हनुमत्–केवल–प्रबोध,
उद्गीरित–वह्नि–भीम–पर्वत–कपि–चतु:प्रहर,–
जानकी–भीरु–उर–आशाभर–रावण–सम्वर।

लौटे युग–दल। राक्षस–पदतल पृथ्वी टलमल,
बिंध महोल्लास से बार–बार आकाश विकल।
वानर–वाहिनी खिन्न, लख निज–पति–चरण–चिह्न
चल रही शिविर की ओर स्थविर–दल ज्यों विभिन्न;
प्रशमित है वातावरण, नमित–मुख सान्ध्य कमल
लक्ष्मण चिन्ता–पल, पीछे वानर–वीर सकल;
रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत–चरण,
श्लथ धनु–गुण हैं, कटिबन्ध स्रस्त तूणीर–धरण,
दृढ़ जटा–मुकुट को विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकीं दूर ताराएँ ज्यों हो कहीं पार।

आये सब शिविर, सानु पर पर्वत के,
मन्थर
सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान आदिक वानर,
सेनापति दल–विशेष के, अंगद, हनूमान,
नल, नील, गवाक्ष, प्रात के रण का समाधान
करने के लिए, फेर वानर–दल आश्रय–स्थल।
बैठे रघु–कुल–मणि श्वेत शिला पर; निर्मल जल
ले आये कर–पद–क्षालनार्थ पटु हनूमान;
अन्य वीर सर के गये तीर सन्ध्या–विधान–
वन्दना ईश की करने को, लौटे सत्वर,
सब घेर राम को बैठे आज्ञा को तत्पर;
पीछे लक्ष्मण, सामने विभीषण, भल्लधीर;
सुग्रीव, प्रान्त पर पाद–पद्म के महावीर;
यूथपति अन्य जो, यथास्थान, हो निर्निमेष
देखते राम का जित–सरोज–मुख–श्याम–देश।

है अमानिशा, उगलता गगन घन अन्धकार;
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन–चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यान–मग्न; केवल जलती मशाल।
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर–फिर संशय,
रह–रह उठता जग जीवन में रावण–जय–भय,
जो नहीं हुआ आज तक हृदय रिपु–दम्य–श्रान्त,–
एक भी, अयुत–लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त,
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार–बार
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार–हार।
ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत्
जागी पृथ्वी–तनया–कुमारिका–छवि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह, का– प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का – नयनों से गोपन – प्रिय सम्भाषण, –
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान–पतन,–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

काँपते हुए किसलय, – झरते पराग–समुदय,–
गाते खग नव–जीवन–परिचय, – तरु मलय–वलय,
ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय, – ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी–नयन–कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।
सिहरा तन, क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त,
हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता–ध्यान–लीन राम के अधर,
फिर विश्व–विजय–भावना हृदय में आयी भर,
वे आये याद दिव्य शर अगणित मन्त्रपूत –
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत,
देखते राम जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताड़का, सुबाहु, विराध, शिरस्त्रय, दूषण, खर;
फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो
आच्छादित किये हुए सम्मुख समग्र नभ को,
ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ–बुझ कर हुए क्षीण;
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन;
लख शंकाकुल हो गये अतुल–बल शेष–शयन,–
खिंच गये दृगों में सीता के राममय नयन;
फिर सुना –हँस रहा अट्टहास रावण खलबल,
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता–दल।

बैठे मारुति देखते राम–चरणारविन्द–
युग 'अस्ति–नास्ति' के एक–रूप, गुण–गण–अनिन्द्य;
साधना–मध्य भी साम्य–वाम–कर दक्षिण–पद,
दक्षिण कर–तल पर वाम चरण, कपिवर गद्गद
पा सत्य, सच्चिदानन्दरूप विश्राम–धाम,
जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो राम–नाम।
युग चरणों पर आ पड़े अस्तु वे अश्रु युगल,
देखा कपि ने, चमके नभ में ज्यों तारादल;–
ये नहीं चरण राम के, बने श्यामा के शुभ ;–
सोहते मध्य में हीरक–युग या दो कौस्तुभ;
टूटा वह तार ध्यान का, स्थिर मन हुआ विकल,
संदिग्ध भाव की उठी दृष्टि, देखा अविकल
बैठे वे वहीं कमल लोचन, पर सजल नयन,
व्याकुल–व्याकुल कुछ चिर–प्रफुल्ल मुख, निश्चेतन।
'ये अश्रु राम के' आते ही मन में विचार,
उद्वेल हो उठा शक्ति–खेल–सागर अपार,
हो श्वसित पवन–उनचास पिता–पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,
शत घूर्णावर्त, तरंग–भंग उठते पहाड़,
जल–राशि–राशि–जल पर चढ़ता खाता पछाड़,
तोड़ता बन्ध–प्रतिसन्ध धरा, हो स्फीत–वक्ष
दिग्विजय–अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष।
शत–वायु–वेग–बल, डूबा अतल में देश–भाव,
जलराशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव

वज्रांग तेजघन बना पवन को, महाकाश
पहुँचा, एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रावण–महिमा श्यामा विभावरी अन्धकार,
यह रुद्र राम–पूजन–प्रताप तेजःप्रसार;
उस ओर शक्ति शिव की जो दशस्कन्ध–पूजित,
इस ओर रुद्र–वन्दन जो रघुनन्दन–कूजित;
करने को ग्रस्त समस्त व्योम कपि बढ़ा अटल,
लख महानाश शिव अचल हुए क्षण–भर चंचल,
श्यामा के पदतल भारधरण हर मन्द्रस्वर
बोले–''सम्वरो देवि, निज तेज, नहीं वानर
यह, – नहीं हुआ श्रृंगार–युग्म–गत, महावीर,
अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय–शरीर
चिर–ब्रह्मचर्य–रत, ये एकादश रुद्र धन्य,
मर्यादा–पुरुषोत्तम के सर्वोत्तम, अनन्य,
लीला–सहचर, दिव्यभावधर, इन पर प्रहार,
करने पर होगी देवि, तुम्हारी विषम हार;
विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध,
झुक जायेगा कपि, निश्चय होगा दूर रोध।''
कह हुए मौन शिव; पवन–तनय में भर विस्मय
सहसा नभ में अंजना–रूप का हुआ उदय;
बोली माता–''तुमने रवि को जब लिया निगल
तब नहीं बोध था तुम्हें, रहे बालक केवल;
यह वही भाप कर रहा तुम्हें व्याकुल रह–रह,
यह लज्जा की है बात कि माँ रहती सह–सह;
यह महाकाश, है जहाँ वास शिव का निर्मल –
पूजते जिन्हें श्रीराम, उसे ग्रसने को चल

क्या नहीं कर रहे तुम अनर्थ–सोचो मन में;
क्या दी आज्ञा ऐसी कुछ श्री रघुनन्दन ने?
तुम सेवक हो, छोड़कर धर्म कर रहे कार्य–
क्या असम्भाव्य हो यह राघव के लिए धार्य ?''
कपि हुए नम्र, क्षण में माताछवि हुई लीन,
उतरे धीरे–धीरे गह प्रभु–पद हुए दीन।

राम का विषण्णानन देखते हुए कुछ क्षण,
'हे सखा', विभीषण बोले, ''आज प्रसन्न वदन
वह नहीं देखकर जिसे समग्र वीर वानर–
भल्लूक विगत–श्रम हो पाते जीवन–निर्जर;
रघुवीर, तीर सब वहीं तूण में हैं रक्षित,
है वही वक्ष, रण–कुशल हस्त, बल वही अमित;
हैं वही सुमित्रानन्दन मेघनाद–जित–रण,
हैं वही भल्लपति, वानरेन्द्र सुग्रीव प्रमन,
तारा–कुमार भी वही महाबल श्वेत धीर,
अप्रतिभट वही एक–अर्बुद–सम, महावीर,
हैं वहीं दक्ष सेना–नायक, है वही समर,
फिर कैसे असमय हुआ उदय यह भाव–प्रहर ?
रघुकुल–गौरव, लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण,
तुम फेर रहे हो पीठ हो रहा जब जय रण !
कितना श्रम हुआ व्यर्थ ! आया जब मिलन – समय,
तुम खींच रहे हो हस्त जानकी से निर्दय !

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रावण, रावण, लम्पट खल कल्मष गताचार,
जिसने हित कहते किया मुझे पाद–प्रहार,
बैठा वैभव में देगा दुःख सीता को फिर,–
कहता रण की जय–कथा पारिषद्–दल से घिर;–
सुनता वसन्त में उपवन में कल–कूजित पिक
मैं बना किन्तु लंकापति, धिक्, राघव, धिक्–धिक् !''

सब सभा रही निस्तब्ध, राम के स्मित नयन
छोड़ते हुए, शीतल प्रकाश देखते विमन
जैसे ओजस्वी शब्दों का जो था प्रभाव
उससे न इन्हें कुछ चाव, न हो कोई दुराव;
ज्यों हों वे शब्दमात्र, – मैत्री को समनुरक्ति,
पर जहाँ गहन भाव के ग्रहण की नहीं शक्ति।
कुछ क्षण तक रहकर मौन सहज निज कोमल स्वर
बोले रघुमणि ''प्रियवर, विजय होगी न समर;
यह नहीं रहा नर–वानर का राक्षस से रण,
उतरीं पा महाशक्ति रावण से आमन्त्रण;
अन्याय जिधर, है उधर शक्ति !'' कहते छल–छल
हो गये नयन, कुछ बूँद पुनः ढलके दृगजल,
रुक गया कण्ठ, चमका लक्ष्मण–तेजः प्रचंड,
धँस गया धरा में कपि गह युग पद मसक दंड,
स्थिर जाम्बवान, – समझते हुए ज्यों सकल भाव,
व्याकुल सुग्रीव, – हुआ उर में ज्यों विषम घाव,
निश्चित–सा करते हुए विभीषण कार्य–क्रम,
मौन में रहा यों स्पन्दित वातावरण विषम।

निज सहज रूप में संयत हो जानकी–प्राण
बोले–''आया न समझ में यह दैवी विधान;
रावण, अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ अपर–
यह रहा शक्ति का खेल समर, शंकर, शंकर !
करता मैं योजित बार–बार शर–न्किर निशित
हो सकती जिनसे यह संसृति सम्पूर्ण विजित,
जो तेजःपुंज, सृष्टि की रक्षा का विचार
है जिसमें निहित पतनघातक संस्कृति अपार–
शत–शुद्धि–बोध–सूक्ष्मातिसूक्ष्म मन का विवेक,
जिनमें है क्षात्रधर्म का धृत पूर्णाभिषेक,
जो हुए प्रजापतियों से संयम से रक्षित,
वे शर हो गये आज रण में, श्रीहत खण्डित।

देखा, हैं महाशक्ति रावण को लिये अंक,
लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक,
हत मन्त्रपूत शर संवृत करतीं बार–बार
निष्फल होते लक्ष्य पर क्षिप्र वार पर वार !
विचलित लख कपिदल क्रुद्ध, युद्ध को मैं ज्यों–ज्यों,
झक–झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों–त्यों;
पश्चात्, देखने लगीं मुझे, बँध गये हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं हुआ त्रस्त।''
कह हुए भानुकुलभूषण वहाँ मौन क्षण भर,
बोले विश्वस्त कंठ से जाम्बवान– ''रघुवर,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण,
हे पुरुष –सिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण,
आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर;
रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त;
शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो रघुनन्दन !
तब तक लक्ष्मण हैं महावाहिनी के नायक
मध्य भाग में, अंगद दक्षिण–श्वेत सहायक,
मैं भल्ल–सैन्य; हैं वाम पार्श्व में हनूमान,
नल, नील और छोटे कपिगण – उनके प्रधान;
सुग्रीव विभीषण, अन्य यूथपति यथासमय
आयेंगे रक्षा हेतु जहाँ भी होगा भय।''

खिल गयी सभा, ''उत्तम निश्चय यह, भल्लनाथ !''
कह दिया वृद्ध को मान राम ने झुका माथ ।
हो गये ध्यान में लीन पुनः करते विचार,
देखते सकल–तन पुलकित होता बार–बार।
कुछ समय अनन्तर इन्दीवर निन्दित लोचन
खुल गये, रहा निष्पलक भाव में मज्जित मन।
बोले आवेग–रहित स्वर से विश्वास–स्थित–
''मातः, दशभुजा, विश्व–ज्योतिः, मैं हूँ आश्रित;
हो विद्ध शक्ति से है महिषासुर खल मर्दित,
जनरंजन–चरण–कमल–तल, धन्य सिंह गर्ज्जित !
यह, यह मेरा प्रतीक, मातः, समझा इंगित;
मैं सिंह, इसी भाव से करूँगा अभिनन्दित ।''
कुछ समय स्तब्ध हो रहे राम छवि में निमग्न,
फिर खोले पलक कमल–ज्योतिर्दल ध्यान–मग्न;
हैं देख रहे मन्त्री, सेनापति, वीरासन
बैठे उमड़ते हुए, राघव का स्मित आनन।
बोले भावस्थ चन्द्र–मुख–निन्दित रामचन्द्र,
प्राणों में पावन कम्पन भर, स्वर मेघमन्द्र –
''देखो बन्धुवर, सामने स्थित जो यह भूधर
शोभित शत–हरित–गुल्म–तृण से श्यामल सुन्दर,
पार्वती कल्पना है इसकी, मकरन्द–विन्दु;
गरजता चरण–प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु;
दशदिक्–समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि–शेखर;
लख महाभाव–मंगल पदतल धँस रहा गर्व–
मानव के मन का असुर मन्द, हो रहा खर्व।''

फिर मधुर दृष्टि से प्रिय कपि को खींचते हुए
बोले प्रियतर स्वर से अन्तर् सींचते हुए –
''चाहिए हमें एक सौ आठ, कपि, इन्दीवर,
कम–से–कम, अधिक और हो, अधिक और सुन्दर,
जाओ देवीदह, उषः–काल होते सत्वर,
तोड़ो, लाओ वे कमल, लौटकर लड़ो समर।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अवगत हो जाम्बवान से पथ, दूरत्व, स्थान,
प्रभु–पद–रज सिर धर चले हर्ष भर हनूमान।
राघव ने विदा किया सब को जानकर समय,
सब चले सदय राम की सोचते हुए विजय।

निशि हुई विगतः नभ के ललाट पर प्रथम किरण
फूटी, रघुनन्दन के दृग महिमा–ज्योति–हिरण;
हैं नहीं शरासन आज हस्त–तूणीर स्कन्ध,
वह नहीं सोहता निविड़–जटा–दृढ़–मुकुट–बन्ध;
सुन पड़ता सिंहनाद, –रण–कोलाहल अपार,
उमड़ता नहीं मन, स्तब्ध सुधी हैं ध्यान धार;
पूजोपरान्त जपते दुर्गा, दशभुजा नाम,
मन करते हुए मनन नामों के गुणग्राम;
बीता वह दिवस, हुआ मन स्थिर इष्ट के चरण,
गहन–से–गहनतर होने लगा समाराधन।

क्रम–क्रम से हुए पार राघव के पंच दिवस,
चक्र से चक्र मन चढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस;
कर–जप पूरा कर एक चढ़ाते इन्दीवर,
निज पुरश्चरण इस भाँति रहे हैं पूरा कर।

चढ़ षष्ठ दिवस आज्ञा पर हुआ समाहित मन,
प्रति जप से खिंच–खिंच होने लगा महाकर्षण;
संचित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवी–पद पर,
जप के स्वर लगा काँपने थर–थर–थर अम्बर;
दो दिन निष्पन्द एक आसन पर रहे राम,
अर्पित करते इन्दीवर, जपते हुए नाम।

आठवाँ दिवस, मन ध्यान–युक्त चढ़ता ऊपर
कर गया अतिक्रम ब्रह्मा–हरि–शंकर का स्तर,
हो गया विजित ब्रह्माण्ड पूर्ण, देता स्तब्ध,
हो गये दग्ध जीवन के तप के समारब्ध,
रह गया एक इन्दीवर, मन देखता–पार
प्रायः करने को हुआ दुर्ग जो सहस्रार,
द्विप्रहर रात्रि, साकार हुई दुर्गा छिपकर,
हँस उठा ले गयीं पूजा का प्रिय इन्दीवर

यह अंतिम जप, ध्यान में देखते चरण युगल
राम ने बढ़ाया कर लेने को नील कमल;
कुछ लगा न हाथ, हुआ सहसा स्थिर मन चंचल
ध्यान की भूमि से उतरे, खोले पलक विमल,

देखा, वह रिक्त स्थान, यह जप का पूर्ण समय,
आसन छोड़ता असिद्धि, भर गये नयन द्वय :–

"धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन, जिसके लिए सदा ही किया शोध !
जानकी ! हाय, उद्धार प्रिया का हो न सका।"
वह एक और मन रहा राम का जो न थका;

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय,
बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत्–गति हतचेतन
राम में जगी स्मृति, हुए सजग पा भाव प्रमन।

''यह है उपाय'' कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन–
''कहती थी माता मुझे सदा राजीवनयन !
दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।''

कह कर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा झलक,
ले लिया हस्त, लक–लक करता वह महाफलक;
ले अस्त्र वाम कर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन
ले अर्पित करने को उद्यत हो गये सुमन
जिस क्षण बँध गया बेधने को दृग दृढ़ निश्चय,
काँपा ब्रह्माण्ड, हुआ देवी का त्वरित उदय –

''साधु, साधु, साधक धीर, धर्म–धन धन्य राम !''
कह, लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।
देखा राम ने सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वामपद असुर–स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर;
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध अस्त्र–सज्जित,
मन्द स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित,
हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग,
दक्षिण गणेश, कार्तिक बायें रण–रंग राग,
मस्तक पर शंकर ! पदपद्मों पर श्रद्धाभर
श्री राघव हुए प्रणत मन्दस्वर वन्दन कर।

''होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन !''
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

12.5.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

राम की शक्ति–पूजा

'राम की शक्ति–पूजा' छायावाद के सर्वाधिक मौलिक एवं क्रांतिदर्शी कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के महत्त्वपूर्ण काव्य–संग्रह 'अनामिका' की सबसे चर्चित और श्रेष्ठ रचना है, यह एक प्रतीकात्मक रचना है जिस पर 'निराला' के जीवन–संस्कारों, अनुभवों तथा चिन्तन आदि के साथ–साथ उनके गहरे सामाजिक सरोकारों का प्रभाव भी देखा जा सकता है।

इस लम्बी रचना में राम और रावण के बीच महायुद्ध का वर्णन है। राम सत्य और सात्विक वृत्ति के प्रतीक हैं और रावण असत्य तथा तामसिक वृत्ति का प्रतीक है, सात्विक तौर तामसिक वृत्ति का यह परस्पर संघर्ष केवल राम–रावण के बीच ही नही, प्रत्युत समस्त मानव जाति के मन में होत है।

'राम की शक्ति–पूजा' राम की परम्परागत कथा से सम्बद्ध होते हुए भी सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत की गई है। राम–रावण के युद्ध के साथ–साथ व्यक्ति के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का भी वर्णन किया गया है कविता के राम सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापी राम नहीं हैं, अपितु मानवोचित दुर्बलताओं के रूप उनका में चित्रण किया गया है। अपनी अनेक विशेषताओं और मौलिकता के कारण यह कविता प्रत्येक पाठक का ध्यान आकृष्ट करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रवि हुआ अस्त .... गर्ज्जित स्वर ।

संदर्भ – प्रस्तुत पद्यांश क्रांतिदर्शी कवि निराला की मौलिक प्रतिभा से प्रस्फुटित उनके महत्त्वपूर्ण काव्य संग्रह 'अनामिका से संगृहीत है।

प्रसंग – राम–रावण के बीच अनिर्णित युद्ध और उसके महाद्वंद्व को चित्रित करते हुए कवि का कथन है–

व्याख्या – सूर्य अस्त हो चुका है और दिवस के ह्रदय पर राम और रावण का आज का अनिर्णीत युद्ध सदा के लिए अंकित हो गया अर्थात् राम और रावण के मध्य हुआ युद्ध कदापि विस्मृत नहीं हो सकेगा, दोनों पक्षों की सेनाएं अपने तेज हाथों में लिये हुए तीक्ष्ण बाणों की वर्षा कर रही थीं। ये बाण इतने तेज और शक्तिशाली थे कि वे असंख्य बाणों का प्रहार रोकने में पूर्ण समर्थ थे। उन बाणों की गर्जना से समस्त नीलाकाश कॉप उठा अर्थात् उनकी भयंकर गर्जना सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो गयी।

विशेष – 1. अलंकार– अनुप्रास और 'ज्योति के पत्र' में रूपक।

2. वीर और रौद्र रस का परिपाक हुआ है।

3. संस्कृतनिष्ठ भाषा तथा लाक्षणिक शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है।

है अमानिशा;..... .... जलती मशाल ।

शब्दार्थ – अमानिशा – अमावस्या की रात, अप्रतिहत–निरंतर .

संदर्भ – पूर्ववत

प्रसंग – राम– रावण के मध्य अनिर्णीत युद्ध के विराम के प्रश्चात सायंकाल बीत जाने पर रात का वर्णन करते हुए निराला कहते हैं –

व्याख्या – यह अमावस्या की काली रात्रि का भीषण दृश्य है। आकाश में चारोंओर घनघोर गहन अन्धकार छाया हुआ है। अंधेरा इतना कि इसमें दिशाओं का ज्ञान तक नहीं हो पा रहा है। हवा नहीं चल रही है। चारोंओर शान्ति का वातावरण है। उस शान्त वातावरण में केवल पर्वत के पीछे की ओर स्थित विशाल सागर निर्बाध रूप से गर्जना कर रहा है। पर्वत अपने स्थान पर एक ध्यानमग्न योगी की भाँति स्थिर विराजमान है। ऐसे समय में केवल एक मशाल जल रही है जो निस्तब्ध वातावरण को और भी भयावहता और गंभीरता प्रदान कर रही थी ।

विशेष – 1. अलंकार (1) पदमैत्री–गगन घन

(2) मानवीकरण–गगन,पवन चार, भूधर।

(3) उपमा–भूधर....... ध्यान मग्न ।

2. 'मशाल' एक आशा की किरण का प्रतीक।

पर्वत को योगी के समान माना गया है । यह दृश्य वातावरण निर्माण में सहायक है।

3. प्रकृति का आलम्बनगत वर्णन है ।

4. भयानक रस की व्यंजना है ।

5. प्रकृति का यह रूप श्रीराम के भग्न मनोबल के प्रति इंगित करता है ।

ऐसे क्षण .... कंपन तुरीय।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – रावण के पराक्रम को देखकर राम और उनकी सेना में निराशा का भाव व्याप्त हो गया है। राम स्वयं संशयाकुल हो रहे हैं। शत्रु से कभी नहीं डरनेवाले राम इस समय रावण की शक्ति से बहुत निराश–हताश और भयभीत हो रहे हैं। ऐसे में आशा की किरण जगी, जिसने राम के भीतर उत्साह का संचार कर दिया।

व्याख्या – निराशा के घने अंधकार में आशा की एक किरण राम को उसी तरह दिखायी दी जैसे घने काले बादलों के बीच में बिजली चमक उठती है। वह आशा की किरण थी, सीता की अविस्मरणीय सुंदर छवि; जिसका

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्मरण होते ही राम की आँखों में मानों चमक आ गई। उस सुंदर छवि को निहारते ही राम को पुष्पवाटिका में सीता के साथ प्रथम मिलन का वह दृश्य याद आ गया कि सीता के मुख–सौंदर्य को निहारते हुए राम किस तरह अपलक हो गए थे। नेत्रों का आपस में मिलना और मौन वार्तालाप का वह अद्‌भुत दृश्य। सबकुछ राम को स्मरण हो आया। उन्हें यह भी याद आया कि वे उस अनिंद्य सौंदर्यशालिनी सीता का वरण करने के लिए अजेय धनुषण को क्षण में तोड़ डाले थे। अपनी उसी शक्ति का आभास कर राम विश्वविजय की कामना से भरगए और विश्वास के साथ रावण के विरुद्ध युद्ध के लिए उद्यत हो गए।

टिप्पणी – (1) संकट के क्षणों में राम का मानवीय दुर्बल पक्ष यहां स्पष्टतया दिखाई दे रहा है।

(2) घोर निराशा में कहीं – न – कहीं आशा की किरण अवश्य दिखाई देती है।

(3) सीता का स्मरण राम में पुनः शक्ति का संचार कर देता है।

राम का विष्णानन .... भाव प्रहर ?

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – राम बार–बार शक्ति का संचय कर, आशा के साथ रावण से युद्ध करते हैं, पर हर निराशा और हताशा हाथ लगती है। राम बहुत चिंतित हो गए हैं। वे सोचते हैं कि शायद रावण से विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है। उनके इस तरह दुःखी – निराश हो जाने पर विभीषण उन्हें ढाढस बंधाते हुए समझाते हैं –

व्याख्या – निराशा और हताशा से भरे राम के मुख को देखकर विभीषण ने बहुत आत्मीयता से कहा कि हे प्रभोः सदा प्रसन्न रहनेवाला आपका मुख आज वह नहीं रहा, जिसे देखकर आपके सभी सहायक, साथी, प्रसन्न हो जाते हैं और उनमें आशा का नूतन संचार हो जाता है। आप की समस्त सेना आपके प्रसन्न मुख से प्रेरित होकर नया जीवन प्राप्त करती है। आप इतने निर्बल, निस्तेज और दुःखी क्यों हो रहे हैं? आपके पास वहीं सारे महान तीर मौजूद हैं, जिनसे बड़े–बड़े योद्धा परास्त हो जाते हैं। आप रण में कुशल अपरिमित बलवाले वही राम हैं, जिनके सामने कोई आने का साहस नहीं करता। मेघनाथ को जीतनेवाले लक्ष्मण भी वही हैं, जिनका अतुलित बल है। आपकी सेना के बड़े–बड़े कुशल योद्धा, महाबली, सेनापति, सेना नायक, महावीर हनुमान सब तो हैं। युद्ध भी वही है, जिसे आप जीत सकने के कगार पर हैं। फिर यह कैसी निराशा। यह हताशा का भाव आप के चेहरे पर क्यों है।

विशेष – (1) यहाँ विभीषण एक सच्चे मित्र की तरह राम को उचित सलाह देते हुए उनकी चिंता का निवारण करने का प्रयास करते हैं।

(2) विभीषण, निराश राम को उनकी शक्ति का स्मरण करवाकर उनमें नया उत्साह भरते हैं।

रघुकुल – गौरव .... राघव, धिक–धिक।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – राम के निराश मन में आशा का संचार करते हुए विभीषण उनकी अतुलित शक्ति एवं महापराक्रम का स्मरण दिलाते हैं। साथ ही उन्हें उनके कर्त्तव्य एवं लक्ष्य का भान भी करवाते हैं–

व्याख्या – हे राम, आप रघुवंश के गौरव, मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं। आप का इस समय इस तरह निराश होकर छोटा होना ठीक नहीं। युद्ध इस स्थिति में आ गया है, जहां आपकी विजय निश्चित है। ऐसे में रण से मुंह फेरना उचित नहीं। जरा सोचिए प्रभो, यहां तक की स्थिति में पहुंचने के लिए कितना श्रम और समय व्यर्थ गया है और अब जबकि सीताजी से मिलने का समय पास आने को है तब आप अपने हाथ निर्दयतापूर्वक पीछे खींच रहे हैं। आप विचार तो कीजिए कि जो रावण मुझ जैसे हितैषी भाई को पाद – प्रहार से बाहर निकाल दिया, वह लंपट सीता जी को कितना दुःख देगा, आप इसकी कल्पना नहीं कर सकते। रावण अपने सभा परिषद में अपनी जय की कथा कह रहा है। मुझे आपने लंकापति बनाया है। धिक्कार है मुझे। आप इस समय क्या कुछ नहीं कर सकते ?

टिप्पणी – (1) विभीषण राम को उनके लक्ष्य की याद दिलाकर एक सच्चे हितैषी की भांति उन्हें प्रेरित कर रहे हैं।

(2) राम के श्रम – पराक्रम को विभीषण व्यर्थ नहीं जाने देना चाहते। इसलिए वे बार–बार राम को अपने कर्त्तव्यों की याद दिलाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सब समा .... पुनः ढलके दृगजल ।

शब्दार्थ – निस्तब्ध–मौन,चुप,स्तिमित – अध खुले।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – रावण की शक्ति और उसके पराक्रम को देखकर राम बहुत घबराए हुए दुःखी, हताश और निराश हो चले हैं, ऐसे में विभीषण उन्हें समझाते हैं –

व्याख्या – उनके भीतर अतुल बल और शक्ति विद्यमान है। अतएव सीता की रक्षार्थ उन्हें रावण से युद्ध करना चाहिये। विभीषण के मित्र–सम्मत उपदेश सुनकर राम के उदास मन में एक नये उत्साह का संचार होता है। निराला कहते हैं कि विभीषण की इन बातों को सुनकर राम की सभा में सन्नाटा छा गया। राम के अधखुले नेत्र शीतल प्रकाश देते हुए उदास भाव से चारोंओर देखते रहे। विभीषण के इन उपदेशों के प्रति राम के इदय में न तो कोई आसक्ति थी और न ही उन्हें किसी बात का दुःख था। उन्होंने अपने मुखमण्डल पर किसी प्रतिकिया के भाव नहीं आने दिये। वह केवल उन्हें शब्द मात्र ही समझ रहे थे। वह केवल इसे मैत्री–भाव समझ रहे थे। उन शब्दों में गम्भीर भावों को व्यक्त करने की क्षमता नहीं थी। एक मित्र होने के नाते राम ने उन शब्दों को सामान्य ही माना। विभीषण के इन शब्दों को सुनकर राम कुछ क्षणों तक मौन धारण किये रहे। तदुपरान्त अपने स्वाभाविक मृदुल स्वरों में वह विभीषण से बोले– हे मित्र, अब यह युद्ध नर–वानरों और राक्षसों के मध्य का युद्ध नहीं रह गया है, क्योंकि रावण का आमन्त्रण पाकर स्वयं महाशक्ति उसकी सहायता के लिए युद्ध क्षेत्र मे उतर आई हैं। राम को आश्चर्य होता है कि रावण अधर्म में लगा हुआ है फिर भी महाशक्ति उसी का पक्ष लिए हुए है। हे विभीषण, महाशक्ति स्वयं अन्याय के पक्ष में है। ऐसी विषम परिस्थिति में रावण को कैसे जीता जा सकता ? निराला कहते है कि ऐसा कहते हुए राम की आँखें छलछला उठीं और उनसे अश्रुधारा छलक पड़ी।

विशेष – राम के उदास और भग्न मन का सजीव चित्रण किया गया है।

निज सहज .... श्रीहत, खण्डित ।

शब्दार्थ – निकर–समूह ।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – राम – रावण के महासंग्राम में रावण का पराक्रम देखकर राम बहुत निराश और दुःखी हो गए हैं। वे चिंतित इस बात से हैं कि महाशक्ति रावण जैसे अनीतिधारी का साथ क्यों दे रही है।

व्याख्या – कुछ समय के पश्चात राम संयत हो गये और सहज रूप में विभीषण से कहने लगे कि हे मित्रवर, अधर्म पर चलनेवाले रावण का साथ स्वयं महाशक्ति दे रही हैं। ईश्वर का यह विधान मेरी समझ में नही आया। महाशक्ति के लिए रावण उनका अपना है, किन्तु मै पराया हूँ। हे शंकर, युद्ध क्षेत्र में महाशक्ति का यह बड़ा की विचित्र खेल रहा है। आज रणक्षेत्र में मैने ऐसे तीक्ष्ण बाणों के समूह को छोड़ा जिनमें समग्र विश्व को नष्टकरने की क्षमता थी। किन्तु मेरे वे शक्तिशाली बाण विफल हो गये, क्योकि रावण पर महाशक्ति की छत्र–छाया थी। राम पुनः कहते है कि मेरे बाणों में अपार शक्ति का संचय है; दूसरे इन पर अखिल सृष्टि की रक्षा का भार है। इनमें पाप का संहार करनेवाली अपार संस्कृति तथा पूर्णरूप से शुद्ध ज्ञान के भाव भरे हुए है। इन बाणों में मेरे मन का सूक्ष्म विवके भरा हुआ है तथा इन पर क्षात्र–धर्म का रूप भी मण्डित है। इनमें राजाओं का सा संयम है, फिर भी महाशक्ति के विचित्र समर–खेल के कारण मेरे ये शक्तिशाली बाण आज विफल और खण्ड–खण्ड हो गये।

विशेष – 1. अलंकार (1)वीप्सा–शंकर–शंकर

(2) विरोधाभास–रावण अधर्मरत भी अपना, संस्कृति सम्पूर्ण विजित।

(3) पुनरुक्तिप्रकाश–बार–बार

(4) विशेषोक्ति की व्यंजना

"धिक जीवन .... भाव प्रमन ।

शब्दार्थ – शोध–खोज, प्रयत्न,दैन्य–हीनता, विवशता ।

संन्दर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए राम महाशक्ति की मौलिक कल्पना करते है। वह एक सौ आठ कमलपुष्प मँगाकर उनका जाप करते हैं। राम ने जाप को पूरा करने के लिए अन्तिम नीलकमल को उठाने के उद्देश्य से जब अपना हाथ बढ़ाया तो उन्होंने देखा कि माँ दुर्गा स्वयं प्रकट होकर उस अन्तिम नीलकमल को उठाकर ले गई। अपनी आराधना के अन्तिम चरण में इस प्रकार का व्यवधान देखकर राम का निराश मन और भी दुःखी हो जाता है। राम के निराश मन की उसी भग्नावस्था का चित्रण निराला ने किया है।

व्याख्या – महाशक्ति को प्रसन्न करने के लिए राम द्वारा अर्चना करते समय महाशक्ति के प्रतिकुल कार्य को देख राम मन ही मन कहने लगे कि मेरे इस जीवन को धिक्कार है जिसे हर समय विरोध का सामना करना पड़ा है। मेरे वे सभी साधन धिक्कार हैं, जिनके लिए मैने निरन्तर खोज की। मेरा सारा जीवन उन साधनों की खोज में लगा रहा, किन्तु मुझे कुछ भी न मिला। हे सीता, मेरे जीवन को सदा ही धिक्कार है कि मै अधर्मी रावण के बन्धन से तुम्हें मुक्त न करवा सका।

निराला कहते है कि इस अन्तिम इन्दीवर को न खोज सकने के कारण राम का मन यद्यपि अत्यन्त दुःखी और निराश था, किन्तु उनका एक मन और भी था जो इस न्याय–अन्याय के संघर्ष में नहीं हारा था। उनका यह मन न तो दीनता ही जानता था और न ही कभी पराजय सवीकार कर सकता था। राम का वही मन माया के अवतरण को भेद कर ऊपर उठ गया। कि राम का बाह्य मन भले ही निराश हो गया था, किन्तु वे अपने अन्तर मन (बुद्धिमानस) से सदैव सतर्क थे।

विशेष – 1. अलंकार– (1) अनुप्रास, (2) अतिशयोक्ति , (3) रूपक

2. राम के रूप में निराला का व्यक्तिगत संघर्ष मुखर हुआ है।

3. उक्त पंक्तियों में स्वयं निराला का व्यक्तिगत संघर्ष भी परिलक्षित हो रहा है।

4. राम अभय और अजेयता के प्रतीक हैं, बावजूद इसके उनका सशंकित होना, मानवीय दुर्बलताओं की ओर संकेत करता हैं। जहां राम है वहां भय नहीं, वहां पराजय नहीं।

कहा है – 'यत्र रामो भयं नास्ति, नास्ति तत्र पराभवः' ।

12.6 सारांश

इस इकाई के माध्यम से छायावाद के सबसे चर्चित और मौलिक कवि 'निराला' और उनकी महाकविता 'राम की शक्तिपूजा' से संबंधित सामग्री प्रस्तुत की गई। प्रस्तुत अध्ययन को संक्षेप में निम्नवत् रखा जा सकता है–

- निराला छायावाद के ऐसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं, जो सबसे अलग अपनी विभिन्न विशेषताओं के कारण, अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं।
- निराला छायावादी घेरे में रहते हुए भी, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की भूमिका और आधारशिला तैयार करनेवाले कवि हैं।
- निराला के परवर्ती कवि उनसे विभिन्न रूपों में प्रभावित रहे हैं।
- निराला अपनी कविताओं में नवीनता एवं मौलिकता के वाहक हैं।
- किसी भी परंपरागत बंधनों को स्वीकार न करनेवाले निराला हिंदी कविता में 'मुक्तछंद' के प्रणेता हैं।
- 'सरोज' स्मृति जैसी कविता रचकर निराला ने हिंदी को प्रथम शोकगीत दिया है।
- 'राम की शक्ति पूजा' जैसी विश्वस्तरीय महाकविता रचकर निराला ने आधुनिक हिंदी कविता को अनुपम भेंट दी है।
- 'राम की शक्ति पूजा' लंबी कविताओं की भूमि का प्रस्तुत करती है।
- 'राम की शक्तिपूजा' की रस योजना, उसका सुगठित कथानक, महान बिंबालेखन, श्रेष्ठ प्रतीकात्मकता आदि विशेषताएँ उसे श्रेष्ठ रचना घोषित करती हैं।
- 'राम की शक्ति पूजा' जैसे प्रखर – प्रोज्वल कविता निराला को विश्वस्तरीय कवि बनाने में सक्षम है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. निराला की साहित्य साधना (दो भाग) – डॉ. रामविलास शर्मा।
2. प्रसाद, निराला और पंत : अधुनातन आकलन – डॉ. रामप्रसाद मिश्र।
3. हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी।
4. क्रांतिकारी कवि निराला– डॉ. बच्चन सिंह।
5. विश्वकवि निराला – बुद्धसेन निहार।
6. 'निराला' – डॉ. रामविलास शर्मा।

12.8 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

छायावादी कवियों में निराला का महत्त्व एवं स्थान निर्धारित कीजिए।
निराला एवं उनके काव्य का परिचय दीजिए।
निराला काव्य की प्रमुख विशेषताओं को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
'राम की शक्ति पूजा' का काव्य सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।
राम की शक्ति पूजा की विशेषताएं उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

निराला की प्रमुख रचनाओं का परिचय दीजिए।
निराला के काव्य व्यक्तित्व पर एक लघुलेख लिखिए।
निराला काव्य की तीन प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।
'राम की शक्ति पूजा' का संक्षिप्त आलोचनात्मक परिचय दीजिए।
'राम की शक्ति पूजा' में प्रमुख रसों का विवेचन कीजिए।
'राम की शक्ति पूजा' कविता की कथा का सार संक्षेप लिखिए।
'राम की शक्ति पूजा' में बिंब एवं प्रतीक स्पष्ट कीजिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

निराला को 'निराला' नाम किसने दिया ?
निराला किस पत्रिका के संपादक थे ?
निराला की पहली मुक्तछंद कविता कौनसी है ?
निराला की कविता 'जूही की कली' को किसने छापने से मना कर दिया था ?
निराला के मुक्तछंद को आलोचकों ने क्या नाम दिया ?
निराला का प्रथम कविता संग्रह कौन–सा है ?
निराला की सबसे ओजस्वी रचना कौन–सी है ?
'राम की शक्ति पूजा' किस श्रेणी की रचना है ?
निराला की 'आत्मपरक कविता' कौनसी है ?
निराला का दर्शन क्या है ?
निराला का दार्शनिकता सम्पन्न काव्यसंग्रह कौनसा है।
निराला ने अपने छंदों को क्या नाम दिया ?
निराला काव्य के सबसे प्रामाणिक आलोचक कौन हैं ? निराला पर लिखी उनकी पुस्तक का भी नाम लिखें।

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई–13 रामधारीसिंह 'दिनकर'

संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 दिनकर : एक परिचय
13.3 दिनकर का काव्य सौष्ठव
13.3.1 प्रेम भावना
13.3.2 स्वदेशप्रेम की भावना
13.3.3 क्रान्ति की भावना
13.3.4 नारी गौरव की महत्ता
13.3.5 द्वन्द्व का चित्रण
13.3.6 प्रकृति चित्रण
13.3.7 रस निरूपण
13.3.8 भाषा सौष्ठाव
13.3.9 अलंकार योजना
13.3.10 छन्दविधान
13.4 दिनकर और कुरुक्षेत्र
13.5 कुरुक्षेत्र का तृतीय सर्ग
13.6 कुरुक्षेत्र की राष्ट्रीय भावना
13.7 युधिष्ठिर का चरित्र चित्रण
13.7.1 विचारशील व्यक्ति
13.7.2 पश्चात्ताप
13.7.3 अन्तर्द्वन्द्व
13.7.4 विश्वशान्ति और प्रेम के पुजारी
13.7.5 आत्मविश्वास
13.8 पितामह भीष्म का चरित्र चित्रण
13.8.1 अपार शक्ति
13.8.2 सच्चे उपदेशक
13.8.3 पश्चात्ताप
13.8.4 अन्तर्द्वन्द्व
13.8.5 कोमल भावों का हनन
13.8.6 कर्मयोगी
13.8.7 महानता
13.9 व्याख्या खंड
13.10 सारांश
13.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें
13.12 अभ्यास प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

"ज्योतिर्धर कवि मैं ज्वलित सौर–मण्डल का,
मेरा शिखण्ड अरुणाभ, किरीट अनल का।
रथ में प्रकाश के अश्व जुते हैं मेरे,
किरणों में उज्ज्वल गीत गूँथे हैं मेरे।" – दिनकर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रामधारीसिंह 'दिनकर' आधुनिक हिन्दी कविता के प्रखर प्रोज्वल कवि हैं। उनका स्वाध्याय, चिन्तन–चैतन्य और काव्य उन्हें आज के सर्वोच्च कवियों की पंक्ति में भी प्रतिष्ठित करता है। जो ओजस्विनी–माधुर्य–मनीषा उनके व्यक्तित्व में थी वहीं उनकी कविता में अवतीर्ण हुई है। दिनकर ने मानव को जागरण और कर्म का संदेश दिया; इसीलिये वे जन – प्रतिनिधि कवि हैं।

कुरुक्षेत्र के माध्यम से कवि ने युद्धनीति और धर्मनीति को तत्कालीन परिस्थितियों में प्रासंगिक बनाकर प्रस्तुत किया है। भीष्म के माध्यम से दिनकर ने सिर्फ अपनी ही नहीं सम्पूर्ण राष्ट्र, की भावनाओं को प्रकट कर दिया है। राष्ट्रीय चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति के कारण कुरुक्षेत्र बहुत महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक रचना है, जिसका विवेचन विश्लेषण यहां अपेक्षित है।

राष्ट्रीय कवि दिनकर एक ओजपूर्ण कवि हैं। उनके हृदय से क्रांति व विद्रोह का जो स्वर निकला है, वह अभूतपूर्व है। वह कोमलकांत गीति विहग नहीं हैं, न ही उनकी कविता में माधुर्य व प्रसाद गुण की प्रधानता है, बल्कि उनकी कविता में ओज गुण की प्रधानता है।

कवि दिनकर की इस विद्रोही भावना का श्रेय तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन एवं स्वतंत्रता संग्राम को जाता है। दिनकर का समय पराधीनता, निराशा व व्यक्तित्व वाद का युग था। जनता को फिर से नवीन चेतना प्रदान करने की आवश्यकता थी। देश के हित के लिये, उस पर बलिदान करनेवालों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी। दिनकर ने इस कार्य को करने के लिये अपनी समस्त शक्ति व प्रतिभा व्यय कर दी। उन्होंने जो भी गीत गाये, उनमें विदेशियों के प्रति व तात्कालिक सामाजिक स्थिति के प्रति गहरी अशांति थी। वह उस परम्परा को बदल देना चाहते थे। अतः उनका विद्रोहात्मक रूप परिस्थिति की भी देन थी। वह स्वयं भी कहते हैं –

'अपने समय की धड़कन सुनने को जब भी मैंने देश के हृदय से कान लगाया, मेरे कान में किसी बम्ब के धड़ाके की आवाज आती, फांसी के झूले पर झूलनेवाले किसी नौजवान की पुकार आती है अथवा मुझे दर्द भरी ऐंठन की यह आवाज सुनाई देती जो गांधी जी के हृदय मे चल रही थी, जो उन सभी राष्ट्र नायकों के हृदय में चल रही थी जिनसे बढ़कर मैं किसी को श्रद्धेय नहीं समझता था।'

देश प्रेम की भावना तो दिनकर में सर्वप्रथम है। यही कारण है कि दिनकर को राष्ट्रीय कवि कहा जाता है। दिनकर अपने राष्ट्र के अतीत के गौरवान्वित इतिहास से भली–भांति अवगत हैं। अपने पूर्वजों के बलिदानों व शौर्य से वह चमत्कृत हैं। अतः आज की सोई हुई भारतीय सन्तान को उनके पिता–पितामही का स्मरण कराकर दिनकर एक नई प्राण शक्ति भरते हैं। देश की सोई हुई जन – चेतना को वह फिर से जगाने का प्रयास करते हैं। एक तरह से उन्होंने राष्ट्रीय गौरव को पुर्नजाग्रत किया है। कवि एक तरफ विज्ञान के बढ़ते हुए चरण, उसकी प्रगति व उन्नति का वर्णन करता है–

'यह समय विज्ञान का सब भांति पूर्ण, समर्थ,
खुल गये हैं गूढ़ संसृति के अमित गुरु अर्थ।
चीरता तम को, संभाले बुद्धि की पतवार,
आ गया है ज्योति की नव भूमि में संसार।'

दिनकर क्रांतिकारी स्रष्टा हैं। दिनकर की कविता ठुमुक–ठुमुक कर नहीं चलती, वरन् सपाट दौड़ती है। उनकी वाणी में भर्रायापन और मिमियाना नहीं है, वरन् प्रभावोत्पादक ढंग से, पौरुष का सिंहनाद है। समाज के शोषितों और दलितों के प्रति हार्दिक सहानुभूति है। उसमें कल्पना की रंगीन तितलियों को पकड़ने या आकाश कुसुम तोड़लाने का प्रयास नहीं है, बल्कि भूख और रोटी की बात है, पेट की दहकती आग है। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आक्रोश का विद्रोही स्वर है। सामाजिक क्रूरता, असन्तुलन और उछृंखलता कवि को सहन नहीं। उनकी कविता मदभरे यौवन की इतनी प्यासी नहीं, जितनी दुर्बल प्राणियों की नस–नस में चिंगारी फूँक देने के लिये लालायित है। वह अपने गीत से सुप्त आत्माओं को झकझोर देना चाहता है–

'दो आदेश फूँक दूँ श्रृंगी,
उठे प्रभाती राग महान ...
.... जागें, सुप्त भुवन के प्राण।'

कवि ने युद्ध की निरर्थकता बताई है। 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य में बड़ी स्पष्ट वाणी में उन्होंने कहा है–

'सच है मनुज बड़ा पापी है, नर का वध करता है।
पर भूलो मत, मानव के हित, मानव ही मरता है।'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इसी प्रकार से कवि युद्ध के भीषण परिणामों पर विचार करता है –
'युद्ध का परिणाम,
युद्ध का परिणाम ह्रास–त्रास।

कवि ने इस युद्ध की सम्भावनाओं को समाप्त कर देने के लिये समता की भावना की आवश्यकता बताई है। समाज में समानता का भाव आ जाने से, त्याग व प्रेम की प्रधानता होने से युद्ध की सम्भावनायें मिट जायेंगी। कवि की यही मंगल कामना है कि –

'त्याग, तप, करुणा, क्षमा से भीग कर,
व्यक्ति का मन तो बली होता मगर।'

इसी प्रकार दिनकर कहते हैं –

'साम्य की वह रश्मि स्निग्ध उदार,
कब खिलेगी, कब खिलेगी, विश्व में भगवान,
जब तक मनुज–मनुज का यह,

× × ×

संघर्ष नहीं कम होगा।'

13.1 उद्देश्य

यह इकाई आधुनिक हिंदी कविता में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के समर्थक प्रखर राष्ट्रवादी कवि दिनकर एवं उनकी अतीव महत्त्वपूर्ण रचना कुरुक्षेत्र से संबंधित अध्ययन प्रस्तुत करती है, जिसका उद्‌देश्य दिनकर काव्य का समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत करना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- दिनकर की प्रखर राष्ट्रीय चेतना से परिचित हो सकेंगे।
- राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा में दिनकर के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- दिनकर के काव्यस्वरूप से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- दिनकर की कविताओं के आलोक में उनके काव्य सौंदर्य को जांच – परख सकेंगे।
- दिनकर की महत्त्वपूर्ण रचना 'कुरुक्षेत्र' की काव्यगत विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- दिनकर काव्य में व्यक्त राष्ट्रीय भावना से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- 'कुरुक्षेत्र' का मूल्यांकन करते हुए युधिष्ठिर और भीष्म की चारित्रिक विशेषताओं से अभिज्ञ हो सकेंगे।
- 'कुरुक्षेत्र' के तृतीय सर्ग की महत्ता को समझ सकेंगे।
- तृतीय सर्ग के महत्त्वपूर्ण अंशों की व्याख्याएं स्पष्ट कर सकेंगे।
- दिनकर और कुरुक्षेत्र का समग्र मूल्यांकन कर सकेंगे।

13.2 दिनकर : एक परिचय

राष्ट्रभक्त, विचारक व वीरकवि दिनकर वर्तमान काल के ओजस्वी कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। इनका व्यक्तित्व बड़ा ही सजग व अनोखा है। उनका युग छायावाद के ह्रास एवं प्रगतिवाद के उदय का युग था। अतः दोनों की मिली–जुली प्रवृत्तियां दिनकर के काव्य में उपलब्ध हो जाती हैं। दिनकर एक बहुत बड़े विचारक व गतिशील कवि हैं। उनकी भाषा में ओज, कथावस्तु की परम्परा का सांस्कृतिक गौरव, अनुभूति में तीव्र असंतोष की वेदना, आत्माभिव्यक्ति में तीखापन व प्रखरता, विचारवस्तु में विवेक की युगधर्मिणी सजगता और सतर्कता, कला में जनवादी सहजता – ये सब मिलकर जिस काव्य स्वरूप की झांकी प्रस्तुत करते हैं, हिन्दी कविता में दिनकर का बहुत कुछ वैसा ही कृतित्व है। वास्तव में दिनकर की कविता में सिंह का घनघोर नाद है। उनका काव्य निरन्तर गतिशील रहा है, वह किसी भी स्थान पर आकर रुके नहीं। उनकी कविताओं में शिव का सा ताण्डव नृत्य व प्रलयकारी निनाद है। वह समाज एवं राष्ट्र के लिये कोई नवीन वातावरण तैयार करना चाहते थे, जिसकी तलाश में वह निरन्तर व्यस्त रहे।

कवि दिनकर का भावपक्ष व कलापक्ष अपने युग की परम्पराओं, विचारधाराओं व प्रवृत्तियों से प्रभावित था। दिनकर की प्रमुख रचनाओं में 'रेणुका', 'हुंकार', 'रसवन्ती' तथा 'कुरुक्षेत्र' आदि प्रसिद्ध हैं। कविवर दिनकर ने कहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तो शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रकट की है, कहीं पर इस सामाजिक व्यवस्था को बदल देने का गम्भीर घोष किया है, कहीं पर विज्ञान के चमत्कार व युद्ध सम्भावनाओं पर प्रगति गीत लिखे हैं, तो कहीं अपनी श्रद्धेय जन्मभूमि के प्रति अपने भावकुसुम अर्पित किये हैं। इस प्रकार दिनकर की कविता तीन महत्त्वपूर्ण युगों से होकर गुजरी है – छायावाद, प्रगतिवाद व प्रयोगवाद। उनकी काव्य रचनाओं पर इन सभी वादों की न्यूनाधिक छाप है। फिर भी उनके काव्य में छायावाद की अति भावुकता, प्रगतिवाद की राजनैतिक संकीर्णता और प्रयोगवाद की कुन्ठाग्रस्त कृत्रिमता देखने को नहीं मिलती। इस प्रकार युगपन्थों के महत्त्वपूर्ण प्रभावों से अपने काव्य की शैलीगत और भावगत विशेषताओं के स्वरूप को अक्षुण्ण रखते हुए जो विचारपूर्ण गतिशीलता दिनकर के काव्य में प्रारम्भ से अब तक विद्यमान है, वह कवि के सजीव व्यक्तित्व का प्रमाण है, जो विरोधों से भी शक्ति ग्रहण कर रचनात्मक व निर्माणात्मक कार्यों में व्यस्त रहता है। दिनकर की कविताओं में विस्फोट की चिन्गारी है। उसमें जन–मन को जगा देने की अदम्य शक्ति है।

कवि वैज्ञानिकों की बुद्धि से विस्मित है। आज का संसार भौतिक साधनों से पूर्णतया समर्थ है। प्रकृति के प्रत्येक कण–कण पर व्यक्ति का शासन है। प्रकृति आज उसकी क्रीत दासी है। कवि दिनकर 'अभिनव मनुष्य' में कहते हैं–

'आज की दुनिया विचित्र नवीन,
प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन
और करता शब्द गुण अम्बर वहन संदेश
नव्य नर की मुष्टि में विकराल
है सिमटते जा रहे प्रत्येक क्षण दिक्काल।'

लेकिन दिनकर कहते हैं कि आज के इस बौद्धिक मानव में केवल बौद्धिक विकास मात्र है। वह बुद्धि का नीरस व हृदयहीन पुतला है। कवि उस कारण एवं रहस्य को प्रस्तुत करता है, जिसके कारण आज का मानव उदास है। इतनी प्रगति करने पर भी वह असन्तुष्ट है। इतना विकास कर लेने के बाद भी वह पशु है–

'यह मनुज ज्ञानी, शृंगालों, कुक्कुरों से हीन,
हैं, किया करता अनेकों क्रूर कर्म मलीन।

× × ×

इस मनुज के हाथ से विज्ञान के फूल,
वज्र होकर छूटते शुभ धर्म अपना भूल।'

आज के इस मानव में हृदय व बुद्धि का संयोग नहीं है। हृदय से अधिक बुद्धि का शासन है। यही उस असन्तोष का कारण है। कवि हृदय की महत्ता बताते हुए कहता है–

'चाहिये उनको न केवल ज्ञान,
देता है मांगते कुछ स्नेह, कुछ बलिदान।

× × ×

प्राण के झुलसे विपिन में फूल कुछ सुकुमार,
ज्ञान के मरु में सुकोमल भावना की धार।'

इसलिये कवि देश में क्रांति की भावना भरना चाहता है, जैसे निराला भी सामाजिक व्यवस्था को समूल नष्ट करने के पक्षपाती हैं, वैसे ही कवि दिनकर भी देश के इस असंतुलन को नष्ट–भ्रष्ट करना चाहते हैं। वह जिस उत्साह से क्रांति की बात कहते हैं, वह दर्शनीय है–

'कह दो शंकर से आज करें,
वे प्रलय नृत्य फिर एक बार ...
हर हर का फिर नहोच्चार'

कवि दिनकर नारी की दुर्बलता व परवशता पर भी प्रकाश डालते हैं। वह प्रगतिवाद से प्रभावित हैं। अतः उन्होंने 'राजा रानी' कविता में बसन्त और वर्षा को स्त्री और पुरुष का प्रतिरूप देकर पुरुष के द्वारा किये अनैतिक आचार पर प्रकाश डाला है। बसन्त के बहाने से उन्होंने पुरुष की विलासप्रियता, हृदयहीनता, निष्ठुरता और कामुकता पर व्यंग्य किया है, तो नारी की कोमलता, सरलता, दया व सहिष्णुता का चित्र खींचा है। कवि दिनकर कहते हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'राजा बसन्त, वर्षा ऋतुओं की रानी,
लेकिन दोनों की कितनी भिन्न कहानी,
राजा के मुख में हँसी, कण्ठ में माला,
रानी का अनन्तर विकल, दृगों में पानी।'

दिनकर ने 'नील कुसुम' में समाज के आर्थिक असन्तुलन पर आक्रोश प्रकट किया है। उन्होंने पूंजीपतियों को धिक्कारा, उनकी भरपूर आलोचना की। उन्होंने कहा –

'श्वानों को मिलता दूध वस्त्र भूखे बालक अकुलाते हैं,
मां की हड्डी से चिपक–ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।
युवती के लज्जा बसन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते हैं,
मालिक तब तेल–फुलेलों पर, पानी सा द्रव्य बहाते हैं।

कवि दिनकर आशावादी हैं। उनमें विद्रोह, निराशा व वेदना के स्वर के साथ कोमल भावनायें भी हैं। आशा का दीप उनकी आत्मा में सर्वदा जलता ही रहा है। उनको इस ज्ञान का केन्द्र मनुष्य से यह आशा है कि वह एक दिन अवश्य ही साम्यवाद लायेगा। धरती प्रेम व न्याय से सिहर उठेगी। क्रोध व द्वेष की आग उस शीतल जल धारा से बुझ जायेगी और आज का वह दानवी व बौद्धिक मानव द्रवीभूत हो उठेगा। कवि कहता है – 'लोहे के पेड़ हरे होंगे, तू गाना प्रेम का गाता चल,

नम होगी यह मिट्टी जरूर, आँसू के कण बरसाता चल।

सबसे प्रमुख भावना जो दिनकर के काव्य में मिलती है– वह है राष्ट्रीयता की भावना। कवि राष्ट्र की बलि वेदी पर सब कुछ न्यौछावर करना चाहता है। कवि दिनकर पर माखनलाल चतुर्वेदी व मैथिलीशरण गुप्त का काफी प्रभाव पड़ा था।

दिनकर ने अनेक श्रद्धाकुसुम समर्पित किये। वे 'पाटलीपुत्र' की गंगा को सम्बोधित करके कहते हैं–

'तुझे याद है ! चढ़े पदों पर, कितने जय सुमनों के हार।
कितनी बार समुद्रगुप्त ने, धोई है तुझमें तलवार।'

× × ×

'विजय चन्द्रगुप्त के पद पर, सैल्यूकस की वह मनुहार।
मुझे याद है देवि ! मगध का वह विराट उज्ज्वल श्रृंगार।'

वास्तव में दिनकर का भावपक्ष बड़ा सबल है। उसमें विविध प्रकार के विषय व रस हैं। दिनकर का काव्यक्षेत्र बहुत व्यापक व दीर्घ है। उसमें अनेक प्रकार के रसों की धारायें हैं। कहीं श्रृंगार, कहीं वीर रस, कहीं रौद्र रस, कहीं भयानक, तो कहीं शांत रस। इसके अतिरिक्त विषयों में कहीं देश प्रेम, कहीं करुण वेदना का स्वर, कहीं दार्शनिक व चिन्तन प्रधान उक्तियाँ, तो कहीं दलितों के प्रति तीव्र सहानुभूति।

भाषा शैली – दिनकर की भाषा अत्यन्त सजीव, सरस व भावानुकूल है। वह निरन्तर विषयानुकूल परिवर्तित होती रही है। भाषा के क्षेत्र में दिनकर एक सफल कलाकार हैं। उनकी भाषा शुद्ध खड़ीबोली है। उसमें संस्कृत तत्सम शब्दों की बहुलता है। भगवतीचरण वर्मा का यह कथन है कि 'दिनकर हमारे युग के यदि एकमात्र नहीं तो सबसे प्रतिनिधि कवि हैं।'

दिनकर अभिव्यक्ति के मामले में स्वच्छन्द हैं। उनके काव्य का साध्य भाषा या शैली नहीं है, बल्कि यह तो विषय की अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। यही कारण है कि उन्होंने अपने कलापक्ष को सजाने व संवारने में अधिक समय व्यतीत नहीं किया। अधिकांशतः उसके सहज अंकन में ही उन्होंने विश्वास किया है। ऊपर से देखने पर 'रेणुका', 'हुंकार', 'कुरुक्षेत्र', 'रसवन्ती' , 'नीलकुसुम' और 'उर्वशी' की भाषा एक सी नजर आती है, लेकिन इन काव्यों के भाव स्वरों की आन्तरिक दृष्टि से भाषानुकूल भाषा शिल्प का प्रयोग अलग–अलग स्तरों पर हुआ है। कवि की भाषा में विषयानुकूल तीव्रता व प्रवाहमयता है।

कवि दिनकर ने जिन अलंकारों का प्रयोग किया है, वे सहजता व स्वाभाविकता लिये हुए हैं। उनके अलंकारों में बोझिलता नहीं है। वे विषय को सुगम व सरल बनाते हैं, साथ ही अलंकृत भी। भाषा, शैली व अलंकारों तीनों पर ही कवि दिनकर का अद्भुत अधिकार है। अलंकारों से उनकी शैली दुरूह नहीं बनी है। कवि ने परम्परागत अलंकारों, जैसे – उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, समासोक्ति, रूपकातिशयोक्ति इत्यादि अलंकारों का सफल प्रयोग किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

'बुद्धि में नभ की सुरभि, त्न में रुधिर की कीच,
वह वचन दे देवता पर, कर्म से पशु नीच।'

कवि की भाषा में प्रतीकात्मकता का गुण भी है। 'लोहे के पेड़े हरे होंगे' में लोहे से तात्पर्य नीरस बुद्धि और हरे से तात्पर्य प्रेम रूपी सरस जल है। कवि ने प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग करके अपनी भाषा को गम्भीर बनाया है–

लोहे के पेड़े हरे होंगे, तू गीत प्रेम के गाता चल,
नम होगी यह मिट्टी जरूर, आंसू के कण बरसाता चल।'

छन्दों की दिशा में भी कवि ने नवीन – नवीन प्रयोग किये हैं। वह केवल परम्परागत छन्दों में ही बंध कर नहीं चले हैं, वरन् विषयानुकूल तुकांत व अतुकांत छन्दों का निर्माण करते रहे हैं। मौलिकता व नवीनता से कवि ने काम लिया है। उनके छन्दों में संगीतात्मकता, प्रवाहमयता व लयात्मकता रहती है।

वास्तव में दिनकर का व्यक्तित्व व कृतित्व अनोखा है। उसमें धरती पुत्र का–सा विश्वास व दृढ़ता, दार्शनिक की–सी विचारमयता और अनुभूति की प्रवणता है। दिनकर सच्चे अर्थों में हमारे राष्ट्रकवि हैं।

13.3 दिनकर का काव्य सौष्ठव

दिनकर जी भावुक कवि हैं। उन्होंने लिखा है – ''भावुकता साहित्यकार का सबसे बड़ा गुण है, बल्कि यह कहना चाहिये कि उचित मात्रा में इस गुण के हुये बिना कोई व्यक्ति कवि नहीं हो सकता।''

दिनकर काव्य में निम्नलिखित भावपक्षीय विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं –

13.3.1 प्रेम भावना

दिनकर पैदाइशी रोमेंटिक कवि हैं। रोमेंटिक कवि प्रेम और सौंदर्य का उपासक होता है। 'उर्वशी' दिनकर की प्रेमभावना की अभिव्यक्त करनेवाला उत्कृष्ट काव्य – नाटक है। दिनकर प्रेम का प्रारम्भ भौतिकता में तथा उसका परिणाम अध्यात्म में मानते हैं। तभी तो 'उर्वशी' में पुरूरवा कहता है–

''पहले प्रेम स्पर्श होता है, तदन्तर चिन्तन भी
प्रणय प्रथम मिट्टी कठोर है तब वायव्य गगन भी।

प्रेम की खोज में दिनकर ने पाया कि प्रेम की साकार भूमि कोई हो सकती है तो वह नारी है, नारी अर्थात नीर देह। 'उर्वशी' में उन्होंने इसी संवेदना का विस्तार किया है–

''एक ही आशा, मरुस्थल की तपन में
ओ सजल कादम्बिनी ! सिर पर तुम्हारी छाँह है।
एक ही सुख, उर–स्थल से लगा है
ग्रीवा के नीचे तुम्हारी बाँह है।''

13.3.2 स्वदेशप्रेम की भावना

दिनकर सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय कवि हैं। उनका स्वदेश–प्रेम अत्यन्त उदात्त है। 'हुँकार', 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' दिनकर के वीर – काव्य हैं, जिसमें दिनकर का उफनता हुआ उत्साह दिखाई पड़ता है। 'हिमालय' शीर्षक कविता में दिनकर का राष्ट्र–प्रेम इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ है–

''तू पूछ अवध से राम कहाँ,
वृन्दा बोलो घनश्याम कहाँ ?
ओ मगध ! कहाँ मेरे अशोक,
वह चन्द्रगुप्त बलराम कहाँ ?''

दिनकर अपने देश का झुका हुआ मस्तक नहीं देख सकते–

''नहीं जीते जी सकता देख,
विश्व में झुका तुम्हारा भाल।
वेदना मधु का भी कर पान,
आज उगलूँगा गरल कराल।।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.3.3 क्रान्ति की भावना

दिनकर युगान्तरकारी एवं क्रान्तिकारी कवि हैं। उनकी कविता में क्रान्ति की ज्वालामुखी धधक रही है। 'हुंकार' में दिनकर क्रांति के ज्योतिवाहक नेता है। उनकी आँखें करुणासिक्त हैं और उनकी आत्मा चित्कारों से भरी हुई है–

> ''भर गया ऐसा हृदय दुःख दर्द से
> फेन या बुद्बुद् उसमें नहीं उठता।''

13.3.4 नारी–गौरव की महत्ता

दिनकर ने 'वट – पीपल' के एक लेख में कहा है – ''...... नारी के गोचर रूप के भीतर एक और रूप है जिसका साक्षात्कार किये बिना नारीत्व का सही साक्षात्कार नहीं हो सकता।'' दिनकर नारी – देह को वासना की वस्तु नहीं समझते। उनके लिये नारी प्रकृति का मनोहर चित्र है, उसका सौंदर्य निष्कलुष है–

> ''ये नवनीत कपोल, गुलाबों की जिनमें लाली खोई।
> यह नलिनी – सी आँख, जहाँ काजल बन मधु अलिनी सोई।।
> कपोल–से अधरों को रंगकर कब वसन्त कर धन्य हुआ।
> किस विरही ने यह तन की धवलिमा आँसुओं से धोई ?''

13.3.5 द्वन्द्व का चित्रण

दिनकर मूलतः द्विधा के कवि हैं। डॉ. नगेन्द्र ने कहा है – ''दिनकर द्वन्द्व का कवि है, समाहिति का नहीं।'' 'उर्वशी' में मनुष्य के द्वन्द्व का बेजोड़ चित्रण हुआ है –

> ''दृष्टि का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है।
> रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है।''

किन्तु मनुष्य के मन का पशु अपनी बर्बरता के साथ जाग उठता है –

> ''रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं तो और क्या है ?
> स्नेह–सौंदर्य का उपहार रस–चुम्बन नहीं तो और क्या है ?''

13.3.6 प्रकृति–चित्रण

दिनकर के काव्य में प्रकृति–चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। 'उनके प्रकृति – वर्णन में छायावाद और रहस्यवाद की झलक है।

13.3.7 रस–निरूपण

दिनकर के साहित्यिक व्यक्तित्व का निर्माण 'रति' और 'उत्साह' के मिलन–बिन्दु पर हुआ। अतः उनकी कविताओं में श्रृंगार और वीर रस की प्रधानता है। वैसे स्थान–स्थान पर अन्य रस भी मिलते हैं। 'कुरुक्षेत्र' और 'हुँकार' वीर रस की कृतियाँ हैं, जबकि 'रसवन्ती' और 'उर्वशी' श्रृंगार रस की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। संयोग श्रृंगार का एक चित्र 'उर्वशी' में देखिये–

> श्रृति पुट पर उत्तप्त श्वास का स्पर्श और अधरों पर।
> रचना की गुदगुदी, अदीपित निशा के अंधियाले में।
> रसमाती, भटकती अंगुलियों का संचरण त्वचा पर।

वीर रस का एक उदाहरण –

> ''दहक रही मिट्टी स्वदेश की,
> खौल रहा गंगा का पानी।
> प्राचीरों में गरज रही है,
> जंजीरों में कसी जवानी।''

कला–पक्ष की दृष्टि से दिनकर के काव्य का अत्यन्न समृद्ध एवं प्रौढ़ है, उनकी काव्यभाषा, शैली और शिल्प निजी है। उनके काव्य में निम्नलिखित कला–पक्षीय सौंदर्य विद्यमान हैं–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.3.8 भाषा सौष्ठव

दिनकर ने अपने काव्य में शुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली का प्रयोग किया है। तत्सम शब्द प्रधान दिनकर की भाषा भावों और विचारों की अभिव्यंजना में पूर्णतः सक्षम है। आपकी भाषा में बोधगम्यता, ओजपूर्णता एवं प्रवाहात्मकता जैसे गुण विद्यमान हैं। संस्कृत में शुद्ध तत्सम शब्दों के साथ ही आपने अंगरेजी, उर्दू, फारसी, देशज एवं तद्भव शब्दों का भी प्रयोग किया है। भाषा में अर्थ गाम्भीर्य उत्पन्न करने के लिये मुहावरों का प्रयोग भी किया गया है।

13.3.9 अलंकार–योजना

दिनकर का विचार है – "मैं अलंकारों के महत्त्व को नहीं भूल सकता क्योंकि अलंकारों ने काव्य – कौशल के बहुत से ऐसे भेद खोले हैं, जो अन्यथा अविशलिष्ट रह जाते।"

दिनकर ने मुख्य रूप से अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। एक उदाहरण अवलोकनीय है–

"काँप रही शंकिता – मृगी – सी वह सिकुड़ी – सिमटी भी,
जी कहता है, अपना पौरुष इज्जत उसे चढ़ा दूं।"

13.3.10 छन्द विधान

दिनकर छंद के क्षेत्र में परम्परा के पोषक रहे हैं, लेकिन फिर भी उन्होंने नवीन छंदों का प्रयोग किया है।

वास्तविकता यह है कि रामधारी सिंह 'दिनकर' द्विव्य प्रतिभा सम्पन्न आधुनिक युग के मूर्धन्य कवि हैं। उनके काव्य में भाव–पक्ष और कला–पक्ष का मणिकांचन संयोग हुआ हैं। इसी विशिष्टता के कारण दिनकर जन कवि हैं।

13.4 दिनकर और कुरुक्षेत्र

'कुरुक्षेत्र की कथा का आधार महाभारत से लिया गया है। कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त हो चुका है। पाण्डवों की विजय हो चुकी है। किन्तु उनकी इस विजय का क्या प्रभाव पड़ा, इस प्रश्न पर विचार करने का किसी को भी अवकाश नहीं है। पाण्डव – पक्ष के सब लोग विजय के आनन्द के नशे में चूर हैं। उन्हें न तो श्मशान से भी भीषण दृश्यवाली युद्धभूमि का स्मरण है न पुत्रहीन माताओं का विलाप ही उनके कानों तक पहुंच रहा है, और न विधवाओं की दर्द–भरी पुकार ही उन तक पहुंचती है। किन्तु एक व्यक्ति ऐसा भी है जो यह सब देख रहा है सुन रहा है और सोच रहा है। देख, सुन तथा सोचकर उसका हृदय करुणाकुल हो उठा। और वह पुकार उठता है – "हे भगवान् ! मैंने यह क्या किया ?"

यह व्यक्ति युधिष्ठिर है । जो यह सोच रहे हैं कि उनकी विजय के पीछे छिपा हुआ ध्वंस कितना दर्दनाक है। यदि वे युद्ध न आरम्भ करते तो यह नाश क्यों होता ? भारत की वीरता तथा पराक्रम का अन्त क्यों होता ? क्यों माताएं पुत्रहीन होतीं और पत्नियां विधवा होतीं ? किन्तु उन्हें अपने इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं मिलता। ये प्रश्न उनके दिल पर निरन्तर आघात करते हैं और जब वे किसी प्रकार अपने आप को इस भीषण आघात से बचा नहीं पाते, तब अर्जुन कहकर भीष्म पितामह के पास आते हैं।

तीसरे सर्ग में हमारे सामने शान्ति की समस्या आती है। इस सम्बन्ध में पितामह कहते हैं कि यह ठीक है कि सभी शान्ति चाहते हैं, कोई भी युद्ध नहीं चाहता, मरना तथा मारना नहीं चाहता, शान्ति को भंग नहीं करना चाहता। किन्तु शान्ति के दो रूप हैं – (1) कृत्रिम शान्ति और, (2) सच्ची शान्ति। कृत्रिम शान्ति वह है जो अन्याय और शोषण के आधार पर खड़ी हैं, और सच्ची शान्ति का आधार – प्रेम तथा अहिंसा हैं।

शासक शक्ति का सहारा लेकर जनता का शोषण करते हैं, उसके अधिकारों को छीन लेते हैं, स्वयं आनन्द से रहते हैं और यह कहते हैं कि शान्ति भंग मत करो। यह मिथ्या शान्ति कब तक चल सकती हैं ? कब तक जनता अपने अधिकारों से वंचित होकर पिसती रह सकती है ? शासकों का अहंकार जैसे–जैसे जनता को कुचलता जाता है, वैसे ही वैसे जनता के मन में शासकों के लिए घृणा तीव्र होती जाती है। पहले तो दबे – दबे अहंकार और घृणा का यह संघर्ष चलता है और फिर क्रान्ति उपस्थित होती है, युद्ध आरम्भ होते हैं। धर्मराज, तुम्हीं बताओ कि इस क्रान्ति का उत्तरदायी कौन है – शासक या जनता, शोषक या शोषित ? स्पष्टतः अन्यायी शासक ही इसके लिए उत्तरदायी है। जब तक समाज में विषमता है, तब तक संसार में सच्ची शान्ति की स्थापना सम्भव नहीं है ! शान्ति के लिए समता आवश्यक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.5 कुरूक्षेत्र का तृतीय सर्ग

कथासार : युद्ध की ज्वाला में भस्म हो चुका संपूर्ण कौरवकुल एवं अपार जनसमूह युधिष्ठिर को अशांत कर देता है। वे निराश – हताश होकर पितामह भीष्म के पास जाते हैं। भीष्म युधिष्ठिर को युद्ध और धर्म नीति बतलाते हैं।

भीष्म पितामह ने धर्मराज से कहा – "ठीक है, युद्ध अच्छा नहीं है। पर अनीति पर आधारित शान्ति क्या जरुरी है ? जिनके हाथों में सत्ता आ जाती है, वह तो शान्ति की दुहाई देगें ही। जहाँ अनीति का राज्य हो और साधु तथा सत्य प्रेमियों को मार दिया जाय, ऐसी शान्ति किस काम की ?

अशान्ति और अनीति से जिनका मन दब रहा हो, उनके चेहरे पर क्रांति के स्पष्ट चिन्ह दिखाई देते है, लेकिन अन्धे सत्ताधारी फिर भी होश में नहीं आते । यदि ऐसी अवस्था में मनुष्य अन्यायी के नाश के लिए तत्पर हो जाए तो कौन युद्ध का दोषी होगा ? क्या महाभारत का युद्ध अचानक ही जल उठा था ? क्या उस युद्ध से पूर्व ही जनता के हृदय में संघर्ष नहीं चल रहा था ? शान्ति वहाँ कैसे हो सकती है, जहाँ विषमतायें लहराती हैं। न्याय के बिना शान्ति कैसे रह सकती है ?

नकली शान्ति तो अपने आप डरा करती है। यदि न्यायोचित अधिकार माँगने से न मिलें तो उन्हें लड़कर भी प्राप्त करना चाहिए। अपने अधिकार के लिए लड़ना पाप नहीं है। यदि तुम्हें मनोबल ही प्रिय था तो वन से वापस क्यों आए थे ? तुम्हारे मनोबल से सुयोधन कब हारा था ? तुम जितने झुकते गए, शत्रु उतने ही और अधिक सिर चढ़ते रहे। विनम्रता से यह हानि हुई। राम ने भी जब बाण चलाया था, तभी सागर ने उन्हें रास्ता दिया था। जहाँ शक्ति नहीं, वहाँ सामर्थ्य किस काम की ? क्षमा के आचरण में जो अपनी कायरता छिपाते है, वे भला आत्म–विश्वास का सुख क्या जान सकते हैं ?

जिनकी भुजाएँ कभी फड़कती नहीं, जिनका स्वाभिमान कभी जागा नहीं वे ही आत्म–बल के भरोसे रहते हैं। जो बैरियों से बदला नहीं ले सकता, वह ही क्षमा का आसरा लेता है। प्रतिशोध का न लेना ही मनुष्य के लिए पाप है। वासना की तृप्ति के लिए युद्ध करना पाप है। किन्तु चोट खाकर भी शान्त रह जाना तो और भी पाप है। अन्यायी युद्ध का कारण होता है या अन्याय को कुचलने वाला ? यदि अन्यायी न हों तो युद्ध क्यों हो ?

धर्मराज, तुम भूलते हो। सारा संसार हिंसा और छल से भरा हुआ है। मैं भी सोचता हूँ कि किस उपाय से मनुष्य भाई–भाई बनकर जीवित रह सकता है ? कैसे सारा संसार प्रेम के बन्धन में बंधा रह सकता है ? किन्तु अभी यह सारा संसार आधी मंजिल भी पार नहीं कर पाया। अभी शान्ति का स्वप्न तो बहुत दूर है। युधिष्ठिर जैसा एकाध होता है, किन्तु सुयोधन जैसे तो बहुत हैं। फिर शान्ति कैसे दृढ़ हो सकती है ? प्रेम भय से नहीं, मन की उमंग से होता है।

कुरूक्षेत्र में अर्जुन ने अशान्ति नहीं फैलाई, वरन् अशान्ति का नाश किया था। उसने अशान्ति पैदा करनेवालों, दूसरे के अधिकारों को छीननेवालों तथा असत्य का प्रचार करनेवालों का ही नाश किया है।

यहाँ कवि यह सिद्ध करता है कि – त्याग और क्षमा के साथ पराक्रम भी अनिवार्य है, अन्यथा त्याग और क्षमा मात्र दिखावा है।

13.6 कुरूक्षेत्र की राष्ट्रीय भावना

'कुरुक्षेत्र' काव्य की मूल समस्या – युद्ध की समस्या है। युद्ध के तूफान में सारे भीतर की शक्ति का नाश हो जाता है, और उस व्यापक नाश के दृश्य को देखकर युधिष्ठिर का हृदय करुणा, क्षोभ तथा निराशा से भर उठता है। यह निराशा युधिष्ठिर को संसार से विरक्त कर देना चाहती है। इस निराशा के कारण युधिष्ठिर का हृदय दुविधा में डूब जाता है और अन्त में पितामह के प्रेरक साहसपूर्ण सन्देश तथा अपने चिन्तन से युधिष्ठिर के मन को ज्ञान की प्राप्ति होती है और वे मानवता के विकास की आशा का दीप जला लेते हैं।

द्वितीय विश्व–युद्ध के अंतिम क्षणों में ही दिनकर जी के सामने युद्ध की समस्या नाच उठी होगी। और उस विश्व–युद्ध के विनाशक प्रभावों ने उन्हें इस समस्या पर और भी तीव्रता से विचार करने की प्रेरणा दी होगी। इस विश्वयुद्ध का सारे विश्व पर कितना घातक प्रभाव पड़ा है, यह सभी जानते हैं।

'कुरुक्षेत्र' का कवि मानवतावादी कवि है, जो सारे संसार को सुखी देखना चाहता है। सारे संसार के सुख में भारत का सुख भी शामिल है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपने राष्ट्र की मंगल–कामना में सारे संसार की मंगलकामना नहीं छिपी रहती है। किन्तु संसार की मंगल–कामना में अपने राष्ट्र की मंगल कामना भी रहती है।

हिन्दी के कवियों की राष्ट्रीयता – उनके विश्व–प्रेम और विश्व–मंगल की कामना में है। उसकी विशेषता का एक कारण है । भारतीय संस्कृति की अविच्छिन्न धारा का सतत् प्रवाह।

'कुरुक्षेत्र' में कुरुक्षेत्र –कालीन भारत की एक समस्या का वर्णन किया गया है। वह समस्या युद्ध की समस्या है। उस युद्ध के पश्चात् भारत ही नहीं, सारा संसार दीन और दुर्बल हो रहा था। उस समय भारत की ही नहीं, सारे संसार की दशा अत्यन्त करुण थी। सारे विश्व को और साथ ही भारत को भी ऐसे साहसी वीरों की आवश्यकता थी जो दीन–दुखियों की सेवा कर सकें, असहाय व्यक्तियों की सेवा कर सकें और लोगों के सुख–दुःख को अपना सुख–दुःख समझ सकें।

पितामह ने जो संदेश युधिष्ठिर को दिया है, वह संदेश प्रत्येक भारतवासी के लिए है। साथ ही वह संदेश विश्व के प्रत्येक मानव को भी उद्‌बोधन देता है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपना व्यक्तिगत सुख–दुःख भूलकर मानवमात्र के कल्याण में लग जाना चाहिए। देश के दुःख को अपना दुःख और देश के सुख को अपना सुख समझना चाहिए–

वह सुख, जो मिलता अंसख्य
मनुजों को अपनाकर
हँसकर उनके साथ हर्ष मे
और दुःख में रोकर।
वह जो मिलता भुजा पंगु की
ओर बढ़ा देने से
कन्धों पर दुर्बल दरिद्र का
बोझ उठा लेने से।

भारत धर्म की भूमि है और बड़ी विशाल है। यहाँ की जनता धर्मप्राण है। धर्म उनके जीवन के प्रत्येक पक्ष में रिस गया। यद्यपि उस धर्म में कुछ रूढ़ियाँ और ग्रन्थियाँ भी आती रहती हैं, किन्तु वे दूर भी होती रहती हैं।

भारत की जनता विदेशी शासन के नीचे पिसती जा रही थी। उसकी इच्छाएँ घुटती जा रही थीं, उसकी आकांक्षाएँ मरती जा रही थीं. उसकी आवाज कुचली जा चुकी थी। उन्हें ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो उनकी आकांक्षाओं को मुखर कर सकें, घुटते जीवन को अभिव्यक्ति दे सके। पितामह के इन शब्दों में भी यही संदेश व्यक्त हो रहा है –

सकृत – भूमि वन ही मही यह
देखो, बहुत बड़ी है।
पग–पग पर सहाय्य हेतु
दीनता विपन्न पड़ी हैं।
इसे चाहिए अन्न, वसन, बल
इसे चाहिए सुदृढ़ चरण–भुज,
इसे चाहिए भाषा।

'कुरुक्षेत्र' के रचना – काल में भारत के लिए दूसरी समस्या – पराधीनता की समस्या है। अँगरेज भारत पर शासन करते हुए उसे चूसते जा रहे थे। उन्होंने भारत का वैभव लूट लिया था। उन्होंने भारतीय संस्कृति को कलंकित करने की चेष्टा की थी। उन्होंने सारे भारत के धन को लूट लिया था। जनता का शोषण करने में उन्होंने कोई कसर न उठा रखी थी।

इतना ही नहीं, वे अपने आप को शान्ति और न्याय का एक रक्षक कहते थे, और साथ ही साथ कहा करते थे कि उनका विरोध कर उस शान्ति को भंग करने का किसी को अधिकार नहीं है और जो कोई उस शान्ति को भंग करता था, आजादी की आवाज उठाता था, उसे जंजीरों में जकड़ कर जेल में ठूंस दिया जाता था।

कवि ने ऐसी शान्ति को 'कृत्रिम शान्ति' कहा है और उस कृत्रिम शान्ति का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक तथा सजीव वर्णन किया है। इस नकली शान्ति के रक्षक तलवार के बल पर उसकी रक्षा करते थे।

और जिन्हें इस शान्ति – व्यवस्था
में सुख भोग सुलभ है;

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उनके लिए शान्ति ही जीवन–
सारे, सिद्धि दुर्लभ है।

और इस नकली शान्ति में दीन–दुखियों का और भी शोषण होता है।

इसके साथ ही एक दूसरी समस्या भी सम्बद्ध है। वह समस्या है – स्वातंत्र्य प्राप्ति की। स्वतन्त्रता कैसे प्राप्त की जाए, इस पर कवि के विचार जानने से पूर्व द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उस युग की भारत की अवस्था को देखना उचित होगा।

महात्मा गाँधी ने सत्य और अहिंसा के प्रयोग से स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रण किया था। वे चाहते थे कि बिना युद्ध किये संघर्ष किये – शाान्तिपूर्ण आन्दोलन तथा असहयोग से ही देश की स्वतन्त्रता को प्राप्त किया जाय। द्वितीय विश्व–युद्ध के आरम्भ तक उनका खूब यह प्रयोग चल चुका था। किन्तु महात्मा गाँधी की इस नीति का क्या परिणाम निकला ? हर बार ब्रिटिश सरकार ने उन्हें धोखा दिया। झूठे आश्वासन देकर अपना उल्लू सीधा किया और शासन की जंजीरें और भी मजबूत कर लीं।

हिंसा का आघात तपस्या ने
कब, कहाँ सहा है ?
देवों का दल सदा दानवों
से हारता रहा है।

भारतीय जनता ने अंग्रेजों के अत्याचारों को जितना ही सहन किया, वे और भी क्रूर होते गये। इस बात को भी पितामह कहते हैं –

अत्याचार सहन करने का
कुफल यही होता है।
पौरुष का आतंक मनुज
कोमल होकर खोता है

जिस प्रकार युधिष्ठिर की क्षमा और त्याग से दुर्योधन की कुटिलता बढ़ती गई थी उसी प्रकार गाँधी की अहिंसा की नीति ने अंग्रेज शासकों की कुटिलता को और भी बढ़ाया था। कवि ने स्पष्ट रूप से पितामह से कहलवाया है कि यदि अधिकार माँगने से न मिले तो उन्हें लड़कर प्राप्त करना–मानव का कर्त्तव्य हो जाता है। और जो लड़ नहीं सकता, जो अपने अधिकारों को प्राप्त नहीं कर सकता, वह निरन्तर पिसता रहता है, न्याय का पक्ष लेकर युद्ध करना कभी पाप नहीं हो सकता –

न्यायोचित अधिकार माँगने
से न मिले, तो लड़ के
तेजस्वी छीनते, समर को–
जीत, या कि खुद मर के।

शक्ति के अभाव में क्षमा का सहारा लेना मन की कायरता है। अगर कोई व्यक्ति या जाति अपने ऊपर किये गये अत्याचारों का बदला नहीं लेती और सहनशील बनी रहती है तो उसे बेबस होकर अपमान सहना ही पड़ेगा। जो जाति हारकर चुप बैठी रहती हैं, वह घोर पाप की भागी होती है–

प्रतिशोध से हैं होती शौर्य की शिखाएँ दीप्त !
प्रतिशोध – हीनता नरों में महापाप है।
छोड़ प्रति वैर पीते मूक अपमान वे ही
जिसमें न शेष शूरता का वह्नि – ताप है;
चोट खा सहिष्णु वह, रहेगा किस भाँति तीर–
जिनके निषंग में, करों में दृढ़ चाप है;
जेता के विभूषण सहिष्णुता, समता है– किन्तु
हारी हुई जाति की सहिष्णुता अभिशाप है।

किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कवि अहिंसा और तप का विरोध करता है। उसने पितामह के मुख से कहलवाया है कि जब मनुष्य अहिंसा को अपनाएंगे तथा प्रेम से रहेंगे, वह दिन मानव – जाति का एक महान् दिन होगा, किन्तु

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पितामह कहते हैं कि अभी तो यह सम्भव नहीं है। अभी संसार मानव – विकास के आधे रास्ते पर ही पहुँचा है। अहिंसा का आदर्श अभी दूर है –

भूल रहे हो धर्मराज, तुम
अभी हिंस्र भूतल है,
खड़ा चतुर्दिक् अहंकार है,
खड़ा चतुर्दिक् छल है।

किन्तु हाय आधे पथ तक ही
पहुँच सका यह जग है,
अभी शान्ति का स्वप्न दूर
नभ से करता जगमग है।

अपने देश के प्राचीन इतिहास तथा गौरव से प्रेम करना, उसने वर्तमान समाज के सामने उपस्थित करना भी राष्ट्रीयता की एक निशानी है।

किसी भी देशवासी को अपने देश की प्रायीन संस्कृति से प्रेम होना स्वाभाविक ही है। कौन भारतीय है, जो इसके मनोहर रूप को देखकर गदगद् न हो जाता है ? कौन है जो महात्मा बुद्ध का नाम सुनकर प्रेम से पुलकित न हो उठता हो ? अपनी संस्कृति की प्राचीनता तथा महानत देखकर किस भारतीय का मस्तक गर्व से ऊँचा नहीं उठ जाता ?

ऐसी महान् संस्कृति के उत्सर्ग का स्वरूप हमें 'कुरुक्षेत्र' में मिलता है। युधिष्ठिर और पितामह व्यक्तिगत रूप से ही महान् नहीं है, वरन् वे इसलिए और भी महान् हैं कि वे हमारी संस्कृति के प्रतिनिधि हैं उनमें हमारी संस्कृति की एक शक्तिशाली धारा मूर्तरूप ले लेती है। उनकी साधना, तपस्या और अगाध चिन्तन – ये सब भारतीय संस्कृति के परिमार्जित और उसके पोषक हैं। इन चरित्रों के प्रति कवि का जो प्रेम प्रकट हुआ है, वह कवि के संस्कृति से अगाध प्रेम का परिचायक है।

13.7 युधिष्ठिर का चरित्र चित्रण

साहित्य में पात्रों के जीवन के व्यक्तिगत तथा समाजगत – दोनों रूपों का चित्रण होता है। मनुष्य के जीवन के इन दोनों रूपों को परिचालित करनेवाले गुणों को उसके 'चारित्रिक गुण' कहा जाता है और इन गुणों की समष्टि को उसका 'चरित्र' कहा जाता है। साहित्य में भी चरित्र का यही अभिप्राय है।

किसी व्यक्ति के चरित्र का ज्ञान कैसे होता है, कैसे हम किसी के चारित्रिक गुणों की सच्ची परख करते हैं। इसके लिए हम यह देखते हैं कि व्यक्ति अपनी तथा समाज के जीवन की आवश्यकताओं और समस्याओं को सुलझाने के लिए क्या और कैसे कार्य करता है। इस दृष्टि से युधिष्ठिर के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएं हैं –

13.7.1 विचारशील व्यक्ति

आरम्भ से लेकर अन्त तक युधिष्ठिर विचार तथा चिन्ताओं में लीन हैं।

महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया है। सारे पाण्डव आनन्द की मदिरा में बेसुध हैं। उन्हें यह फुर्सत नहीं कि वे देखें – भालें कि उन्होंने जो किया उसका परिणाम देश और जाति पर क्या पड़ा। सब विजय के हर्ष से जड़ हो गए हैं। किन्तु युधिष्ठिर विचारों की लहरों में डूब उतरा रहे हैं –

किन्तु इस उल्लास जड़ समुदाय में
एक ऐसा भी पुरुष है, जो विकल।
बोलता कुछ भी नहीं, पर रो रहा;
मग्न चिन्तालीन अपने आप में।

इस काल–गर्भ में किन्तु एक नर ज्ञानी
है खड़ा वहीं पर भरे दृगों में पानी।
रक्ताक्त दर्प दो पैरों तले दबाये।
मन करुणा का स्निग्ध प्रदीप जलाये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.7.2 पश्चात्ताप

जब युधिष्ठिर यह सोचते हैं कि महाभारत के युद्ध में कितना विनाश हुआ है और उसका कारण उनका अभिमान ही है, तो वे दर्द से भर उठते हैं। अपने इस अपराध को जान लेने के पश्चात् उन्हें बहुत पश्चात्ताप होता है। वह अपने आप को दोषी ठहराते हैं।

जिन दिन समर की अग्नि बुझ शान्ति हुई,
एक आग तब से ही जलती है मन में,
हाय पितामह ! किसी भाँति नहीं देखता हूँ,
मुँह दिखलाने योग्य निज को भुवन में,
ऐसा लगता है, लोग देखते – घृणा से मुझे,
धिक् सुनता हूँ – अपने पै कण–कण में,
मानव को देख आँखें आप झुक जाती, मन
चाहता अकेला कहीं भाग जाऊँ वन में।

13.7.3 अन्तर्द्वन्द्व

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं, जब बाहर से तो वह शांत दिखाई देता है, किन्तु उसके भीतर विचारा का एक तूफान उठा करता है। वह दुविधा और असमंजस में घिर जाता है।

युद्ध की समाप्ति के पश्चात् युधिष्ठिर यह निश्चय करने में असमर्थ हो जाते हैं कि उन्होंने युद्ध करके उचित किया या अनुचित । उनका मन इन दोनों प्रकार के विचारें से आन्दोलित हो उठता है –

एक ओर सत्यमयी गीता भगवान् की है,
एक ओर जीवन की विरति प्रबुद्ध है,
जानता हूँ, लड़ना पड़ा था हो विवश, किन्तु –
लोहू सनी जीत मुझे दीखती अशुद्ध है,
ध्वंसजन्य सुख ? या कि साधु दुःख शान्तिजन्य ?
ज्ञान नहीं, कौन बात नीति के विरुद्ध है ?
जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र में लिखा है पुण्य,
या महान् पाप यहाँ फूटा बन युद्ध है।

13.7.4 विश्व–शान्ति और प्रेम के पुजारी

युधिष्ठिर हमारे सामने विश्व –शान्ति और प्रेम के पुजारी के रूप में आते हैं। वे एक ऐसे संसार का आदर्श कल्पित करते हैं जिसमें कभी युद्ध न हो, जिसमें विषमता का अभाव हो और जिसमें सारे मानव परस्पर प्रेम से रहकर अपनी तथा समाज की उन्नति कर सकें –

वह लोक, जहाँ शोषित का ताप नहीं है,
नर के सिर पर रण का अभिशाप नहीं है,
जीवन की समता की छाँह तले पलता है,
घर–घर पीयूष प्रदीप जहाँ जलता है।

13.7.5 आत्मविश्वास

जब युधिष्ठिर को यह निश्चय होता है कि लोभ के कारण ही वे युद्ध में प्रवृत्त हुए थे, तब वे यह निश्चिय करते हैं कि वे उस लोभ से युद्ध करें। इतना ही नहीं, उन्हें अपनी विजय का पूर्ण विश्वास भी है जो इन शब्दों में छलकता है

यह होगा महारण राग के साथ,
युधिष्ठिर ही विजयी निकलेगा;
नर–संस्कृति की रण–छिद्र लता पर
शान्ति–सुधा–फल दिव्य फलेगा;
कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं – इति पन्थ की,
मानव ऊपर और चलेगा,
मनु का यह पुत्र निराश नहीं,
नव धर्म – प्रदीप अवश्य जलेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.8 पितामह भीष्म का चरित्र चित्रण

संसार के इतिहास में भीष्म पितामह जैसे पराक्रमी, दृढ़–प्रतिज्ञ, नीतिज्ञ और ज्ञानी कम ही हुए हैं। भारतीय संस्कृति के इतिहास में उनका त्याग अनन्य है। 'कुरुक्षेत्र' में उनकी वीरता और उनके शौर्य के साथ उनकी तीव्र धर्मबुद्धि के दर्शन भी होते हैं। उनके चरित्र की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत् हैं–

13.8.1 अपार शक्ति

भीष्म पितामह में अपार शक्ति थी। उनके युग में कोई भी उनकी शक्ति के तूफान को सहने में समर्थ नहीं हो सका था। वे अर्जुन के बाण से पराजित नहीं हुए, वरन् स्नेह के बन्धन से पराजित हुए थे।

यह जन कभी किसी का अनुचित
दर्प न सह सकता था,
नहीं देख अन्याय किसी का
मौन न रह सकता था।

अपार शक्ति के साथ–साथ उनमें स्वाभिमान भी कूट–कूट कर भरा हुआ था। उन्होंने कभी किसी के अनुचित कर्म को सहन नहीं किया था।

पितामह ने युधिष्ठिर को जो उपदेश दिये हैं, उनमें उनका अपार पराक्रम छलकता दिखाई देता है–

शूर धर्म है – अभय दहकते
अंगारों पर चलना,
शूर धर्म है– शोणित असि पर
धर कर चरण मचलना।

13.8.2 सच्चे उपदेशक

आज के अनेक व्यक्ति भाग्य को प्रधान मान कर्म पर विश्वास नहीं करते। पितामह इस प्रवृत्ति की निन्दा करते है हैं। भाग्यवादी बनकर बैठे रहना, कायरों का काम है। भाग्य से कभी व्यक्ति का कोई कार्य सफल नहीं होता। भाग्य की कल्पना करनेवाले तो वे लोग हैं जो दूसरों का शोषण करना चाहते हैं और स्वयं सुख भोगना चाहते हैं। भाग्यवाद के द्वारा ही वे शोषितों को कुचल देते हैं। अगर वे अपनी गरीबी और दीनता के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं तो शोषक उन्हें यह बताते हैं – तुम्हारा भाग्य ही ऐसा है, प्रयत्न करने से भाग्य नहीं बदल सकता।

भाग्यवाद आवरण पाप का
और शस्त्र शोषण का,
जिससे रखता दबा एक जन
भाग दूसरे जन का।

पितामह यह उपदेश देते हैं कि व्यक्ति ने संसार में जो सुख–साधन प्राप्त किये हैं वे सब लोगों ने अपने – अपने प्रयत्न से प्राप्त किये हैं, न कि भाग्य के बल से। यदि मानव भाग्यवादी बनकर बैठा रहता है तो मानवता का इतना विकास कभी नहीं हो सकता था प्रकृति भाग्य की शक्ति से नहीं डरती। वह तो उद्यमी मनुष्य के सामने अपने सारे खजाने बिखेर देती है,

ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग में
मनुज नहीं लाया है,
अपना सुख उसने अपने
भुज–बल से ही पाया है
प्रकृति नहीं डरकर झुकती –
कभी भाग्य क बल से,
सदा हारती वह मनुष्य के –
उद्यम से, श्रम–जल से।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

13.8.3 पश्चात्ताप

पितामह भी एक घटना का स्मरण करके पश्चात्ताप करते हैं। जिस दिन दुःशासन ने भरे दरबार में द्रोपदी का वस्त्र खींचा था, वह दिन सचमुच भारतीय इतिहास और संस्कृति का एक निकृष्ट दिवस था। उस दिन भीष्म पितामह भी चुपचाप बैठे रहे और कुछ न बोले। उसका स्मरण करके पितामह का दिल जलने लगता है और वे अपने आप को धिक्कार देने लगते है–

उस दिन की स्मृति से छाती
अब जलने लगती है,
भीतर कहीं छुरी कोई
हृत् पर चलने लगती है।
धिक्–धिक् मुझे ! उत्पीड़ित
सम्मुख राज–बधूटी,
आँखों के आगे अबला की
लाज खलों ने लूटी।

पितामह इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि बुद्धि ही मनुष्य के पौरुष को दबा देती हैं और उसे अवसर पर नहीं जागने देती। व्यक्ति जब सोच – विचार में अधिक फंसा रहता है, तब प्रायः कार्य का अवसर निकल जाता है, और उसे सिवाय पश्चात्ताप के और कुछ भी हाथ नहीं आता।

बाँध उसी ने मुझे द्विधा में
बना दिया कायर था,
जगूँ–जगूँ जब तक, तब तो
निकल चुका अवसर था।

13.8.4 अंतर्द्वन्द्व

पितामह के हृदय में भी धर्म और प्रेम का संघर्ष चला था। वे सुयोधन के दरबार में थे, इसलिए धर्म की दृष्टि में उन्हें उसी का पक्ष लेना पड़ा था। किन्तु वे हृदय से पाण्डवों से प्रेम करते थे और उन्हीं के कल्याण की कामना करते थे। इस प्रकार वे सदैव इसी दुविधा में उलझे रहे कि किसका पक्ष लूँ ? और वे कहते हैं कि इस दुविधा के कारण न तो मैं कौरवों का ही भला कर सका; न पाण्डवों का ही –

न तो कौरवों का हित साधा,
और न पाण्डवों का ही।
द्वन्द्व बीच उलझाकर रखा,
वय ने मुझे सदा ही।

13.8.5 कोमल भावों का हनन

भीष्म पितामह ने जब ब्रह्मचर्य का अखण्ड व्रत लिया था; उसी दिन से उन्होंने सभी कोमल भावों को कुचलना प्रारम्भ कर दिया था। उसके बाद कभी भी उनके जीवन में माधुर्य का उदय न हुआ, बल्कि उन्होंने उनका उदय होने ही नहीं दिया। यह एक बड़ा अमूतपूर्व कार्य था, जो पितामह ने किया था –

बही न कोमल वायु, कुंज
मन का था कभी न डोला
पत्तो की झुरमुट मे छिपकर
विहग न कोई बोला।
चढ़ा किसी दिन फूल, किसी का
मान न मैं कर पाया।
एक बार भी अपने को था
दान न मैं कर पाया।

13.8.6 कर्मयोगी

पितामह सच्चे कर्मयोगी के रूप में हमारे सामने आते हैं। जब युधिष्ठिर संन्यास की बात कहते हैं, तो वे कहते हैं, कि – संन्यास लेना कायरता है। संन्यास से एक व्यक्ति को सुख मिल भी गया तो क्या? यहाँ तो सारा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संसार ही दुःख की आग में जल रहा है, उसका कल्याण कौन करेगा ? उसका कल्याण संन्यास से नहीं, कर्त्तव्य का पालन करने से होगा –

धर्मराज ! संन्यास खोजना
कायरता है – मन की
है, सच्चा मनुजत्व ग्रन्थियाँ
सुलझाना जीवन की।
दुर्लभ नहीं मनुज के हित
निज वैयक्तिक सुख पाना।
किन्तु कठिन है कोटि–कोटि
मनुजों को सुखी बनाना।

इसीलिए पितामह युधिष्ठिर को लोक–कल्याण का उपदेश देते हैं, जीवन के दुःखों को सहन करने की प्रेरणा देते हैं और अपने जीवन को समाज के लिए अर्पित करने को प्रोत्साहित करते हैं–

जाओ, शमिति करो तप से
नर के रागानल को,
बरसाओ पीयूष करो –
अभिषिक्त दग्ध भूतल को।

बुला रहा निष्काम कर्म वह
बुला रही है – गीता,
बुला रही है तुम्हें आर्त हो
मही समर संभीता।

इस कथन से पितामह का मानवतावादी दृष्टिकोण झलकता है।

13.8.7 महानता

कवि स्वयं पितामह के चरित्र की महानता का वर्णन बड़े ओजपूर्ण शब्दों में करता है और उन्हें संसार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष बतलाता है –

ब्रह्मचर्य के व्रती, धर्म के
महास्तम्भ, बल के आगार,
परम विरागी पुरुष, जिन्हें
पाकर भी न पा सका संसार
किया विसर्जित मुकुट धर्म–हित
और स्नेह के कारण प्राण,
पुरुष विक्रमी कौन दूसरा
हुआ जगत् में भीष्म–समान ?

भीष्म पितामह का चरित्र कुरुक्षेत्र का सर्वाधिक प्रखर और प्रांजल चरित्र है वे युग–पुरुष थे।

13.9 व्याख्या खंड

13.9.1 कुरुक्षेत्र / मूल पाठ

तृतीय सर्ग

समर निंद्य है धर्मराज, पर,
कहो, शान्ति वह क्या है,
जो अनीति पर स्थित होकर भी
बनी हुई सरला है ?

सुख–समृद्धि का विपुल कोष
संचित कर कल, बल, छल से,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किसी क्षुधित का ग्रास छीन,
धन लूट किसी निर्बल से ।

सब समेट, प्रहरी बिठला कर
कहती कुछ मत बोलो,
शान्ति–सुधा बह रही, न इसमें
गरल क्रान्ति का घोलो ।
हिलो–डुलो मत, हृदय–रक्त
अपना मुझको पीने दो,
अचल रहे साम्राज्य शान्ति का,
जियो और जीने दो ।
सच है, सत्ता सिमट–सिमट
जिनके हाथों में आयी,
शान्तिभक्त वे साधु पुरुष
क्यों चाहें कभी लड़ाई ?
सुख का सम्यक्–रूप विभाजन
जहां नीति से नय से
संभव नहीं; अशान्ति दबी हो
जहाँ खड्ग के भय से,
जहाँ पालते हों अनीति–पद्धति
को सत्ताधारी,
जहाँ सूत्रधर हों समाज के
अन्यायी, अविचारी,
नीतियुक्त प्रस्ताव सन्धि के
जहाँ न आदर पायें;
जहाँ सत्य कहनेवालों के
सीस उतारे जायें,
जहाँ खड्ग–बल एकमात्र
आधार बने शासन का;
दबे क्रोध से भभक रहा हो
हृदय जहाँ जन–जन का;
सहते–सहते अनय जहाँ
मर रहा मनुज का मन हो;
समझ कापुरुष अपने को
धिक्कार रहा जन–जन हो;
अहंकार के साथ घृणा का
जहाँ द्वन्द्व हो जारी;
ऊपर शान्ति, तलातल में
हो छिटक रही चिनगारी;
आगामी विस्फोट काल के
मुख पर दमक रहा हो;
इंगित में अंगार विवश
भावों के चमक रहा हो;
पढ़कर भी संकेत सजग हों
किन्तु, न सत्ताधारी;
दुर्मति और अनल में दें
आहुतियाँ बारी–बारी;

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कभी नये शोषण से, कभी
उपेक्षा, कभी दमन से,
अपमानों से कभी, कभी
शर–वेधक व्यंग्य वचन से।

दबे हुए आवेग वहाँ यदि
उबल किसी दिन फूटें,
संयम छोड़, काल बन मानव
अन्यायी पर टूटें;

कहो, कौन दायी होगा
उस दारुण जगद्दहन का
अहंकार या घृणा ? कौन
दोषी होगा उस रण का ?

तुम विषण्ण हो समझ
हुआ जगदाह तुम्हारे कर से।
सोचो तो, क्या अग्नि समर की
बरसी थी अम्बर से ?

अथवा अकस्मात् मिट्‌टी से
फूटी थी यह ज्वाला ?
या मंत्रों के बल से जनमी
थी यह शिखा कराला ?

कुरुक्षेत्र के पूर्व नहीं क्या
समर लगा था चलने ?
प्रतिहिंसा का दीप भयानक
हृदय–हृदय में बलने ?

शान्ति खोलकर खड्‌ग क्रांति का
जब वर्जन करती है,
तभी जान लो किसी समर का
वह सर्जन करती है।

शान्ति नहीं तब तक, जब तक
सुख–भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो।

ऐसी शान्ति राज्य करती है
तन पर नहीं, हृदय पर,
नर के ऊँचे विश्वासों पर,
श्रद्धा, भक्ति, प्रणय पर ।

न्याय शान्ति का प्रथम न्यास है,
जबतक न्याय न आता,
जैसा भी हो, महल शान्ति का
सुदृढ़ नहीं रह पाता।

कृत्रिम शान्ति सशंक आप
अपने से ही डरती है,
खड्‌ग छोड़ विश्वास किसी का
कभी नहीं करती है।

और जिन्हें इस शान्ति व्यवस्था
में सुख भोग सुलभ है,
उनके लिए शान्ति ही जीवन –
सार, सिद्धि दुर्लभ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पर, जिनकी अस्थियाँ चबाकर,
शोणित पीकर तन का,
जीती है यह शान्ति, दाह
समझो कुछ उनके मन का ।

स्वत्व माँगने से न मिले,
संघात पाप हो जायें,
बोलो धर्मराज, शोषित वे
जियें या कि मिट जायें ?

न्यायोचित अधिकार माँगने
से न मिलें, तो लड़ के,
तेजस्वी छीनते समर को
जीत, या कि खुद मरके।

किसने कहा, पाप है समुचित
स्वत्व–प्राप्ति–हित लड़ना ?
उठा न्याय का खड्ग समर में
अभय मारना–मरना ?

क्षमा, दया, तप, तेज, मनोबल
की दे वृथा दुहाई,
धर्मराज, व्यंजित करते तुम
मानव की कदराई।

हिंसा का आघात तपस्या ने
कब, कहाँ सहा है ?
देवों का दल सदा दानवों
से हारता रहा है।

मनःशक्ति प्यारी थी तुमको
यदि पौरुष ज्वलन से,
लोभ किया क्यों भरत–राज्य का ?
फिर आये क्यों वन से ?

पिया भीम ने विष, लाक्षागृह
जला, हुए वनवासी,
केशकर्षिता प्रिया सभा–सम्मुख
कहलायी दासी

क्षमा, दया, तप, त्याग, मनोबल,
सबका लिया सहारा;
पर नर–व्याघ्र सुयोधन तुमसे
कहो, कहाँ, कब हारा ?

क्षमाशील हो रिपु–समक्ष
तुम हुए विनत जितना ही,
दुष्ट कौरवों ने तुमको
कायर समझा उतना ही ।

अत्याचार सहन करने का
कुफल यही होता है,
पौरुष का आतंक मनुज
कोमल होकर खोता है।

क्षमा शोभती उस भुजंग को,
जिसके पास गरल हो।
उसको क्या, जो दन्तहीन,
विषरहित, विनीत, सरल हो ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तीन दिवस तक पन्थ माँगते
रघुपति सिन्धु–किनारे,
बैठे पढ़ते रहे छन्द
अनुनय के प्यारे–प्यारे।

उत्तर में जब एक नाद भी
उठा नहीं सागर से,
उठी अधीर धधक पौरुष की
आग राम के शर से।

सिन्धु देह धर 'त्राहि–त्राहि'
करता आ गिरा शरण में,
चरण पूज, दासता ग्रहण की,
बँधा मूढ़ बन्धन में।

सच पूछो तो शर में ही
बसती है दीप्ति विनय की,
सन्धि–वचन संपूज्य उसी का
जिसमें शक्ति विजय की।

सहनशीलता, क्षमा, दया को
तभी पूजता जग है,
बल का दर्प चमकता उसके
पीछे जब जगमग है।

जहाँ नहीं सामर्थ्य शोध की,
क्षमा वहाँ निष्फल है।
गरल–घूँट पी जाने का
मिस है, वाणी का छल है।

फलक क्षमा का ओढ़ छिपाते
जो अपनी कायरता,
वे क्या जानें ज्वलित–प्राण
नर की पौरुष–निर्भरता ?
वे क्या जानें नर में वह क्या
असहनशील अनल है,
जो लगते ही स्पर्श हृदय से
सिर तक उठता बल है ?

जिनकी भुजाओं की शिराएं फड़की ही नहीं,
जिनके लहू में नहीं वेग है अनल का;
शिव का पदोदक ही पेय जिनका है रहा,
चक्खा ही जिन्होंने नहीं स्वाद हलाहल का;
जिनके हृदय में कभी आग सुलगी ही नहीं,
ठेस लगते ही अहंकार नहीं छलका;
जिनको सहारा नहीं भुज के प्रताप का है,
बैठते भरोसा किये वे ही आत्मबल का।

उसकी सहिष्णुता, क्षमा का है महत्त्व ही क्या,
करना ही आता नहीं जिसको प्रहार है ?
करुणा, क्षमा को छोड़ और क्या उपाय उसे
ले न सकता जो बैरियों से प्रतिकार है ?
सहता प्रहार कोई विवश, कदर्य जीव
जिसकी नसों में नहीं पौरुष की धार है;
करुणा, क्षमा हैं क्लीव जाति के कलंक घोर,
क्षमता क्षना की शूर–वीरों का सिंगार है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रतिशोध से हैं होती शौर्य की शिखाएँ दीप्त,
प्रतिशोध–हीनता नरों में महापाप है।
छोड़ प्रतिवैर पीते मूक अपमान वे ही,
जिनमें न शेष शूरता का वह्नि–ताप है।
चोट खा सहिष्णु वह रहेगा किस भाँति, तीर
जिसके निषंग में, करों में दृढ़ चाप है ?
जेता के विभूषण सहिष्णुता–क्षमा हैं, किन्तु
हारी हुई जाति की सहिष्णुता अभिशाप है।

सटता कहीं भी एक तृण जो शरीर से तो,
उठता कराल हो फणीश फुफकार है;
सुनता गजेन्द्र की चिंघार जो वनों में कहीं,
भरता गुहा में ही मृगेन्द्र हुंकार है;
शूल चुभते हैं, छूते आग हैं जलाती; भू को
लीलने को देखो, गर्जमान पारावार है;
जग में प्रदीप्त है इसी का तेज, प्रतिशोध
जड़–चेतनों का जन्मसिद्ध अधिकार है।

सेना साज हीन है परस्व हरने की वृत्ति,
लोभ की लड़ाई क्षात्र धर्म के विरुद्ध है।
वासना–विषय से नहीं पुण्य उद्‌भूत होता,
वाणिज के हाथ की कृपाण ही अशुद्ध है।
चोट खा परन्तु, जब सिंह उठता है जाग,
उठता कराल प्रतिशोध हो प्रबुद्ध है;
पुण्य खिलता है चन्द्रहास की विभा में तब,
पौरुष की जागृति कहाती धर्म–युद्ध है।

धर्म है हुताशन का धधक उठे तुरन्त,
कोई क्यों प्रचण्ड–वेग वायु को बुलाता है ?
फूटेंगे कराल कण्ठ ज्वालामुखियों के ध्रुव,
आनन पर बैठ विश्व धूम क्यों मचाता है ?
फूँक से जलायेगा अवश्य जगती को ब्याल,
कोई क्यों खरोंच मार उसको जगाता है ?
विद्युत् खगोल से अवश्य ही गिरेगी, कोई
दीप्त अभिमान को क्यों ठोकर लगाता है ?

युद्ध को बुलाता है अनीति–ध्वजधारी या कि
वह जो अनीति–भाल पै दे पाँव चलता ?
वह जो दबा है शोषणों के भीम शैल से या
वह जो खड़ा है मग्न हँसता–मचलता ?
वह जो बना के शान्ति–व्यूह सुख लूटता या
वह जो अशान्त हो क्षुधानल से जलता ?
कौन है बुलाता युद्ध ? जाल जो बनाता ?
या जो जाल तोड़ने क्रुद्ध काल–सा निकलता ?

पातकी न होता है प्रबुद्ध दलितों का खड्ग,
पातकी बताना उसे दर्शन की भ्रान्ति है।
शोषण की शृंखला के हेतु बनती जो शान्ति,
युद्ध है, यथार्थ में वो भीषण अशान्ति है;
सहना उसे हो मौन हार मनुजत्व की है,
ईश की अवज्ञा घोर, पौरुष की श्रान्ति है;
पातक मनुष्य का है, मरण मनुष्यता का,
ऐसी शृंखला में धर्म विप्लव है, क्रांति है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भूल रहे हो धर्मराज, तुम,
अभी हिंस्र भूतल है,
खड़ा चतुर्दिक् अहंकार है,
खड़ा चतुर्दिक् छल है।

मैं भी हूँ सोचता, जगत् से
कैसे उठे जिघांसा,
किस प्रकार फैले पृथ्वी पर
करुणा, प्रेम, अहिंसा ।

जियें मनुज किस भाँति परस्पर
हो कर भाई–भाई,
कैसे रुके प्रदाह क्रोध का,
कैसे रुके लड़ाई ।

पृथ्वी हो साम्राज्य स्नेह का,
जीवन स्निग्ध, सरल हो,
मनुज–प्रकृति से विदा सदा को
दाहक द्वेष–गरल हो।

बह प्रेम की धार, मनुज को
वह अनवरत भिंगोये,
एक दूसरे के उर में नर
बीज प्रेम के बोये।

किन्तु, हाय, आधे पथ तक ही
पहुँच सका यह जग है,
अभी शांति का स्वप्न दूर
नभ में करता जगमग है।

भूले–भटके ही पृथ्वी पर
वह आदर्श उतरता,
किसी युधिष्ठिर के प्राणों में
ही स्वरुप है धरता।

किन्तु, द्वेष के शिला–दुर्ग से
बार–बार टकरा के,
रुद्र मनुज के मनोदेश के
लौह–द्वार को पा के;

घृणा, कलह, विद्वेष, विविध
तापों से आकुल हो कर,
हो जाता उड्डीन एक–दो
का ही हृदय भिंगो कर।

क्योंकि युधिष्ठिर एक, सुयोधन
अगणित अभी यहाँ हैं,
बढ़े शान्ति की लता हाय,
वे पोषक द्रव्य कहाँ हैं ?

शान्ति–बीन तब तक बजती है
नहीं सुनिश्चित सुर में,
स्वर की शुद्ध प्रतिध्वनि जब तक
उठे नहीं उर–उर में ।

यह न बाह्य उपकरण, भार बन
जो आवे ऊपर से,
आत्मा की यह ज्योति, फूटती
सदा विमल अन्तर् से ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शान्ति नाम उस रुचित सरणि का,
जिसे प्रेम पहचाने,
खड्ग–भीत तन ही न,
मनुज का मन भी जिसको माने ।

शिवा–शान्ति की मूर्ति नहीं
बनती कुलाल के गृह में;
सदा जन्म लेती वह नर के
मनःप्रान्त निस्पृह में।

गरल–द्रोह–विस्फोट–हेतु का
करके सफल निवारण,
मनुज–प्रकृति ही करती शीतल
रूप शान्ति का धारण ।

जब होती अवतीर्ण शान्ति यह,
भय न शेष रह जाता,
शंका–तिमिर–ग्रस्त फिर कोई
नहीं देश रह जाता ।

शान्ति ! सुशीतल शान्ति ! कहाँ
वह समता देनेवाली ?
देखों, आज विषमता की ही
वह करती रखवाली ।

आनन सरल, वचन मधुमय है,
तन पर शुभ्र वसन है,
बचो युधिष्ठिर ! इस नागिन का
विष से भरा दशन है ।

यह रखती परिपूर्ण नृपों से
जरासन्ध की कारा,
शोणित कभी, कभी पीती है
तप्त अश्रु की धारा ।

कुरुक्षेत्र में जली चिता जिसकी,
वह शान्ति नहीं थी;
अर्जुन की धन्वा चढ़ बोली,
वह दुष्क्रान्ति नहीं थी ।

थी परस्व–ग्रासिनी भुजंगिनि,
वह जो जली समर में,
असहनशील शौर्य था, जो
बल उठा पार्थ के शर में ।

नहीं हुआ स्वीकार शान्ति को
जीना जब कुछ देकर,
टूटा पुरुष काल सा उस पर
प्राण हाथ में लेकर।

पापी कौन ? मनुज से उसका
न्याय चुरानेवाला ?
याकि न्याय खोजते विघ्न का
सीस उड़ानेवाला ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

13.9.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याए

'कुरुक्षेत्र (तृतीय सर्ग)

"समर .... घोलो।"

शब्दार्थ – निंद्य = निन्दनीय । अनीति = अन्याय । समृद्धि= सम्पत्ति। विपुलकोष = बड़ा खजाना। क्षुधित = भूखा । ग्रास = कौर । प्रहरी = पहरेदार । गरल = जहर। क्रान्ति = युद्ध ।

संदर्भ – प्रस्तुत ओजस्वी पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' की अमर लेखनी से प्रस्फुटित 'कुरुक्षेत्र' के तीसरे सर्ग से संगृहीत हैं।

प्रसंग – युद्ध की विभीषिका से क्लांत युधिष्ठिर धर्मराज के रूप में युद्ध में हुए विनाश से बहुत व्यथित हैं। उन्हें लगता है कि यह युद्ध नही होना चाहिए था। वे दुःखी होकर भीष्म के पास जाते हैं। भीष्म उन्हें युद्ध नीति के संबंध में समझाते हैं। भीष्म का कथन है–

व्याख्या – " हे धर्मराज ! यह सही है कि युद्ध निन्दनीय है, किन्तु तुम उस शान्ति के विषय में क्या कहोगे जो अन्याय पर आधारित होकर भी ऊपर से बड़ी निष्पाप बनी रहती है ?

ऐसी शान्ति के रक्षक धोखा, छल, फरेब और शक्ति से सुख और सम्पत्ति का खजाना पा लेते हैं। वे किसी भूखे की रोटी छीनते है और किसी निर्बल का धन छीनते हैं। वे लोग सब कुछ समेट लेते हैं और अपनी रक्षा के लिए चौकीदार बिठा देते हैं, और सबसे यह कहते हैं– किसी प्रकार की हलचल मत मचाओ। शान्ति के अमृत की धारा बह रही है, उसमें युद्ध का जहर मत घोलो।

विशेष – 1. शान्ति का मानवीकरण।
2. कल, बल और हल' में पद–मैत्री।
3. रूपक और परम्परित रूपक अलंकार।

"जहाँ .... चिनगारी।"

शब्दार्थ – खड्ग – बल = तलवार की शक्ति। भभक रहा हो = जल रहा हो। कापुरुष = कायर व्यक्ति । द्वन्द्व = संघर्ष। तलातल = तह में। चिनगारी = क्रान्ति की चिनगारी।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – युधिष्ठिर को समझाते हुए भीष्म कहते हैं –

व्याख्या – हे, धर्मराज जहाँ शासक का एकमात्र सहारा केवल तलवार की शक्ति हो, जहाँ जनता का हृदय छिपे हुए क्रोध से जल रहा हो और अन्याय को उलटने के लिए उतावला हो रहा हो। जहाँ अन्यायियों के जुल्म सहते–सहते मनुष्य का मन ही मर रहा हो, और जनता अपने को कायर समझकर अपने आपको धिक्कार रही हो। जहाँ अन्धे शासकों के अहंकार और उनके लिए जनता के मन में भरी घृणा का सदैव संघर्ष चलता रहा हो, जहाँ ऊपर तो शान्ति दिखाई देती हो, किन्तु भीतर में क्रान्ति की चिनगारी सुलग रही हो, वहाँ स्थिति बहुत चिंता जनक होती है। ऐसी परिस्थिति में क्या किया जाए ?

विशेष – 1. 'तलातल' में सभंग पद यमक।

"स्वत्व .... मर जायें।।"

शब्दार्थ – स्वत्व – अधिकार। संघात = संगठन। शोषित = पिसे हुए। तेजस्ती = शक्तिशाली।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – पितामह भीष्म धर्मराज को समझाते हुए कहते है कि अधिकार मांगने से नहीं छीनने से मिलता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

व्याख्या – हे धर्मराज जब अधिकार माँगने से प्राप्त न हो, संगठन बनाना पाप हो जाए, तब तुम्हीं कहो ; वह पिसती हुई जनता जीवित रहे या मर जाए ? यदि न्याय – सम्मत अधिकार मांगने से न मिले तो शक्तिशाली पुरुष संघर्ष करके, युद्ध को जीतकर अपने–अपने अधिकार प्राप्त करते हैं या उनकी प्राप्ति में ही अपने प्राणों को गंवा देते हैं। अधिकार माँगें नहीं जाते, लड़कर प्राप्त किए जाते हैं।

विशेष – 1. 'उद्योगिनं पुरुषः सिंहमुपैति
दैवमिति कापुरुषाः वदन्ति'

"किसने .... हारता रहा ।"

शब्दार्थ – स्वत्व – प्राप्ति – हित = अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए। अभय = निडर होकर। वृथा = व्यर्थ । व्यंजित करते = प्रकट करते। कदराई = कायरता

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – भीष्म कहते हैं कि अपने अधिकारों के लिए युद्ध करना पाप नहीं है।

व्याख्या – हे, युधिष्ठिर यह कौन कहता है कि अपने उचित अधिकारों को प्राप्त करने के लिए युद्ध करना पाप है ? और उनकी रक्षा के लिए निडर होकर युद्ध में मरना तथा मारना भी पाप है ?

हे धर्मराज ! क्षमा, दया, तप, तेज और मनोबल की दुहाई देकर तुम मनुष्य की क्षुद्रता को ही प्रकट कर रहे हो। तुम्हीं बताओ, तपस्या, कब और कहाँ हिंसा की चोट को सहने में समर्थ हुई है ? इतिहास साक्षी है कि देवताओं का समूह हमेशा दानवों से हारता रहा है।

विशेष – 1. 'न्याय का खड्ग' में रूपक है।

2. सम्पूर्ण छन्द में अर्थान्तरन्यास की व्यंजना है।

"क्षमा .... खोता है।"

शब्दार्थ – नर – व्याघ्र = भेड़िया जैसा मनुष्य । रिपु–समक्ष = शत्रु के सामने । विनत हुए = झुके। आतंक = रौब । मनुज = मनुष्य।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – क्षमता की वास्तविक परिभाषा बतलाते हुए भीष्म कहते हैं –

व्याख्या – तुमने तो क्षमा, दया, त्याग और मन की शक्ति का ही सहारा लिया, किन्तु बताओ तो, भेड़िए जैसे क्रूर दुर्योधन ने कब तुम से हार मानी। शत्रु को क्षमा करते हुए तुम उसके सामने जितना ही झुके, कौरवों ने तुम्हें उतना ही कायर समझा।

चुपचाप अत्याचार सहन करने का तो यही बुरा फल निकलता है। अगर व्यक्ति कोमल हो जाता है तो कोई भी उसकी शक्ति से प्रभावित नहीं होता।

विशेष – 1. मनुष्य जीवन का वास्तविक दर्शन भीष्म की वाणी से मुखरित हुआ है।

"क्षमा .... प्यारे–प्यारे।"

शब्दार्थ – भुजंग = सांप । गरल = जहर । पन्थ = मार्ग। अनुनय = विनय।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – ओज से दीपित वाणी में भीष्म युधिष्ठिर से शक्ति और क्षमा का यथार्थ समझाते हैं–

व्याख्या – धर्मराज, क्षमा तो उसी साँप को शोभा देती है, जिसके पास विष हो। उसके लिए क्षमा का मूल्य क्या, जिसके पास जहर नहीं, दाँत नही और जो विनम्र है। वह क्षमाशील नहीं, वरन् बेबस है। इसी प्रकार मनुष्य की भी क्षमता शक्तिशाली को ही शोभा देती है, शक्तिहीन को नहीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भगवान राम के चरित्र से एक उदाहरण लो। सागर के किनारे वे तीन दिन तक विनय और प्रार्थना के छन्द पढ़ते रहे और सागर से गुजरने का मार्ग माँगते रहे।

विशेष – 1. प्रतीक – विधान।

2. बहुत सटीक उदाहरण से प्रामाणित।

"सहनशीलता .... छल है ।"

शब्दार्थ – दर्प = अभिमान। शोध = सुधार । घँट = जहर का घूँट। मिस = बहाना। वाणी का छल = बातों का धोखा।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – भीष्म के अनुसार संसार में शक्ति की ही पूजा होती है।

व्याख्या – संसार में सहनशीलता, दया और क्षमता की पूजा तभी होती है, जब उनके साथ–साथ व्यक्ति में शक्ति का अभिमान भी चमकता हो।

जहाँ शत्रु को सुधारने की शक्ति नहीं है, वहाँ क्षमा का कोई प्रभाव नहीं होता। वहाँ क्षमा तो केवल जहर का घूँट पीने का एक बहाना मात्र है और बातों का धोखा है। वह तो बेबसी की क्षमा है।

विशेष – 1. भीष्म के कथन में उनका गौरव झलकता है।

2. निराश युधिष्ठिर के लिए ऐसा कथन अनिवार्य भी है।

"जिनकी .... आत्म–बल–का।"

श्ब्दार्थ – अनल = आग । पदोदक = चरणामृत। पेय = पीने योग्य पदार्थ । हलाहल = विपत्तियों का जहर। प्रताप = शक्ति ।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – भीष्म युधिष्ठिर को समझाते हुए कहते हैं –

व्याख्या – जिनकी भुजाओं की नसें कभी नहीं फड़कीं, जिनके रक्त में शक्ति की आग नहीं है, जो सदैव भगवान् शिव का चरणामृत ही पीते हैं, जिन्होंने कभी विपत्तियों के जहर का स्वाद नहीं चखा, जिनके मन में कभी जोश की आग नहीं जागी, जरा – सी चोट लगते ही जिनका स्वाभिमान नहीं फड़क उठता, जिन्हें अपनी भुजाओं की शक्ति का कोई विश्वास ही नहीं है; वे ही आत्म – शक्ति का विश्वास किए बैठे रहते हैं।

विशेष – पूरे छन्द में लक्षणा का चमत्कार द्रष्टव्य है।

"उसकी .... शृंगार है।"

शब्दार्थ – सहिष्णुता = सहनशीलता। प्रहार = आघात, वार। प्रतिकार = बदला। क्लीव = नपुंसक । क्षमता = सामर्थ्य।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – भीष्म कहते हैं कि शत्रु का प्रतिकार न करनेवाला व्यक्ति महत्वहीन और व्यर्थ है।

व्याख्या – जिसे शत्रु पर वार करना ही नहीं आता, उसकी सहनशीलता तथा क्षमा का क्या महत्त्व है ? जो शत्रुओं से बदला नहीं ले सकता, उसके पास दया और शत्रुओं के वार को चुपचाप सह लेता है। उसके शरीर में पराक्रम बिल्कुल नहीं है। दया और क्षमा तो नपुंसकों का घोर कलंक है। वीर व्यक्तियों का शृंगार तो क्षमा देने की शक्ति ही है। वीर बेबस होकर क्षमा नहीं करते, वरन् उनमें शक्ति भी होती है, जिसके द्वारा वे अन्याय से बदला ले सकते हैं अर्थात् क्षमता शक्तिशाली को ही शोभा देती है।

विशेष – 1. भीष्म ने नीति की बात कहीं है कि 'शत्रु के साथ सरल नहीं होना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. 'शठेशाठ्यम समाचेरत।'

3. 'आर्जवं ने कुटिलेशुनीति।'

''प्रतिशोध ………… ………… ………… ………… अभिशाप।''

शब्दार्थ – प्रतिशोध = बदले की भावना। शौर्य = पराक्रम । शिखाएँ = लपटें। दीप्त = जल उठती है। प्रतिवैर = शत्रुओं से वैर। निषंग = तरकश। करों में = हाथ में। चाप = धनुष। जेता = विजयी। अभिशाप = शाप।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – भीष्म कहते है कि अपमानित होने पर भी बदले और प्रतिशोध की भावना का न होना पाप है–

व्याख्या – बदले की भावना से ही मनुष्यों में पराक्रम की लपटें जाग उठती हैं। मनुष्यों में पराक्रम की भावना का न होना महान् पाप है। वे लोग ही शत्रुओं को क्षमा करके चुपचाप अपमान सहन करते हैं जिनमें वीरता की आग की गरमी नहीं रही। जिसके तरकस में तीर हैं, और जिसके हाथों में मजबूत धनुष है, वह वार खाकर किस प्रकार चुप रह सकता है? वह तो अवश्य शत्रु से बदला लेगा। सहनशीलता और क्षमा विजयी व्यक्ति के लिए अलंकार हैं, किन्तु हारी हुई जाति के लिए वे शाप के समान पीड़ादायी हैं।

विशेष – 1. 'शूरता का वह्निताप' में रूपक, चोट ……… ताप में वक्रोक्ति।

''धर्म ………… ………… ………… ………… लगाता है।''

शब्दार्थ – धर्म है = गुण हैं। हुताशन = आग । प्रचण्ड वेग = तेज चलनेवाली । कराल कण्ठ = भयंकर –कंठ, भीषण मुख। ध्रुव = निश्चित। व्याल = साँप । खगोल = आकाश। दीप्त जलते हुए तीव्र।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – भीष्म कहते है कि अनीति और अधर्म पर चलते हुए युद्ध को बुलानेवाला दोषी होता है।

व्याख्या – यह तो आग का गुण ही है कि वायु के वेग से वह भड़क उठती है। इसलिए कोई क्यों आँधी को बुलाता है। आँधी के आने पर यदि आग भड़क उठे तो दोष आग का नहीं, आँधी को बुलानेवाले का होगा। ज्वालामुखी का मुख तो कभी न कभी निश्चित फूटेगा ही यह तो उसका स्वभाव ही है, इसलिए मनुष्यों को उसके मुख पर बसना नहीं चाहिए। अगर मनुष्य उस पर रहेंगे तो ज्वालामुखी के फटने पर उनका नाश हो जायेगा और इस नाश का उत्तरदायी ज्वालामुखी पर्वत नहीं, वरन् उस पर रहनेवाले ही होंगे। कोई क्यों साँप को छेड़कर उसे जगाता है। जाग उठने पर तो वह अपने विष से संसार का नाश करेगा ही। यह उसका स्वभाव है। दोष है– उसे जगानेवाले का । कोई किसी के उमड़ते हुए अभिमान का क्यों तिरस्कार करता है ? अगर कोई अभिमानी व्यक्ति का तिरस्कार करेगा तो वह संसार में तूफान मचा ही देगा। ऐसा तूफान, मानो आकाश से बिजलियां गिरकर संसार का नाश करने लगी हों।

विशेष – 1. सम्पूर्ण छन्द में गूढ़ोत्तर के साथ दृष्टांत है।

''पातकी ………… ………… ………… ………… भ्रान्ति है।''

शब्दार्थ – पातकी = पापी। प्रबुद्ध = उठे हुए। दर्शन की भ्रान्ति = देखने का भ्रम। शोषण की श्रृंखला = दमन के उपाय। मनुजत्त्व = मनुष्यता। अवज्ञा = अपमान । पौरुष की श्रान्ति = शक्ति का थक जाना। श्रृंखला = जंजीर, परिस्थितियां । धर्म विप्लव = धर्म की क्रान्ति।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – भीष्म कहते है कि शोषण के खिलाफ आवाज उठाना पाप नहीं है।

व्याख्या – जागे हुए शोषित व्यक्तियों की तलवार पापयुक्त नहीं है। उसे कोई पापी कहता है तो देखने वाले की भूल है। तुम्हीं बताओ – शोषण के दीर्घ व्यापार के लिए जो नकली शान्ति साधन बन जाती है, वह वास्तव में

शान्ति है या भयंकर अशान्ति ? उस नकली शान्ति को चुपचाप रहकर सहन करना मनुष्यता की हार है– ईश्वर का भयंकर अपमान है और शक्ति का आलस्य है। जिन परिस्थितियों में मनुष्य पाप करने लगता है और मनुष्यता मर जाती है, उन्हीं में धर्म का तूफान पैदा होता है और समाज में क्रान्ति हो जाती है।

विशेष –

1. 'शोषण .... अशान्ति' में विरोधाभास ; –पताका ...... क्रान्ति में दीपक।

13.10 सारांश

इस इकाई के माध्यम से राष्ट्रकवि रामधारीसिंह 'दिनकर' के काव्यवैशिष्ट्य को व्याख्यायित विश्लेषित करने का प्रयास किया गया। उक्त अध्ययन को सारांश रूप में निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है–

- रामधारीसिंह 'दिनकर' राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा के प्रतिष्ठित कवि हैं, जिन्हें हम उनकी राष्ट्रवादी चेतना के कारण राष्ट्रकवि के रूप में स्वीकार करते हैं।
- उत्साह, शौर्य और ऊर्जा के कवि दिनकर ने 'रेणुका', 'हुंकार', 'परशुराम की प्रतिक्षा' और 'कुरुक्षेत्र' जैसी प्रखर चेतना सम्पन्न कृतियां हिंदी जगत् को दी हैं।
- जनचेतना को प्रभावित करने की दृष्टि से 'दिनकर' की रचनाएँ बहुत सफल हैं, जिनमें जन आह्वान छिपा उद्घोष दिया हुआ है।
- 'कुरुक्षेत्र' 'दिनकर' की बहुत महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसमें राष्ट्रीय भावनाएँ बहुत व्यापक रूप से अभिव्यक्त हुई हैं।
- 'कुरुक्षेत्र' तत्कालीन परिस्थितियों में युद्धनीति, धर्मनीति एवं राजनीति का बहुत प्रासंगिक तथा सटीक विवेचन प्रस्तुत करता है। इस रचना में युद्ध का पूरा मनोविज्ञान विवृत्त हुआ है।
- 'कुरुक्षेत्र' का तृतीय सर्ग पूरी रचना का निचोड़ है, जिसमें युधिष्ठिर की निराशा के परिप्रेक्ष्य में भीष्म का उपदेश पूरे समाज–दर्शन और युद्धनीति को प्रस्तुत कर देता है।
- क्षमा, धर्म, नीति, युद्ध, अधर्म, अनीति आदि पर भीष्म का कथन किसी भी प्रबुद्ध पाठक को झकझोरने के लिए पर्याप्त है।
- महाभारत की कथा को आधार बनाकर 'दिनकर' ने उसे आज के संदर्भ में बहुत कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है, जो उनके काव्यकौशल का निदर्शन है।
- वस्तुतः कुरुक्षेत्र 'दिनकर' की बहुत महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक रचना है।

13.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. हिंदी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि – डॉ. द्वारकाप्रसाद सक्सेना।
2. हिंदी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास – डॉ. रामप्रसाद मिश्र।
3. हिंदी साहित्य का नया इतिहास – डॉ. रामलेखन पांडेय।
4. हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. नगेन्द्र।

13.12 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. 'दिनकर' का परिचय देते हुए, उनकी प्रमुख कृतियों का उल्लेख कीजिए।
2. 'दिनकर' के काव्य की प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
3. 'दिनकर' काव्य में राष्ट्रीय भावना विषय पर एक लेख लिखिए।
4. कुरुक्षेत्र की कथावस्तु की विशेषताएं स्पष्ट कीजिए।
5. 'कुरुक्षेत्र में राष्ट्रीय भावना को उदाहरण सहित समझाइए।
6. 'कुरुक्षेत्र' में युधिष्ठिर के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
7. भीष्म की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लघूत्तरीय प्रश्न

1. 'कुरुक्षेत्र' का सारसंक्षेप लिखिए।
2. 'कुरुक्षेत्र' का संदेश स्पष्ट कीजिए।
3. युधिष्ठिर की निराशा का कारण समझाइए।
4. भीष्म के उपदेश को संक्षेप में समझाइए।
5. 'कुरुक्षेत्र' के तृतीय सर्ग का सार लिखिए।
6. 'दिनकर' राष्ट्रकवि हैं या राष्ट्रीय कवि स्पष्ट कीजिए।
7. 'दिनकर' की रचनाओं के नाम लिखिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. 'दिनकर' को किस धारा का कवि माना जाता है ?
2. 'दिनकर' की सर्वाधिक चर्चित एवं प्रसिद्ध रचना का नाम लिखिए।
3. 'दिनकर' को किस रचना पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था?
4. 'दिनकर' काव्य का प्रमुख विषय क्या है ?
5. 'दिनकर' की कौन सी रचना द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से प्रेरित है ?
6. 'दिनकर' का क्या अर्थ होता है ?
7. 'दिनकर' का संबंध किस राज्य से है ?
8. 'दिनकर' किस राजनीतिक पार्टी से संबद्ध थे ?
9. 'दिनकर' को किस विश्वविद्यालय का कुलपति बनाया गया था ?
10. 'दिनकर' को अपनी कविताओं के कारण कौन सी उपाधि दी गई।
11. 'लोहे के पेड़ हरे होंगे', 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है', 'क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल है', जैसी प्रसिद्ध पंक्तियां किस कवि की हैं ?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 14 सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 अज्ञेय : एक परिचय
14.3 अज्ञेय का काव्य सौष्ठव
14.3.1 वैयक्तिकता
14.3.2 लघुता की ओर दृष्टिपात
14.3.3 प्रेम का चित्रण
14.3.4 नग्न अभिव्यक्ति
14.3.5 बौद्धिकता और शुष्कता
14.3.6 यथार्थता
14.3.7 दार्शनिकता
14.3.8 भाषा
14.3.9 प्रतीकविधान
14.3.10 बिम्बविधान
14.3.11 अलंकार नियोजन
14.3.12 छन्दविधान
14.4 व्याख्या खंड
14.4.1 मूल पाठ
नदी के दीप
असाध्य वीणा
मैने देखा एक बूंद
साँप
14.4.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ
नदी के दीप
असाध्य वीणा
मैने देखा एक बूंद
साँप
14.5 सारांश
14.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें
14.7 अभ्यास प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

'अज्ञेय' आधुनिक हिंदी साहित्य में नवीन काव्यधारा 'प्रयोगवाद' के प्रवर्तक कवि के रूप में ख्यात हैं। अज्ञेय आधुनिक हिंदी के ऐसे विरल काव्य व्यक्तित्व कहे जाते हैं, जिन्होंने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के दम पर विशिष्ट काव्य चेतना का प्रतिनिधित्व किया है। किसी भी काव्यधारा को युग की आवश्यकता के अनुरूप मोड़कर उसे नई दिशा और नया रूप देना, बदलते हुए युग संदर्भों में काव्यप्रवृत्तियों को नवीन दृष्टि और अर्थवत्ता से संवलित करना हर किसी के वश की बात नहीं। यह काम ' अज्ञेय' जैसा कोई काव्य पुरोधा ही कर सकता है। अपनी कविताओं के माध्यम से जो चेतना और संस्कार जगाया, उससे वे आधुनिक हिंदी कविता में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हो गए।

'अज्ञेय' एक ऐसे प्रयोगशील विचारवान कवि कहे जा सकते हैं, जिन्होंने विविध विषयों को अपनी काव्यात्मक – सर्जनात्मक प्रतिभा से बहुत कलात्मक और परिष्कृत रूप में अभिव्यक्त किया, जिसमें वैज्ञानिक दृष्टि के साथ सुचिंतित वैचारिक सोच का समावेश है। अज्ञेय के काव्य में बदलती संवेदना के साथ नूतनशिल्प प्रयोग दिखाई देता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है, जिसमें मानवीय चेतना की गहराई है। वे मानवीय अनुभूतियों को चेतना का स्रोत मानते हुए वैचारिक दृष्टि से व्यक्तिस्वातंत्र्य के हिमायती हैं। अज्ञेय व्यक्ति की निजता एवं वैयक्तिकता को सुरक्षित रखना चाहते हैं। उनके काव्य को सांस्कृतिक उन्नयन का काव्य कहा जा सकता है, जहां व्यक्तित्व के परिष्कार का प्रयास दिखाई देता है।

कविता के प्रति अज्ञेय की दृष्टि नितनूतन प्रयोग के साथ अन्वेषण पर टिकी है। वे 'तार सप्तक' के कवियों को एक साथ इस दृष्टि के साथ प्रस्तुत करते हैं कि ये सारे कवि 'राहों के अन्वेषी' हैं। 'अज्ञेय' की यही दृष्टि कविता में नित नवीन प्रयोगों पर बल देती है, जिसके लिए उन्हें आलोचनात्मक रूप में 'प्रयोगवाद' का नेतृत्वकर्त्ता कहा गया।

दार्शनिक मान्यताओं में अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित अज्ञेय, कला की निर्वैयक्तिकता को खुलेमन से समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि एक कवि जीवनगत अनुभवों को अपनी कविताओं के माध्यम से निर्वैयक्तिक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। व्यक्तित्व की तलाश एवं व्यक्तित्व के परिष्कार की बात अज्ञेय बार–बार अपनी कविताओं में करते हैं। यह उनकी कविताओं की बुनियादी दृष्टि है। इस संबंध में अशोक वाजपेयी का कथन बहुत सटीक है – ''इस सिलसिले में यह महत्त्वपूर्ण है कि अज्ञेय की कविता में एक बुनियादी तनाव व्यक्ति की आत्यंतिकता, गरिमा और अद्वितीयता को प्रतिष्ठित और सुरक्षित करने की कोशिश और व्यक्ति के वृहत्तर, से जो कभी समाज और खासकर बाद की कविता में समूचे मनुष्य का मनुष्येतर संसार है, जोड़ने, समंजस करने की इच्छा, उम्मीद और जरुरत के बीच है।''

अपनी काव्य मान्यताओं के अनुरूप अज्ञेय ने प्रयोगवादी काव्यांदोलन का नेतृत्व करते हुए अनेक महत्त्वपूर्ण काव्य रचनाएँ हिंदी को दीं। प्रयोगवाद, जिसे अज्ञेय 'नई कविता' कहने का आग्रह करते हैं, को नूतन विविध आयामों से संवलित कर अज्ञेय ने एक ऐसे काव्यांदोलन का नेतृत्व किया जिसमें विभिन्न विचारधारा के कवि होते हुए भी सभी कवियों ने नवीनता एवं प्रयोगशीलता पर विशेष बल दिया। स्वयं 'अज्ञेय' ने 'नदी के दीप', 'असाध्य वीणा', जैसी महत्त्वपूर्ण कविताओं के माध्यम से अपनी काव्यगत मान्यताओं और विशेषताओं को अभिव्यक्त किया है। उपर्युक्त दोनों कविताएं अज्ञेय के काव्य व्यक्तित्व का निदर्शन करती हैं।

'अज्ञेय' ने जहां बहुत लंबी–लंबी कविताओं के माध्यम से अपनी गहन वैचारिकता को प्रकट किया है, वहीं छोटे–छोटे विषयों पर भी बहुत गंभीर अभिव्यंजना को प्रकट करनेवाली महत्त्वपूर्ण कविताएँ लिखी हैं। 'एक बूँद' और 'सोन मछली' अज्ञेय की ऐसी ही रचनाएं हैं, जिनमें उनकी गहन वैचारिक एवं प्रयोगशील काव्य प्रतिभा का परिचय मिलता है। वस्तुतः नंदकिशोर आचार्य के शब्दों में कहा जा सकता है–

''कविता को भावुकता के प्रवाह से निकाल कर एक बौद्धिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय अज्ञेय को ही है। काव्य की रूढ़ प्रणालियों को तोड़कर अज्ञेय ने काव्य के द्वार नई शिल्पिम योजनाओं तथा अनुभूतियों के लिए खोल दिए।''

14.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई आधुनिक हिंदी कविता के सर्वाधिक नेतृत्वक्षमतासम्पन्न कवि, प्रयोगवादी कविता के प्रणेता सच्चिदानंदहीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' पर केंद्रित है, जिसका उद्देश्य 'अज्ञेय' एवं उनकी कतिपय महत्त्वपूर्ण कविताओं पर प्रामाणिक साम्रगी उपलब्ध करवाना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- प्रयोगवाद एवं उसके सबसे प्रमुख कवि अज्ञेय के विषय में अपेक्षित महत्त्वपूर्ण साम्रगी से परिचित हो सकेंगे।
- अज्ञेय के कवि जीवन से संबंधित अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त कर सकेंगे।
- अज्ञेय के काव्य–सर्जन से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- अज्ञेय की कुछ प्रमुख रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में उनकी काव्यकला से परिचित हो सकेंगे।
- अज्ञेय की महत्त्वपूर्ण कविताओं, 'नदी के दीप', 'असाध्य मीणा', 'एक बूँद' सहसा उछली' एवं 'साँप' पर विशेष सामग्री प्राप्त कर सकेंगे।
- उपर्युक्त, कविताओं की प्रामाणिक व्याख्या से परिचित हो सकेंगे।

इन कविताओं के आलोक में अज्ञेय के काव्य वैशिष्ट्य का प्रामाणिक मूल्यांकन कर सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

14.2 अज्ञेय : एक परिचय

सृष्टि सर्जन का सुन्दरतम रूप काव्य है, जिसक प्रवाह अनादि है, तथापि पग–पग पर परिवर्तन होने के कारण क्षणिक है। यह बात समाज एवं व्यक्ति में प्राप्त हैं। अतः कारण स्वरूप साहित्य में भी यह विशेषता उपलब्ध होती है। साहित्य की धारा आदिकाल से प्रवहमान है। वैदिक काल, संस्कृत, पाली, प्राकृत अपभ्रंश और विभिन्न आधुनिक भाषाएँ इसकी उपधाराएँ हैं। उन उपधाराओं के नाविक रूपी साहित्यकार अतीत से पुष्ट हो, वर्तमान से प्रभावित एवं भविष्य की कल्पना कर अपने व्यक्तित्व के समन्वय से जन – जन के लिए साहित्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। अज्ञेय ऐसे ही साहित्यकार हैं, जिनका समस्त साहित्य भूत से परिपक्व, वर्तमान से प्रभावित व भविष्य के प्रति आदर्श स्वरूप है, जिसमें अज्ञेय का व्यक्तित्व प्रधान एवं स्पष्ट हैं।

'अज्ञेय' का पूरा नाम सच्चिदानन्दहीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' है। उनका जन्म 7 मार्च सन् 1911 में देवरिया जिले के समीप कसिया नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता पण्डित हीरानन्द शास्त्री पुरातत्त्व विभाग में थे, उनके स्थानान्तरणों के कारण उनका बाल्यकाल अनेक स्थानों पर बीता तथा शिक्षा भी अव्यवस्थित रही। अज्ञेय का बाल्यकाल सन् 1911 से 1915 तक तो लखनऊ में तथा सन् 1915 से 1919 तक जम्मू व श्रीनगर में व्यतीत हुआ। इस अवधि में आपने संस्कृत की मौखिक एवं उर्दू, फारसी व अँगरेजी की शिक्षा प्राप्त की। सन् 1929 में उन्होंने बी. एससी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके उपरान्त अँगरेजी विषय लेकर एम. ए. में प्रवेश ले लिया। तभी क्रांतिकारी जीवन में प्रविष्ट होकर उसकी योजनाओं में सक्रिय सहयोग देने के कारण उनका अध्ययन कार्य रुक गया। अज्ञेय को प्रथम बार 15 नवम्बर सन् 1930 में गिरफ्तार किया गया और बाद में सन् 1936 तक लगातार सरकार उनका पीछा करती रही और इस कारण से उन्हें अनेक बार जेल यातनाएँ सहनी पड़ीं। सन् 1931 में एक नए मुकदमे के कारण उन्हें दिल्ली जेल की काल – कोठरी में बन्द रखा गया। यहीं रहकर अज्ञेय ने छायावाद से लेकर मनोविज्ञान, राजनीति, कानून व अर्थशास्त्र आदि विषयों का अध्ययन किया। यहीं रहकर 'चिन्ता' एवं 'शेखर एक जीवनी' लिखा। सन् 1936 में जीविकोपार्जन हेतु उन्होंने 'सैनिक' के सम्पादन मण्डल में नौकरी की। यहीं आपकी भेंट रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन आदि से हुई,जो आपके प्रथम 'तार सप्तक' के सह – कवि बने। सन् 1937 से बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह पर डेढ़ वर्ष तक 'विशाल भारत' के सम्पादक मण्डल में आप कलकत्ता रहे। सन् 1955 में अज्ञेय जी प्रथम बार यूनेस्को गए तथा सन् 1956 में द्वितीय विवाह किया। सन् 1956 – 60 तक आपने दिल्ली में निवास किया। तदुपरान्त आप जापान व फिलीपीन्स की यात्रा पर गये। साहित्य साधना की दृष्टि से भी यह काल महत्त्वपूर्ण है। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' इसी समय प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही साथ 'पन्त जी की पृष्ठभूमि रूपाम्बरा' नामक प्रकृति – काव्य का तथा 'द्वितीय तारसप्तक' का सम्पादन भी इसी कालावधि में हुआ।

सन् 1960 में आपकी द्वितीय यूरोप यात्रा पाश्चात्य जगत् व विचारधारा से परिचय की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। उनके सुगठित व्यक्तित्व की परीक्षा अमेरिका के लम्बे प्रवास में हुई। सितम्बर 1961 में आप कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति व साहित्य के अध्यापक नियुक्त हो गए और बीच–बीच में स्वदेश वापसी का अन्तराल देकर जुलाई 1964 तक आप वहीं रहे। जहाँ एक ओर वे अमेरिका में रहकर भारतीय परम्परा के सहज रूप के लिए, पश्चिम के विषय रूप से, परम्पराबोध से युक्त होने पर आधुनिकता का आग्रह पश्चिम के सामने रखते रहे, वही दूसरी ओर इनका चित्त सदैव अपने देश में रहा। जुलाई 1964 में स्वदेश लौटने पर उन्हें दिल का दौरा पड़ गया। पत्नी कपिला ने अपनी सेवा से इनका स्वास्थ्य पुनः लौटाया और सतर्कता की एक लीक सी लगा दी। अब फूल, पत्तीबाजी, बढ़ईगीरी और विभिन्न शारीरिक श्रम सम्बन्धी कार्यों को करना वर्जित हो गया। कठिन यात्राओं का निषेध हो गया।

सन् 1965 में अज्ञेय ने 'दिनमान' नामक पत्रिका का सम्पादन कार्य सम्भाला परन्तु उसका घर– बाहर घोर विरोध हुआ। साथ ही उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व की, पत्र के प्रबन्धक – मण्डल से न पटने के कारण उन्होंने अन्ततः त्यागपत्र दे दिया। सन् 1966 में अज्ञेय जी यूरोप यात्रा कर आए और सन् 1970–71 में पुनः अमेरिका की यात्रा पर गए। आप रूमानिया, यूगोस्लाविया, रूस, मंगोलिया आदि भी जा चुके हैं।

अज्ञेय का कर्तृत्व – अज्ञेय सरस्वती के वरद पुत्र हैं। उन्होंने अपनी सशक्त लेखनी से माँ भारती के चरणों में उपन्यास, काव्य, कहानी व निबन्धों के पुष्प अर्पित किये। उनके कृतित्व का संक्षिप्त परिचय निम्न है–

(1) कथा साहित्य – सन् 1937 से लेकर अब तक आपके सात कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं –

(क) विपथगा – सन् 1937 में प्रकाशित इस कहानी संग्रह में बारह चरित्र प्रधान कहानियाँ संगृहित हैं, इनकी रचना आपने कारावास में की।

(ख) परम्परा – सन् 1944 में प्रकाशित इस कहानी संग्रह में बाईस कहानियाँ हैं, जिनमें अधिकांशतः सामाजिक भावना पर आधारित हैं।

(ग) कोठरी की बात – सन् 1944 में प्रकाशित प्रस्तुत संग्रह में सात कहानियाँ संगृहीत हैं, जिनमें से अधिकांश का वर्ण्य विषय क्रान्तिकारियों के जीवन का चित्राकन है।

(घ) अमरवल्लरी और अन्य कहानियाँ – यह कवि की प्राचीन कहानियों का संग्रह है।

(ड.) जयदोल – सन् 1951 में प्रकाशित ग्यारह कहानियाँ, जिनका वर्ण्यविषय सुख, प्रेम और फौजी जीवन है। इसके द्वितीय संस्करण में एक नई कहानी और जोड़ दी गई है।

(च) ये तेरे प्रतिरूप – सन् 1961 में प्रकाशित इस कहानी संग्रह की चौदह कहानियों में से ग्यारह कहानियाँ नवीन हैं।

अज्ञेय प्रतीक, अन्योक्ति व सूक्तिप्रिय हैं, अतः उन्होंने अनेक ऐसी रचनाएँ की हैं जो वास्तव में प्रतीकात्मक हैं या अन्योक्ति प्रधान। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'शत्रु व परम्परा' में यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती हैं। डॉ. केदार शर्मा ने इनके कथासाहित्य के विषय में एक स्थान पर लिखा है–

''अज्ञेय चरित्र प्रधान कहानीकार हैं, जिन्हें आत्मकथात्मक, स्मृति–चित्रण और स्वप्नशैली अत्यधिक प्रिय हैं। समस्त युगजीवन, इतिहास, धर्म, राजनीति, आदि को लेखक व्यक्ति विशेष के माध्यम से ही आंकता है, लेकिन उसके पात्र वर्गवादी नहीं हो पाए हैं। उनका व्यक्तित्व अपना पृथक अस्तित्व रखता है।''

(2) उपन्यास – 'शेखर : एक जीवनी' – दो भाग, 'नदी के द्वीप' व 'अपने–अपने अजनबी'। 'शेखर एक जीवनी' एक सुन्दर उपन्यास है। उसमें वर्णित मनोवैज्ञानिकता व शिल्प उसे प्रवर्तक उपन्यास घोषित करते हैं। इस उपन्यास में लेखक ने शेखर को असाधारण सिद्ध करने हेतु दूसरे पात्रों के साथ अन्याय किया है। यह उपन्यास निःसन्देह साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टियों से श्रेष्ठ है।

'नदी के द्वीप' उपन्यास का कथानक बहुत ही लघु है। भुवन व रेखा के प्रणय की कथा को लेखक ने प्रकृति सौन्दर्य के माध्यम से भावात्मक वातावरण में चित्रित किया है कि पाठक उसके प्रति उतना आकृष्ट नहीं होता जितना भावात्मक परिवेश के प्रति। दार्शनिकता व शिक्षा विधान ने भी इस उपन्यास को उच्च स्तरीय बना दिया है।

तृतीय उपन्यास 'अपने – अपने अजनबी' का सम्बन्ध चेतन व उपचेतन, बाह्य व अन्तः व्यक्तित्व से है। मानव अपने अन्तरंग से अपरिचित–सा रहता है और जब कभी सहसा उसका उद्घाटन हो जाता है तो वह आश्चर्य चकित रह जाता है।

(3) यात्रा वृतान्त – 'अरे यायावर रहेगायाद' और 'एक बूँद सहसा उछली' उनके दो यात्रा वृत्तान्त है। प्रथम संकलन में उनके सैनिक जीवन से सम्बन्धित घटनाएँ व भ्रमण हैं और द्वितीय संकलन में लेखक (अज्ञेय जी) की युरोप यात्राओं के संस्मरण व वृत्तान्त हैं। स्वाभाविकता व प्रभावपूर्णता इन वृत्तान्तों की विशेषता है।

(4) निबन्ध संग्रह – अब तक अज्ञेय जी के छः निबन्ध संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें ''त्रिशंकु'' तथा 'आत्मनेपद' मुख्य हैं।

(क) त्रिशंकु – सन् 1945 में प्रकाशित इस संग्रह में तेरह निबन्ध संकलित हैं।

(ख) आत्मनेपद – सन् 1950 में प्रकाशित प्रस्तुत संग्रह में रेडियो वार्ता, संस्मरण – पत्र, भाषण और इन्टरव्यू शैली में रचित 28 निबन्ध संकलित हैं।

(5) सम्पादित ग्रन्थ – अज्ञेय जी ने सम्पादन कार्य बहुत मात्रा में किया।

उनके सम्पादित ग्रन्थ निम्न है –

आधुनिक हिन्दी साहित्य, तार सप्तक, द्वितीय तार सप्तक, तृतीय तार सप्तक, चौथा सप्तक पुष्पकरिणी (कविता संग्रह)। इनके अतिरिक्त हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियां, नए एकांकी, रूपाम्बरा व नेहरू अभिनन्दन ग्रंथ इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

(6) काव्य संकलन – भग्नदूत (सन् 1933), चिन्ता (1942), इत्यलम् (1946), हरी घास पर क्षण भर (1949), बावरा अहेरी (1954), इन्द्र धनुष रौंदे हुए ये (1957), अरी ओ, करुणा प्रभामय (1959), आंगन के पार– द्वार (1961)। ये सभी अज्ञेय जी के कविता संग्रह हैं। प्रथम तीन संग्रह कवि के प्रारम्भिक प्रयास हैं। प्रेम इनका मुख्य विषय है। प्रेम में भी पीड़ा, कसक व निराशा का प्राचीन स्वर है। बाद की कविताओं में आत्मान्वेषण तथा रहस्यवादी भावना के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अंकुर दृष्टिगत होते हैं। 'हरी घास पर क्षण भर' व 'बावरा अहेरी' में कवि के भावों में स्पष्टत, उत्साह एवं उल्लास का वातावरण है। प्रकृति चित्रण की ओर कवि उन्मुख हुआ है। राष्ट्रीय भावना, व्यंग्य एवं प्रतीकात्मकता में भी स्पष्टता आने लगी है। अन्तिम तीनों कविता संग्रह कवि की नवीन कृतियाँ हैं, जिनमें प्रेम का वास्तविक रूप उभरा है, अनुभूति की मौन अभिव्यक्ति की ओर कवि की सफल गति है। विचार प्राधान्य व सूक्ति प्रियता भी कतिपय कविताओं में स्पष्ट है। दार्शनिकता की भावना में प्रगाढ़ता आती गई है। सागर, लहर, मछली, आकाश आदि मुख्य रूप से कवि को प्रिय हैं। यही कारण है कि कवि ने इन्हें प्रतीक रूप में अधिक ग्रहण किया है। प्रकृति व रहस्यवाद भी कवि के प्रिय विषय रहे हैं।

वस्तुतः कि 'अज्ञेय' नये शिल्पी, उपन्यासकार, कहानीकार, कवि एवं सम्पादक हैं तथा प्रयोगवादी युग के श्रेष्ठ साहित्यकारों में श्रेष्ठ व उच्च हैं।

14.3 अज्ञेय का काव्य सौष्ठव

अज्ञेय प्रयोगवाद के प्रवर्तक कवि हैं। उन्होंने कविता के क्षेत्र में उस समय कदम रखा जब एक ओर तो छायावाद का छुई मुई रूप था, जिसे जीवन की धूप बर्दाश्त नहीं होती थी, दूसरी ओर प्रगतिवाद की कड़ी चट्टान थी, जिस पर फल नहीं उगाए जा सकते थे; और तीसरी ओर व्यक्तिवादी गीतिकाव्यधारा थी, जिसमें निराशा की बड़ी आवेगमयी अभिव्यक्ति थी, तो चौथी ओर राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावनाओं को प्रतिष्ठित करने का प्रयास था। इन सब काव्यधाराओं में से किसी में मध्यम – वर्ग की जटिलताओं को दूर करने का प्रयास नहीं दिखाई देता था। अज्ञेय ने इस दिशा में प्रयोग करने की आवश्यकता समझी; यद्यपि वे स्वयं तो इसमें पूरी तरह सफल नहीं हो सके, लेकिन उन्होंने अनेक कवियों को उनकी प्रतिभा आलोक के साथ नये पथ पर लाकर खड़ा कर दिया। वस्तुतः अज्ञेय आधुनिक काव्य जगत् में प्रयोगवाद के प्रवर्तक हैं।

भावपक्ष

14.3.1 वैयक्तिकता

प्रयोगवादी कवि घोर व्यक्तिवादी है। उसकी रचनाएँ व्यक्तिवादी मनोभूमि पर आधारित हैं। अज्ञेय की कविताएँ भी वैयक्तिकता से ओतप्रोत हैं। यथा –

"मैं आज जगकर खोज रहा हूँ।
वह क्षण जिसमें मैं जगा हूँ।।"

14.3.2 लघुता की ओर दृष्टिपात

अज्ञेय ने छोटे से छोटे विषय पर कविताओं की रचना की है, यथा – साँप, सोन मछली, लेकिन ये लघु रचनाएँ भी गम्भीर अभिव्यंजना को अपने अन्तस् में छिपाए रहती हैं।

14.3.3 प्रेम का चित्रण

अज्ञेय ने प्रेम को अपनी कविता में विशेष महत्त्व दिया है। उन्होंने प्रेम–भावना को कहीं नारी के माध्यम से तो कहीं पुरुष के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

उनकी प्रेमानुभूति में प्रेम की पीड़ा, निराशा और घुटन का चित्रण भी मिलता है। यथा –

"प्राण, तुम चली गई अत्यन्त,
कारुणिक, मिथ्या है यह मोह –
देखकर वे दो उड़ते कीर
कर उठा अन्तःस्थल विद्रोह ।"

14.3.4 नग्न अभिव्यक्ति

प्रयोगवादी काव्य में अतृप्त कुंठाओं एवं दमित वासनाओं का नग्न चित्रण हुआ है। अज्ञेय की 'सावन मेघ' कविता में यही चित्रित हुआ है–

"स्नेह से आलिप्त
बीज के भावितव्य से उत्फुल्ल बुद्ध–
वासना के पंक–सी फैली हुई थी
धारयित्री सत्य – सी निर्लज्ज, नंगी औ, समर्पित।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.3.5 बौद्धिकता और शुष्कता

आज के कवि अनुभूति से प्रेरित होकर काव्य रचना कम करते हैं, वस्तुतः उनमें राग–तत्व का अभाव होता है। इसीलिए अज्ञेय के काव्य में भी बौद्धिकता एवं शुष्कता के दर्शन होते हैं। यथा–

> ''मिथ्या, कल मिथ्याः
> कल की निशि घनसार तमिस्रा
> और अकेली होगी–
> स्मृति की सूखी स्रजा रुआँसी
> एक सहेली होगी।''

14.3.6 यथार्थता

अज्ञेय की अनुभूति यर्थाथ के धरातल पर जन्म लेती है। उसमें काल्पनिकता नहीं है। इसीलिए उनकी कविता में जीवन की कुरूपता, तुच्छता एवं क्षुद्रता का अंकन हुआ है। यथा–

> ''भरी हैं आँखें
> पेट नहीं
> भरे हैं बनिये के कागज
> टेट नहीं।''

14.3.7 दार्शनिकता

अज्ञेय के काव्य में दार्शनिकता भी विद्यमान है। 'चिड़िया की कहानी' शीर्षक कविता में कवि गहन दार्शनिक तथ्य का उद्‌घाटन करता है–

> ''उड़ गयी चिड़िया
> काँपी, फिर
> थिर
> हो गयी पत्ती।''

कलापक्षीय विशेषताएँ

14.3.8 भाषा

अज्ञेय की भाषा शुद्ध, परिष्कृत, संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली है। उनकी भाषा में विविधता भी दृष्टिगोचर होती है– एक ओर उनकी भाषा शुद्ध संस्कृतनिष्ठ है तो दूसरी ओर सरल एवं सहज भाषा का प्रयोग भी अज्ञेय जी ने किया है। भाषा के क्षेत्र में अज्ञेय जी ने नूतन प्रयोग भी किये हैं–

संस्कृतनिष्ठ शब्द – प्रणय, मंजूषा, विस्मृता, वेदने इत्यादि।
देशज तथा तद्भव शब्द – सव, अंजुरी, तवैया, छोरियाँ इत्यादि।
इस प्रकार स्पष्ट है कि अज्ञेय की भाषा अत्यन्त सौष्ठवयुक्त है।

14.3.9 प्रतीक विधान

अज्ञेय ने भावाभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग अपनी कविता में किया है। उन्होंने निजी सत्य को सामान्य बनाने के लिए प्रतीक सृष्टि की है।

अज्ञेय के काव्य में विविध प्रकार के प्रतीक मिलते हैं यथा – यौन प्रतीक, पौराणिक प्रतीक, प्रकृति प्रतीक, परम्परागत प्रतीक इत्यादि। उदाहरण के लिये 'सोन मछली' शीर्षक कविता में 'कॉच' कच्चे संसार का प्रतीक है, और 'मछली' विकल जीवात्मा की प्रतीक है। 'मैंने देखा एक बूँद' शीर्षक कविता में 'बूँद' जीव की, 'सागर' संसार का, 'सूरज' ब्रह्म का और 'आलोक' ज्ञान का प्रतीक है।

14.3.10 बिम्ब विधान

अज्ञेय के शिल्प – पक्ष में बिम्बों का विशेष महत्त्व है। उनकी कविता में दो प्रकार के बिम्ब मिलते हैं – ऐन्द्रिय – बिम्ब और मानस–बिम्ब। ऐन्द्रिय बिम्बों के अन्तर्गत हम दृश्य, संवेद्य, स्पर्श संवेद्य, घ्राण संवेद्य, गति संवेद्य, श्रवण संवेद्य और आस्वाद संवेद्य को रख सकते हैं। 'आँगन के पार द्वार' काव्यकृति से दृश्य – बिम्ब का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''दूज का चाँद
मेरे घर के कुटीर का दिया
तुम्हारे मन्दिर के विस्तृत आँगन में
सहमा–सा रख दिया गया।''

अज्ञेय के काव्य में रोमैंटिक – चेतना और बिम्ब – सृष्टि का अद्‌भुत सम्मिलन हुआ है–

''ओ पिया पानी बरसा
घास हरी पुल सानी
मानिक के झूमर – सी झूमी मधु – मालती
झर पड़े जीते पीत अमलतास
चातकी की वेदना विरानी।''

इस प्रकार अज्ञेय बिम्ब – सृष्टि में अत्यन्त प्रवीण हैं।

14.3.11 अलंकार नियोजन

प्रयोगवादी कवि होने के कारण अज्ञेय ने अलंकार – क्षेत्र की प्राचीन मान्यताओं में परिवर्तन किया। उन्होंने तो स्पष्ट घोषणा की–

''ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।
कभी वासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।''

वैसे अज्ञेय ने उपमा, रूपक, मानवीकरण, ध्वन्यार्थ – व्यंजना इत्यादि अलंकारों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है।

14.3.12 छन्दविधान

अज्ञेय ने अपने काव्य में प्रायः मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

''संगीतकार
वीणा को धीरे से नीचे रख, ढँक मानो
गोदी में शिशु को पालने डालकर
हट जाय, दीठ से दुलराती
उठ खड़ा हुआ।''

अज्ञेय ने हिन्दी साहित्य में नूतन काव्यधारा (प्रयोगवाद) का प्रवर्त्तन किया। उनका काव्य भाव–पक्ष एवं शिल्प – पक्ष की दृष्टि से अत्यन्त प्रौढ़ है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है –

''अज्ञेय के काव्य का वस्तु–पक्ष एवं शिल्प–पक्ष कमल के सौंदर्य – बोध से कैक्टस की सौंदर्य चेतना की ओर विकसित हुआ है। इस विकास से इनके काव्य का इतिहास परिलक्षित होता है।''

अन्ततः कहा जा सकता है कि अज्ञेय में ''सर्जनात्मकता है, प्रतिभा है, परम्परा से लगाव है, पर रूढ़ि – मोह नहीं; अभिव्यक्ति के माध्यमों की तलाश है; पर शिल्प – वैचित्र्य नहीं; नूतनता का वरण है; पर फैशनपरस्ती नहीं।''

14.4 व्याख्या खण्ड

14.4.1 मूल पाठ

नदी के द्वीप

1

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकर देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकत कूल,
सब गोलाइयाँ उस की गढ़ी हैं।
माँ है वह है, इसी से हम बने हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2

किन्तु हम हैं द्वीप।
हम धारा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा।
हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।
किन्तु हम बहते नहीं हैं।
क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे, प्लावन होगा, ढहेंगे, सहेंगे, बह जायेंगे।

और फिर हम चूर्ण हो कर भी कभी क्या धार बन सकते ?
रेत बन कर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे।
अनुपयोगी ही बनायेंगे।

3

द्वीप हैं हम।
यह नहीं है शाप! यह अपनी नियति है।

हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी के क्रोड़ में।
वह वृहद् भूखंड से हम को मिलाती है।
और वह भूखंड
अपना पितर है।

4

नदी, तुम बहती चलो।
भूखंड से जो दाय हम को मिला है, मिलता रहा है,
माँजती, संस्कार देती चलो :
यदि ऐसा कभी हो
तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के किसी स्वेच्छाचार से–
अतिचार से –
तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे–
यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्त्तिनाशा घोर
काल–प्रवाहिनी बन जाय
तो हमें स्वीकार है वह भी।
उसी में रेत होकर फिर छनेंगे हम,
जमेंगे हम, कहीं फिर पैर टेकेंगे।
कहीं फिर भी खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार।

मातः, उसे फिर संस्कार तुम देना।

असाध्य वीणा

आ गये प्रियवंद ! केशकम्बली ! गुफा–गेह !
राजा ने आसन दिया। कहा :
''कृतकृत्य हुआ मैं तात! पधारे आप।
भरोसा है अब मुझ को
साध आज मेरे जीवन की पूरी होगी !''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लघु संकेत समझ राजा का
गण दौड़े। लाये असाध्य वीणा,
साधक के आगे रख उस को, हट गये।
सभी की उत्सुक आँखें
एक बार वीणा को लख, टिक गयीं
प्रियवंद के चेहरे पर।

''यह वीणा उत्तराखण्ड के गिरि–प्रान्तर से
–घने वनों में जहाँ तपस्या करते हैं व्रतचारी –
बहुत समय पहले आयी थी।
पूरा तो इतिहास न जान सके हम :
किन्तु सुना है
वज्रकीर्ति ने मन्त्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीटी–तरु से इसे गढा था –
उस के कानों में हिम – शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कन्धों पर बादल सोते थे,
उसकी करि–शुण्डों–सी डालें
हिम–वर्षा से पूरे वन–यूथों का कर लेती थीं परित्राण,
कोटर में भालू बसते थे,
केहरि उसके वल्कल से कन्धे खुजलाने आते थे।
और–सुना है– जड़ उसकी जा पहुँची थी पाताल–लोक,
उसकी गन्ध – प्रवण शीतलता से फण टिका नाग वासुकि
सोता था

उसी किरीटी–तरु से वज्रकीर्ति ने
सारा जीवन इसे गढ़ा :
हठ–साधना यही थी उस साधक की–
वीणा पूरी हुई, साथ साधना, साथ ही जीवन–लीला।''

राजा रुके
साँस लम्बी ले कर फिर बोले :
''मेरे हार गये सब जाने–माने कलावन्त,
सब की विद्या हो गयी अकारथ, दर्प चूर,
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गयी।
पर मेरा अब भी है विश्वास
कृच्छ–तप वज्रकीर्ति का व्यर्थ नहीं था।
वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी
इसे जब सच्चा स्वरसिद्ध गोद में लेगा।
तात ! प्रियवंद !
लो यह सम्मुख रही तुम्हारे
वज्रकीर्ति की वीणा,
यह मैं, यह रानी, भरी सभा यह :
सब उदग्र, पर्युत्सुक,
जन–मात्र प्रतीक्षमाण।''

केशकम्बली गुफा–गेह ने खोला कम्बल
धरती पर चुपचाप बिछाया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वीणा उस पर रख, पलक मूँद कर, प्राण खींच,
कर के प्रणाम,
अस्पर्श छुअन से छुए तार ।
धीरे बोला : "राजन् ! पर मैं तो
कलावन्त हूँ नहीं, शिष्य, साधक हूँ–
जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी।

वज्रकीर्ति !
प्राचीन किरीटी–तरु !
अभिमंत्रित वीणा !
ध्यान–मात्र इन का तो गद्‌गद विह्वल कर देनेवाला है।"

चुप हो गया प्रियंवद।
सभा भी मौन हो रही।

वाद्य उठा साधक ने गोद रख लिया।
धीरे–धीरे झुक उस पर, तारों पर मस्तक टेक दिया।
सभी चकित थे – अरे, प्रियंवद क्या सोता है ?
केशकम्बली अथवा होकर पराभूत
झुक गया वाद्य पर ?
वीणा सचमुच क्या है असाध्य ?

पर उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा–
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था।
सघन निविड़ में वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीटी–तरु को।
कौन प्रियवंद है कि दम्भकर
इस अभिमंत्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे ?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं एक जीवन–भर की साधना रही ?
भूल गया था केशकम्बली राज–सभा को :
कम्बल पर अभिमंत्रित एक अकेलेपन में डूब गया था
जिस में साक्षी के आगे था
जीवित वही किरीटी–तरु
जिस की जड़ वासुकि के फण पर थी आधारित,
जिस के कन्धों पर बादल सोते थे
और कान में जिस के हिमगिरि कहते थे अपने रहस्य।
सम्बोधित कर उस तरु को, करता था
नीरव एकालाप प्रियवंद।

"ओ विशाल तरु !
शत–सहस्र पल्लवन–पतझरों ने जिस का नित रूप सँवारा,
कितनी बरसातों कितने खद्योतों ने आरती उतारी,
दिन भौंरे कर गये गुँजरित,
रातों में झिल्ली ने
अनथक मंगल–गान सुनाये,
साँझ–सवेरे अनगिन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनचीन्हे खग–कुल की मोद–भरी क्रीड़ा–काकलि
डाली–डाली को कँपा गयी–
ओ दीर्घकाय !
ओ पूरे झारखण्ड के अग्रज,
तात, सखा, गुरु, आश्रय,
त्राता महच्छाय,
ओ व्याकुल मुखरित वन–ध्वनियों के
वृन्दगान के मूर्त रूप,
मैं तुझे सुनूँ,
देखूँ ध्याऊँ
अनिमेष, स्तब्ध, संयत, संयुत, निर्वाक् :
कहाँ साहस पाऊँ
छू सकूँ तुझे !
तेरी काया को छेद, बाँधकर रची गयी वीणा को
किस स्पर्धा से
हाथ करें आघात
छीनने को तारों से
एक चोट में वह संचित संगीत जिसे रचने में
स्वयं न जाने कितनों के स्पन्दित प्राण रच गये !

''नहीं, नहीं !
वीणा यह मेरी गोद रही है, रहे,
किन्तु मैं ही तो
तेरी गोदी बैठा मोद–भरा बालक हूँ,
ओ तरु–तात ! सँभाल मुझे,
मेरी हर किलक
पुलक में डूब जाय :
मैं सुनूँ
गुनूँ,
विस्मय से भर आँकूँ
तेरे अनुभव का एक–एक अन्तःस्वर
तेरे दोलन की लोरी पर झूमूँ मैं तन्मय–
गा तू :
तेरी लय पर मेरी साँसें
भरें, पुरें, रीतें, विश्रान्ति पायें।

''गा तू !
यह वीणा रखी है : तेरा अंग–अपंग !
किन्तु अंगी, तू अक्षत, आत्म भरित,
रस–विद्,
तू गाः
मेरे अँधियारे अन्तस् में आलोक जगा
स्मृति का
श्रुति का–
तू गा, तू गा, तू गा, तू गा !

''हाँ मुझे स्मरण हैः
बदली–कौंध–पत्तियों पर वर्षा–बूँदों की पटपट ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

घनी रात में महुए का चुपचाप टपकना।
चौंके खग–शावक की चिहुँक।
शिलाओं को दुलराते वन–झरने के
द्रुत लहरीले जल का कल–निनाद।
कुहरे में छनकर आती
पर्वती गाँव के उत्सव ढोलक की थाप।
गड़रिये की अनमनी बाँसुरी।
कठफोड़े का ठेका। फुलसुँघनी की आतुर फ़ुरकन :
ओस–बूँद की ढरकन – इतनी कोमल, तरल,
कि झरते–झरते मानो
हरसिंगार का फूल बन गयी।
भरे शरद् के ताल, लहरियों की सरसर ध्वनि।

कूँजों का क्रेंकार। काँद लम्बी टिटि्टभ की।
पंख–युक्त सायक–सी हंस–बलाका।
चीड़–वनों में गन्ध –अन्ध उन्मद पतंग की जहाँ–तहाँ टकराहट
जल–प्रपात का प्लुत एकस्वर।
झिल्ली–दादुर, कोकिल–चातक की झंकार–पुकारों की यति में
संसृति की साँय–साँय।

"हाँ, मुझे स्मरण है :
दूर पहाड़ों–से काले मेघों की बाढ़
हाथियों का मानों चिंघाड़ रहा हो यूथ।
घरघराहट चढ़ती बहिया की।
रेतीले कगार का गिरना छप्–छड़ाप।
झंझा की फुफकार, तप्त,
पेड़ों का अरराकर टूट–टूट कर गिरना।
ओले की कर्री चपत।
जमे पाले–से तनी कटारी–सी सूखी घासों की टूटन।
ऐंठी मिट्टी का स्निग्ध घाम में धीरे–धीरे रिसना।
हिम–तुषार के फाहे धरती के घावों को सहलाते चुपचाप।
घाटियों में भरती
गिरती चट्टानों की गूँज–
काँपती मन्द्र गूँज–अनुगूँज–साँस खोयी–सी,
धीरे–धीरे नीरव।

'मुझे स्मरण है :
हरी तलहटी में, छोटे पेड़ों की ओट, ताल पर
बँधे समय वन–पशुओं की नानाविध आतुर–तृप्त पुकारें :
गर्जन, घुर्घुर, चीख, भूँक, हुक्का, चिंचियाहट।
कमल–कुमुद–पत्रों पर चोर – पैर द्रुत धावित
जल–पंछी की चाप।
थाप दादुर की चकित छलाँगों की।
पन्थी के घोड़े की टाप अधीर।
अचंचल धीर थाप भैंसों के भारी खुर की।

"मुझे स्मरण है :
उझक क्षितिज से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किरण भोर की पहली
जब तकती है ओस बूँद को –
उस क्षण की सहसा चौंकी–सी सिहरन।
और दुपहरी में जब
घास–फूल अनदेखे खिल जाते हैं
मौमाखियाँ असंख्य झूमती करती हैं गुंजार–
उस लम्बे विलमे क्षण का तन्द्रालस ठहराव ।
और साँझ को
जब तारों की तरल कँपकँपी
स्पर्शहीन झरती है–
मानों नभ में तरल–नयन ठिठकी
निःसंख्य सवत्सा युवती माताओं के आशीर्वाद–
उस सन्धि–निमिष की पुलकन लीयमान।

''मुझे स्मरण है:
और चित्र प्रत्येक
स्तब्ध, विजड़ित करता है मुझ को।
सुनता हूँ मैं
पर हर स्वर–कम्पन लेता है मुझ को मुझे से सोख–
वायु–सा नाद–भरा मैं उड़ जाता हूँ।...
मुझे स्मरण है –
पर मुझ को मैं भूल गया हूँ :
सुनता हूँ मैं –
पर मैं मुझ से परे, शब्द में लीयमान।

''मैं नहीं, नहीं ! मैं कहीं नहीं !
ओ रे तरु ! ओ वन !
ओ स्वर–सँभार !
नाद–मय संसृति !
ओ रस –प्लावन !
मुझे क्षमा कर – भूल अकिंचनता को मेरी–
मुझे ओट दे–ढँक ले–छा–ले–
ओ शरण्य !
मेरे गूँगेपन को तेरे सोये स्वर–सागर का ज्वार डुबा ले !
आ, मुझे भुला,
तू उतर बीन के तारों में
अपने से गा
अपने को गा–
अपने खग कुल को मुखरित कर
अपनी छाया में पले मृगों की चौकड़ियां को ताल बाँध,
अपने छायातप, वृष्टि–पवन, पल्लव–कुसुमो की लय पर
अपने जीवन–संचय को कर छन्दयुक्त
अपनी प्रज्ञा को वाणी दे !
तू गा, तू गा–
तू सन्निधि पा–तू खो
तू आ–तू हो–तू गा ! तू गा !''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

राजा जागे।
समाधिस्थ संगीतकार का हाथ उठा था–
काँपी थीं उँगलियाँ।
अलस अँगडाई लेकर मानो जाग उठी थी वीणा :
किलक उठे थे स्वर–शिशु।
नीरव पद रखता जालिक मायावी
सधे करों से धीरे–धीरे–धीरे
डाल रहा था जाल हेम–तारों का।

सहसा वीणा झनझना उठी–
संगीतकार की आँखों में ठण्डी पिघली ज्वाला–सी झलक गयी–
रोमांच एक बिजली–सा सब के तन में दौड़ गया।
अवतरित हुआ संगीत
स्वयम्भू
जिस में सोता है अखण्ड
ब्रह्म का मौन
अशेष प्रभामय।

डूब गये सब एक साथ।
सब अलग–अलग एकाकी पार तिरे।
राजा ने अलग सुना :
''जय देवी यशःकाय
वरमाल लिये
गाती थी मंगल–गीत
दुन्दुभी दूर कहीं बजती थी,
राज–मुकुट सहसा हलका हो आया था, मानो हो फूल
सिरिस का।

ईर्ष्या महदाकांक्षा, द्वेष, चाटुता
सभी पुराने लुगड़े–से झर गये, निखर आया था जीवन कांचन
धर्मभाव से जिसे निछावर वह कर देगा।

रानी ने अलग सुना :
छँटती बदली में एक कौंध कह गयी–
तुम्हारे ये मणि–माणिक, कण्ठहार, पट–वस्त्र,
मेखला–किंकिणि–
अब अन्धकार के कण हैं ये ! आलोक एक है
प्यार अनन्य ! उसी की
विद्युल्लता घेरती रहती है रस भार मेघ को,
थिरक उसी की छाती पर, उस में छिपकर सो जाती है
आश्वस्त, सहज विश्वास–भरी।
रानी
उस एक प्यार को साधेगी।

सब ने भी अलग–अलग संगीत सुना।
इस को
वह कृपा–वाक्य था प्रभुओं का–
उस को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आतंक–मुक्ति का आश्वासन :
इस को
वह भरी तिजोरी में सोने की खनक–
उसे
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुद्‌बुद।
किसी एक को नयी वधू की सहमी–सी पायल – ध्वनि
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी
एक किसी को जाल–फँसी मछली की तड़पन–
एक अपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की।
एक तीसरे को मण्डी की ठेलमठेल, ग्राहकों की
आस्पर्धा–भरी बोलियाँ,
चौथे को मंदिर की ताल–युक्त घण्टा–ध्वनि।
और पाँचवें को लोहे पर सधे हथौड़े की सम चोटें
और छटे को लंगर पर कसमसा रही नौक पर लहरों की
अविराम थपक।
बटिया पर चमरौधे की रुँधी चाप सातवें के लिए –
और आठवें को कुलिया की कटी मेंड़ से बहते जल की
छुल–छुल।
इसे गमक नट्टिन की एड़ी के घुँघरू की–
उसे युद्ध का ढोल :
इसे संझा–गोधूली की लघु टुन–टुन –
उसे प्रलय का डमरू – नाद।
इस को जीवन की पहली अँगड़ाई
पर उस को महाजृम्भ विकराल काल।
सब डूबे, तिरे, झिपे, जागे–
हो रहे वशंवद, स्तब्ध :
इयत्ता सब की अलग–अलग जागी,
संधीत हुई,
पा गयी विलय।

वीणा फिर मूक हो गयी।

"साधु ! साधु !!"

राजा सिंहासन से उतरे –
रानी ने अर्पित की सतलड़ी माल,
जनता विह्वल कह उठी "धन्य !
हे स्वरजित् ! धन्य ! धन्य !"

संगीतकार
वीणा को धीरे से नीचे रख, ढँक–मानो
गोदी में सोये शिशु को पालना डाल कर मुग्धा माँ
हट जाय, दीठ से दुलराती–
उठ खड़ा हुआ।
बढ़ते राजा का हाथ उठा करता आवर्जन,
बोला :
"श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब–कुछ को सौंप दिया था–
सुना आप ने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब–कुछ की तथता थी
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है''

नमस्कार कर मुड़ा प्रियवंद केशकम्बली । लेकर कम्बल
गेह–गुफा को चला गया।
उठ गयी सभा। सब अपने–अपने काम लगे
युग पलट गया।

प्रिय पाठक ! यों मेरी वाणी भी
मौन हुई।

मैंने देखा एक बूँद

मैंने देखा
एक बूँद सहसा
उछली सागर की झाग से :
रँगी गयी क्षण–भर
ढलते सूरज की आग से।

मुझ को दीख गया :
सूने विराट् के सम्मुख
हर आलोक–छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के दाग से !

साँप

साँप !
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ (उत्तर दोगे ?)
तब कैसे सीखा डसना –
विष कहाँ पाया ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

14.5.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

नदी के द्वीप

कविता का परिचय – 'नदी के द्वीप' कविता अज्ञेय की अत्यंत महत्त्वपूर्ण कविता मानी जाती है, जिसमें कवि प्रतीकों के माध्यम से अपने अस्तित्व, अपनी अस्मिता को परिभाषित करने का प्रयास करता है। कवि ने नदी और द्वीप के माध्यम से प्रतीकात्मक शैली में समाज और व्यक्ति के संबंधों का विवेचन किया है। कवि की मान्यता है कि नदी रूपी समाज से ही व्यक्ति रूपी द्वीप का उदय होता है। नदी बेशक द्वीप को आकार देती है, तब भी उस द्वीप का अस्तित्व स्वतंत्र है। नदी का हिस्सा होकर भी द्वीप का अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाए रखना ही उसकी सार्थकता और अर्थवत्ता है।

प्रस्तुत कविता के माध्यम से अज्ञेय ने प्रतीकार्थ रूप में यह बताने का प्रयास किया है कि व्यक्ति समाज रूपी नदी का द्वीप है। वह समाज का ही एक अंग है, पर उसका पृथक अस्तित्व होता है। व्यक्ति द्वीप के समान नदी में रहकर भी अपना अलग महत्त्व, अस्तित्व बनाए रखता है। विशिष्ट व्यक्ति समाज से ऊपर उठकर रहता है, उसमें खो नहीं जाता। जैसे धारा नदी के जल में प्रवाहित होती है, पर द्वीप पृथक ही रहते हैं, उसी प्रकार व्यक्ति सामाजिक परिवेश या परंपरा में पूर्णतः लिप्त नहीं होता। समाज का अंग होते हुए भी वह मौलिक नवीन रूप में अपना विकास करता है। व्यक्ति समाज की इकाई है, पर उसका समाज से अलग भी पृथक महत्त्व है, अस्तित्व है, जिस प्रकार द्वीप का नदी में होता है।

'नदी के द्वीप' के माध्यम से अज्ञेय की मान्यता है कि यदि व्यक्ति विशिष्ट न रहकर समाज के जन कोलाहल में पूर्णतः खो जाता है,या व्यक्ति पृथक रहकर भी अपने जीवन में समाज का ही विकास करता है, पृथक व्यक्तित्व का विकास या निर्माण नहीं करता, तो यह उसके विनाश का सूचक है। व्यक्ति स्थिर रहकर समाज को ही अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है। पृथक अस्तित्व न होना उसके व्यक्तित्व की पराजय है।

व्यक्ति पूर्णतः सामाजिक परंपरा, रूढ़ियों का अनुगमी रहे, तो रेत के समान ही वह महत्वहीन हो जाता है। वह समाज का भी विकास नहीं कर पाता। नवीन आदर्श, दृढ़ता और विशिष्टता से रहित व्यक्ति समाज के वातावरण को तो दूषित करता ही है, वह स्वयं के जीवन को भी दूषित और व्यर्थ कर लेता है। ऐसे व्यक्ति के जीवन का, व्यक्तित्व का कोई महत्त्व नहीं रहता।

अज्ञेय की मान्यता है कि हम व्यक्ति हैं, समाज का अंग होते हुए भी, उसमें रहते हुए भी, हमें नदी के द्वीप की तरह अलग से अपना अस्तित्व निर्माण करना है। वस्तुतः मनुष्य के अस्तित्व को दृढ़ता से स्वीकार करनेवाली यह कविता 'अज्ञेय' की मान्यताओं का निदर्शन करती है।

हम नदी .... इसी से हम बने हैं।

शब्दार्थ – स्रोतस्विनी = नदी। द्वीप = नदी के प्रवाह के बीच निकला हुआ भू–भाग जिसका रहना और बह जाना – कुछ भी स्थिर नहीं है। आकार = संस्कार, निर्माण। कोण = झुकाव। अन्तरीप = द्वीप। उभार = ऊँचाई। सैकत कूल = रेत के किनारे, अस्थिर–स्वरूप। गढ़ी = निर्मिति। माँ = निर्मात्री, जन्म दात्री।

सन्दर्भ – 'नदी के द्वीप' अज्ञेय के काव्य–संग्रह 'हरी घास पर क्षण–भर' से ली गई एक अतिमहत्त्वपूर्ण कविता है।

प्रसंग – कवि का यह सम्पूर्ण काव्य व्यक्ति के अस्तित्व और व्यक्तित्व की खोज में, उसी की तलाश में उन्मत और व्यग्र दिखाई पड़ता है। इसी से कवि की अनुभूति और अभिव्यक्ति प्रतीक के माध्यम खोजती हुई अभिव्यक्त होती है, जबकि कवि का उद्देश्य स्थापना करना नहीं है, अपने भीतर की मनोवेदना को ही अभिव्यक्त करना है।

व्याख्या –

वाच्यार्थ – 'हम सब की स्थिति नदी के द्वीप की है। इसीलिए हम नहीं कहते कि नदी हमको स्वतंत्र छोड़कर बह जाय क्योंकि हमारा आकार, हमारा स्वरूप उसी की निर्मिति है। हमारा झुकाव, हमारी लम्बाई हमारा विस्तार, उभार और हमारे रेत के किनारे तथा सभी उनकी गोलाइयाँ नदी के द्वारा निर्मित हैं। इसी से हम नदी के द्वीपों की वह माँ है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लक्ष्यार्थ — कवि का लक्ष्य 'नदी के द्वीप' के मौन को अनिव्यक्ति देना नहीं है, इसलिए कविता का वाच्यार्थ निरर्थक हो जाता है। कवि मन में अपने अस्तित्व की विनाशिता और उसकी विलीनता कहीं भीतर भय जमाये है और कवि उस भय से अपने आपको बचाना चाहता है। उसे डर है कि यदि भय बढ़ता गया तो उसका जीवन असंतुलित और भयावह हो उठेगा। इसी से उसका व्याकुल मन और चिन्तित बुद्धि अपने समान कहीं कुछ तलाशने लगती है, और नदी के किनारे बैठे हुए नदी के भीतर का द्वीप उभरता है। एकाएक कवि को आभास होता है जैसे उसमें और 'नदी के द्वीप' में कहीं कुछ समानता है जिसकी अभिव्यक्ति में उसके स्वयं की अभिव्यक्ति निहित है और तब 'नदी के द्वीप' नदी के द्वीप नहीं रह जाते– व्यक्ति का व्यक्तित्व और उसका अस्तित्व बनकर उठते–डूबते हैं और नदी, नदी नहीं रह जाती, जीवन की गतिमयता बन जाती है जो कभी समाज और कभी समाजेतर किसी सत्ता की पर्याय बन अभिव्यक्ति पाती है।

व्यंग्यार्थ (क) — कवि कहता है कि हमारा जन्म जीवन की गतिमयता में उसकी गतिमयता को ही बनाये रखने के लिए हुआ है। मानव जीवन की गतिमयता समाज के रूप में स्थिर है। इसलिए यदि समाज नदी के समान या उसका पर्याय है तो हम सबका व्यक्तित्व केवल उस द्वीप के समान है जो नदी के भीतर से जन्मा है। और पनपता हुआ उसी के भीतर न जाने कब तक स्थिर है।

इसलिए हमें अपने आकार, अपने व्यवहार, अपनी अच्छाइयाँ, अपनी बुराइयाँ और अपनी प्रसिद्धि को अपनी निर्मिति नहीं समझना चाहिए क्योंकि यह तो हमें प्रदत्त नहीं है अपितु इसका होना समाज के ऊपर निर्भर है। जिस प्रकार नदी के द्वीप के कोण, उसकी गोलाइयां उसके अन्तरीप, उभार और किनारे सब कुछ नदी के द्वारा गढ़ी हुई हैं, उसी प्रकार हम जो भी कुछ है, समाज के द्वारा ही हैं। इस लिए हम यह नहीं चाह सकते कि हम समाज से अलग होकर जियें और अपनी इच्छानुसार अपना निर्माण करें क्योंकि हमारा तो जन्म ही समाज में हुआ है– वही हमारी माँ है। और चूँकि माँ है– इसी से तो हम भी हैं।

व्यंग्यार्थ (ख) — भारतीय जीवन के अन्तर में समाजेतर सत्ता का आभास संस्कारगत है। यही कारण है कि समाज को मानव का निर्माता भारतीय जन नहीं स्वीकारता। अज्ञेय ने अन्यत्र भी व्यक्तित्व–निर्माण में किसी अपार्थिव सत्ता का आभास किया है–

> 'वह हमें शतरंज के
>
> प्यादों सरीखा है हटाता।'

इसलिए हमारे व्यक्ति की स्थिति और उसकी गति समाज–सापेक्ष न रहकर उस सत्ता के सापेक्ष हो जाती है जिसने समाज के प्रत्येक व्यक्ति (द्वीप) का आकार गढ़ा है। 'समाज' शब्द भी अपने आप में सूक्ष्म अभिव्यक्ति चाहता है, जिसका पर्याय जीवन भी हो सकता है और जीवन को यदि द्वीप का पर्याय कह दें, तो वह किसी जीवन–निर्माता का संकेत देने लगता हैं।

'माँ' का संबंध जन्मदात्री और पालनकर्त्री तक है– विनाशकारिणी वह नहीं है, लेकिन समाज और अपार्थिव सत्ता दोनों विनाश करती हैं। यद्यपि निर्माणकर्ता भी कही जा सकती हैं, परन्तु माँ का रूप दोनों नहीं है। इस अर्थ में नदी जीवन की गतिमयता का प्रतीक बन जाती है।

इस प्रकार इसके व्यंग्यार्थ में दो संदर्भ और निकल आते हैं–

नदी– अपार्थिव सत्ता की प्रतीक है। और,
द्वीप– व्यक्ति–अस्तित्व के।
नदी– जीवन गतिमता की प्रतीक है। और,
द्वीप– व्यक्ति जीवन के।

उपर्युक्त तीनों में ही अन्तिम प्रतीक अपने अर्थ अधिक स्पष्ट करता है। प्रस्तुत है–

हम — सभी, व्यक्ति, व्यक्ति मिलकर नदी के द्वीप हैं जिनको अलग–अलग रूप से जीवन की गतिमयता ने निर्मित किया है और वही गतिमयता उसका निर्माण भी करती है। इसलिए हमारा अस्तित्व उसकी गतिमयता को बनाये रखने में ही है। यह गतिमयता ही हमारी माँ है। इसी की गोद में हम जन्मते हैं, पलते हैं और अपना–अपना अस्तित्व स्वीकारते हैं। चूँकि गतिमयता है, इसी से तो हम भी हैं, उसी ने हमें आकार दिया है।

यह शाप नहीं है नियति है। कवि ने इसका संकेत आगे दिया है। इसी नियति में हमारा आकार और हमारा वह सभी कुछ जिसको गुण, अवगुण, विस्तार, प्रसिद्धि, निरर्थकता, सार्थकता कह सकते हैं, निर्मित हुए हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

टिप्पणी – 1. हम – कवि 'मैं' शब्द का प्रयोग न करके 'हम' शब्द का प्रयोग करता है। इसकी सार्थकता इसी बात में है कि उसने अपने व्यक्ति की छटपटाहट को ही अभिव्यक्ति नहीं दी है वरन् सम्पूर्ण समाज के जीवन को चिन्तन के धरातल पर जिया है। इस प्रकार कवि का दृष्टिकोण व्यक्तिवादी नहीं, समाजवादी है और उससे भी अधिक जीवनवादी है।

2. स्रोतस्विनी– 'नदी के द्वीप' के बाद भी कवि अपनी माँ 'नदी' को नहीं स्रोतस्विनी को मानता है। यहाँ स्रोतस्विनी और नदी में एक अन्तर है। नदी शब्द में इस प्रकार कोई ध्वनि नहीं निकलती है, जिससे यह आभास हो कि इसका नद्याकार किसी स्रोत में रिस–रिस कर बना है। नदी शब्द को सुनते ही किसी बहने एवं प्रवाह की याद आती है जो अपने आप में स्वतंत्र है।

स्रोतस्विनी में वह ध्वनि नहीं है। उसमें यह आभास है कि अपने आप में स्वतंत्र प्रवाह नहीं है, किसी उत्स में से रिसनेवाला एक प्रवाह है जिसका निर्माण हुआ है।

दूसरा कारण नदी में बाढ़ आती है जो द्वीप को नष्ट कर देती है। स्रोतस्विनी में कभी बाढ़ नहीं आती। बाढ़ आते ही स्रोतस्विनी रहती ही नहीं, नदी कहलाने लगती है।

तीसरा कारण यह है कि स्रोतस्विनी एक उमड़ते प्रवाह में न बहकर कई प्रवाहों में अलग–अलग बहती है। इसलिए एक प्रवाह से दूसरे प्रवाह तक लगता है जैसे वह अपनी गोद में द्वीपों को लिये हैं।

और चौथा कारण है कि स्रोतस्विनी में 'माँ' की लोरी–मधुरता है, नदी में महाशक्ति की गर्जना।

3. हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकत–कूल, सब गोलाइयाँ ये सभी प्रतीकात्मक अर्थ रखते हैं।

कोण – जीवन के मोड, अच्छाई–बुराइयों के प्रति हमारे झुकाव की अभिव्यक्ति देते हैं।

गलियाँ – हमारे विकास या हमारे संकुचन या फिर हमारी गति के रास्तों को ध्वनित करती है।

अन्तरीप – हमारे कार्य क्षेत्र, हमारी विचारधारा, हमारे अन्तर में स्थित भावों की मूक भाषा के प्रतीक बन जाते हैं।

उभार – हमारी प्रसिद्धि समाज में हमारे स्थान का निर्धारण बनकर अभिव्यक्ति पाती है।

सैकत – कूल – हमारी निरर्थकता और हमारी आकांक्षाओं के बनने–मिटने का प्रतीक है।

गोलाइयाँ– जीपन यक्रों का।

4. 'माँ' है वह – 'माँ' को धात्री भी कहते हैं, अर्थात् जो धारण करती है और स्रोतस्विनी द्वीपों को धारण करती है। द्वीप नदी की गोद में अथवा गर्भ में रहते हैं और मनुष्य भी माँ के गर्भ मे जन्म धारण करता है, आकार पाता है और परिवर्तित, परिवर्द्धित होता है।

5. है, इसी से हम बने हैं – 'है' शब्द नियति को व्यक्त करता है अर्थात् गतिमयता है, इसी से हम निर्मित हुए हैं, गतिमय हैं। नदी है तभी सामान्य भूमि से द्वीप अपने अस्तित्व को अलग कर प्रकट कर सकते हैं, यह ध्वनि भी इससे निकलती है।

विशेष – 1. छायावादी स्वर जहाँ व्यक्ति–केन्द्रित स्वर है– 'मैं नीर भरी दुःख की बदली' वहाँ प्रयोगवादी स्वर समाज को साथ लेकर चलता है; 'हम नदी के द्वीप हैं'।

2. शाश्वतता को नकारता हुआ स्वर छायावादी शाश्वत स्वर से भिन्नता प्राप्त कर लेता है।

3. छायावादी संकेत भी मिलता है–

'अज्ञात भावी कर रही,
द्रोपदी सी आज मेरी परवशा।' –पन्त

और इधर समाजवादी स्वर–

'अपने में सब कुछ भर व्यक्ति,
कैसे विकास करेगा ? – प्रसाद

दोनों ही अपने प्रतीकात्मक संकेत के रूप में इस कविता में व्यक्त हुए हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

किन्तु हम हैं द्वीप। हम धारा नहीं हैं। .... द्वीप हैं हम।

शब्दार्थ – समर्पण = नियति। प्लवन = बाढ़। सलिल = जल।

वाच्यार्थ – हम धारा का प्रवाह नहीं हैं, किन्तु हम द्वीप हैं। इसलिए स्थिरता ही हमारी नियति है और इसी नियति को हम समर्पित हैं। हम हमेशा से ही नदी के द्वीप रहे हैं, किन्तु बहे कभी नहीं, क्योंकि बहना रेत बन जाना है इसलिए यदि बह जायेंगे तो द्वीप ही नहीं रहेंगे। हमारे बहाव में पैर उखड़ जायेंगे, बाढ़ आयेगी। हम ढह जायेंगे। इस ढहाव को सहेंगे और फिर सहते से बह जायेंगे और यदि बह जाना या रेत हो जाना, धार बन जाना होता तो क्या हम धार नहीं बन जाते ? परन्तु ऐसा नहीं है। हम बहकर भी केवल रेत ही बन सकेंगे। जो धार के जल को और गन्दा करेगा और वह जल भी अनुपयोगी हो जायेगा। इसीलिए हम तो केवल द्वीप हैं।''

लक्ष्यार्थ – नदी का किनारा, कवि बैठा है। अस्तित्व हीनता और व्यक्तित्व की अभिलाषा कवि को उद्वेलित किये हैं। एक ही प्रश्न उसके भीतर टकरा रहा है–

मेरा अपना अस्तित्व ? उसे लगता है जैसे कोई उसे धीरे–धीरे निगल रहा है और वह किसी भी क्षण पूरी तरह से निगला जा सकता है। वह छटपटाता है, अकुलाता है और एक उदासी उसके सिर पर मंडराने लगती है।

नदी का प्रवाह आता है, एक द्वीप जो उसके सामने उभरा था, वह धारा प्रवाह में ढक लिया जाता है। परन्तु कहीं दूसरी जगह एक और द्वीप उभरता है और बाहर निकल जाता हैं। पहला द्वीप......... दूसरा द्वीप...... तीसरा द्वीप और फिर कवि एकाएक कहीं समझौता कर समर्पण कर देता है। उसी विनाश में वह कहीं शाश्वत स्थिरता ढूँढ़ लेता है। उसे लगता है, पहला द्वीप ढक लिया जाता है, दूसरा उभर आता है, दूसरा द्वीप ढक लिया जाता है, तीसरा उभर आता है। इस प्रकार द्वीप कभी समाप्त नहीं होता, परिवर्तन केवल पहला, दूसरा और तीसरा में होता है। कवि अस्थिरता में ही कहीं स्थिरता खोजकर जीवन को समानान्तर रखता है। ठीक तभी उसकी समझ में जीवन का रहस्य एकप्रकार से आ जाता है।

कितनी समानता है नदी के 'द्वीप' और 'व्यक्ति जीवन' में कि कवि सम्पूर्ण मानव से कह उठता है कि– 'किन्तु हम हैं द्वीप'।

व्यंग्यार्थ– व्यक्ति की विवशता है कि वह स्वयं धारा नहीं है किन्तु धारा निर्मित नदी का द्वीप है। यहाँ धारा जीवन की गतिमयता का प्रतीक है और द्वीप जीवन विशेष का। इस प्रकार कहा जा सकता है कि हम जीवन की गतिमयता नहीं हैं, उसी प्रवाह को प्रवाह रखने के लिए उसी में कहीं स्थिर हो गये हैं।

इसलिए हमने स्थिर होकर इस प्रकार अपना आत्म–सर्मपण उस धारा को कर दिया है। अनादिकाल से मानव की यही नियति है कि इस जीवन प्रवाह में कहीं एक जगह स्थिर है। इस जीवन प्रवाह का स्रोत क्या है, कुछ नहीं पता लेकिन उसके स्वयं के जन्म का कारण यह स्रोतस्विनी जीवन–धारा है।

यह एक अजीब स्थिति है कि प्रवाह के कोड में स्थित होकर हमने अपने बहने का अधिकार ही समर्पित कर दिया है। क्योंकि यदि हम उस प्रवाह में किसी एक विशेष जगह स्थिर नहीं हो जाते अर्थात् किसी एक विशेष व्यक्ति का जीवन नहीं प्राप्त करते तो स्थिर होकर नहीं रहते अपितु प्रवाह ही कहलाते।

परन्तु, अब विशेषत्व ग्रहण कर हमने अपने सभी रूप–गुण, अपने तक सीमित कर एक विशेष प्रकार के कर लिए हैं। इसलिए उस विशेषत्व को नहीं मिटा सकते। क्योंकि उसको मिटाना अपने अस्तित्व को ही मिटा देना है और अपने अस्तित्व के प्रति हमारी अकुलाहट, हमारी आकांक्षाएँ और उन सबके लिये संघर्ष, हमें अपनी जगह से हिला देगा। हमारे उस क्षेत्र से पैर उखड़ेंगे। हम अपने स्वः के लिए संघर्ष करेंगे और संघर्ष करना अपनी स्थिरता को मिटाना ही है और यह भी निश्चित है कि हम सम्पूर्ण जीव्न प्रवाह नहीं हो सकते, क्योंकि हमारे अपने गुण हमें उस प्रवाह के गुणों से विशेषत्व प्रदान है।

तब हमारा स्वः को मिटाकर स्वः के लिए संघर्ष करना उस जीवन–प्रवाह में एक खलबली होगा जो शान्त बैठे अनेक जीवन को उद्वेलित कर देगा। इसलिए द्वीप की अस्थिरता रेत बनकर सलिल को गंदला ही करेगी। इसी से हम प्रवाह के सम्मुख स्थिर समर्पण किए हैं क्योंकि द्वीप होना हमारी नियति है, हम द्वीप है।

टिप्पणी – 1. किन्तु हम हैं द्वीप – यहाँ 'किन्तु' शब्द साभिप्राय है। इस शब्द में कवि के सम्मुख उसके जीवन की विवशता स्पष्ट रूप से उभरती है। इस शब्द में आकांक्षाओं का मरण है, जीवनेच्छाओं की थकान है और सम्पूर्ण जीवन विशेषज्ञ की अपने अस्तित्व के लिए छटपटाहट है और है, एक स्थिर समर्पण, जो विवश होकर कवि ने गतिमयता के सम्मुख स्वीकार लिया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. पैर उखड़ेंगे – व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करेगा तो किससे ? समाज से ? वह तो कोई अपने आप में अवमानना नहीं है। फिर प्रवाह से ? हाँ, लेकिन वह विवश है क्योकि जब भी वह उसके सामने संघर्ष करेगा उसका अपना ही कहीं टूटकर बिखर जायेगा और वह अपनी ही थकान से थककर कहीं ढह पड़ेगा। वह संघर्ष करेगा तो समान ही धारा, प्रवाह की धारा अपने उग्र प्लवन में उसे बहा ले जाएगी।

3. चूर्ण होकर भी – यहाँ 'चूर्ण' शब्द सार्थक है। व्यक्ति की उसकी विवशता, उसकी परेशानियाँ इस तरह पीस देती हैं, जिसे किसी भी चीज को पीस कर उसका चूर्ण बना लिया जाता है। इसलिए चूर्ण शब्द में मानव–जीवन की पिसन और पिसकर उसकी आकांक्षाओं को चूर्ण–चूर्ण होना कहीं अधिक स्पष्ट होकर उभरा है।

4. सलिल – सलिल में पवित्रता और पूर्णता तथा स्वच्छता का भाव है– जल, विशेष रूप से नदी का जल गंदला होता ही है।

दूसरी बात जल (गंगा जल) में दूसरों को पवित्र करने की भावना निहित है, सलिल दूसरों की महत्त्वाकांक्षाओं को गंगाजल की तरह मनुष्य की इच्छाओं को पवित्र और पूर्ण करने की शक्ति नहीं रखता।

गंगा का जल अनेक गन्दे आदमियों के स्नान करने के बाद भी पवित्र है, सलिल गन्दी चीज डालने पर गंदला हो जाता है।

जल आस्था का प्रतीक है, सलिल अनास्था का।

अनुपयोगी – अनुपयोगी इस अर्थ में कि एक व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिए, व्यक्तित्व के लिए छटपटाहट कर दूसरों को उद्वेलित या परेशान ही कर सकता है।

विशेष – 1. यहाँ कवि व्यक्ति जीवन की छटपटाहट और विवशता के लिए उसका समर्पण दिखाकर जीवन को नियति की परिधि में जीने का आदेश दे रहा है। कवि ने जैसे समझौता कर लिया है कि परिस्थितियों और परिवेश से बने जीवन की गतिमयता में उसकी स्थिति कहीं स्थिर हो गई है।

2. भाषा का प्रयोग भावों की अभिव्यक्ति के अनुकूल हुआ है।

'किन्तु', 'सलिल', 'अनुपयोगी' शब्द अपने विशेष बलाघात के कारण अपनी विशेष अभिव्यक्ति रखते हैं।

अलंकार प्रदर्शन कवि का उद्देश्य नहीं है।

प्रतीकों की स्थापना कवि समयों के विरोध में खड़ी होकर एक प्रयोगवादी भूमि तैयार करती है।

तो हमें स्वीकार है .... संस्कार तुम देना।

शब्दार्थ – छलेंगे = निखरना, बिखरना।

सन्दर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – अज्ञेय व्यक्ति की निरन्तरता न मानकर व्यक्ति जीवन की गतिशीलता के अनुगामी हैं। 'नदी' और 'द्वीप' के प्रतीकों को लेकर उन्होंने जीवन की इस अनुभूति को अभिव्यक्ति दी है। जीवन के विनाश के बाद सृजन की परिकल्पना भारतीय संस्कारगत है। जीवन को समझने के लिए 'अज्ञेय' ने बहुत कुछ इसी का सहारा लिया है। प्रस्तुत पंक्तियों में उनका यह दृष्टिकोण अधिक स्पष्ट हो कर उभरा है। 'अज्ञेय' की कवि दृष्टि उनकी जीवन अवधारणा को प्रतीक के माध्यम से व्यक्त करती सी दिखाई देती है।

व्याख्या – कवि नदी की घोर काल प्रवाहिनी प्लवन प्रवृत्ति की बात करता है, किन्तु उससे भय नहीं खाता। वह उसको भी जीवन गतिमयता में निश्चितता और नियत मान लेता है और उसी नियति में मानव जीवन को उसके नियामक के रूपक में स्वीकार करता है।

नदी का प्रचण्ड रूप है सब कुछ निर्माण को नष्ट करना और जीवन की गतिमयता का एक यह भी अनिवार्य रूप है। इसी की समानान्तरता में वह इसे भी स्वीकार कर लेता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कवि कहता है कि हमें तुम्हारा वह विनाशशील रूप भी स्वीकार है और चूँकि हम तो नदी के द्वीप हैं , तो तुम्हारी गतियमता, बाढ़ यदि हमकों मिटा भी देगी तब फिर बाढ़ उतरेगी और हम रेत बनकर फिर उन्हीं लहरों के बीच फैलकर जमेंगे फिर पैदा होंगे, पैर टेकेंगे और अपना विस्तार कर खड़े होंगे।

क्योंकि यह नदी की प्रवृत्ति है कि वह द्वीप का निर्माण करती है तब निश्चित रूप से वह फिर करेगी।

एक दार्शनिक सिद्धान्त यह भी है कि नष्ट होने वाला द्वीप नष्ट नहीं हुआ। वह रेत बनकर नदी में समा गया। इसीलिए नष्ट तो हुआ ही नहीं। जब भी नदी की बाढ़ उतरेगी वह फिर 'अपना आकार' बनाता सा उभर आएगा। नए द्वीप का आकार उभरेगा। इसलिए नष्ट तो कुछ हुआ ही नहीं।

जीवन में भी एक व्यक्तित्व नष्ट होगा तो दूसरा उठ खड़ा होगा अर्थात् जीवन की शाश्वतता तो रहेगी ही। इसलिए जीवन के समानान्तर द्वीप की प्रतीकात्मकता रखता हुआ कवि फिर कहेगा।

फिर छनेंगे हम– अर्थात् उस विश्व में मिटकर, उस जीवन की गतिमयता में एक बार ओझल होकर फिर उभर आएंगे। सम्पूर्ण में मिलकर फिर सिमट जायेंगे, अपने व्यक्तित्व को फिर निखारने लगेंगे। फिर जमेंगे, पैर टेकेंगे और नये व्यक्तित्व का निर्माण होकर फिर हमारा ही व्यक्तित्व दोहराया जाएगा।

इसलिए कवि गति की शाश्वतता और समाज की चिरन्तनता को दृष्टि में रखकर कह देता है कि माँ नदी तुम फिर उस नए द्वीप का सृजन करना, नये ढंग से फिर उसका व्यक्तित्व निर्मित करना।

टिप्पणी – 1. तो हमें स्वीकार है वह भी– लगता है कि कवि के अन्तर्मन ने एक संघर्ष के बाद स्वीकारा है। चेतना का धरातल स्पष्ट होकर उभरा है। यही मुख्य अंतर छायावाद और प्रयोगवाद की मनोभूमि में उभर आता है। छायावाद में अन्तर्द्वन्द्व नहीं समर्पण है। प्रयोगवादी कवि में अन्तर्द्वन्द्व है, यद्यपि वह समर्पण के रूप में परिणत हो जाता है, किन्तु अन्तर्द्वन्द्व मुख्य स्वर है और प्रयोग के धरातल पर अन्तर्द्वन्द्व की विशेष भूमिका होती है।

2. छनेंगे हम – कवि का तात्पर्य है कि व्यक्तित्व नष्ट नहीं होते– केवल गति में समा जाते हैं जो गतिमयता के साथ फिर उभरते से हैं।

3. नये व्यक्तित्व का आकार – नया व्यक्तित्व कहकर कवि उस भारतीय सिद्धान्त से अलग हट जाता है, जिसे परम्परा मानती आयी है, अर्थात् मनुष्य जन्म जन्मान्तर तक विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। कवि का मतलब योनियों से नहीं है। वह व्यक्ति के व्यक्तित्व के विषय में ही सोच पाता और व्यक्ति को व्यक्ति तक ही सीमित रखना चाहता है।

दूसरी ध्वनि ये भी निकलती है कि व्यक्ति विशेष समाप्त हो जाता है, किन्तु गतिमयता है तो इसलिए जीवन तो व्यक्ति का विभिन्न रूप में उभरता ही रहता है। एक व्यक्ति समाप्त हो जाता है, दूसरा पैदा होता है, इस प्रकार से एक से दूसरे का चक्र चलता रहता है।

विशेष – कवि की तुलना पन्त की कविता 'नौका–विहार' से ही की जा सकती है, क्योंकि दोनों की पृष्ठभूमि समान आधार लिये है, यद्यपि आगे के चित्र दोनों के भिन्न हैं–

''इस धारा–सा ही जग का क्रम,
शाश्वत इस जीवन का उद्‌गम,
शाश्वत है गति शाश्वत संगम।
शाश्वत नभ का नीला विकास
शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास।
हे जग जीवन के कर्णधार!
चिर जन्म मरण के आर पार,
शाश्वत जीवन नौका विहार !
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान
जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

असाध्य वीणा

कविता परिचय – 'असाध्य वीणा' 'अज्ञेय' की वह दीर्घ कविता है, लंबी कविताओं में जिसका विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह कविता उनके प्रमुख काव्य संग्रह 'आंगन के पार द्वार' की अंतिम कविता है। इस संग्रह तक की यात्रा में अज्ञेय का काव्य निखार और गहराई के ऐसे उत्कर्ष पर पहुंचा है, जहां भारतीय चिंतन की परंपरा की विश्व से संयोजन की क्षमता साकार हो उठी है। इस दृष्टि से 'आंगन के पार द्वार' हिंदी काव्य की उपलब्धि कही जा सकती है और उसमें संगृहीत कविता 'असाध्य वीणा' विश्व की उत्कृष्टतम कविताओं में से एक मानी जा सकती है। यह कविता नई कविता की ही नहीं, आधुनिक हिंदी कविता की अत्यंत प्रांजल और प्रौढ़ उपलब्धि कही जा सकती है, हिंदी में जिसकी समता निराला की 'राम की शक्ति पूजा', पंत की 'परिवर्तन', माखनलाल चतुर्वेदी की 'कैदी और कोकिला' तथा मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' जैसी कतिपय कविताओं से की जा सकती है।

'असाध्य वीणा' अज्ञेय के कवि जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है, वस्तुतः समूची प्रयोगवादी कही जाने वाली कविता की महत् उपलब्धि है। इस कविता पर जैन–बौद्ध दर्शन का गहरा और व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। इस दर्शन में ध्यान, प्रज्ञा, शून्यता, अशब्द, मौन, समर्पण आदि पर एकांतिक बल दिया जाता है। तर्क और बौद्धिकता यहां गौण हैं। इस दर्शन की मान्यता है कि प्रज्ञा द्वारा सम्पूर्ण को जाना जा सकता है। ध्यान और आत्मसमर्पण उस सम्पूर्ण को जानने में सहायक हैं। इस दृष्टि से जैन बौद्ध धर्म का चरम उत्कर्ष 'असाध्य वीणा' में दिखाई देता है। यह लंबी कविता स्वयं अपने आप के अन्वेषण, स्वयं को खोजने, स्वयं को शोधने की प्रक्रिया की ओर इशारा करती है।

कविता की मूलकथा के अनुसार एक राजा के पास एक प्राचीन वीणा थी, जिसे वज्रकीर्ति ने एक बहुत पुराने किरीटी नामक वृक्ष की लकड़ी से गढ़कर तैयार किया था। इस वीणा को बजाने के लिए राजा ने बड़े–बड़े कलाकारों को आमंत्रित किया, किन्तु कोई भी कलाकार उस वीणा को बजा नहीं सका। वस्तुतः वह प्राचीन वीणा 'असाध्य वीणा' के रूप में ख्यात हो गई। किसी भी कलाकार द्वारा असाध्य वीणा को बजा नहीं पाने का मुख्य कारण था, कि वे सभी कलाकार अपने–अपने कलाकार के प्रति जागरूक थे, जबकि कला की मौन सच्ची साधना अपने 'स्व' को समर्पण के माध्यम से उसी कला में विलीन कर देती है। एक सच्चा कलाकार अपने होने के अहम भाव को विगलित कर कला के प्रति आत्मसर्पण कर देता है। यथार्थ में कला की ऐसी सच्ची साधना करनेवाला ही, सचमुच का कलाकार होता है।

प्रियवंद नाम का एक कलासाधक, सच्चा कलासाधक उस 'असाध्य वीणा' को जब बजाने के लिए आया, तो उससे पूर्व उसने वीणा को स्तब्ध, संयत्, निर्वाक् होकर समाला और उससे याचना की – 'तेरी लय मेरी सांसें, भरें, पुरें रीतें, विश्रांति पाएं।' यह है अहम् का विगलन और कला के प्रति मौन समर्पण, मौन प्रणति। अपने मौन समर्पण तथा तरु, वन, हिमशिखर आदि से एकतान लयबद्ध होकर समाधि अवस्था में उस वीणा को बजाने के लिए अपनी उंगलियां उठाई ही थीं, कि वह असाध्य वीणा जाग उठी – 'अवतरित हुआ संगीत स्वयंभू जिसमें सोता है अखंड ब्रहम का मौन अशेष प्रभामय।'

सभी ने अपनी–अपनी क्षमता, विशेषता एवं रुचि–प्रवृत्ति के अनुरूप 'असाध्य वीणा' के स्वर–लय को अनुभव किया। सभी को अलग–अलग अर्थबोध होने का भाव ही यही है कि सभी के मन में, आत्मशोधन एवं गहन आत्मान्वेषण से जो गहरी संवेदना जाग्रत हुई, उसके कारण सबने स्वयं को उस विराट महाशून्य में विलीन कर दिया। तब जो सबने सुनी, उसकी अनुभूति अद्भुत और विलक्षण थी। यह सभी के लिए – स्वयं के व्यक्तित्व का आत्मशोधन है। प्रियंवद कहता है कि इसमें मेरा कोई श्रेय नहीं है। यह उस कलाकार की कला का ही एक पक्ष है, जिसमें अतिशय विनम्रता का भाव मुखरित हुआ है –

''श्रेय नहीं कुछ मेरा :

मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में –
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब–कुछ को सौंप दिया था–
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था,
वह तो सब – कुछ की तथता थी
महाशून्य
वह महामौन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।''

'असाध्य वीणा' में अद्वैत, मौन, समर्पण, रहस्य सब कुछ है। अज्ञेय शब्द प्रयोग में बहुत कुशल शब्दशिल्पी की तरह शब्दों के माध्यम से ध्वनि और चमत्कृत कर देनेवाला भाव पैदा करते हैं। कविता एक दर्शन से आरंभ होती है और एक लंबी भावयात्रा के पश्चात अंत में उसी दर्शन मे लीन हो जाती है। यह अज्ञेय की काव्यकुशलता ही है। वस्तु और रूप की दृष्टि से 'असाध्य वीणा' निःसंदेह बहुत महत्वपूर्ण और अज्ञेय की प्रतिनिधि रचना कही जा सकती है।

इस कविता के माध्यम से यह भाव मुखरित होता है कि एक कलाकार और एक गहन साधना करनेवाले साधक में भेद होता है। जहां कलाकार अपनी कला के प्रति सावचेत होकर उसे अपनी उपलब्धि मानकर गर्व की अनुभूति करता है, वहीं एक साधक, कला का सच्चा साधक अपनी साधना के प्रति स्वयं को समर्पित कर उसी में स्वयं को लीन कर देता है, अशेष सृष्टि के हाथों में स्वयं को सौंपकर निश्चिंत हो जाता है। यहां प्रियंवद भी एक कलाकार ही नही, वरन् उच्चकोटि की सच्ची साधना करनेवाला, साधक है, जिसके भीतर कला के प्रति समर्पण भाव विद्यमान है। उसकी यही भावना उसे 'असाध्य वीणा' को साधने में सक्षम बनाती है।

वस्तुतः वस्तु रूप, कला, संवेदना एवं भाषायी संरचना आदि की दृष्टि से 'असाध्य वीणा' अज्ञेय की सर्वाधिक कलात्मक एवं श्रेष्ठ रचना है, जिस पर अज्ञेय के अपने स्वयं के व्यक्तित्व एवं चिंतन की छाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

पर उस स्पंदित .... साधना रही।

संदर्भ – प्रस्तुत काव्यांश प्रयोगवादी कविता के प्रणेता प्रयोगशील – विचारशील कवि 'अज्ञेय' की सर्वश्रेष्ठ कविता 'असाध्य वीणा' से अवतरित है, जो उनके परम प्रौढ़, काव्यसंकलन 'आंगन के पार द्वार' में संकलित हैं।

प्रसंग – वज्रकीर्ति द्वारा किरीट तरु से निर्मित वीणा को किसी भी कलावंत द्वारा बजाने में असमर्थ हो जाने के बाद प्रियवंद नामक कलाकार जो कला का सच्चा साधक था, उस असाध्य वीणा की असाधारण महत्ता के प्रति प्रणति भाव से मौन होकर स्वयं को समर्पित कर देता है। इसके बाद जो भी घटित हुआ, वह प्रियवंद का अनुभूत सत्य है।

व्याख्या – बड़े–बड़े कलावंतों से न साधी जा सकनेवाली वीणा को बजाने के लिए जब प्रियवंद उस वीणा के पास पहुंचा तो उसके प्रति विशेष श्रद्धा से भर गया। उसने वीणा को प्रणाम कर मौन श्रद्धा के साथ स्वयं को उसके प्रति समर्पित कर दिया। उस मौन समर्पण के उपरांत शांत निरवता में प्रियवद चुपचाप अतिविनम्र और प्रणतिभाव से एक सच्चे कला साधक की तरह उस वीणा को नहीं, वरन् स्वयं को साधने में लीन हो गया। उसके भीतर यह भाव जाग्रत हुआ कि कहां इतनी महान् और श्रेष्ठ वीणा और कहां वह एक छोटा–सा कला साधक । प्रियवंद के इस भाव ने उसेक भीतर जो घटित किया उसमें उसने अनुभव किया कि वह इस महान् वीणा के समक्ष कुछ भी नहीं। वह क्या उस जैसे कितने कलाकार इस वीणा के सम्मुख कुछ भी नहीं। यह वीणा जो किसी की जीवनभर की परमसाधना है, इसे बजाने में मैं क्या, कोई भी सक्षम नहीं हो सकता।

विशेष – (1) एक सच्चे कला साधक का कला के प्रति समर्पण ही उसकी कला को अर्थवत्ता प्रदान करती है।
(2) एक कलाकार की मौन श्रद्धा और कला के प्रति उसका विनम्र प्रणति भाव यहां दर्शनीय है।
(3) स्वयं को शोधना, यानी, आत्मान्वेषण करना। अज्ञेय की विशेषता है, जो यहां द्रष्टव्य है।
(4) वातावरण निर्माण में प्रस्तुत काव्यांश बहुत सफल हुआ।
(5) यहां शब्द चयन एवं ध्वन्यात्मकता विशेष अवलोकनीय है।

मुझे स्मरण है .... शब्द में लीयमान ।

शब्दार्थ – विजडित–जड़वत, संज्ञा शून्य,स्तब्ध–शांत, अवाक्.

प्रसंग– अज्ञेय की दीर्घ कविता 'असाध्य वीणा' उनके 'आँगन के पार द्वार' नामक कविता–सग्रह में संकलित है. यह कविता अज्ञेय की सबसे महत्त्वपूर्ण कविता मानी जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संदर्भ – जब प्रियवंद वीणा को बजाने के लिए उद्धत हुआ तो उसे वह वीणा असाध्य प्रतीत हुई। अतएव वीणा को साधने के स्थान पर वह स्वयं का ही शोध करने में लग गया ।

व्याख्या – प्रियंवद कहता है कि मुझे यह भली–भाँति याद है कि प्रत्येक दृश्य मुझे स्तब्ध और नीरव कर रहा है. मुझे यह आभास हो रहा है कि वीणा के तारों में प्रत्येक स्वर कम्पित हो रहा है और प्रत्येक स्वर–कम्पन मेरे अस्तित्व को वायु के समान सोख रहा है। अब स्थिति यह है कि मै स्वयं को ही विस्मृत कर चुका हूँ. मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे मैं स्वयं से परे होकर शब्दों में विलीन हो गया हूँ।

विशेष – 1. अलंकार–उपमा

2. दार्शनिक भावधारा से सम्पन्न प्रस्तुत कविता अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित है।

3. यह कविता अद्भुत कलात्मकता से सम्पन्न है।

राजा जागे .... हेम तारों का।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – प्रियवंद के एक लंबे अंतराल तक ध्यानस्थ रहने की स्थिति में जो कुछ घटित हो रहा था, उसकी अनुभूति प्रियवंद को तो हो ही रही थी, संपूर्ण सभा में अवस्थित लोगों को भी यह दिव्य अनुभूति हो रही थी। शांत नीरव वातावरण में सभा ने अनुभव किया कि वीणा बजनेवाली है और प्रियवंद उसे बजाने के लिए उद्यत है।

व्याख्या – 'असाध्य वीणा' को साधने / बजाने के क्रम में राजा ने देखा कि प्रियवंद, जो अभी तक ध्यान मग्न और समाधिस्थ था, के हाथ वीणा को साधने के लिए उठ गए हैं। उसकी उंगलियां उस वीणा को बजाने के लिए कांपने लगीं। प्रियंवद की उंगलियों को कांपते ही ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे कि वह सोई हुई वीणा निद्रा से अचानक जाग उठी हो। उस अलसाई और अंगडाई लेकर जागी वीणा से शिशु की किलकारियों की भांति स्वर फूट पड़े। उस समय प्रियवंद द्वारा वीणा को साधना ऐसे प्रतीत हो रहा था, जैसे एक मायावी शिकारी / बहेलिया धीरे–धीरे कदम बढ़ाता हुआ चुपचप अपने सधे हाथों के जरिए जाल को फैला रहा है। ठीक उसी तरह प्रियंवद सच्चे कला साधक की तरह अपने सधे हाथों से वीणा के सुनहले तारों को धीरे–धीरे छेड़ता हुआ, उसमें से निकलनेवाले मधुर स्वरों से पूरे वातारण पर इंद्रजालिक – मोहक प्रभाव छोड़ रहा था। वह वीणा के मधुर स्वर के द्वारा पूरी सभा पर एक जादू सा बिखेरता हुआ सभी को चमत्कृत कर रहा था।

विशेष –(1) एक सच्चे कला साधक की साधना यहां जीवंत होती हुइ दिखाई देती है।

(2) कला साधक का कला के प्रति समर्पण भाव भी यहां द्रष्टव्य है।

(3) उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा के माध्यम से वातावरण को बहुत सजीव बनाया गया है।

(4) संगीत की स्वर लहरियां सुननेवाले पर जादू का सा असर करती हैं। वह दृश्य यहां साकार हो रहा है।

(5) अज्ञेय का काव्यकौशल एवं उनकी कलात्मकता यहां अवलोकनीय है।

सहसा वीणा .... अशेष प्रभामय ।

शब्दार्थ – स्वयंभू–स्वयं से उत्पन्न होनेवाला ।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – प्रियवंद ने जैसे ही स्वयं को उस असाध्य वीणा के प्रति समर्पित कर दिया। उसे अपने भीतर कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे उसका अस्तित्व झनझना उठा हो । उसे लगा कि जैसे वीणा स्वतः बजने लगी। इसी भाव को यहाँ अभिव्यक्ति मिली है।

व्याख्या – अचानक वीणा के तार झनझना उठे. वीणा को साधनेवाले संगीतकार के नेत्रों मे ठण्डी पिघलती अग्नि की सी एक चमक आ गई। सभी के शरीर विद्युत के समान रोमांचित हो गये. इसी समय वीणा के तारों से स्वयं अखण्ड का अशेष प्रभायुक्त मौन समाहित है, ऐसा प्रतीत हुआ।

विशेष – 1. प्रियवंद का संगीत के प्रति समर्पण एवं प्रगति विनम्रभाव द्रष्टव्य है।

2. यहां प्रियवंद का मनोवैज्ञानिक स्तर पर विवेचन – विश्लेषण करने से उसके मनोविज्ञान के कई स्तर उभरकर आए हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

डूब गए .... निछावर कर देगा।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – प्रियवंद द्वारा असाध्य वीणा को साधने के उपरांत उसमें से निकलनेवाली स्वर लहरियों, उसमें से झरनेवाले संगीत ने पूरी सभा को आनंदलोक में निमग्न कर दिया। आनंद की उस परम, असीम अनुभूति में सबने अपने–अपने संस्कारों से उस वीणा के स्वररों में अलग–अलग अनुभव प्राप्त किए। इसी अनुभव और अनुभूति का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि –

व्याख्या– 'असाध्य वीणा' को प्रियवंद द्वारा बजाए जाने के बाद उसमें से झंकृत होनेवाली स्वर लहरियों के मध्य जो दिव्य संगीत प्रस्फुटित हुआ, उसकी मादकता में पूरी सभा डूब गई। जिसने भी उस संगीत को सुना, उस पर ऐसा जादू – सा हो गया कि सभी ने स्वयं को आत्मविस्मृत कर दिया। उस आत्मविस्मृति की अवस्था में सब अलग–अलग उस स्वर लहरी में डूबने – उतराने लगे। राजा ने ऐसा अनुभव किया कि उसके सामने यश और विजय की देवी जयमाल लिए, अपने हाथों में वरमाला किए, मंगल गीत गा रही है और दूर कहीं दुंदुभी बज रही है। राजा को ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसके सिर पर रखा हुआ राजमुकुट बिल्कुल हलका हो गया है, वह ऐसा भार रहित हो गया है, जैसे कि वह मुकुट नहीं, बल्कि शिरीश का पुष्प हो। राजा ने यह अनुभव किया कि उस दिव्य संगीत की परम स्वर लहरी में वह बिल्कुल विलीन हो गया है। उसके भीतर अवस्थित इर्ष्या, मद, दंभ, महत्वाकांक्षा, द्वेष आदि समस्त दुर्बलताएं मानों घुलकर बह गई हों और उसका जीवन शुद्ध होकर, सोने की तरह तपकर निखर आया हो। सारी मलिनता गलकर बह गई। राजा ने यह अनुभव किया कि वह विनम्र भाव से अपने जीवन को धमार्थ निछावर कर देगा।

विशेष – (1) प्रस्तुत काव्यांश में स्वरलहरियों के मध्य स्थित सभा का शांत हो जाना,एक विशेष चित्र और बिंब का निर्माण कर रहा है।

(2) द्विव्य साधना और संगीत अहम भाव को विगलित कर विकारों को समाप्त कर देता है।

भावसाम्य्

तंत्रीनाद कवित्तरस सरस राग रतिरंग

अनबूडे – बूडे तिरे जे बूडे सब अंग

(3) भाषा और शब्द चयन का उत्कृष्टतम

प्रयोग है

रानी ने .... सहज विश्वास भरी ।

शब्दार्थ – आलोक–प्रकाश,आश्वस्त–इत्मीनान से.

संदर्भ पूर्ववत्।

प्रसंग – असाध्य वीणा के सहसा बजता हुआ सुनकर सभा में उपस्थित सभी लोगों ने अपनी–अपनी अनुभूति के अनुरूप वीणा को अनुभव किया। सभी के अस्तित्व को झंकृत कर देनेवाली, वीणा के विषय में अनुभव को कवि ने व्यक्त करने का प्रयास किया है। कवि का कथन है कि –

व्याख्या – सहसा वीणा के स्वर–तार झनझना उठे। रानी ने उस संगीत को सुना, छँटती बदली में एक चमक स्वरों के रूप में मानों यह कह रही हो कि तुम्हारे से मणि–माणिक,कण्ठहार, पीतवस्त्र, मणि–मालाएँ आदि अज्ञान के प्रतीक हैं. केवल प्रेम ही ऐसा प्रकाश है जिसकी विद्युत लता आनन्द रूप बादल को घेरती रहती है. तदन्तर विद्युत की वही लता आश्वस्त और सहज विश्वास से युक्त होकर बादल को छाती पर, आश्रय ग्रहण कर, सो जाती है.

विशेष – 1. अलंकार–1. चैतन्यारोपण–विद्युल्लता

2. रूपंक–रस–भार मेघ.

2. प्रेम के सम्मुख प्रकृति के सभी उपादान व्यर्थ होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

श्रेय नहीं कुछ .... सब में गाता है।

संदर्भ – पूर्तवत्।

प्रसंग – 'असाध्य वीणा' को सहजता से साध लेने के बाद सारी सभा धन्य–धन्य कहती हुई, कलाकार प्रियंवद की प्रशंसा करने लगी, उसकी कला साधना के प्रति अतिशय सम्मान प्रकट करने लगी। तब प्रियंवद एक सच्चे साधक की भांति विनम्रभाव से अपनी भावनाएं व्यक्त करता हुआ कहता है–

व्याख्या – आप लोग जिस 'असाध्य वीणा' को साधने का श्रेय मुझे देना चाहते हैं, उसमें मेरा कोई श्रेय नहीं है। मैं तो इस वीणा की महानता के समक्ष एक तुच्छ, लघु कलाकार मात्र हूँ। इसकी श्रेष्ठता के आगे तो मैं स्वयं बौना होकर अपना आत्मशोध करता हुआ महाशून्य में खो गया था। इस वीणा के माध्यम से मैंने अपने पूरे अस्तित्व को असीम, अव्यक्त सत्ता के हाथों में सौंप दिया था। आज सब लोगों ने जो कुछ भी सुना है, वह न तो मेरा है, न इस वीणा का। वह तो उस महाशून्य में व्याप्त उस परमशक्ति, दिव्य सत्ता का था, जो महामौन है, अविभाज्य है, अवाप्त है, अद्रवित है, अप्रमेय है और शब्द रहित होकर सब में समाया रहता है, सबमें गाता रहता है। यह संगीत भी उसी दिव्य सत्ता की कृपा से ही संभव हो सका है।

विशेष – (1) एक सच्चे कलाकार की विनम्रता दर्शनीय है।
(2) परम सत्ता के प्रति समर्पण का भाव द्रष्टव्य है।
(3) एक मनुष्य उस दिव्य शक्ति के समक्ष कुछ भी नही है।
(4) परम शक्ति, शब्दहीन, अव्यक्त होकर सभी में उपस्थित रहती है।
(5) जैन– बौद्ध दर्शन की शब्दावली यहां प्रयुक्त हुई है।

मैंने देखा एक बूँद

मैंने देखा .... के दाग से ।

संदर्भ – प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि अज्ञेय द्वारा रचित 'मैंने देखा एक बूँद' कविता से उद्धृत हैं। प्रस्तुत कविता अज्ञेय के 'अरी ओ करुणा प्रभामय' काव्य संग्रह में संकलित है।

प्रसंग – सागर से उछली बूँद प्रकाश की स्थिति में चमक उठी है। बूँद–जीव, सागर–संसार आदि के प्रतीक रूप में प्रयुक्त है।

व्याख्या – प्रस्तुत पंक्तियों में कविवर अज्ञेय आत्मानुभूति को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि मैंने अचानक सागर की एक बूँद को चंचल लहरों के साथ उछलते देखा। सागर में ही समाई बूँद को चंचल लहरों के साथ उछलते देखा। सागर में ही समाई बूँद सहसा उछली और तब उस पर सूर्य का प्रकाश पड़ा। सूर्य के प्रकाश में वह बूँद एकाएक आलोकित हो उठी, चमकने लगी। सूरज की ज्योति से वह नन्हीं बूँद के उस ज्योतिर्मय रूप को देखकर कवि कहता है कि मुझे उस बूँद के इस रूप में इस तथ्य के दर्शन हुए कि प्रत्येक कण ज्योति की स्थिति में अपने अस्तित्व, अपनी अमरता को पहचान लेता है। जड़, चेतन पदार्थ ज्ञान की स्थिति में अपने चिरन्तन स्वरूप को जान लेते हैं। प्रकाश में प्रकट होनेवाली सत्ता अपनी लघुता के आभास, मलिनता को, नश्वरता के भाव को नष्ट कर देती है। वह अपने अमर स्वरूप को पहचान लेती है। जैसे बूँद पृथक् हो सूर्य के प्रकाश में चमक उठती है, तब उसे सागर से अपने पृथक् अस्तित्व अमरता का भान होता है।

प्रस्तुत पद्य का प्रतीकात्मक अर्थ भी है। बूँद जीवात्मा, सागर संसार तथा प्रकाश ज्ञान का प्रतीक है। जब तक जीवात्मा संसार के बन्धनों में रहती है तब तक उसे अपने सत्य रूप के दर्शन नहीं हो पाते। नश्वर संसार में आकर वह अपनी आत्मा की अमरता को भूल जाता है, पर जब आत्मा को ईश्वरीय सम्बन्धी ज्ञान का प्रकाश मिलता है, तब वह ज्योतिर्मयी हो जाती है। उसको अपने परमात्मा से अटूट सम्बन्ध, अमरता का आभास होता है। ज्ञान के दर्शन से उत्पन्न आत्मा मृत्यु के भय से मुक्त हो जाती है। आत्मा अमर है, वह परमात्मा का अंश है। अतः मृत्यु भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाती, उसकी परमात्मा से एकमयता, अमरता को नष्ट नहीं कर सकती है।

विशेष – 1. कवि ने बूँद के आत्मज्ञान के परिचय के माध्यम से आत्मा के ज्ञानाभास का वर्णन किया है। यहाँ पर गीता के 'आत्मानं विद्धि' का प्रभाव परिलक्षित होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2. आत्मा की अमरता, ज्ञान के महत्त्व का वर्णन है। आत्मा ईश्वर का अंश है, वह माया के सागर में लीन हो जाता है–

'ईश्वर अंश जीव अविनासी,
चेतन अमल सहज सुखरासी,
सो माया बस भयो गोंसाईं,
बन्ध्यों कीट मरकट की नाईं ।' — तुलसी

3. अज्ञेय भी भारतीय आध्यात्मिक साधना, अद्वैतवाद से प्रभावित दृष्टिगोचर होते हैं।
4. कविता आत्मानुभूति के रूप में वर्णन शैली में है। प्रारम्भ में प्रकृति चित्रण है।
5. कविता अत्यन्त लघु तथा मुक्तक के रूप में है। भाषा में गतिशीलता है।

साँप

साँप तुम .... विष कहा पाया।

संदर्भ – प्रस्तुत लघु कविता प्रयोगशील कवि अज्ञेय की गहन मौलिक एवं चिंतक प्रतिमा की उपज है, जो उनकी व्यंग्य कविताओं में विशिष्ट मानी जाती है।

प्रसंग – प्रस्तुत व्यंग्य कविता 'साँप' के माध्यम से अज्ञेय ने विषमतापूर्ण नगरीय – जीवन की स्वार्थपरता, चालाकी, धूर्तता, कपटपूर्ण व्यवहार आदि को बहुत कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। साँप को प्रतीक बनाकर नगर निवासियों पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं –

व्याख्या – साँप एक सीधा–साधा असभ्य प्राणी होता है । वह बहुत डरपोक भी होता है, मगर उसके पास भयंकर विष का भंडार होता है। कवि को आश्चर्य है कि इतने सीधे– परिवेश में असभ्य, सरल जीवन जीनेवाला प्राणी साँप इतना भयंकर विष कहां से धारण करता है। यह विष उसे ग्रामीण परिवेश में रहते हुए कहां से मिला। इसी को आश्चर्य और उत्सुकता से प्रश्न करते हुए अज्ञेय कहते हैं – साँप जब नगरीय परिवेश से परिचित ही नहीं, नगर निवासियों की तरह वह तथाकथित सभ्य भी नहीं कहलाता, तब नगरीय मनुष्य, जिसका जीवन विषैला हो चुका है, उसकी वह विषाक्त जीवन शैली बेचारे साँप में क्यों आ गई है। उसे तो अपने परिवेश के अनुसार सहज – सीधा सरल निश्चल जीवन जीना चाहिए। उसमें नगरीय जीवन की विषाक्तता कहां से आ गई।

विशेष – (1) पूरी कविता व्यंग्य की प्रहारक मारक क्षमता से परिपूर्ण है।

(2) नगरीय जीवन की विद्रूपताओं को उघाड़ने नें यह कविता धारदार हथियार की तरह सफल हुई है। प्रकारांतर से यह भी संकेत है कि ग्रामीण क्षेत्र का सीधा–साधा आदमी नगरीय जीवन में जाकर अनेक अवगुणों से भर जाता है।

(3) व्यंग्यपरकता नई कविता की महत्त्वपूर्ण विशेषता कहीं जा सकती है, यह कविता उसकी चरम परिणति है।

(4) प्रतीक शैली में व्यक्त यह कविता अज्ञेय की व्यंग्य कविताओं का प्रतिनिधित्व करती है।

14.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से प्रयोगवादी काव्य के प्रणेता 'अज्ञेय' की काव्यगत मान्यताओं एवं विशेषताओं का विवेचन विश्लेषण किया गया। इस अध्ययन को सारांश रूप में निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है –

- प्रगतिवादी काव्यधारा के 'नारे' और 'शोर' की प्रतिक्रिया में आधुनिक हिंदी कविता में 'प्रयोगवाद' का उदय हुआ।
- प्रयोगवाद का नेतृत्व प्रयोगशील–विचारशील कवि सच्चिदानंदहीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने किया।
- 'प्रयोगवाद' नाम आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने व्यंग्य में दिया गया, जबकि 'अज्ञेय' इस काव्यधारा को नई कविता कहने का आग्रह करते रहे।
- प्रयोगवाद का नेतृत्व करते हुए अज्ञेय ने सप्तक प्रकाशन की पूरी श्रृंखला आरंभ की, जिसमें चार सप्तक प्रकाश में आए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- अज्ञेय इस दृष्टि से निःसंदेह युगप्रवर्तक कवि के रूप में स्वीकार किए जाते हैं।
- अज्ञेय ने काव्य के अतिरिक्त, उपन्यास, कहानियां और संस्मरण भी लिखे हैं।
- कवि के रूप में 'अज्ञेय' की ख्याति प्रयोगवाद और नई कविता की मान्यताओं को स्थापित कर इस ओर अनेक कवियों को प्रेरित करने के कारण है।
- 'भग्नदूत', 'चिंता', 'इत्यलम', हरी घास पर क्षणभर', 'बावरा अहेरी'
- 'इंद्रधनुष रौंदे हुए ये', 'अरी ओ, करुणा प्रभामय', 'आंगन के पारद्वार' आदि अज्ञेय के प्रमुख काव्य संकलन हैं।
- 'अज्ञेय' पर अस्तित्ववादी दर्शन के साथ–साथ जैन, बौद्ध दर्शन का प्रभाव भी परिलक्षित होता हैं
- 'नदी के द्वीप' अस्तित्ववादी दर्शन तथा असाध्य वीणा जैन–बौद्ध दर्शन की चरम उपलब्धि है।
- 'अज्ञेय' के काव्य में 'आत्मशोध' करते हुए सत्यान्वेशण और 'आत्मान्वेषण' का आग्रह है। वे स्वयं एवं अन्य प्रयोगवादी कवियों को सत्यान्वेषण में प्रवृत्त 'राहों के अन्वेषी' कहते हैं।
- वैयक्तिकता, लघुता की ओर दृष्टिपात, प्रेम, बौद्धिकता, यथार्थता दार्शनिकता, आदि अज्ञेय के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं।
- नवीन छंद नवीन उपमान, नए प्रतीक और बिंब अज्ञेय की कविताओं को अलग विशिष्टता प्रदान करते हैं।
- 'नदी के द्वीप', 'असाध्य वीणा' अज्ञेय की सर्वप्रमुख रचनाएँ हैं।
- 'असाध्य वीणा' अज्ञेय की सर्वश्रेष्ठ कविता है, जिसे नई कविता की विशिष्ट उपलब्धि कहा जाना चाहिए।
- वस्तुतः 'अज्ञेय' आधुनिक काल के कुशल नेतृत्व क्षमता से संपृक्त महत्त्वपूर्ण कवि हैं।

14.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य बीसवीं शताब्दी – आचार्य नंददुलारे वाजपेयी।
2. नए कवि एक अध्ययन (भाग – 1) डॉ. संतोषकुमार तिवारी।
3. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. बच्चनसिंह।
4. अज्ञेय की काव्य तितीर्षा – नंदकिशोर आचार्य।
5. हिंदी के प्रतिनिधि आधुनिक कवि – डॉ. द्वारकाप्रसाद सक्सेना।
6. नया साहित्य – नए प्रश्न – आचार्य नंददुलारे वाजपेयी।

14.7 अभ्यास प्रश्न

निबंधत्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. अज्ञेय का परिचय देते हुए, उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं का समीक्षात्मक विश्लेषण कीजिए।
2. अज्ञेय छायावादोत्तर कवियों मे सर्वप्रमुख हैं, स्पष्ट कीजिए।
3. अज्ञेय के काव्य की प्रमुख विशेषताओं का उदाहरण सहित उल्लेख कीजिए।
4. 'नदी के द्वीप' कविता का विस्तृत परिचय देते हुए उसका महत्त्व प्रतिपादित कीजिए।
5. 'असाध्य वीणा' कविता के काव्य सौंदर्य को उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. अज्ञेय की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. अज्ञेय के बहुमुखी व्यक्तित्त्व का परिचय दीजिए।
3. अज्ञेय के संपादकीय व्यक्तित्व को स्पष्ट कीजिए।
4. अज्ञेय की कविताओं की दो प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
5. नदी के द्वीप कविता का परिचय दीजिए।
6. 'असाध्य वीणा' कविता का सामान्य परिचय दीजिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. अज्ञेय प्रमुख रूप से किस दर्शन में विश्वास करते हैं ?
2. अज्ञेय का पूरा नाम लिखिए।
3. अज्ञेय ने प्रयोगवादी कवियों के लिए क्या कहा ?
4. अज्ञेय ने सर्वाधिक बल किस पर दिया ?
5. अज्ञेय की महत्त्वपूर्ण व्यंग्य कविता कौन–सी है ?
6. 'नदी के द्वीप' में नदी और द्वीप किसके प्रतीक हैं ?
7. अज्ञेय की लंबी कविता का क्या नाम है ?
8. 'असाध्य वीणा' का निर्माता कौन था ?
9. 'असाध्य वीणा' को किसने साधा ?
10. 'असाध्य वीणा' पर किस दर्शन का प्रभाव है ?
11. 'असाध्य वीणा' का मूल भाव क्या है ?
12. 'असाध्य वीणा' अज्ञेय के किस महत्त्वपूर्ण संकलन से ली गई है ?
13. 'महाशून्य' किस दर्शन का शब्द है ?
14. एक सच्चे कलासाधक के लिए क्या आवश्यक है ?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई – 15 आचार्य महाप्रज्ञ

संरचना

15.0 प्रस्तावना
15.1 उद्देश्य
15.2 आचार्य महाप्रज्ञ : एक परिचय
15.3 आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्यिक पक्ष
15.4 आचार्य महाप्रज्ञ और ऋषभायण
15.5 ऋषभायण का कथानक
15.6 ऋषभायण का काव्य सौन्दर्य
15.6.1 नवसंस्कृति का उन्मेष
15.6.2 मौलिक विषय वस्तु एवं कथानक
15.6.3 युग चेतना से अनुप्राणित
15.6.4 समसामयिकता की अभिव्यक्ति
15.6.5 मानवतावादी दृष्टि
15.6.6 नारी के प्रति समताभाव
15.6.7 आदर्श शासन व्यवस्था
15.6.8 साहित्यिकता का संरक्षण एवं काव्यत्व का अनुरक्षण
15.6 व्याख्या खंड
15.7 सारांश
15.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.0 प्रस्तावना

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ तेरा पंथ के ऐसे मनीषी और चिंतक व्यक्तित्व हैं जिनके ज्ञान और अनुभव की दिशाएं बहुमुखी हैं। उनके व्यक्तित्व के अनेक रूप हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी आचार्य महाप्रज्ञ एक साथ, दार्शनिक, विचारक, चिंतक, संस्कृति–धर्म आख्याता एवं प्रखर वक्ता होने के साथ – साथ उच्चकोटि के मौलिक प्रतिभा संपन्न साहित्यकार भी कहे जा सकते हैं। प्रातिभज्ञान सम्पन्न मौलिक साहित्य स्रष्टा आचार्य महाप्रज्ञ की लेखनी से अनेक साहित्यक कृतियां प्रकाश में आई हैं। वे न केवल हिंदी, वरन संस्कृत में भी धाराप्रवाह बोल लेते हैं। संस्कृत में मौलिक काव्य रचना करने की क्षमता से भी वे पूर्ण हैं। संस्कृत या हिंदी में दी गई किसी भी काव्यात्मक समस्यापूर्ति को आचार्य महाप्रज्ञ तत्काल पूर्ण करने में समर्थ हैं वह भी काव्यत्व एवं साहित्यिकता के संरक्षण के साथ। ऐसे ही साहित्य मनीषी की गंभीर मौलिक प्रतिभा – सुदीर्घ चिंतन, गहन मंथन एवं व्यापक विचार–विमर्श की अमर वाणी से प्रस्फुटित है महाकाव्य 'ऋषभायण', जिसे आचार्य महाप्रज्ञ की काव्यप्रतिभा का प्रस्फोट कहा जा सकता है।

15.1 उद्देश्य

यह इकाई दार्शनिक, चिंतक, विचारक, कवि एवं साहित्यकार आचार्य महाप्रज्ञ के साहित्यिक योगदान एवं उपलब्धियों के विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन से संबद्ध है, जिसका उद्‌देश्य उनकी महाकाव्यात्मक रचना 'ऋषभायण' के परिप्रेक्ष्य में उनके साहित्यिक व्यक्तित्व से परिचय प्राप्त करना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- तेरापंथ के अधिष्ठाता एवं पर्याय बन चुके आचार्य तुलसी के योग्यतम शिष्य आचार्य महाप्रज्ञ का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- आचार्य महाप्रज्ञ के दार्शनिक व्यक्तित्व से अलग उनके साहित्यक व्यक्तित्व से भी भलीभाँति परिचित हो सकेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा प्रणीत महाकाव्यात्मक कृति 'ऋषभायण' के परिप्रेक्ष्य में उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को जान सकेंगे।
- 'ऋषभायण' का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- 'ऋषभायण' के काव्य सौन्दर्य से परिचित हो सकेंगे।
- आचार्य महाप्रज्ञ एवं 'ऋषभायण' का साहित्यिक मूल्यांकन कर सकेंगे।

15.2 आचार्य महाप्रज्ञ : एक परिचय

"सन्तों और महात्माओं में ऐसे तो अनेक त्यागी, उदार–चरित, पुण्यात्मा महामानव हो चुके हैं, जो अपने तप, त्याग और निष्कलुष जीवन से अपने युग को परम पावन करते हुए भविष्य के लिये अपने ऐसे तपःपूत पदचिह्न छोड़ गए हैं जिनका अनुगमन और अनुसरण करते हुए मनुष्य सामान्य कोटि से उठकर देवतत्त्व की भूमिका तक पहुंच सकता है किन्तु उनमें ऐसे बहुत कम महापुरूष हुए हैं, जो तपस्वी, साधक और धर्मशील होने के साथ–साथ कुशल वक्ता, सशक्त लेखक और नीरक्षीर–विवेकी सद्‌विचारक भी हुए हों। समहाप्रज्ञ में इन गुणों का पूर्णता के साथ मणि–कांचन संयोग विद्यमान है। वे संस्कृत के ऐसे निष्णात पंडित हैं कि किसी भी छन्द का आश्रय लेकर घण्टों तक पद्य में धाराप्रवाह प्रवचन कर सकते हैं। उनकी लेखनी इतनी परिमार्जित, समुत्कृष्ट और सबल है कि वह गहन विचारों को भी सरलतम भाषा के माध्यम से व्यक्त करके सामान्य पाठकों को भी सन्तुष्ट और संतृप्त कर सकती है। वे गहन चिन्तक होने के साथ–साथ ऐसे कुशल वक्ता भी हैं कि गम्भीर – से – गम्भीर विचार को भी सरलतम वाणी में घोलकर श्रोता के हृदय तक उसकी मधुरिमा पहुंचा सकते हैं।"

– आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

विश्वविश्रुत प्रतिभा आचार्य महाप्रज्ञ का जन्म 14 जून 1920 को राजस्थान के झुन्झुनू जिले के एक ग्राम टमकोर में हुआ। यह ग्राम रेतीले टिब्बों के मध्य अवस्थित प्रदूषण से मुक्त छोटा, सुरम्य एवं शांत स्थान है। उनकी माता का नाम श्रीमती बालूजी तथा पिता का नाम श्री तोलारामजी था। माता–पिता के संरक्षण में बालक का नामकरण नथमल के रूप में किया गया। बहुत ही सहज और सात्विक परिवेश में पले बालक नथमल की प्रतिभा बचपन से ही परिलक्षित होने लगी थी, क्योंकि 'होनहार बिरवान के होते चीकने पान' की कहावत उनपर आरंभ से (बचपन से) ही चरितार्थ होने लगी थी। यह होनहार बालक ही आगे चलकर ज्ञान–विज्ञान, तर्क, मीमांसा, दर्शन, संस्कृति, धर्म में निष्णात आचार्य महाप्रज्ञ के रूप में प्रख्यात हुआ, जो वर्तमान में अपने प्रातिभ–ज्ञान, आलोक से समाज को एक नई दिशा में लगे हुए हैं।

आचार्य महाप्रज्ञ के पिताजी का देहावसान तब हो गया था, जब वे मात्र ढाई मास के थे। इस असामयिक वज्रपात से बालक नथमल के मन पर क्या प्रभाव पड़ा होगा इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। महाप्रज्ञ जी ने एक जगह कहा है –

''मुझे याद है कि मेरा जन्म घर के पिछले भाग में हुआ था। मैं जब ढाई मास का था, तब मेरे पिताजी दिवंगत हो गए थे, यह भी मुझे याद है । ये दोनों घटनाएँ मेरी स्मृति में क्यों हैं, इसकी मैं तर्कसंगत व्याख्या नहीं दे सकता। कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं, जिनकी तार्किक व्याख्या नहीं हो सकती, पर उनकी सच्चाई असंदिग्ध होती है। सत्य को तर्क की सीमा में बंदी नहीं बनाया जा सकता।''

पिता के असामयिक अवसान के उपरांत बालक नथमल को माँ बालूजी ने जिस ममता और प्रेम के संरक्षण में मातृत्व की छाया प्रदान की उससे उस बालक की उचित परवरिश में कोई व्यवधान नहीं आया। मां की ममताभरी स्नेहिल देखभाल ने महाप्रज्ञ जी, के बचपन में जो संस्कार दिए, वे ही आगे चल कर उनके व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक सिद्ध हुए। बचपन के वे ही संस्कार नथमल जी को मुनि नथमल, युवाचार्य महाप्रज्ञा और आचार्य महाप्रज्ञ बनाने में पूर्वपीठिका बने।

महाप्रज्ञजी की आरंभिक शिक्षा गांव में कोई सरकारी स्कूल नहीं होने से अनौपचारिक रूप से गुरुजी की पाठशाला में हुई। थोड़ी बहुत पढ़ाई उन्होंने अपने ननिहाल सरदार शहर में की।

मां के संस्कार की पाठशाला में पढ़ते और जीवन – संघर्ष की पाठशाला में अनौपचारिक रूप से पढ़ते हुए महाप्रज्ञजी ने बहुत कुछ सीखने और जानने का उपक्रम किया।

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

आचार्य कालूगणी द्वारा प्रदत्त ज्ञान, संस्कार, शिक्षा आदि ने महाप्रज्ञ के बहुमुखी व्यक्तित्व को निर्मित करने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। औपचारिक शिक्षा बहुत अधिक नहीं प्राप्त करपाने के बावजूद महाप्रज्ञजी ने गुरू के सान्निध्य में अनौपचारिक ढंग से जो शिक्षा प्राप्त की वह उनके व्यक्तित्व को विकसित करने में सहायक हुआ। आचार्य कालूगणी ने महाप्रज्ञजी को न केवल लिखना सिखाकर हस्तलिपि में सुधार करवाया, वरन् अनेक शलोकों का उच्चारण करवाकर उनके उच्चारण दोष को भी ठीक करवाया। इसके साथ ही आचार्य श्री ने महाप्रज्ञजी को 'धातुकोष' और 'प्राकृत' सीखने के लिए प्रेरित किया। 'प्राकृत' सीखने की उपयोगिता को महाप्रज्ञजी ने इन शब्दों में स्वीकार किया है –

''अगर उस समय प्राकृत का अध्ययन नहीं होता, तो आज आगम का दुरूह कार्य हाथ में नहीं ले पाते।''

अज्ञात की प्रेरणा से ज्ञात जगत में घटित घटना के कारण महाप्रज्ञजी ने दस वर्ष की अवस्था में पूज्य आचार्य श्री कालूगणी से दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा के बाद वे आचार्य कालूगणी के आदेश और निर्देश के अनुसार आचार्य प्रवर श्री तुलसी के सानिध्य में आए, जहां उनके जीवन के सर्वांगीण विकास की दिशा तय हुई। आचार्य तुलसी की देखरेख में सचमुच इस विलक्षण बालक का चहुंमुखी विकास हुआ।

आचार्य कालूगणी के सान्निध्य में बालक – नथमल का सर्वांगीण विकास हुआ, आगे चलकर आचार्य तुलसी के पारस स्पर्श से वह आयार्य महाप्रज्ञ के रूप में ख्यात हुआ। आचार्य तुलसी के सानिध्य में महाप्रज्ञजी ने 'दशवैकालिक सूत्र', 'कालु कौमुदी', 'भिक्षुशब्दानुशासनम् अभिधान चिंतामणि' आदि ग्रंथों को कंठाग्र कर लिया। इस क्रम में उन्होंने लाखों श्लोक स्वाध्याय से याद कर लिए, जो उनकी विलक्षण मेधा और प्रतिभा को प्रकट करता है। यह स्वाध्याय ही महाप्रज्ञ जी के ज्ञान की रिक्थ और थाती है।

ऐसी विलक्षण प्रतिभा के धनी आचार्य महाप्रज्ञ को साहित्य – सर्जन की प्रेरणा आचार्य तुलसी के सान्निध्य में प्राप्त हुई। गहन भावाभिव्यक्ति के लिए साहित्य–सर्जन की आवश्यकता होती। साहित्य का सर्जन गतिशील प्रगतिकी दिशा में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अपनी सर्जनात्लक क्षमता के कारण आचार्य महाप्रज्ञा तेरापंथ धर्मसंघ के हिंदी भाषा में लिखनेवाले प्रथम लेखक के गौरव से विभूषित हैं। वे आचार्य तुलसी के संपर्क में बहुत पहले से रचनाएं करने लगे थे, पर उन्हें वे सार्वजनिक नहीं करते थे। आचार्य श्री की प्रेरणा एवं उनके प्रोत्साहन से उन्होंने अपना लेखन उन्हें दिखाया। आचार्य बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने महाप्रज्ञजी को इस दिशा में निरन्तर आगे बढ़ते रहने के लिए प्रेरित किया। उनकी इसी प्रेरणा का परिणाम है कि आचार्य महाप्रज्ञ ने धर्म, संस्कृति, आचार, नीति, साहित्य, दर्शन आदि से संबंधित अनेक पुस्तकों का सर्जन किया है, जो उनकी सर्जन प्रतिभा का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

आचार्य महाप्रज्ञ की रचनाएँ –

ज्ञात स्रोतों से आचार्य महाप्रज्ञ की पहली रचना 'अहिंसा' नामक पुस्तिका है। उसके बाद 'जीव अजीव' नामक उनकी रचना प्रकाश में आई। इस तरह उनके लेखन का क्रम अनवरत निरंत चलता रहा। आचार्य महाप्रज्ञ की विविध विषयों पर प्रस्तुत प्रमुख पुस्तकों / ग्रंथों के नाम निम्नवत् हैं –

- मन के जीते जीत
- किसने कहा मन चंचल है
- जैन योग
- चेतना का ऊर्ध्वारोहण
- आभामण्डल
- मेरी दृष्टि : मेरी सृष्टि
- एकला चलो रे
- एसोपंचणमोकारो
- अपने घर में
- मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता
- अर्हम
- नया मानव नया विश्व
- कर्मवाद

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- महावीर की साधना का रहस्य
- घट–घट दीप जले
- मैं : मेरा मन : मेरी शान्ति
- भिक्षु विचार–दर्शन
- समस्या को देखना सीखें
- धर्म के सूत्र
- विचार को बदलना सीखें
- मनन और मूल्यांकन
- जैन दर्शन और अनेकान्त
- आमंत्रण आरोग्य को
- जैन दर्शन : मनन और मीमांसा
- शक्ति की साधना
- जैन धर्म के साधनासूत्र
- महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र
- मुक्तभोग की समस्या और ब्रह्मचर्य
- अहिंसा और शान्ति
- महावीर का अर्थशास्त्र
- अध्यात्म का प्रथम सोपान : सामायिक
- अहिंसा तत्वदर्शन
- अतीत का वसंत : वर्तमान का सौरभ

15.3 आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्यिक पक्ष

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त 'ऋषभायण' आचार्य महाप्रज्ञ की मौलिक प्रतिभा से प्रसूत उज्ज्वल मणि है, जो एक उच्च स्तरीय 'साहित्यिक रचना' है और जिसका अध्ययन विश्लेषण यहां अलग से अपेक्षित है। 'ऋषभायण' के अतिरिक्त महाप्रज्ञ जी ने अगणित गीतों, कविताओं, मुक्तों, क्षणिकाओं, उन्मुक्त कविताओं का प्रणयन समय–समय पर किया है, जो उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा के द्योतक हैं।

15.4 आचार्य महाप्रज्ञ और ऋषभायण

आचार्य तुलसी की महाप्रेरणा से आचार्य महाप्रज्ञ ने 'ऋषभायण' नामक महाकाव्य की रचना की है, जो तेरापंथ धर्मसंघ में हिंदी भाषा में रचित यह प्रथम महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त कर चुका है। कुल 'ऋषभायण' महाकाव्य में मानवीय सभ्यता के आदि पुरुष 'ऋषभ' को आधार बनाकर कथा को प्रस्तुत किया गया है। ऋषभ के चरित्र को उद्घाटित करने के कारण इस महाकाव्य का नाम 'ऋषभायण' है। 'ऋषभायण' के सर्गों के नाम निम्नवत् हैं –

1. यौगलिक युग 2. ऋषभावतार 3. राज्य–व्यवस्था 4. समाज रचना 5. भरत–राज्याभिषेक 6. ऋषभ–दीक्षा 7. अक्षय तृतीया 8. केवलज्ञानोपलब्धि 9. आत्म–सिद्धांत प्रतिपादन 10. दिग्विजय 11. भरत का अयोध्या आगमन 12. अठानवें पुत्रों को संबोध 13. सुन्दरी दीक्षा–ग्रहण 14. दूत–संप्रेषण 15. युद्धभूमि में समागम 16. भरतबाहुबलियुद्ध–वर्णन 17. भरतबाहुबलिसमर–वर्णन 18. ऋषभ–निर्वाण।

इस काव्य ग्रंथ का परिचय प्राप्त करने के लिए हम आचार्य महाप्रज्ञ के कथन का ही आश्रय लेते हैं–

"ऋषभ की कथा भारतीय संस्कृति के आदि सर्ग की कथा है। इतिहास की सीमा बहुत छोटी है। प्रागैतिहासिक काल की नीहारिका में अनेक सौरमण्डल छिपे हुए हैं। हिमालय के परिपार्श्व में एक सभ्यता जन्म ले रही थी। यौगलिक युग अथवा आदिवासी युग परिसंपन्न हो रहा था। वृक्षों पर आधारित मनुष्य कर्मभूमि के सिंहद्वार में

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रवेश कर रहा था। उस समय कुलकर नाभि के परिकर में ऋषभ ने जन्म लिया। उनका जन्म एक नई सभ्यता और नई संस्कृति का सृजन था। उन्होंने समाज की व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इसीलिए आचार्य जिनसेन ने उन्हें प्रजापति, धाता और विधाता की अभिधा से अभिहित किया।

प्रस्तुत काव्य में ऋषभ का चरित्र है इसलिए इसका नाम ऋषभायण है। ऋषभ की जीवन कथा समाज व्यवस्था की आत्मकथा है। दो युगों के संधिकाल में भौगोलिक, सामाजिक, मानसिक और भावात्मक स्थितियों में होनेवाला परिवर्तन समाज विकास की भूमिका का एक रोमांचक निदर्शन है।''

15.5 ऋषभायण का कथानक

'ऋषभायण' के माध्यम से आचार्य महाप्रज्ञ ने एक आदियुगीन, पुरातन युग की कथा को प्रासंगिक बनाकर आज के संदर्भ में प्रस्तुत किया है। महाकाव्य के नायक ऋषभ के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था, सभ्यता – संस्कृति का विकास, सामाजिक विकास का गतिशील क्रम आदि को प्रसंगानुकूल रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। ऋषभायण के माध्यम से ऋषभ – साम्राज्य में नीति, आचार, धर्म राजतंत्र, राजव्यवस्था, नैतिकता, कर्त्तव्य, आदर्श प्रगति, विकास, नारी, शिक्षा आदि सभी विषयों की अवस्थिति का बहुत मनोयोग से मनोग्राही वर्णन किया गया है। उन वर्णनों में राजा–प्रजा का आपसी सामंजस्य, राजा का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य आदि का ऐसा जीवंत दृश्य उपस्थित हुआ है, जिसके कारण यह रचना आज के वर्तमान संदर्भों में भी उतनी ही प्रासंगिक हो गई है, जैसी तब थी।

कथानक के अनुसार हिमालय के पार्श्व प्रदेश में एक ऐसी आदिवासी सभ्यता पनप रही थी, जिसे यौगलिक युग के नाम से जाना जाता है। इस यौगलिक युग में निवास करनेवाले आदिवासी लोग सभ्यता की नई किरण से पूरी तरह अनभिज्ञ थे। उन्हें सहजता और सरलता के साथ वृक्षों पर आधारित जीवन जीना आता था। वास्तव में वह एक अकर्म युग था जिसमें निवास करनेवाले लोग जीवन की बहुत कम आवश्यकताओं के कारण अकर्मण्य बने रहते थे। प्रकृति के गोद में पलता हुआ यह स्वच्छंद समाज इसलिए सुखी और स्वस्थ था कि उस समाज में अर्थ और पदार्थ का अभाव नहीं था। सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती थी। किसी को अधिक अर्थ या वस्तु की आवश्यकता ही नहीं थी, अर्थात् उस समाज पर अर्थ और पदार्थ का प्रभुत्व नहीं था। उनकी आवश्यकताएँ इतनी कम थीं कि प्राथमिक आवश्यकताएँ पूरी हो जाती थीं। उनमें किसी तरह का आपसी मतभेद या टकराव नहीं था। सभी प्रसन्न और सुखी रहते थे। लूट, खसोट, लालाच, संग्रहप्रवृत्ति, आधिपत्यभाव, प्रभुत्व, स्वामित्वभाव से परे यौगलिक युग पूरी तरह से नैसर्गिक स्वस्थ समाज था। जब किसी तरह की कोई आवश्यकता ही किसी को न थी, फिर कर्म करने की आवश्यकता ही कहां थी। इसलिए उसे अकर्मयुग की संज्ञा दी गई।

धीरे–धीरे परिस्थितियां बदलीं, काल के प्रवाह में परिवर्तन के आवेग ने अपना प्रभाव छोड़ा और वह शांत यौगलिक युग उद्वेलित हुआ। उनकी आवश्यकताओं में वृद्धि हुई तो उस अकर्मण्य समाज में अभाव की स्थिति पैदा हई। अभाव की ऐसी स्थिति में जीवन की छोटी–छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति करना दुर्लभ हो गया। ऐसे में उस समाज में अपनत्व, ममत्व एवं संग्रह की चेतना जाग्रत हुई। चेतना की इस जाग्रति ने उस यौगलिक युग के निवासियों में एक क्रांति की चिनगारी छोड़ दी। उनमें अधिकार की वृत्ति ने अपना प्रभाव जमाया। वे अकर्म से कर्म की ओर प्रवृत्त हुए। इस भावना और चेतना ने यौगलिक समाज की जड़ता को तोड़कर भारी परिवर्तन ला दिया। स्वाभाविक रूप से अव्यवस्था का साम्राज्य बढ़ा। इस अवस्था में अभाव, अप्रेम, आपसी टकराव, असहिष्णुता, अपहरण, पराभव आदि की अधिकता के कारण एक नई व्यवस्था की आवश्यकता हुई और तब एक नई व्यवस्था ने जन्म लिया, जिसे कुलकर व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। यह कुलकर व्यवस्था एक लम्बे समय तक चलती रही।

अकर्म युग से कर्मयुग में प्रवेश करने की इस अपूर्व सामाजिक व्यवस्था में अव्यवस्थाओं और अभावों का बोलबाला होना स्वाभाविक था। अभाव और जीवनगत समस्याओं के बढ़जाने से उस समय उपलब्ध अल्प संसाधनों से प्राथमिक आवश्यकता की पूर्ति होना असंभव सा हो गया। ऐसी परिस्थिति में कुलकर व्यवस्था में जीवनयापन करनेवाले लोगों में स्वअधिकार और 'मेरा है' का ममत्वभाव जाग्रत होना स्वाभाविक था। परिणामतः वहां उपलब्ध सार्वजनिक वृक्ष आदि संसाधनों पर वे अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगे। ममत्व और अधिकार की प्रबल भावना के कारण आपसी टकराव और संघर्ष बढ़ गया। इस परिस्थिति में वह कुलकर व्यवस्था नष्ट हो गयी। इस संबंध में महाप्रज्ञ जी के विचार बहुत प्रासंगिक हैं–

"प्रवृत्ति और मनुष्यस्वभाव दोनों का अध्ययन करने पर लगता है कि अभाव–ममत्व (मेरापन) और अधिकारवृत्ति, संग्रह की मनोवृत्ति के लिए उद्दीपन का काम करता है। इस अभाव, ममकार और अधिकार की वृत्ति ने कुलकर व्यवस्था को छिन्नभिन्न कर दिया। इस समस्या के समाधान के लिए कुलकर नाभि ने राज्य की व्यवस्था की और ऋषभ को प्रथम राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया।"

ऋषभ के राजा के रूप में प्रतिष्ठित हो जाने के बाद एक नयी राज्य व्यवस्था स्थापित हुई और नई व्यवस्था की बागडोर ऋषभ जैसे कुशल नेतृत्वकर्ता राजा के हाथ में आ गई थी, जिन्होंने अपने कौशल से उस नए राज्य में सुशासन, सुव्यवस्था कायम कर समाज की हर तरह की उन्नति के लिए कार्य किया। प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का निर्वाह करते हुए उन्होंने सामाजिक समरसता का परिवेश निर्मित किया।

राजा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है कि जीवन की जो भी आवश्यकता उन्होंने हैं, उनकी पूर्ति के लिए उचित नियोजन और संयोजन करे। यदि नियोजन सही ढंग से नहीं किया जाए, तो अपराध और अनाचार बढ़ने लगते हैं।

राजा बनने के बाद ऋषभ ने ऋषभ राज्य की सारी शासन व्यवस्था को अपने ढंग से अनुशासित एवं संचालित करने का प्रयास किया। ऋषभ राज्य चूंकि यौगलिक युग की चेतना से ही प्रभावित था, इसलिए उसमें भी पूर्व में चली आ रही परंपरा और चेतना के कारण ममत्व और अधिकार की भावना अवस्थित थी। हालांकि इस कारण कोई बड़ी घटना तो घटित नहीं होती थी, पर छोटी–मोटी छीना–झपटी की सामान्य सी घटनाएं अवश्य दृष्टिगत हो जाती थीं। उस शासन व्यवस्था में संसाधनों की प्रचुरता न थी। प्रत्येक व्यक्ति में स्वअनुशासन, आत्मानुशासन की चेतना का संचार था, जिसके कारण लोगों को अधिक शासित नहीं करना पड़ता था, बल्कि वह शासनमुक्त चेतनावाला राज्य था।

उस ऋषभ राज्य में आपसी समझ तथा पारस्परिक संबंध नए–नए ही स्थापित हो रहे थे, इसलिए संबंधों की पहचान और समझ अधिक नहीं विकसित हो सकी थी। मालिक, दास, नौकर–स्वामी जैसी भावनाएं उस राज्य में विकसित नहीं हो सकी थीं। ऋषभ राज्य में हर मनुष्य आत्मनिर्भर और स्वावलंबी था। आपस में स्वार्थों को लेकर आपसी टकराव नहीं था। सहजता, सरलता एवं सद्भाव के कारण एक तरह से वह वैर मुक्त समाज था।

'ऋषभायण' की कथा बताती है कि ऋषभ राज्य के निवासियों का जीवन बहुत साधारण था। उनका भोजन, खान–पान सादा और अतिसाधारण होने की वजह से उनमें कोई व्याधि या रोग नहीं व्याप्त था। वहां भौतिक वस्तुओं का अपेक्षित विकास नहीं हुआ था, इस कारण से उसे अविकसित राष्ट्र कह सकते हैं, किंतु चेतना उनकी जाग्रत एवं विकसित थी। इस दृष्टि से चेतना के स्तर पर उसे एक विकसित राष्ट्र की संज्ञा दी जा सकती है। ऋषभ राज्य में बौद्धिक शिक्षा भले नहीं विकसित थी, पर विवके जागरण की शिक्षा की प्रधानता थी।

भगवान ऋषभ ने अपने कुशल राज–नेतृत्व से वहां के निवासियों की चेतना को बहुत उच्च्य स्तर पर विकसति किया। उनके प्रयासों से विवके जाग्रति के कारण ऋषभ राज्य को एक विकसित राष्ट्र की श्रेणी में परिगणित किया जा सकता है। ऋषभ ने उस समाज, राज्य की व्यवस्था को सुचारु एवं स्थिर बनाकर आत्मान्वेषण के लिए प्रस्थान किया। वे एक तपस्वी के रूप में तप, तपाकर आत्मा का साक्षात्कार करने में सफल हुए। वे आत्मतत्व की व्यवस्था करनेवाले इस युग के प्रथम आत्मज्ञानी और आत्मविद्या के आख्याता के रूप में स्थापित हुए। संक्षेप में 'ऋषभायण' की यही कथा है।

यद्यपि इस कथा से 'कामायनी' के कथानक की कोई समता स्थापित नहीं की जा सकती, तथापि 'ऋषभायण' के 'ऋषभ' 'कामायनी' के 'मनु' की स्मृति को ताजा अवश्य कर देते हैं। जिस तरह से 'कामायनी' के 'मनु' प्रथमपुरुष के रूप में ख्यात हैं, वैसे ही 'ऋषभ' अनेक कारणों से प्रथम पुरुष के रूप में स्थापित होते हैं। जिस तरह से कामायनी के मनु ऋषि और तपस्वी हैं उसी तरह 'ऋषभ' भी भगवान और तपस्वी है। जिस तरह से मनु–श्रद्धा की कथा को हिंदी काव्य में सर्वप्रथम प्रसाद को उठाने का श्रेय प्राप्त है, संभवतः उसी तरह ऋषभ की कथा को काव्य के रूप में प्रथम बार उठाने का श्रेय आचार्य महाप्रज्ञ को है। इस दृष्टि से 'कामयनी' और 'ऋषभायण' में तुलनीय बिंदु तलाशे जा सकते हैं। इस दृष्टि से तो और भी कि ये दोनों कृतियां आधुनिक हिंदी कविता में रचित महाकाव्य हैं, जहां साहित्यिकता के साथ दार्शनिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक आधार दोनों में ग्रहण किया गया है।

15.6 ऋषभायण का काव्य सौंदर्य

''मुझे सबसे अधिक आश्चर्य और कौतूहल महाप्रज्ञ की कविताओं को पढ़कर हुआ। ये कविताएँ न केवल वैचारिक दृष्टि से गंभीर हैं, वरन् भावनात्मक गहराई की दृष्टि से भी अद्भुत हैं। संस्कृत–हिंदी दोनों में समान भाव से कविता लिखने की अद्भुत क्षमता महाप्रज्ञ में है। कुछ कविताएँ तो नितांत आधुनिक संवेदनाओं से युक्त हैं।''

— डॉ. गोपाल राय

चिंतक और विचारशील कवि आचार्य महाप्रज्ञ की मौलिक काव्यप्रतिभा से प्रस्फुटित 'ऋषभायण' मनुष्य जाति के आरंभिक युग की, सहज, स्वाभाविक शैली में प्रस्तुत की गई जीवंत 'महागाथा' है। इस दृष्टि से संभवतः हिंदी

का यह प्रथम महाकाव्य है, जो मानवीय सभ्यता के प्रथम पुरुष / आदि पुरुष ऋषभ के जीवन को आधार बनाकर काव्यरूप में प्रस्तुत किया गया है।

'ऋषभायण' की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत हैं –

15.6.1 नव संस्कृति का उन्मेष

इस महाकाव्य के नायक ऋषभ विभिन्न महागुणों से विभूषित ऐसे महामानव हैं, जिन्होंने नई सभ्यता और नई संस्कृति का सर्जन कर मानव सभ्यता का विकास किया। इस क्रम में मुनि धनंजयकुमार का कथन बहुत प्रासंगिक प्रतीत होता है–

''ऋषभ ने युग परिवर्तन के समय नई सभ्यता और नई संस्कृति का किस प्रकार सृजन किया, इसका जीवंत चित्रण है इस महाकाव्य में। कैसे सृष्टि का विकास हुआ है ? कैसे राजनीति का तंत्र विकसित हुआ ? दंडनीति का अनचाहा अभिलेख कब लिखा गया है ? मनुष्य ने अकर्म युग से कर्मयुग में प्रवेश कब किया ? इन सारे प्रश्नों को समाहित करनेवाला महाकाव्य है 'ऋषभायण'।'' वस्तुतः 'ऋषभायण' नवसंस्कृति का उन्मेष करने वाला महाकाव्य है।

15.6.2 मौलिक विषयवस्तु एवं कथानक

इस दृष्टि से भी यह कृति प्रसादकृत 'कामायनी' से तुलनीय हो सकती है, क्योंकि जिस तरह 'कामायनी' के मनु आदि पुरुष होकर सृष्टि के नियंता हैं, ठीक उसी तरह ऋषभ भी आदि पुरुष के रूप सृष्टि के विकास का माध्यम हैं। इस दिशा में यदि शोध का मार्ग प्रशस्त हो तो विविध बिंदुओं को लेकर 'कामायनी' और 'ऋषभायण' एक तुलनात्मक अध्ययन जैसा शीर्षक हाप्रज्ञ ने ही पहलीबार ग्रहण किया है, जो विलक्षण है।

15.6.3 युग चेतना से अनुप्राणित

'ऋषभायण' सांस्कृतिक आख्यायन अथवा पौराणिक कथा की केवल पुनर्प्रस्तुति नहीं है, वरन् इस काव्य के माध्यम से कवि ने आज के मनुष्य की, समाज की, युग की विविध समस्याओं को बहुत स्वाभाविक रूप में उठाकर इस रचना को युगचेतना से समन्वित कर, वर्तमान संदर्भों में भी प्रासंगिक बना दिया है। युग चेतना से अनुप्राण्तिा यह महाकाव्य आज के मानव जीवन को नूतन संदेश देने का उपक्रम करता है।

15.6.4 समसामयिकता की अभिव्यक्ति

'ऋषभायण' तत्कालीन राज्यव्यवस्था का मात्र स्थूल वर्णन करनेवाला महाकाव्य नहीं है, वरन् समसामयिक ज्वलंत मुद्दों को उठाकर उनके समाधान की ओर भी संकेत करता है। इसलिए इसकी उपयोगिता और महत्ता बहुत अधिक बढ़ जाती है। यह महाप्रज्ञ जी की काव्यप्रतिमा एवं विचारशीलता का ही परिणाम है कि वे आज की समसामयिक समस्याओं को सूत्र रूप में उठाते हैं और उसनें कविता का चमत्कार कर देते हैं –

'चेतना – जागृत पुरुष वह
देखता परिणाम को
सुप्त मानव पुरुष केवल
देखता है काम को'

आज पूरी मानवता जिस समस्या से पीड़ित है, वह है मानसिक तनाव। इस मानसिक तनाव के शिकार वे भी हैं, जो स्वयं को बहुत विकसित राष्ट्र कहते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ इस समस्या के मूल में जाने का प्रयास करते हैं, और इस मानसिक कष्ट का कारण स्पष्ट करते हैं –

'ह्री से ही अनुशासित होती
श्री बढ़ती है अपनेआप
केवल बौद्धिक संवर्धन से
बढ़ता है मानस संताप'

15.6.5 मानवतावादी दृष्टि

प्रत्येक मनुष्य इसलिए वंदनीय है कि उसमें आत्मा का निवास है। सभी प्राणियों में अवस्थित आत्मा एक समान है, उसमें कोई अंतर नहीं। जब सभी में आत्मा का स्थिति एक समान है, तब मानव – मानव के बीच भेद कैसा ? यह है 'ऋषभायण' की मानवतावादी दृष्टि, जिसे महाप्रज्ञजी ने ऋषभ के माध्यम से अभिव्यक्त किया है–

'जाति और कुल, बल के मद से

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्यथित निरंतर मनुज समाज
बाहर से संघर्ष प्रस्फुटित
भीतर में है मद का राज
हर प्राणी में आत्मा की स्थिति
आत्मा – आत्मा सभी समान
ऊंच–नीच का भेद कल्पना
अंतरिक्ष का सदृश वितान'

यही वह दृष्टि है, जो ऊंच – नीच के भेद से ऊपर उठकर मानवतावादी समतामूलक भावना से समस्त प्राणियों को एक समान मानने का आग्रह करती है।

15.6.6 नारी के प्रति समता का भाव

यद्यपि 'ऋषभायण' में मानव कल्याण की अवतारणा पग–पग पर अवस्थित है, तथापि नारी के प्रति एक सम्मानजनक समता मूलक दृष्टि का विकास इस महाकाव्य की महती विशेषता है। समाज में नारीपुरुष दोनों समान हैं। ज्ञान और शिक्षा प्राप्त करने का जितना अधिकार पुरुष को है, उतना ही स्त्री को भी है। 'ऋषभ' द्वारा राज्यसत्ता संभालने से पूर्व लोगों में शिक्षा–दीक्षा का अभाव था। ऋषभ के राज्य में सभी के लिए शिक्षा का अनुकूल अवसर उपलब्ध था, विशेष कर स्त्री शिक्षा के प्रति ऋषभ का ध्यान विशेष रूप से गया। आज जो लोग स्त्रीशिक्षा के विरुद्ध हैं, यदि ऋषभ राज्य की व्यवस्था को देखते तो संभवतः स्त्रीशिक्षा का विरोध नहीं करते।

ऋषभ ने अपने राज्य के प्रत्येक निवासी के लिए ज्ञान–विज्ञान, शिक्षा, कला, शिल्प आदि के द्वार मुक्तभाव से खोल दिए। उन्होंने पुरुष के साथ–साथ स्त्री को भी शिक्षित होने का अधिकार – गौरव प्रदान किया–

''लिपि गणित की शिक्षा में
नारी को पहला स्थान मिला
कोमलतम अंतर में कोई
परिमल परिवृत्त पुष्प खिला
नारी को अधिकार नहीं है।
शिक्षा का, यह भ्रांतिपली
ऋषभ चरित की स्मृति से ही
मिथ्या मति विष बेल फली''

'ऋषभायण' की इन पंक्तियों के माध्यम से मानों महाप्रज्ञ जी मनुष्य में उस प्रगतिशील चेतना का विस्तार करना चाहते हैं, जिसके कारण स्त्री की स्थिति और परिस्थिति में आमूल परिवर्तन आ सकता है। आज भी समाज का एक बड़ा पिछड़ा वर्ग है, जो स्त्री को हेय मानकर उसे शिक्षा–दीक्षा से रोकता है। महाप्रज्ञ जी की उपर्युक्त पंक्तियां समाज की उस जड़ता और मिथ्याधारणा को तोड़ने में बहुत प्रभावी भूमिका का निर्वाह कर सकती हैं, जिससे नारी–उत्थान का मार्ग प्रशस्त होगा। महाप्रज्ञजी का कहना है कि यदि हर व्यक्ति को ऋषभचरित का परिज्ञान होता, तो उसे कभी यह भ्रांति नहीं होती की स्त्री को शिक्षा का अधिकार नहीं है, क्योंकि ऋषभ राज्य में प्रत्येक स्त्री के लिए शिक्षा–ज्ञान आदि की उचित व्यवस्था थी। ऋषभ स्त्री–पुरुष दोनों को समान मानते हुए उन्हें आगे बढ़ने का समान अवसर देने के पक्षधर थे।

15.6.7 आदर्श शासन व्यवस्था

'ऋषभायण' के नायक ऋषभ एक कुशल नेतृत्वकर्त्ता राजा के रूप में आदर्श शासन व्यवस्था की स्थापना करते हुए उसका कुशल संचालन करते हैं। एक कुशल शासक का कर्त्तव्य हैं कि वह अपने राज्य की व्यवस्था को इस तरह सुचारु रखे, जिससे वह सभी की अपेक्षाओं पर खरा उतरे। एक राजा से, एक शासक से जनता यही अपेक्षा रखती है कि वह उनका हितचिंतक हो, उसे अपनी प्रजा के सुख–दुःख की चिंता हो, वह ऐसे निर्णय ले जिससे प्रजा का कल्याण हो, वह जनता की समस्याओं से भली–भांति परिचित हो तथा उन समस्याओं का प्रभावी समाधान प्रस्तुत कर सके। ऐसा राजा ही प्रजा के मन को जीत सकता है। यदि ऐसा नहीं होता तो वह राजा जनता पर, प्रजा पर, राज्य पर, राष्ट्र पर बोझ के समान है। जिस राजा को प्रजा की, नहीं स्वयं की चिंता रहती है, वह कुशल राजा नहीं होता। 'ऋषभायण' के माध्यम से महाप्रज्ञ जी ने आज की शासन व्यवस्था को एक दिशा – निर्देश देने का महत् कार्य किया है। आज के संदर्भ में ये पंक्तियां निःसंदेह बहुत प्रासंगिक हैं –

'जनहित साधन में न निरत है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

केवल ढोता पद का भार
वह क्या राजा वह क्या नेता
उससे पीड़ित है संसार
जनता से अधिकार प्राप्त कर
नहीं कभी करता उपकार
प्रथम वर्ण का लोप हो गया।
और हो गया द्वित्व ककार।'

यहां तुलसीदास के रामचरित मानस के उत्तरकांड का यह अंश अनायास ही स्मरण हो आता है, जहां तुलसी ने आदर्श राज्य की कल्पना करते हुए एक कुशल राजा के लिए एक आचार संहिता तैयार कर दी है –

''मुखिया मुख सो चाहिए खान–पान–सो–एक
पालइ–पोसइ सकल जग तुलसी सहित विवेक''
तथा
''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी
सो नृप अवस नरक अधिकारी''

निःसंदेह साहित्यिक दृष्टि से 'रामचरित मानस' की ये पंक्तियां 'ऋषभायण' में व्यक्त महाप्रज्ञ जी की उपर्युक्त पंक्तियों से तुलनीय हैं।

15.6.8 साहित्यिकता का संरक्षण एवं काव्यत्व का अनुरक्षण

'ऋषभायण' 'ऋषभचरित' के रूप में भगवान ऋषभ का यशोगान है। उनकी चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन इस महाकाव्य का पतिपाद्य है। ऐसी किसी कथा के माध्यम से कथानक का विकास और उसे गतिशील बनाते हुए कथाक्रम को आगे बढ़ाना प्रबंधकाव्य / महाकाव्य की विशेषता होती है। कथासूत्र को आगे बढ़ाने के क्रम में कथात्मकता का जो ताना–बाना बुना जाता है, उससे काव्य में स्थूलता का आ जाना स्वाभाविक है। इसीलिए प्रबंधकाव्य पर इतिवृत्तात्मकता का आरोप लगाया जाता है।

एक कुशल कवि का दायित्व है कि वह महाकाव्य में कथात्मकता का निर्वाह करते हुए, कलात्मक संवेदन को उभारे तथा साहित्यिकता के संरक्षण के साथ काव्यत्व के अनुरक्षण का भी प्रयास करे। कथात्मकता में काव्यत्व का निर्वाह महाकाव्य के लिए अनिवार्य भी है, अप्रतिपार्य भी। इस दृष्टि से विचार करने पर 'ऋषभायण' केवल ऋषभ – चरित कथा ही नहीं है, वरन् उसमें अनेक स्थलों पर काव्यत्व का चारूतम रूप दृष्टिगत होता है। इस दृष्टि से अन्य प्रसंगों के अतिरिक्त पांचवें सर्ग के अंतर्गत 'वसंत–उत्सव' में महाप्रज्ञजी का काव्यरूप बहुत कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त हुआ है।

वसंत – उत्सव के संबंध में प्रो. दयानंद भार्गव का कथन बहुत प्रासंगिक है–

''साधुत्व के घेरे में मुझे चार दीवारें दिखाई देती हैं – (1) तर्क की सीमाओं में बंधे रहना, (2) नैतिकता की सीमाओं में बंधे रहना, (3) वाच्यार्थ की सीमाओं में बंधे रहना, (4) प्रचार भावना की सीमाओं में बंधे रहना। 'ऋषभायण' के 'वसंत–उत्सव' को पढ़कर लगा कि आचार्य महाप्रज्ञ अनायास ही उपर्युक्त चारों दीवारों को लांघ गए हैं। जिन्हें वाच्यार्थप्रधान, विचारप्रधान, उपदेशात्मक रिलीजस काव्य पढ़ने का अभ्यास है, वे तो इस वसंतोत्सव वर्णन को शायद ही हृदयंगम कर पाएं, किंतु ध्वनि प्रधान काव्य के रसिक तत्काल इस काव्यांश की विशेषता पकड़ लेंगे।''

दरअसल वसंत उत्सव की आरंभिक पंक्तियां ही पाठक के मन में कौतूहल और औत्सुक्य जगाने में सक्षम हैं –

वन में मानव मेला है
नभ में सूर्य अकेला है

इन पंक्तियों की बहुत सटीक व्याख्या प्रो. दयानंद भार्गव ने की है–

''इन दो पंक्तियों का अटपटापन स्पष्ट है। मेला वन में नहीं, उद्यान में लगता है। अतः मुख्यार्थ में बाधा आ रही है। व्यंग्य यह है कि भीड़ तंत्र एक जंगल है, जहां विवेक के स्थान पर भेड़चाल है वहां भीड़ तो है, किन्तु व्यवस्था नहीं। वन से व्यवस्था का अभाव ध्वनित हो रहा है। यदि कवि वन के स्थान पर उद्यान का प्रयोग कर देता तो यह सूक्ष्मार्थ ध्वनित नहीं होता, क्योंकि उद्यान व्यवस्थित होता है, अव्यवस्थित तो वन ही होता है, उद्यान नहीं। एक ओर मेला है, दूसरी ओर सूर्य अकेला है। सूर्य प्रज्ञा का प्रतीक है। प्रज्ञाशील व्यक्ति सदा अकेलापन ही अनुभव करते हैं, क्योंकि उनके साथ भीड़ कभी नहीं चल पाती। भीड़ के जंगलीपन और प्रज्ञाशील के अकेलेपन के बीच एक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कंट्रास्ट पैदा होता है, इन दो पंक्तियों को एक साथ पढ़ने पर। यह कोई परंपरागत सवर्णन और सूर्य वर्णन नहीं हो रहा है। अपितु गड्डिकाप्रवाह पर एक व्यंग्य है और प्रतिभा की नियति का आलेख।''

यहां विचारणीय है कि महाप्रज्ञ जी की उपर्युक्त काव्य पंक्तियां 'वसंत उत्सव' की भूमिका प्रस्तुत करती हैं। एक कवि की दृष्टि उस बिंदु पर अवस्थित है जहां विरोधाभासी – सी दिखनेवाली पंक्तियों में गूढ़ार्थ छिपा है। महाशून्य (आकाश) में आलोकित प्रतिभाषित होनेवाले सूर्य की तरह कोई ज्ञानी पुरुष अपने आलोक से वन (अंधेरा) में गुम होती हुई भीड़ को (भटकी हुई मानव जाति को) रास्ता दिखलाता है। पथ प्रदर्शन, करनेवाला व्यक्ति अकेला होता है, पर उसमें इतनी क्षमता होती है कि वह अकेले अपने दम पर पथभ्रमित होती भीड़ को सही मार्ग पर लगा सकता है। उस प्रज्ञावान ज्ञानी पुरुष का अकेला होना ही उसकी सार्थकता है, उसकी अर्थवत्ता है। गहन दार्शनिक चिंतन से संपृक्त ये पंक्तियां महाप्रज्ञ जी की मौलिक – विचारशील प्रतिभा की द्योतक कही जा सकती हैं।

वसंत का आगमन सभी के मन में उल्लास का सचार कर देता है। धरती का कोना–कोन वसंत के आगमन से सुरभित हो उठता है। दिग–दिवगंत महक उठते हैं। वसंत के इस दृश्य को कोई सावचेत कविमन ही अभिव्यक्त कर सकता है, वह भी गहन आंतरिक अनुभूति एवं कलात्मक संवेदन के साथ–

''सुरभित उपवन का हर कोना
विहसित पुष्प पराग
राग झांकता पूर्ण युवा बन
मीलित नयन विराग
आया मधुमय का मधुमास
कण–कण मुखर वसंत विलास''

अनुप्रास की छटा विखेरती, नादसौंदर्य के साथ उक्त पंक्तियां रीतिकालीन कवि पद्माकर की निम्नलिखित पंक्ति की ओर अनायास हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेती हैं।

'बनन में बागन में बगरयो वसंत हैं।

अथवा एक अन्य कवि की निम्नलिखित पंक्तियां –

'सखि आयो बसंत ऋतून को कंत
चहूं दिसि फूलि रही सरसों,

वसंत आगमन पर मंद–मंद समीर का संचरण अपने साथ पुष्पपराग को लेकर चहुंओर फैला देता है। सुगंधित वासंती बयार किसे बेसुध नहीं कर देती। इस दृश्य को महाप्रज्ञजी ने वसंत उत्सव में कुछ इस तरह व्यक्त किया है –

''मंद–मंद समीरण सुरभित
कर – कर विटपि स्पर्श
आगे बढ़ता लगता तरु को
इष्ट वियोग प्रकर्ष
कण–कण दृष्ट करुण साकार
शाखा–शाखा कंपे विकार''

मानवीय संवेदना वह गुण है, जिससे दूसरे के प्रति ममता और करुणा का भाव जाग्रत होता है। ममता का मानव जीवन में विशेष स्थान और महत्त्व है। जिसमें ममता नहीं, वह मनुष्य नहीं। जिसमें ममता है, वह किसी के मन पर राज कर सकता है –

''ममता के कोमल धागों से
बनता मनुज समाज
ममता की अति ही करती है
मानव मन पर राज''

तत्सम शब्दावली युक्त परिनिष्ठित भाषा प्रयोग के साथ ऐसी मानक प्रस्तुति 'वसंत – उत्सव' के अनेक स्थलों को रेखांकित किया जा सकता है, जहां काव्यत्व के अनुरक्षण का स्तरीय प्रयास दृष्टिगत होता है। शिल्पगत वैशिट्य के अंतर्गत नूतन प्रतीक, बिंब के साथ नवीन छंदों का प्रयोग आदि 'ऋषभायण' को नवीन भाव–शिल्प से समन्वित महाकाव्य प्रमाणित करते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वस्तुतः 'ऋषभायण' महाकाव्य में एक ऐसी कथा को विस्तार दिया गया है, जिमसें मानव जीवन और समाज के विविध महत्त्वपूर्ण पक्ष विवृत हुए हैं। ऋषभ के चरित्र की अवतारणा करते हुए महाप्रज्ञ जी ने नवीन दृष्टि का उन्मेष किया है। मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए आवश्यक तत्त्वों का समावेश कर ऋषभायण को आज के युग संदर्भों में प्रासंगिक बना कर प्रस्तुत किया गया है। काव्यत्व की दृष्टि से भी यह रचना हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। गोपाल राय के शब्दों में एकदम सच तो यह है –

''मुझे सबसे अधिक आश्चर्य और कौतूहल महाप्रज्ञ की कविताओं को पढ़कर हुआ। ये कविताएँ न केवल वैचारिक दृष्टि से गंभीर है, वरन् भावनात्मक गहराई की दृष्टि से भी अद्‌भुत हैं। संस्कृत–हिंदी दोनों में समान भाव से कविता लिखने की अद्‌भुत क्षमता महाप्रज्ञ में है। कुछ कविताएँ तो नितांत आधुनिक संवेदनाओं से युक्त है।''

– डॉ. गोपाल राय

निःसंदेह 'ऋषभायण' आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रमुख महाकाव्य है, जिस पर विस्तार से अध्ययन, मनन, विवेचन, विश्लेषण की अपेक्षा है। मुनि धनंजयकुमार के शब्दों में कहा जा सकता है–

''ऋषभ, भरत और बाहुबलि की यह मर्मस्पर्श गाथा जीवन के ऊर्ध्वारोहण की गाथा है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने इसमें भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिक चेतना का सुन्दर एवं मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। इसमें केवल अतीत का यशोगान ही नहीं है, वर्तमान की समस्याओं का समाधान भी है। समाज, धर्म, राजनीति को नई दृष्टि एवं नई दिशा देनेवाला यह ग्रंथ भारतीय चेतना का दर्पण है। मनस्वी कवि महाप्रज्ञ का यह मौलिक सृजन भारतीय मनीषा को प्रभावित करेगा, उसको नया आलोक और नई दृष्टि देगा। इक्कीसवीं शताब्दी की बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे प्रबुद्ध मानव के लिए मैं इसे एक अमूल्य उपहार मानता हूं।''

15.7 व्याख्या खंड

15.7.1 मूल पाठ

ऋषभायण

चौथा सर्ग

समाज रचना

अतीन्द्रियज्ञानमृते न काचिद्
अपूर्वनिर्माणकथाऽपि सार्था
धाता विधाता च समाजसृष्टेः
निर्माणवृत्तैः ऋषभः स वन्द्यः।

समाज–रचना का उपक्रम

सामाजिक सुख के लिए
महापुरुष की सृष्टि
शस्य–श्यामला भूमि के
लिए जलद की वृष्टि

सुख–दुःख संवेदन रहा
मनुज प्रकृति में प्रत्न
दुःख–प्रलय सुख–सृजन के
हेतु मनुज का यत्न

अपर कष्ट को मानता
जो अपना ही कष्ट
उसे प्राप्त नेतृत्व का
आशीर्वाद सुस्पष्ट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आज प्रजाजन के लिए
है ऋषभ अनिवार्य
उन पर आश्रित नव्य युग
की रचना का कार्य

पुर बाहर पहुंचे प्रभु
ले युगलों को साथ
लगे खोदने मृत्तिका
कुंभकार के हाथ

पानी से गोंदा स्वयं
और दिया आकार
अग्नि आंच में पक हुआ
प्रथम पात्र तैयार

कुंभकार के शिल्प का
हुआ प्रवर विन्यास
आधेयक आधार का
वैयाकरण विकास

अन्न पात्र में डालकर
रखो अग्नि के पास
ताप–पक्व खाओ सहज
ले अजीर्ण संन्यास

आदि बिंदु पक्वान्न का
प्रथित हुआ आबाल
कभी मौन का आचरण
कभी काल वाचाल

शिल्प और कर्म का विकास

इच्छा से इच्छा बढ़ती है
इच्छा अपना है चक्र
दूध जन्म देता है दधि को
दधि से फिर बनता है तक्र

आवश्यकता, आवश्यकता
नहीं अकेली का अस्तित्व
कड़ी–कड़ी से होता निर्मित
अयस–शृंखला का व्यक्तित्व

हर प्रवृत्ति के पीछे–पीछे
चलती है अवधूत प्रवृत्ति
मन की चंचलता के पीछे
नई–नई होती है वृत्ति

कुंभशिल्प के लिए अपेक्षित
लोहकार का शिल्प निकाम
लोहशिल्प के लिए जरूरी
होता है बढ़ई का काम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

क्रम अक्रम – दोनों चलते हैं
क्रम से होता है कुछ कार्य
कुछ छलांग भर कर होता है
अक्रम बन जाता व्यवहार्य

मिले अतीन्द्रिय ज्ञानी जिसको
वह युग हो जाता है धन्य
आज ऋषभ की ज्ञान–रश्मि से
जागृत है युग का चैतन्य

कुंभकार की श्रेणी ने
आहार–पेय के पात्र दिए
लोहकार की श्रेणी ने
अयजात कुदाली–दात्र दिए

और स्थपति की श्रेणी ने
गृह – रचना का संकल्प लिया
भोगभूमि को कर्मभूमि का
नव निर्मित परिधान दिया

तंतुवाय की श्रेणी ने
आच्छादनकारी वस्त्र दिए
क्षौरकर्म की श्रेणी ने
नख–कुंतल के संस्कार किए

पाँच श्रेणियों की रचना से
शिशु–समाज को प्राण मिला
कर्मभूमि के कोमल किसलय
को आतप से त्राण मिला

हल से कर्षण हुआ भूमि का
कृष्टभूमि में बोया बीज
बढ़ी फसल को देख कृषक ने
पूछा मन से यह क्या चीज ?

काटा, डाला खलिहानों में
बैल लगे खाने तब धान्य
मुख बंधनी से मुंह को बांधो
यह निर्देश हुआ सम्मान्य

रहे सदा अनभिज्ञ कर्म से
पग–पग पर पथ–दर्शन इष्ट
बाँध मुँह खोला न बैल का
बंधन–मोचन कभी न दृष्ट

खाना छोड़ दिया बैलों ने
नई समस्या का प्रस्तार
सरल नहीं है निर्मित करना
नव मानव का नव संसार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आवश्यक हो तब ही बांधों
फिर खोलो, खाएंगे बैल
कठिन कार्य भी युक्ति–साध्य है
उदाहरण मक्खन या तैल

भूमि ऊर्वरा उत्पादन की
क्षमता खाद बिना अस्ताघ
जलधर बरसा समुचित संयत
छाँह मुदिर की कभी निदाघ

उपजा शस्य मिले जन–जन को
नव आयाम खुला व्यवसाय
उन्नत कृषि उन्नति देती है
उससे ही उन्नत समुदाय

अर्जन का है चरण दूसरा
रक्षण, रक्षक–श्रेणि तदर्थ
कृषि ने मषि को, मषि ने असि को
जन्म दिया अभिवांछित अर्थ

असि–मषी–कृषि के परिशिक्षण
से द्रुत दक्ष समाज हुआ
पहले जो न कभी होता था
वह परिचालित आज हुआ

स्फुरित हुआ चिंतन मन में
आवश्यक है विद्या की वृद्धि
विद्या के पीछे चलती है
सिद्धि ऋद्धि कमनीय समृद्धि

सामाजिक उन्नति–विकास का
भाषा है पहला सोपान
भाषा के आलंबन से ही
चिरजीवी होता विज्ञान

वाङ्गय–की शिक्षा विकसित हो
शब्द–सिद्धि, लय का माधुर्य
अलंकरण, यह त्रिपद समन्वित
बनता वाङ्मय का वैडूर्य

विद्या का विकास

भरत ! शब्द का शास्त्र पढ़ो तुम
शब्द–सिद्धि का द्वार खुले
छन्दशास्त्र हो आत्मसात तब
सिता दूध में सहज घुले

पढ़ो पुत्रियो ! कर्मभूमि में
विद्या का होगा सम्मान
विद्या कामदुहा धेनू है
कल्पवृक्ष का नव प्रस्थान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उचित समय में उचित यत्न ही
उससे होगा जीवन सार्थ
बीज ऊर्वरा में जो बोया
स्वयं बनेगा वह परमार्थ

अक्षर की गागर में सागर
भरने का पावन संकल्प
वाङ्मय सरिता के प्रवाह का
एकमात्र है लिपि प्रकल्प

वर दक्षिण कर से ब्राह्मी को
लिपि–न्यास की शिक्षा दी
और सुन्दरी को संख्या की
बाएं कर से दीक्षा दी

लिपि–गणित की शिक्षा में
नारी को पहला स्थान मिला
कोमलतम अन्तर् में कोई
परिमल परिवृत्त पुष्प खिला

नारी को अधिकार नहीं है
शिक्षा का, यह भ्रान्ति पली
ऋषभचरित की विस्मृति से ही
मिथ्यामति विष–बेल फली

पशु–पक्षी शिक्षित हो सकते
फिर नारी की कौन कथा ?
दीर्घकाल अज्ञान तमस की
झेली उसने मौन व्यथा

पतला है आवरण, वही जन
शिक्षा का है अधिकारी
जिसे लब्ध मस्तिष्क प्रवरतम
फिर वह नर हो या नारी

बाहुबली को मानव–गणि–पशु–
लक्षण का संज्ञान दिया
विद्या वैभव के दीवट पर
ज्योतिदीप संधान किया

लघुतम बीज उप्त ऊर्वरा
में शतशाखी बन जाता
सागर से अनुदान प्राप्त कर
जलधर बनता जलदाता

बन्धुद्वय ने, भगिनीद्वय ने
विद्या का विस्तार किया
कर्मभूमि के मनुपुत्रों को
जीवन का आधार दिया

परिवार–संस्था का संजीवन

मम माता, मम पिता सहोदर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मेरी पत्नी, मेरा पुत्र
मेरा घर है, मेरा धन है
सघन हुआ ममता का सूत्र

ममता ने परिवार नाम की
संस्था को आकार दिया
ममता ही परिवार, उसी ने
क्रूर वृत्ति का विलय किया

बढ़े चरण परिणय के आगे
और लगा बढ़ने परिवार
सामाजिक गति में विवाह की
संस्था का अनुपम आधार

शिक्षा से शिक्षित, दीक्षा से
दीक्षित, दक्ष बना जनवर्ग
शिक्षा–दीक्षा–शून्य मनुज पशु
शिक्षा है धरती का स्वर्ग

जन–अनुकंपा से अनुकंपित
मानस पुण्य उदात्त उदार
नेता का कर्त्तव्य–बोध ले
किया ऋषभ ने युग–उपकार

अपना घर, अपनी कृषि भूमि
अपना वन, अपना उद्यान
मर्यादा में निश्रित सब जन
प्राप्त हुआ है असि को म्यान

आत्मा का शासन चलता तब
दंडशक्ति हो जाती व्यर्थ
उच्छृंखलता में समझाती
जनता को डंडे का अर्थ

शस्य–शस्य श्यामल खेतों का
सरस इक्षुवाटों का व्रात
गोकुल में गौर रंभाने की
ध्वनि होती थी सायं प्रात

हेय और आदेय वस्तु का
बोध ऋषभ से सम्यक् लब्ध
कर्मभूमि के प्रथम चरण में
सामाजिक जीवन आरब्ध

एकाएक लगा झटका जब
कल्पवृक्ष ने खींचा हाथ
परावलंब की प्रवंचना यह
स्वावलंब ही देता साथ

अब क्या होगा ? भय से आकुल
कुलकर का सारा परिवार
भूख–ताप से अधिक भयंकर
हंत ! भूख के भय का तार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आश्वासन का बोल मिला तब
डरो न, डरना मरना तुल्य
कर्मभूमि का प्राण कर्म है
आंको इन हाथों का मूल्य

इस अमूल्य वाणी ने फूंका
अभय और पौरुष का मंत्र
हाथ और आजीव मध्य में
आस्थापित जीवन का तत्र

उसका फल, पहना धरती ने
प्रवर हरित शाटी परिधान
अतिक्रांत भय आज भूख का
सबके होठों पर मुस्कान

राज्य – व्यवस्था

आरक्षक श्रेणी की अभिधा
'उग्र', सुरक्षा का अधिभार
संग्रह–आग्रह–विग्रह सारे
लेते समुदय में आकार

राज्य–व्यवस्था में सहयोगी
श्रेणी उसकी संज्ञा 'भोज'
मंत्र–मंत्रणा से ही होती
संचालन – विधियों की खोज

सवया सम अधिकार प्राप्त जन
श्रेणी प्रज्ञापित 'राजन्य'
बनी विकेंद्रित शासन–पद्धति
गगनखंड में ज्यों पर्जन्य

शेष सभी 'क्षत्रिय' कहलाए
हुआ सुनिश्चित जन–व्यवहार
शून्य व्यवस्था में लगता है
विकृत विचारों का अंबार

स्रष्टा धाता और विधाता
सब कुछ, वचन परम आदेय
जो आजीव–उपाय सुझाता
वही पुरुष होता है प्रेय

जनहित–साधन में न निरत है
केवल ढोता पद का भार
वह क्या राजा ? वह क्या नेता ?
उससे पीड़ित है संसार

जनता से अधिकार प्राप्त कर
नहीं कभी करता उपकार
प्रथम वर्ण का लोप हो गया
और हो गया द्वित्व ककार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

छोटा मंडल, छोटी सीमा
नेता ने करुणा का सिन्धु
सागर भिन्न नहीं है मुझ से
अनुभव करता है हर बिन्दु

राजा और प्रजा का सुखकर
स्थापित प्रथम बार संबंध
नाना रुचि, नाना चिंतन का
एकसूत्र में रचित निबंध

लंबा जीवन, लंबी आयु
हुई विपुल जनसंख्या वृद्धि
श्रम कौशल सहयोग समर्जित
बढ़ी चतुर्दिक् ऋद्धि–समृद्धि

'निज पर शासन फिर अनुशासन'
शासन का यह मौलिक मंत्र
अपने शासन से शासित था
स्वयं ऋषभ का जीवन – तंत्र

मनुज परिस्थिति की कठपुतली
यह एकांत परिस्थितिवाद
जैसी स्थिति वैसा बनता है
मूल नहीं, केवल अनुवाद

कर्म–उदय से संचालित है
मानव, मान्य कर्म का वाद
जैसा कृत वैसा बनता है
जैसा रस है वैसा स्वाद

काल और स्वभाव, नियति, मति
कर्म, परिस्थिति, सब सापेक्ष
अनेकांत का यह दर्शन है
मूल तत्त्व केवल निरपेक्ष

युगल कर्म से बंधे हुए थे
फिर भी उनका मोह प्रशांत
काल रूक्ष वैयक्तिक जीवन
कर्मपाक रहता विश्रांत

काल हुआ है स्निग्ध–रूक्ष अब
सामाजिक जीवन का व्यास
क्रोध, लोभ के आवेश–क्षण
करते मानो पूर्वाभ्यास

मर्यादा के अतिक्रमण का
उपादान वैयक्तिक मोह
है निमित्त परिस्थिति, उससे
कल्लोलित होता विद्रोह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आवेशों का शैशव, बचपन
की वेला में है अतिचार
बढ़े नहीं, इसका चिंतन हो
वर्तमान का हो प्रतिकार

लज्जा के अनुरूप प्रवर्तित
होता समुचित दंड–विधान
युग का अपना–अपना मानस
दंड स्वयं मानस–विज्ञान

लज्जा के उत्कर्ष काल में
'परिभाषित' का किया प्रयोग
'यहीं बैठ जाओ' शासक का
क्रोधपूर्ण वाचिक अभियोग

तारतम्य है नियम प्रकृति का
लज्जा का किंचित् अपकर्ष
दंड 'मंडलीबंध' प्रयोजित
हुआ क्रमिक गृह–बंध प्रकर्ष

निर्धारित सीमा से बाहर
जा न सके, यह दंड द्वितीय
नजरबंद घर में हो जाता
जो पाता था दंड तृतीय

अंतर् का आवेश बढ़ा तब
हुआ दंड का नया प्रकार
अब तक था वाचिक, अब कायिक
देह–निपीड़क दंड–प्रहार

ह्री से थी अनुशासित होती
श्री बढ़ती है अपने आप
केवल बौद्धिक संवर्धन से
बढ़ता है मानस–संताप

सीमित शासन, अल्प अतिक्रम
अल्प दंड, तनुतर विक्षेप
ऋषभराज्य की यह महिमा है
नहीं कहीं कोई आक्षेप

इक्ष्वाकुवंश स्थापना

सरस भूमि रस का आवर्षण
कण–कण में संभरित मिठास
मनस मधुरिमा से आपूरित
गगन–धरा–व्यापी उल्लास

मधुर प्रकृति में काम्य मधुरतम
इक्षुवाट पद–पद पर दृश्य
सहज स्वयं अनुशासित जन में
इक्षुदंड ही केवल स्पृश्य

रस–संग्रह रस के निपान का
प्राप्त ऋषभ से सविधि निदेश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जन–जन मुख 'इक्ष्वाकु' नाम वर
सहज प्रतिष्ठित वंश–निवेश

अपर नाम 'काश्यप' तेजस्वी
ऋषभ आदि–काश्यप सुप्रसिद्ध
महापुरुष का आलंबन पा
बनता वंश–वितान समृद्ध

आदिपुरुष की गुण–गरिमा से
गौरवमंडित सकल समाज
प्रमुदित विकसित सबके सिर पर
शोभित है फूलों का ताज

मतिः समाजस्य विकासकार्ये
धृतिः समेषामुदयाय वृत्ता
आदीश्वरः श्रीऋषभः स भूयाद्
मतेर्धृतेरभ्युदयाय शश्वत्।
श्रीऋषभायणे समाजरचनानामा

चतुर्थः सर्गः

15.7.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

ऋषभायण (चौथा सर्ग)

सर्ग परिचय – 'ऋषभायण' का चौथा सर्ग इस महाकाव्य का अतिमहत्त्वपूर्ण सर्ग है, जिसके माध्यम से महाप्रज्ञजी ने कथासूत्र को बहुत रोचक ढंग से विस्तार दिया हैं। ऋषभ द्वारा राज्यसत्ता ग्रहण करने के उपरांत प्रजा / समाज के हितार्थ किए गए निर्णय एवं कार्यों को बहुत विस्तार एवं कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। एक राजा के रूप में ऋषभ ने समाज रचना का उपक्रम, शिल्प और कर्म का विकास, विद्या का विकास, परिवार संस्था का संजीवन, राज्य व्यवस्था आदि का नियोजन एवं संचालन बहुत कुशलता के साथ किया। ऋषभ के माध्यम से समाज रचना एवं व्यवस्था की पूरी आचार संहिता इस सर्ग के माध्यम से प्रस्तुत हुई है। उन्होंने एक कुशल राज संचालक की भांति न केवल उपर्युक्त पक्षों का विकास किया, वरन् सुदृढ़ समाज व्यवस्था के लिए आवश्यक तत्वों का निर्देश भी किया है, जिससे इस सर्ग की महत्ता और उपादेयता बढ़ गई है।

व्यवस्थित समाज रचना के लिए किन–किन बातों का होना आवश्यक है, शिल्प और कर्म के विकास की क्यों आश्यकता है, विद्या का विकास सामाजिक ढांचे को कितना लाभ पहुंचाता है, परिवार रूपी संस्था के लिए क्या–क्या तत्व आवश्यक हैं, राज्य व्यवस्था के सुचारु संचालन के लिए राजा को क्या–क्या करने चाहिए, उसके दायित्व और कर्त्तव्य क्या हैं, इन उपयोगी एवं व्यावहारिक पक्षों पर ऋषभ के माध्यम से आचार्य महाप्रज्ञ ने एक विचारशील कवि की तरह अपना आभिमत प्रस्तुत किया है। वस्तुतः विचारात्मक, उपदेशात्मक एवं काव्यात्मक इन सभी दृष्टियों से 'ऋषभायण' का चौथा सर्ग विशेष महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय कहा जा सकता है। यदि हम मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियों 'केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए, उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए' के हवाले से कहें, तो चौथा सर्ग के माध्यम से जो संदेश विवृत हुए हैं, वे आज की युगचेतना के अनुरूप बहुत आवश्यक, उपयोगी एवं प्रासंगिक हैं, क्योंकि इनके बिना सामाजिक उत्थान की कल्पना नहीं की जा सकती। विचार कविता के मध्य शुद्धकाव्य की दृष्टि से भी इस सर्ग की विशिष्टता कम नहीं है। कहा जा सकता है कि महाकाव्य 'ऋषभायण' का चौथा सर्ग इस प्रबंधकाव्य के अतिविशिष्ट सर्गों में से एक है, जिसका प्रत्येक दृष्टि से स्थायी महत्त्व है।

सामाजिक .... वृष्टि।

शब्दार्थ – सृष्टि – अवतारणा, आगमन, शस्यश्यामला – हरी–भरी, खुशहाल, जलद – बादल (जल का दान करनेवाला), वृष्टि – वर्षा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संदर्भ – प्रस्तुत काव्यांश आचार्य महाप्रज्ञ की अमरवाणी से प्रस्फुटित महाकाव्य 'ऋषभायण' के चौथा सर्ग से अवतरित है।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियों में समाज रचना के उपक्रम में महापुरुष की परोपकारी वृत्ति का उल्लेख करते हुए कवि का कथन है कि महापुरुष परोपकार के लिए ही अवतरित होते हैं –

व्याख्या – इस समाज की सुख – कामना, भलाई और उसका उपकार करने के लिए समय–समय पर महापुरुषों का आगमन होता है। उनका जीवन समाज के हित के लिए ही समर्पित होता है। जिस तरह से जलद जल का दान कर धरती को हरा–भरा बना देता है, दूसरे अर्थों में शस्य–श्यामला भूमि के लाभार्थ ही बादल वृष्टि करता है, उसी तरह महापुरुष का जन्म परहित के लिए ही होता है।

विशेष – (1) महापुरुषों के गुणों का आख्यान बहुत सहज – सरल रूप में किया गया है।

(2) संत, महापुरुष, परोपकार के लिए ही धरती पर अवतरित होते हैं।

(3) यहां 'जलद' का प्रयोग बादल के पर्यायवाची के अर्थ में नहीं, वरन् साभिप्राय हुआ है। दान देने (जलदान) का भाव बादल के अन्य किसी रूप से विवृत नहीं होता। 'जलद' कहकर बादल के दानी स्वरूप (जो महापुरुषों की भी विशेषता होती है, की ओर संकेत किया गया हैं

(4) जैसे जल का दान करके जलद धरती को हराभरा कर देता है, वैसे ही महापुरुष अपने परोपकारी गुणों से समाज को खुशहाल बना देते हैं।

(5) यहां 'अनुप्रास' के साथ 'दृष्टांत' अलंकार द्रष्टव्य है।

भावसाम्य –

'परोपकाराय सतां विभूतयः'
'परहित हितार्थ क्रिताभियोगाः'
'वृक्ष कबहूं न फल भखै, नदी न संचै नीर,
परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर।'

सुख–दुख .... **यत्न।**

शब्दार्थ – संवेदन – अनुभूति, प्रकृति –स्वभाव, प्रलय – विनाश, सर्जन– निर्माण, यत्न – प्रयास।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – सुख–दुख मनुष्य जीवन से जुड़े हुए हैं। प्रत्येक मनुष्य सुख की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहता है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए कवि का कहना है –

व्याख्या – मनुष्य के स्वभाव में सुख–दुख की अनुभूति सदैव विद्यमान रहती है। सुख और दुख मनुष्य जीवन के साथ प्रकृत्या जुड़े होते हैं। जैसे रात–दिन, एक दूसरे से संपृक्त होते हैं, वैसे ही सुख–दुख की अवस्थिति मनुष्य जीवन में सदैव रहती है। एक के बाद एक का मनुष्य जीवन में क्रमशः आना–जाना होता रहता है। मनुष्य सदैव इस प्रयत्न में लगा रहता है कि उसके जीवन से दुख का पलायन हो और सुख का आगमन हो जाए। इसके लिए वह निरंतर प्रयत्नशील रहता है।

विशेष – (1) मनुष्य के जीवन में सुख–दुख की स्थिति क्रमशः विद्यमान रहती है।

(2) एक सिक्के के दो पहलू की तरह सुख–दुख का होना मनुष्य जीवन का अनिवार्य हिस्सा है। बावजूद इसके वह सुख की कामना और दुख की अकामना करता है।

(3) 'सुखानि च–दुखानि च चक्रवत परिवर्तते।'

(4) 'दुख पाकर ही क्या न सभी जग में सुख पाते,

कंटकहीन प्रसून बहुत कम देखे जाते।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अपर कष्ट .... सुस्पष्ट

शब्दार्थ – अपर– दूसरे का, कष्ट – दुख, सुस्पष्ट – स्पष्ट रूप से।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – दूसरों के कष्ट को अपना कष्ट माननेवाला सभी के लिए वरेण्य होता है –

व्याख्या – इस संसार में दूसरों के दुःख को अपना दुःख माननेवाले बहुत कम लोग होते हैं। जो ऐसा करता है, सच्चे अर्थों में वही मनुष्य श्रेष्ठ मनुष्य कहलाने का अधिकारी है। जो दूसरों के कष्ट को अपना कष्ट मान लेता है, ऐसे परमार्थी व्यक्ति का सभी सम्मान करते हैं। ऐसे संवेदनशील – मानवीय दृष्टिसम्पन्न व्यक्ति को बड़े – बड़े लोगों का अनुग्रह प्राप्त होता है।

विशेष – (1) दूसरों का दुख समझना सच्ची मानवता है।

(2) ऐसी उच्च स्तरीय संवेदनशीलता धारण करनेवाला व्यक्ति सभी का कृपापात्र होता है।

इच्छा .... तक्र ।

शब्दार्थ – इच्छा – चाहत, कामना, तक्र – मट्ठा, छाछ।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – किसी वस्तु की इच्छा करने से ही उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाता है। आवश्यकता ही नए आविष्कार को जन्म देती है।

व्याख्या – इच्छाओं का क्रम अंतहीन होता है। किसी काम्य वस्तु की कामना करने से ही उस वस्तु को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। जैसे ही वह वस्तु प्राप्त हो जाती है, वैसे ही उसके आगे की कड़ी को पाने की इच्छा होती है। किसी नई वस्तु की उपलब्धि के लिए इच्छा का होना आवश्यक है। जैसे दूध की इच्छा होने पर दूध मिलता है, फिर इच्छा होने पर उससे दही बनाने की इच्छा होती है। दही बन जाने के बाद यह इच्छा का ही परिणाम है कि दही से अगले क्रम में हमें मट्ठा या छाछ की प्राप्ति होती है। इच्छा का यह क्रम चलता रहे तो नित नूतन वस्तुएं हमें प्राप्त होती रहती हैं।

विशेष – (1) कामनाएं अनंत होती हैं। उनकी पूर्ति का प्रयास नए आविष्कार को जन्म देता है।

(2) इच्छा करने से ही इच्छा का क्रम विकसित होता है।

भावसाम्य (3) यहां जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' की पंक्तियां अनायास स्मरण हो रही हैं, जहां इच्छा को ही आधार बनाया गया है –

'काम मंगल से मंडित श्रेय,
सर्ग इच्छा का है परिणाम।'

स्फुरित .... समृद्धि।

शब्दार्थ – स्फुरित – अंकुरित, चिंतन – विचार, सिद्धि ऋद्धि – सम्पूर्ण सुख सुविधा, धन धान्य से परिपूर्ण, समृद्धि – सुख ऐश्वर्य ।

प्रसंग – ऋषभ ने अपने राज्य के निवासियों की समृद्धि के लिए विद्या अध्ययन एवं भाषा के विकास को आवश्यक माना, क्योंकि विकास के लिए यह आवश्यक है।

व्याख्या – यौगोलिक युग के प्रभाव के कारण ऋषभ राज्य के लोगों में शिक्षा आदि का पूर्ण विकास नहीं हुआ था। ऋषभ चाहते थे कि हमारे राज्य के निवासी विद्या और कला का ज्ञान प्राप्त करें, क्योंकि सामाजिक प्रगति और उन्नति के लिए समाज में शिक्षा का होना आवश्यक है। जहां समाज में विद्या होती है, शिक्षा का प्रसार होता है, उस समाज में सब प्रकार की सुख – सुविधाएं, ऐश्वर्य सभी कुछ प्राप्त हो जाता है, क्योंकि ये सब विद्या के पीछे चलनेवाले तत्व हैं।

विशेष – (1) विद्या, ज्ञान, शिक्षा की महती उपयोगिता होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(2) शिक्षा–ज्ञान के बिना कोई समाज उन्नति नही कर सकता।
(3) शिक्षा के बल पर कोई भी उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है।
(4) कहा गया है –

'विद्याधनं सर्व धनं प्रधानम्।'
'दौलत सबसे बड़ी, पढ़ाई,
विद्या की सीढ़ी पर चढ़कर,
मुश्किल कोई नहीं चढ़ाई।'

सामाजिक .... विज्ञान।

शब्दार्थ – उन्नति – प्रगति, सोपान – सीढ़ी, आलंबन – सहारा, चिरजीवी – दीर्घ आयुवाला।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – ऋषभ की मान्यता है कि समाज की प्रगति भाषा के विकास के साथ होती है।

व्याख्या – ऋषभ इस तथ्य से भलीभांति अवगत हो गए थे कि मनुष्य जाति में सभ्यता का विकास भाषा के विकास के साथ संभव है। कोई समाज तब तक उन्नति और प्रगति नहीं कर सकता, जब तक उस समाज में भाषा का विकास न हो जाए। भाषा हमें नितनवीन आयामों से जोड़ती है। भाषा का विकास मनुष्यता का विकास है। ज्ञान–विज्ञान की शाखाएं बिना भाषा का आलंबन प्राप्त किए विकसित नहीं हो सकतीं। अतः आवश्यक है कि समाज में भाषा के विकास को अनिवार्य मानकर उसे प्राथमिकता दी जाए।

विशेष – (1) ऋषभ के माध्यम से व्यक्त महाप्रज्ञजी के विचार भाषा को लेकर बहुत उपयोगी और महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं।
(2) मनुष्य के विकसित और जीवंत होने की पहचान उसकी भाषा ही है।
(3) भाषा के बिना मनुष्य गूंगा है, अधूरा है।
(4) भाषा की इसी महत्ता को समझकर आधुनिक साहित्य के निर्माता भारतेंदु हरिश्चंद ने कहा था–

'निज भाषा उन्नति अहे सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटे न हिय को शूल'

उचित .... परमार्थ।

शब्दार्थ – सार्थ – सार्थक, उर्वरा – उपजाऊ, परमार्थ – दूसरे का हित।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – किसी भी वस्तु की उपयोगिता उसके उचित प्रयोग से ही होती है। यहां ऋषभ का कथन है कि सही समय पर सही प्रयत्न ही सार्थक होता है।

व्याख्या – मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह उचित समय देखकर ही उचित प्रयत्न करे। ऐसा करने से ही वह प्रयत्न सफल और सार्थक होता है। जिस तरह से उर्वरा मिट्टी में बोया हुआ कोई भी बीज अनुकूल परिवेश पाकर अपनी सम्पूर्ण संभावनाओं को उजागर और विकसित करता है, उसी तरह सही समय पर किया गया सही काम अपेक्षित परिणाम देता है। जैसे बीज को अनउर्वर, अनउपजाऊ भूमि में डाल दिया जाए, तो वह बीज नष्ट हो जाएगा, उसी तरह अनुपयुक्त समय में किया गया उपयुक्त कार्य अपनी सार्थकता खो देता है।

विशेष – (1) किसी भी कार्य की महत्ता तभी है, जब वह सही समय में उचित तरह से किया जाए।

(2) किसी भी क्रिया की सिद्धि उचित पात्र में ही होती है।

(3) कालिदास ने भी लिखा है –

'क्रियाहि वस्तुपहिता प्रसीदत।'

(4) महाप्रज्ञ जी की उपर्युक्त पंक्तियों में उनकी निष्णात विद्वन्त्ता के दर्शन होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पशु–पक्षी .... मौन व्यथा।

शब्दार्थ – दीर्घकाल – लंबे समय तक, अज्ञान – अशिक्षा,

तमस – अंधेरा, मौन व्यथा – मूक पीड़ा।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – ऋषभ ने अपने राज्य में प्रत्येक प्राणी की शिक्षा–दीक्षा का उपक्रम किया । स्त्रियों की शिक्षा के प्रति उनका विशेष आग्रह था, क्योंकि समाज की वास्तविक उन्नति स्त्री–शिक्षा के बिना नहीं हो सकती।

व्याख्या – ऋषभ ने अपने राज्य के निवासियों को लिपिज्ञान के साथ भाषा के ज्ञान की भी व्यवस्था की। इसके लिए उन्होंने सभी को प्रेरित किया। स्त्रीशिक्षा पर उन्होंने विशेष बल दिया। उनके प्रयत्नों से स्त्री को लिपि और गणित शिक्षा में पहला स्थान दिया गया। ऋषभ ने इस मिथ्या धारणा को तोड़ा कि स्त्री, शिक्षा की अधिकारिणी नहीं हैं। आचार्य महाप्रज्ञ जी का कहना है कि जिस तरह ऋषभ ने अपने समाज में स्त्रीशिक्षा को बढ़ावा दिया, वह अनुकरणीय है। यदि हमें ऋषभ राज्य के विषय में ज्ञान होता, तो हम स्त्री को शिक्षा वे वंचित नहीं करते, बल्कि उसकी शिक्षा की उचित व्यवस्था करते।

महाप्रज्ञजी कहते हैं कि ऋषभ की यहां तक मानयता थी कि जब पशु–पक्षी को भी लोग शिक्षित करने का उपक्रम करते हैं, तब स्त्री को शिक्षा से वंचित कैसे किया जा सकता है। नारी तो शिक्षा प्राप्त करने की प्रथम अधिकारिणी है। उसने बहुत समय तक अंधकार में रहते हुए अपनी मौन व्यथा को सहा है। वह अपनी मूक पीड़ा को व्यक्त नहीं कर सकी। अब जागरण का समय आ गया है। उसकी शिक्षा की समुचित व्यवस्था होनी ही चाहिए।

विशेष – (1) यहां महाप्रज्ञ जी की युगप्रेरक पंक्तियों में उनके युगप्रेरक व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं।

(2) इस दृष्टि से इस महाकाव्य की प्रासंगिकता एवं उपादेयता आज की युग – चेतना के संदर्भ में और भी बढ़ जाती है।

(3) स्त्री शिक्षा की हिमायत करके महाप्रज्ञजी ने उस समाज को दिशा देने का कार्य किया है, जो आज भी स्त्री – शिक्षा का विरोधी है।

(4) किसी ने कहा है – 'एक पत्थर की भी तकदीर संवर जाती है

शर्त यह है कि सलीके से तराशा जाए'

मम माता .... ममता का सूत्र।

शब्दार्थ – मम – मेरा, सहोदर – भ्राता, भाई, सघन – घनीभूत, बलवती, ममता – स्नेह, अपनत्व।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – ऋषभ ने अपने राज्य के लोगों को ज्ञान – विज्ञान – कला – शिल्प की शिक्षा देकर उन्हें इस प्रकार शिक्षित कर दिया कि उनमें परस्पर सहयोग, भाईचारा, प्रेम और अपनत्व का भाव जाग्रत हुआ। इस तरह परिवार नामक संस्था का उदय हुआ।

व्याख्या – यौगोलिक युगीन चेतना के प्रभाव में ऋषभ – राज्य के लोगों का इतना विकास नहीं हो पाया था कि वे आपसी संबंधों की महत्ता को जान सकें। उनमें अपनत्व और ममत्व का भाव जगाने का काम ऋषभ ने किया। जब उनमें परस्पर आपसी स्नेह की भावना का विकास हुआ तब वे अपने सगे – संबंधियों रिश्ते नातों को पहचानकर एक साथ रहने लगे और इस तरह परिवार भाव की कल्पना साकार हुई। आपसी समझ एवं सद्भाव से जब ऋषभ राज्य के रहनेवालों में मेरी माता, मेरे पिता, मेरे भाई, मेरी पत्नी, मेरा पुत्र, मेरा घर, मेरा धन की प्रबल भावना जाग्रत हुई, तब ममता का सूत्र घनीभूत होकर आपसी संबंधों को जोड़ने लगा और इस तरह परिवार भाव की स्थापना हो सकी।

विशेष – (1) ममत्व का भाव ही हमें आपस में जोड़ने का कार्य करता है।

(2) मेरा का भाव रिश्ते – नातों को मजबूती देता है।

(3) यही 'मेरा' या 'ममत्व' या अपनत्व का भाव जितना अधिक विस्तारित होगा, परिवार भाव उतना ही बढ़ेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(4) 'उदार चरितानाम तु वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना विश्व – परिवार को जन्म देती है।

(5) आचार्य महाप्रज्ञ के विचार बहुत विवेकशील हैं, जिन्हें अनुकरणीय कहा जा सकता है।

जनहित .... संसार ।

शब्दार्थ – जनहित – लोगों की भलाई, निरत – संलग्न, पीड़ित – दुखी।

संदर्भ – पूर्ववत्।

प्रसंग – ऋषभ के माध्यम से एक योग्य राजा – कुशल नेतृत्वकर्त्ता के गुणों को व्याख्यायित करते हुए महाप्रज्ञजी का बहुत प्रासंगिक कथन है –

व्याख्या – ऋषभ एक योग्य, कुशल राजा एवं नेतृत्वकर्त्ता हैं। अपनी प्रजा के हितार्थ उन्होंने बहुत से उपक्रम किए। उनका सारा प्रयास जनता की भलाई के लिए ही था। इसलिए उन्होंने कहा कि यदि कोई राजा अपनी प्रजा का कल्याण नहीं कर सकता है, तो वह कुशल और योग्य नेतृत्वकर्ता नहीं कहा जा सकता। ऐसा नेता, या शासन करनेवाला केवल अपने पदभार को ढोता हुआ जनता पर, देश पर, समाज पर बोझ है।

राजा का कार्य प्रजा के लिए समुचित संसाधनों की व्यवस्था करना है, उनके लिए कल्याणकारी योजनाएं बनाकर उन्हें लागू करना है, उनकी समस्याओं को जानना है तथा उनके निराकरण का पूरा प्रयत्न करना है। यदि राजा या नेता ऐसा नहीं करता तो वह स्वार्थी है और उससे सारा समाज प्रताड़ित और दुःखी होता है। संसार उससे पीड़ित हो जाता है।

विशेष – (1) एक आदर्श राजा या नेता की विशेषताओं को उद्घाटित किया गया है।

(2) यहां नेतृत्वकर्त्ता के लिए आचार संहिता बना दी गई है।

(3) तुलसीदास ने भी राजा के आदर्श एवं कर्त्तव्य की याद दिलाते हुए कहा है –

जासुदराज प्रिय प्रजा दुखारी

सो नृप अवस नरक अधिकारी

(4) आज की राजनीति एवं शासन व्यवस्था के लिए उपर्युक्त पंक्तियां बहुत प्रासंगिक हैं।

15.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से तेरापंथ धर्मसंघ के संचालक, अणुव्रत अनुशास्ता, दार्शनिक, विचारक, प्रखरवक्ता, मौलिक कवि आचार्य महाप्रज्ञ तथा उनके द्वारा विरचित महाकाव्य 'ऋषभायण' का विवेचन – विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया। उक्त अध्ययन का सारांश निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है –

- आचार्य महाप्रज्ञ दार्शनिक, विचारक तथा संस्कृति आख्याता होने के साथ–साथ मौलिक प्रतिभा सम्पन्न कवि भी हैं।
- गहन वैचारिक मंथन, सुदीर्घचिंतन – मनन के उपरांत उन्होंने 'ऋषभायण' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया है, जो आधुनिक हिंदी काव्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।
- अठारह सर्गों में विभक्त 'ऋषभायण' आदिपुरुष ऋषभ का जीवन चरित्र है।
- ऋषभ के माध्यम से इस महाकाव्य में न केवल प्राचीन युग की कथा का ताना–बाना बुना गया है, वरन् अनेक सामाजिक मुद्दों को युग – चेतना के संदर्भ में प्रासंगिक बनाते हुए प्रस्तुत किया गया है।
- स्त्रीशिक्षा, परिवार संकल्पना, राज्य व्यवस्था, जैसे पक्ष 'ऋषभायण' को बहुत प्रासंगिक बनाते हैं।
- 'ऋषभायण' के माध्यम से महाप्रज्ञजी की मौलिक काव्यप्रतिभा उजागर हुई है। इस दृष्टि से पांचवें सर्ग में 'वसंत – उत्सव' उनकी काव्यप्रतिभा का निदर्शन है। यहां कवि ने साहित्यिकता के संरक्षण और काव्यत्व के अनुरक्षण का पूरा प्रयास किया है।
- नवसंस्कृति , मौलिक विषयवस्तु, युग–चेतना और समसामयिकता की अभिव्यक्ति, मानवीय पक्ष, नारी सम्मान, आदर्श राज्य की संकल्पना आदि 'ऋषभायण' की प्रमुख विशेषताएं हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

- 'ऋषभायण' के आदिपुरुष ऋषभ, प्रसादकृत 'कामायनी' के आदिपुरुष मनु से तुलनीय हैं।
- इस दृष्टि से 'कामायनी' के साथ 'ऋषभायण' की तुलना विभिन्न बिन्दुओं को लेकर की जा सकती है।
- निःसंदेह ऋषभायण आधुनिक भावदृष्टिसम्पन्न आधुनिक हिंदी काव्य का एक प्रमुख एवं उल्लेखनीय महाकाव्य है।

15.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. मूल 'ऋषभायण' – आचार्य महाप्रज्ञ (भूमिका विशेष दृष्टव्य)
2. महाप्रज्ञ जीवन – दर्शन – मुनि धनंजयकुमार

15.10 अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. आचार्य महाप्रज्ञ के जीवन परिचय के साथ उनके साहित्य सर्जन का विस्तार से परिचय दीजिए –
2. महाप्रज्ञ जी द्वारा रचित महाकाव्य 'ऋषभायण' का विस्तृत परिचय दीजिए।
3. 'ऋषभायण' की प्रमुख विशेषताओं को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. 'ऋषभायण' का काव्य सौंदर्य स्पष्ट कीजिए।
5. 'ऋषभायण' के आधार पर ऋषभ की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. महाप्रज्ञजी का संक्षिप्त साहित्यिक परिचय दीजिए।
2. 'ऋषभायण' की कथा का सार लिखिए।
3. 'ऋषभायण' चौथा सर्ग में व्यक्त भाव को अपने शब्दों में लिखिए।
4. 'ऋषभायण' में व्यक्त यौगोलिक युग का परिचय दीजिए।
5. ऋषभ के चरित्र की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

अतिलघूत्तरीय प्रश्न

1. आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा प्रणीत महाकाव्य का नाम लिखिए।
2. 'ऋषभायण' का क्या अर्थ है ?
3. महाप्रज्ञजी का मूलनाम क्या है ?
4. महाप्रज्ञजी ने किसकी प्रेरणा से 'ऋषभायण' की रचना की है ?
5. 'ऋषभायण' में कुल कितने सर्ग हैं ?
6. 'ऋषभायण' के अनुसार ऋषभ कौन है ?
7. ऋषभ राज्य से पूर्व कौन–सा युग था ?
8. ऋषभ राज्य का उदय किससे हुआ ?
9. 'ऋषभायण' की तुलना हिंदी के किस महाकाव्य से की जा सकती है ?
10. 'ऋषभ का आधार बनाकर महाकाव्य की रचना करनेवाले सर्वप्रमुख व्यक्ति का नाम क्या है ?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

संवर्ग–4

इकाई – 16 द्रुतपाठ : कतिपय अन्य प्रमुख आधुनिक कवि

संरचना

16.0 प्रस्तावना

16.1 उद्देश्य

16.2 द्रुतपाठ के प्रमुख कवि

16.3 जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

16.4 हरिवंशराय 'बच्चन'

16.5 शमशेरबहादुर सिंह

16.6 जगदीश गुप्त

16.7 कुंवरनारायण

16.8 नरेश मेहता

16.9 सारांश

16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.11 अभ्यास प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी कविता की विकासयात्रा का आरंभ भारतेंदु युग से होता है। भारतेंदु ने खड़ीबोली हिंदी में काव्यरचना की प्रेरणा देकर हिंदी कविता के लिए बहुत ही असाधारण महत्त्व का कार्य किया। कविता का माध्यम खड़ीबोली हो जाने के उपरांत हिंदी कविता की दिशा पूरी तरह परिवर्तित हो गई। यद्यपि हिंदी काव्य में खड़ीबोली की समुचित प्रतिष्ठा द्विवेदी युग में हुई, तथापि भारतेंदु ने सभी को इस ओर प्रेरित कर खड़ीबोली में काव्य रचना का मार्ग प्रशस्त किया। उनकी प्रेरणा से उनके अनेक समकालीन मित्र इस ओर प्रवृत्त हुए। द्विवेदी युग तक आते–आते खड़ीबोली में काव्य रचना का समुचित वातावरण बन चुका था। आचार्य द्विवेदी के नेतृत्व एवं उनकी महान् साहित्यिक प्रेरणा से उस काल के अनेक प्रमुख कवियों ने खड़ीबोली में श्रेष्ठ काव्यसर्जन किया, जिससे उस काल में खड़ीबोली काव्य का समुन्नत परिवेश निर्मित हुआ। द्विवेदी युग के कतिपय विशिष्ट कवियों, जिनमें श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' तथा मैथिलीशरणगुप्त के नाम प्रमुखता से लिए जा सकते हैं, ने खड़ीबोली में व्यापक और स्फीत काव्य रचना के माध्यम से जन आकांक्षाओं के अनुरूप स्वाभाविक एवं सफल अभिव्यक्ति दी।

द्विवेदी युग के बाद खड़ीबोली हिंदी कविता का स्वरूप कथ्य–शिल्प दोनों स्तरों पर प्रौढ़ से प्रौढ़तर या श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर होता गया। परिणामस्वरूप छायावादी दौर में खड़ीबोली कविता का समुन्नत–प्रांजल स्वरूप दृष्टिगत हुआ और आंतरिक भावनाओं की गहन एवं सूक्ष्म अभिव्यक्ति होने लगी। छायावाद के बाद विभिन्न काव्यांदोलनों एवं प्रवृत्तियों के माध्यम से खड़ीबोली हिंदी कविता का स्वरूप निरन्तर विकसित होता हुआ निखरता गया। आज खड़ीबोली गद्य या पद्य दोनों स्तरों पर गूढ़ से गूढ़तम, गहन से गहनतम भावों को सहज–सरल रूप में अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

भारतेंदु से लेकर वर्तमान समय तक आधुनिक हिंदी काव्य के विभिन युगों, कालखण्डों एवं आंदोलनों के माध्यम से हिंदी कविता का जो स्वरूप विकसित हुआ उसमें अनगिनत महत्त्वपूर्ण कवियों का अविस्मरणीय योगदान है। आधुनिक हिंदी कविता की विकास यात्रा के विभिन्न पड़ावों पर कुछ ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी काव्य प्रतिभा एवं सर्जनात्मकता से न केवल अपनी विशिष्ट छाप छोड़ी वरन् अपनी अलग पहचान भी स्थापित की। ऐसे ख्यातनाम कवियों में से यहां कतिपय चुनिंदा कवियों का सामान्य परिचय देना अपेक्षित है। द्रुतपाठ के अंतर्गत ऐसे कवियों में जगन्नाथदास 'रत्नाकर' हरिवंशराय 'बच्चन', शमशेरबहादुर सिंह, जगदीश गुप्त, कुँवरनारायण और नरेश मेहता के नाम सम्मिलित हैं।

16.1 उद्देश्य

यह इकाई 'द्रुतपाठ' के रूप में आधुनिक हिंदी साहित्य के कतिपय प्रमुख अतिमहत्त्वपूर्ण कवियों का सामान्य परिचय करवाने की गरज से प्रस्तुत की गई है। इन कवियों ने अपने–अपने समय में अपनी सर्जनात्मकता से आधुनिक हिंदी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

काव्य के संबंधित कालखण्ड को विशिष्ट पहचान दी है। आधुनिक हिंदी काव्य का अध्ययन करनेवाले एम.ए. स्तरीय विद्यार्थी से ऐसे विशिष्ट कवियों के विषय में सामान्य जानकारी रखने की अपेक्षा की जाती है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

- प्रस्तुत पुस्तक की विभिन्न इकाइयों में सम्मिलित आधुनिक काल के प्रमुख कवियों के अतिरिक्त कतिपय अन्य प्रमुख कवियों से संबंधित सामान्य जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आधुनिक हिंदी कविता के विकास में इन महत्त्वपूर्ण कवियों के विशिष्ट योगदान से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक हिंदी कविता में भारतेंदु के प्रभाव से खड़ीबोली की बयार के बावजूद, खड़ीबोली कविता से अनाकृष्ट, ब्रजभाषा की 'क्लासिक परंपरा' का सफल निर्वाह करनेवाले ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ आधुनिक कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के व्यक्तित्व एवं काव्यप्रतिभा से परिचित हो सकेंगे।
- छायावाद और प्रगतिवाद को जोड़नेवाली मजबूत कड़ी छायावादी अतिकल्पनायुक्त रूमानियत को यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित करनेवाले हालावाद के प्रवर्तक गीतकार हरविंशराय बच्चन के कवि जीवन के विविध पक्षों से पूर्णतया अभिज्ञ हो सकेंगे।
- 'दूसरा सप्तक' के प्रमुख कवि, प्रसिद्ध प्रयोगवादी कवि शमशेरबहादुर सिंह के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- 'नई कविता' नामक पत्रिका के संपादक तथा नई कविता के एक महत्त्वपूर्ण कवि जगदीश गुप्त के व्यक्तित्व एवं सर्जन से परिचित हो सकेंगे।
- नई कविता के एक अन्य महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर कुंवरनारायण से परिचित हो सकेंगे।
- 'दूसरा सप्तक' के एक अन्य प्रमुख हस्ताक्षर, ख्यातिलब्ध प्रयोगवादी कवि नरेश मेहता के संबंध में जान सकेंगे।

16.2 द्रुतपाठ के प्रमुख कवि

द्रुतपाठ के अंतर्गत आधुनिक हिंदी काव्य के ऐसे कुछ चुनिंदा प्रमुख कवियों को रखा गया है, जिनके सामान्य परिचय से विद्यार्थियों को आधुनिक हिंदी कविता के विस्तार के साथ–साथ विविध दिशाओं में उसकी गतिशीलता का सहज बोध हो सके। द्विवेदी युग से लेकर नई कविता के दौर तक कतिपय महत्त्वपूर्ण कवियों के चयन का आधार विषय वैविध्य एवं नूतन मौलिक उद्‌भावनाओं का सम्यक सत्कार है। इस दृष्टि से द्विवेदी युग के प्रमुख कवि, आधुनिक ब्रजभाषा के सर्वोत्तम कलाकार जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के साथ, स्वच्छंदतावाद की आत्मपरक अभिव्यक्ति करने वाले हालावाद के प्रवर्तक हरिवंशराय 'बच्चन' को सम्मिलित किया गया है, 'दूसरा सप्तक' के प्रमुख कवि शमशेरबहादुर सिंह अपनी सर्वाधिक प्रयोगशीलता के कारण विशिष्ट पहचान रखने वाले कवि है। उनके साथ प्रयोगवाद के विस्तार 'नई कविता' के प्रमुख हस्ताक्षर जगदीश गुप्त, कुँवरनारायण और नरेश मेहता को इस इकाई में सम्मिलित किया गया है। इन कवियों के विवेचन से विद्यार्थी कदाचित आधुनिक हिन्दी कविता के विभिन्न महत्त्वपूर्ण पक्षों से अभिज्ञ हो सकेंगे।

16.3 जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

कुशल भावसंप्रेषण और अद्‌भुत शब्दसंयोजन के निष्णात आचार्य कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' आधुनिक काल में ब्रजभाषा की काव्यपरंपरा के अंतिम श्रेष्ठ कवि कहे जा सकते हैं। आधुनिक हिन्दी काव्य रचना में खड़ीबोली के बहुतायत प्रयोग एवं वर्चस्व के बावजूद, उसकी श्रेष्ठता एवं लोकप्रियता से अनाकृष्ट 'रत्नाकर' ने ब्रजभाषा को वरीयता दी। उन्होंने अपनी काव्यप्रतिभा की अभिव्यक्ति के लिए उस भाषा को माध्यम बनाया जो पिछले लगभग चार सौ वर्षों से काव्याभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रही। भारतेंदु हरिश्चन्द्र की महान् प्रेरणा तथा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के व्यापक प्रभाव से काव्य में खड़ीबोली की व्यापक स्वीकृति के बावजूद 'रत्नाकर जी' उस प्रवाह में नहीं बहें। उस समय जब ब्रजभाषा को बदलते आधुनिक परिवेश में समसामयिक अभिव्यक्ति के अनुकूल नहीं माना जा रहा था, ऐसे में जगन्नाथ 'रत्नाकर' ने उस क्षीण होती काव्यभाषा को परंपरा को पुनरुज्जीवित कर उसे उन्नत शीर्ष स्थान पर स्थापित कर दिया। 'उद्धवशतक' के रूप में उन्होंने आधुनिक काल को ब्रजभाषा की सर्वोत्तम कृति दी है, जो सूरदास की भ्रमरगीत – परंपरा में भी उच्च स्थान रखती है।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म काशी के शिवाला मुहल्ले में सन् 1866 में हुआ था। उनके पिता का नाम पुरषोत्तमदास था, जो काव्यप्रेमी होने के साथ–साथ भारतेंदु हरिश्चन्द्र के अंतरंग मित्रों में थे। इस कारण से 'रत्नाकर' के घर अनेक कवियों, शायरों एवं काव्यप्रेमियों का आना–जाना लगा रहता था। उस साहित्यिक परिवेश का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्वाभाविक प्रभाव 'रत्नाकर जी' पर पड़ा। परिवार में साहित्यिक परिवेश एवं अध्ययन की ओर रुझान के कारण उन्होंने बी.ए. तक पढ़ाई की। वे फारसी में एम.ए. भी करना चाहते थे, पर किन्हीं कारणों से यह संभव न हो सका। कुछ समय तक 'अवागढ़' रियासत में कोषाधिकारी की नौकरी करने के उपरांत वे काफी समय तक अयोध्या की महारानी के निजी सचिव के रूप में काम करते रहे।

रत्नाकर जी को अपने घर में जो काव्यमय वातावरण मिला उससे वे काव्यसर्जन की ओर उन्मुख हुए होंगे। उन्होंने ब्रजभाषा को ही अपनी काव्याभिव्यक्ति के लिए माध्यम चुना। उस समय भारतेंदु जी आधुनिकता का जो उद्घोष कर रहे थे, उसका स्वर 'रत्नाकर' ने न सुना हो, ऐसा कैसे हो सकता है, पर उन्होने ब्रजभाषा का दामन पकड़कर जो काव्य – सर्जन किया, उससे खड़ीबोली मे काव्य रचना करनेवाले खड़ीबोली के प्रबल समर्थक भी चमत्कृत और आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहे।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी 'रत्नाकर' की रुचि साहित्य के साथ–साथ संस्कृत, धर्म, दर्शन और ज्योतिष में भी थी। काव्य–रचना तो वे करते ही थे, साहित्यालोचना एवं संपादन में भी उनकी विशेष रुचि थी। सन् 1897 में जब 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ हुआ, उसी समय पत्रिका के पहले अंक में ही उनका एक आलोचनात्मक लेख 'समालोचनादर्श' नाम से प्रकाशित हुआ, जो सैद्धांतिक समालोचना के क्षेत्र में प्रथम महत्त्वपूर्ण लेख माना जाता है। यद्यपि यह लेख पोप के 'एसेज ऑन क्रिटीसिज्म' का अनुवाद है, तथापि आधुनिक हिंदी आलोचना में इस लेख का महत्त्व प्रस्थान बिन्दु की तरह है।

सन् 1900 में जब 'सरस्वती' जैसी कालजयी प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ, तब आधुनिक हिंदी साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। हालांकि 'सरस्वती' के संपादक – रूप में श्यामसुन्दरदास का नाम ही आता हैं, तथापि प्रकाशन के पहले वर्ष, अर्थात सन् 1900 में संपादन का दायित्व एक संपादक मंडल के ऊपर था, जिसमें पांच सदस्य (श्यामसुन्दरदास, राधाकृष्णदास, कार्तिकप्रसाद खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी, जगन्नाथदास 'रत्नाकर') थे। कहना न होगा कि 'रत्नाकर जी' उस मंडल के एक सम्मानित सदस्य थे।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने मौलिक तथा संपादित अनेक ग्रंथों की रचना की है, तथापि उनकी प्रतिभा और प्रसिद्धि का आधार 'उद्धव शतक' तथा 'गंगावतरण' जैसी कृतियां हैं। उनमें भी 'उद्धव शतक' 'रत्नाकर' की काव्यप्रतिभा का प्रतीक ग्रंथ है, जिसके कारण वे हिन्दी जगत में सदैव आदर के साथ स्मरण किए जाएंगे। बिहारी 'रत्नाकर' उनके द्वारा की गई 'बिहारी सतसई' की विद्वत्तापूर्ण टीका है, जो इस दृष्टि से अपनी तरह की इकलौती पुस्तक है।

'उद्धव शतक' 'रत्नाकर' की काव्यप्रतिभा का ऐसा प्रस्फुटन है, जिसकी समता आधुनिक हिंदी कविता के इतिहास में कोई कृति नहीं कर सकती। 'उद्धव शतक' में कथा तो सूरदास के 'भ्रमर गीत' से ही उठाई गई है, पर 'रत्नाकर' ने अपने वर्णन–कौशल से चमत्कारिक काव्य प्रस्तुत किया है। ब्रजभाषा में काव्य रचना की पारंपरिक समृद्ध परंपरा को 'रत्नाकर' ने अपनी काव्य कुशलता से शीर्ष पर प्रतिस्थापित किया है।

आधुनिक ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने 'उद्धव शतक' की रचना कर न केवल ब्रजभाषा काव्य की रचना की क्षीण होती परंपरा को पुनर्जीवित तथा पुनर्स्थापित किया, अपितु भ्रमरगीत परंपरा में भी एक मजबूत कड़ी के रूप में उसका स्थान सुनिश्चित किया है। वस्तुतः, भ्रमरगीत की लंबी सुदृढ़ परंपरा में 'उद्धव शतक' का महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय स्थान है। अनुपम काव्य प्रतिभा तथा विलक्षण कवित्व शक्ति से उद्भुत 'उद्धव शतक' में गोपियों के अकाट्य तर्क और उनके मार्मिक उदगार अतुलनीय एवं विलक्षण हैं। प्रेमपूर्ण भावुकता एवं नारी की समर्पण भावना की सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति के कारण 'उद्धव शतक' 'भ्रमरगीत परंपरा' में सूरदास की रचना भ्रमरगीत के पश्चात अपना बहुत ऊंचा स्थान रखता है।

'रत्नाकर', आचार्य द्विवेदी के समकालीन रचनाकार है। जहां आचार्य द्विवेदी खड़ीबोली में काव्य रचना पर जोर दे रहे थे और जिनकी प्रेरणा से खड़ीबोली में व्यापक सर्जन हो रहा था, वहीं 'रत्नाकार' खड़ीबोली काव्य रचना से अनाकृष्ट ब्रजभाषा में ही अपना कलात्मक जौहर प्रदर्शित कर रहे थे। 'उद्धव शतक' में अनेक मौलिक उद्भावनाओं के साथ उन्होंने श्रृंगार के साथ–साथ भक्ति प्रेम और करुणा का जो संचार किया है, उसके कारण 'उद्धव शतक' काव्य जगत में आकर्षण का केन्द्र बन गया। निःसंदेह यह रचना मध्यकालीन ब्रजभाषा की श्रेष्ठ क्लासिक काव्य परंपरा का आधुनिककालीन भव्य स्मारक है।

'रत्नाकर' के 'उद्धव शतक' में गोपिकाएं कृष्ण का साक्षात्कार इतनी गहराई के साथ कर चुकी हैं, कि उन्हें साकार कृष्ण की गहनतम अनुभूति प्राप्त है। वह अनुभूति साक्षात् इतनी प्रत्यक्ष है कि उसके लिए उन्हें किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं – 'प्रत्यक्षं किं प्रमाणम् ' । उन्होंने तो साक्षात् कृष्ण को न केवल देखा है, वरन् उनके साथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विविध क्रीडाओं का अनिर्वचनीय आनंद प्राप्त किया है। ऐसे में उद्धव द्वारा निराकार ब्रह्म का प्रतिपादन करनेवाले सभी तर्क सारहीन और निरर्थक हैं। निराकार ब्रह्म की उपासना करके वे अपना अस्तित्व समाप्त नहीं कर सकतीं। उनका तर्क है कि ब्रह्म महासागर के समान है और वे उस ब्रह्मरूपी महासागर में स्वयं के बूंद रूपी व्यक्तित्व को विलीन नहीं कर सकतीं। वे कभी नहीं चाहती हैं कि ब्रह्म – सागर में उनका बूंद – अस्तित्व मिलकर समाप्त हो जाए। गोपियाँ कहती हैं कि बूंद सागर से मिले या न मिले उससे सागर के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता, पर बूंद तो सागर से मिलकर अपना अस्तित्व ही मिटा लेती है । कृष्ण के प्रति अटूट श्रद्धा, उत्कट प्रेम, मार्मिक विरह और प्रेम में प्रवाहित निरंतर अश्रु के कारण गोपियों को अपना जीवन बहुत प्रिय और नितांत आवश्यक लगता है। वे किसी कीमत पर अपने उस प्रिय अस्तित्व को मिटा नहीं सकतीं। तभी तो वे उद्धव से कहती हैं –

''कान्ह – दूत कैंधों ब्रह्म–दूत हौ पधारे आप,
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजवारी की।
कहैं रतनाकर पै प्रीति–रीति जानत ना,
जानत अनीति आनि नीति लै अनारी की।
मान्यौ हम कान्ह ब्रह्म एक ही कह्यो जो तुम
तौ हू हमें भावति न भावना अन्यारी की।
जैहैं बनि – बिगरि न बारिधिता बारिधि की
बूंदता बिलैहैं बूंद बिबस विचारी की।''

भक्ति के लिए आवश्यक है कि द्वैतभाव बना रहे। अद्वैत की अवस्था में उपास्य एवं उपासक जब एक ही हो जाएंगे, तब उपासना कैसे और किसकी संभव है। यहीं कारण है कि अद्वैतवाद में अटूट आस्था और श्रद्धा रखनेवाले भक्त महानुभाव भी भक्ति के क्रम में द्वैतवाद की व्यावहारिक महत्ता को अस्वीकार नहीं कर सकते। गोपियां भी कृष्णभक्ति के क्रम में इसी द्वैतभाव को बनाया रखना आवश्यक समझती हैं।

'उद्धव शतक' में रत्नाकर' ने उद्धव–गोपी संवाद के माध्यम से निराकार ब्रह्म पर साकार ब्रह्म को वरीयता देकर जो उद्‌भावना की है, वह बहुत सहज, तार्किक और मार्मिक है। इस उपक्रम में गोपियों के तर्क एवं उनकी जिज्ञासा विलक्षण है। साकार ईश्वर कृष्ण की लीलाओं का आख्यान करती हुई गोपियां निराकार ब्रह्म का उपहास कर अपना अकाट्य तर्क प्रस्तुत करती हैं –

''कर बिनु कैसैं गाय दुहि हैं हमारी वह
पद–बिनु कैसे नाचि थिरकि रिझाइहैं।
कहें रत्नाकर बदन – बिनु कैसे चाखे
माखन बजाइ बेनु गोधन गवाइहैं।
देखि सुनि कैसे दृग स्रवनि बिनाहीं हाय
भोरे ब्रजवासिन की विपत्ति बराइहैं।
रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
उधौ – कहौ कौन धौं हमारै काम आइहै।

गोपियाँ कृष्ण से अपार प्रेम करती हैं। प्रेम स्वयं में एक बहुत बड़ी उपलब्धि हैं वे इस बात को भलीभाँति समझती हैं कि प्रेम कोई व्यापार नहीं, जिसमें मोलभाव किया जाए और उतना ही प्रेम लिया या दिया जाए जितना कि मूल्य चुकाना हो। प्रेम तो बस प्रेम होता है, जिसका लक्ष्य सिर्फ प्रेम ही होता है। प्रेम में मिलन जितना सुखदाई होता है, विरह में वह और भी गाढ़ा एवं पुष्ट होता है। प्रेम किसी तर्क से प्रभावित नहीं हो सकता। तर्क के प्रहार उसे और अधिक गहरा तथा शक्तिशाली बना देते हैं। 'उद्धव शतक' की गोपियाँ इस तथ्य को भलीभांति समझती हैं। वे उद्धव से अपने मन – मुकुर पर बैन–पाहन नहीं चलाने का इसलिए नहीं आग्रह करती हैं कि उन्हें आघात का डर है, बल्कि वे ऐसा नहीं करने का आग्रह इसलिए करती हैं कि जब उनके मन–मुकुर पर एक कृष्ण का प्रतिबिंब उन्हें इस दारुण दशा में पहुंचा चुका है, तो मन – मुकुर के अनेक टुकड़े अनेक कृष्ण का प्रतिबिंब बना देने के उपरांत उनकी क्या स्थिति बना देंगे। ऐसा स्वाभाविक चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है –

''आए हौ सिखावन जोग मथुरा तें तो पै,
उधो, ये वियोग के बचन बतराओ ना।
कहैं, रत्नाकर दयाकर दरस दीन्हों,
दुख दरिबे को तो पै अधिक बढ़ाओ ना।
टूक–टूक ह्वैहैं मन – मुकुर हमारौ हाय,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चूंकिहू कठोर बैन – पाहन, चलाओ ना,
एक मनमोहन तो बसिकै उजार्‌यो मोहिं,
हिय में अनेक मनमोहन बसोऔ न।''

वस्तुतः, आधुनिक हिन्दी काव्य जगत में 'उद्धव शतक' जैसी कालजयी रचना के माध्यम से जगन्नाथदास 'रत्नाकर' काव्य – गगन के जाज्वल्यमान नक्षत्र की तरह प्रतिभाषित हो रहे हैं। इस कारण से आधुनिक हिन्दी काव्य में उनका स्थायी एवं अक्षुण्ण महत्त्व है।

16.4 हरिवंशराय 'बच्चन'

छायावाद के परवर्ती कवियों में हरिवंशराय बच्चन सर्वाधिक मान्य एवं चर्चित कवि कहे जा सकते हैं। उन्होंने छायावादी काव्य की निराशामूलक भावना को यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त किया है। बच्चन के जीवन – संघर्ष और जीवन – अनुभूत उनके काव्य – सर्जन की आधारशिला का निर्माण करते हैं। उनके उद्‌गार जितने वैयक्तिक हैं, उतने ही सामाजिक भी, क्योंकि जीवन – संघर्ष से संपृक्त गहन अनुभूतिजन्य भावनाएँ अभिव्यक्त होकर तदनुरूप सभी की भावनायें बन जाने का सामार्थ्य रखती हैं। व्यष्टि से समष्टि की ओर गतिशील होती हुई वैयक्तिक अनुभूतियाँ सामाजिकता का आधार प्राप्त कर लेती है। बच्चन ने खड़ीबोली काव्य भाषा को छायावादी कवियों की अपेक्षा अधिक विशद एवं स्वाभाविक रूप प्रदान किया है। वे छायावाद और प्रगतिवाद को जोड़नेवाली मजबूत कड़ी हैं। इसीलिये डॉ. नगेन्द्र ने बच्चन की मधुमय कविता को ''छायावाद की अनुजा और प्रगतिवाद की अग्रजा'' कहा है।

बच्चन की अर्धमौलिक कृति ''मधुशाला'' से श्रेष्ठतम काव्यकृति ''निशानिमंत्रण'', ''आकुलअंतर'', ''व्याकुलविश्व'', ''एंकातसंगीत'', ''दो चट्टानें'' तक प्रसरित उनके व्यक्तित्व के निर्माण में उनके जीवन संघर्ष का ही योगदान है। उनका यही जीवन – संघर्ष एवं जीवन – अनुभव उनकी अंतर्दृष्टि एवं उनके जीवन – दर्शन के निर्माण में भी सहायक है। ''मधुशाला'' तरुण बच्चन का गान है। प्रौढ़ बच्चन का गान ''निशानिमंत्रण'', ''आकुलअंतर'', ''व्याकुलविश्व'', ''एकांत संगीत'' में प्राप्त होता है। उनकी आरंभिक कृतियों से श्रेष्ठतम सर्जन तक में निश्चित एवं कठिन रचना प्रक्रिया से गुजरते हुए हमें एक सुविचारित चिन्तन दृष्टिसम्पन्न सचेत कवि का आभास मिलता है। बच्चन के काव्य में उनके व्यक्तित्व का समावेश होने के बावजूद वह छायावादी कवियों के वैयक्तिक उद्‌गार से पर्याप्त भिन्न है। जहां छायावादी कवि अपनी भावनाओं को सूक्ष्म और दार्शनिक स्वरुप देता हुआ दिखाई देता है, वहीं बच्चन अपनी वैयक्तिक भावनाओं को बहुत सहज रूप से पारदर्शिता के साथ अभिव्यक्ति किया है। यही वह काव्यदृष्टि है, जो बच्चन को छायावादी कवियों से भिन्न धरातल पर प्रतिष्ठित करती है।

हरिवंशराय 'बच्चन' का जन्म प्रयाग के एक मोहल्ले में एक कायस्थ परिवार में हुआ। जीवन के आरम्भिक दिनों में बच्चन जी को बहुत संघर्ष करना पड़ा। आर्थिक विपन्नता, प्रथम पत्नी का वियोग आदि सब कुछ उन्हें सहना पड़ा। सन् 1942 ई. में दूसरे विवाह के साथ इनका भाग्योदय हुआ और प्रयाग विश्वविद्यालय के अँगरेजी विभाग में नियुक्त हुए। बाद में उन्होंने देश– विदेश की यात्रा की और राज्यसभा के सदस्य मनोनीत किए गए।

काव्य के क्षेत्र में 'मधुशाला' के प्रकाशन के बाद उन्हें ख्याति मिली। उस समय कवि सम्मेलनों की धूम थी और उनमें बच्चन की धूम थी। कोई भी बड़ा सम्मेलन बच्चन और उनकी मधुशाला के अभाव में अधूरा था। अपने मौलिक और अनूदित रचनाओं के माध्यम से बच्चन ने खड़ीबोली हिन्दी को बड़ी समृद्धि प्रदान की है।

कविवर 'बच्चन' ने युवकोचित अनुभूतियों को जो कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है उसने एक विशेष प्रकार के पाठकों का निर्माण किया ही, साथ – ही – साथ उसने आधुनिक 'नव्य स्वच्छन्दतावाद की गीतिधारा' को भी सर्वाधिक प्रभावित किया है। प्रेम की जिस मस्ती का शंखनाद 'बच्चन' जी ने किया और सौन्दर्य की जो आकर्षक मधुमय धारा उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से बहाई, उसमें युवक कवि एवं सहृदय जिन्दादिल पाठक डूब गये। स्वच्छन्दतावाद के नाम पर परम्पराओं के प्रति जो जेहाद हिन्दी कविताओं में बोला गया 'बच्चन' का स्वर उसमें सबसे ऊंचा रहा।

फारसी के प्रसिद्ध हालावादी कवि उमर खैयाम की रुबाइयों की ओर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए आकर्षणों के कारण हिन्दी कविता में भी एक नये जीवन का अंकुर फूटा । देश की परिस्थितियां भी कुछ ऐसी रहीं कि इस मस्तीवाद को प्रसार पाने की अनुकूल भूमि भी प्राप्त हो गई। हालावादी कवियों में 'बच्चन' अत्यधिक लोकप्रिय रहे। उन्होंने उमर खैयाम की कविता का रूपान्तर किया, उसकी समता पर मधुशाला, मधुबाला, और मधुकलश आदि संग्रहों में संगृहीत कविताओं की सफल रचनाएँ की। इसके अतिरिक्त 'बच्चन' के अन्य संग्रहों में प्राप्त कविताओं का आधार नारी आकर्षण है, जिसमें वायवीय उड़ान की अपेक्षा मांसलता अधिक है और उससे वासना की तीव्र गंध आती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

'बच्चन' ने अपनी आत्मकथा में बहुत बेबाकी से स्वीकार किया है कि वे किसी गूढ़ दर्शन मतवाद के समर्थक नहीं हैं। रूढ़ अर्थों में वे ईश्वर को भी स्वीकार नहीं करते। जातिपात, ऊँच – नीच, छुआ–छूत, धर्म पाखंड के विरोधी बच्चन की दृष्टि में मानवता ही सबसे बड़ा धर्म है, वही सबसे बड़ी पूजा है। उनका यही मानवतावादी स्वर उनके काव्य में निश्छल और अंकुठ भाव से मुखरित हुआ है। जीवन और जगत को अपने नजरिये से देखने का 'बच्चन' का अपना तरीका है।

वे सिर्फ मानवता की बात करते हैं, जहां हर कोई मनुष्य हो, बस मनुष्य और कुछ नहीं – "बेकार है तुम्हारा हिन्दू होना / बेकार है तुम्हारा मुसलमान / अगर न रह सके तुम इन्सान / अगर न रख सके तुम इन्सान का स्वाभिमान / ......

बच्चन के कव्य में उनके जीवन के गहरे संस्कार परिलक्षित होते हैं। उनके काव्य को समझना उनके जीवन – दर्शन एवं उनकी अन्तर्दृष्टि को समझना है। बच्चन का जीवन दर्शन, विशद मानवतावाद एवं उनकी अन्तर्दृष्टि मानवीय रिश्तों की समझ और पहचान उनके काव्य का विस्तीर्ण फलक तैयार करते हैं।

बच्चन के जीवन की विषम परिस्थितियाँ उनका सतत् संघर्ष, उनके वैयक्तिक दुःख एवं यत्किंचित क्षणिक सुख उनके काव्यसर्जन के प्रेरणास्रोत रहे हैं। उनके काव्य को उनके व्यक्तित्व से अलग करके उसका मूल्यांकन कदाचित संभव नहीं । बच्चन ने स्वयं स्वीकार किया है – "जीवन – अनुभव – स्वाद न कटु मेरी जिह्वा पर आता / कौन मधुर मादकता मेरे गीतों के अन्दर पाता ।"

बच्चन वैयक्तिक अनुभूतियों को काव्य में अभिव्यक्त करने में सिद्धहस्त हैं। वे वैयक्तिक भाव – चित्रण के कुशल शिल्पी कहे जा सकते हैं। उनका सम्पूर्ण सर्जन उनके जीवन की अनेकानेक निजी घटनाओं से अनुप्राणित है। उनके निजी जीवन की वैयक्तिक अनुभूतियां काव्य को संस्फुरित करने में विशेष सहायक रही हैं।

वस्तुतः , बच्चन की कविता उनके जीवन से पूरी तरह जुड़ी हुई कविता है। उनके कार्यों को उनके जीवन से असंपृक्त कर, न तो बच्चन को समझा जा सकता है, न बच्चन की कविता को। उनका काव्य उनके जीवन का अभिन्न हिस्सा है – "मेरी कविता मेरे जीवन से उसी प्रकार जुड़ी है, जिस प्रकार नस–नाड़ियों से बहता रक्त।"

बच्चन का आरंभिक जीवन बहुत सामान्य पारिवारिक परिवेश में व्यतीत हुआ। साधारण रहन–सहन के साथ उनकी आरंभिक शिक्षा भी सामान्य ढंग से हुई। प्रायः खेलों से दूर ही रहनेवाले बच्चन की स्वाभाविक रुचि पढ़ने और लिखने में अधिक थी। जीवन का आरंभ गरीबी और अभाव में होने के कारण बच्चन को हर तरह से विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। अभावग्रस्त जीवन के कारण वे अनेक बार उपेक्षा एवं दया के पात्र भी बने। लगातार अनेक वर्षों तक संघर्ष और यातना का दंश झेलते हुए यदि कभी उन्हें कोई उपलब्धि भी मिली, तो उसके कारण वे ईर्ष्या और उपेक्षा के साथ व्यंग्यविद्रूपता के शिकार हुए।

संघर्ष के इस अनवरत् प्रहार ने बच्चन के व्यक्तित्व को बहुत गहराई से प्रभावित किया, जिसके कारण वे अंतर्मुखी भी हो गए। उनकी अनेक आरंभिक कविताओं में उनका अंतर्मुखी व्यक्तित्व अभिव्यक्त हुआ है।

विषम से विषम परिस्थितियों में कभी हार न मानकर (यद्यपि वे अनेक बार घोर निराश और हताश भी हुए पर हारे और टूटे नहीं) कोई न कोई हल ढूंढ लेना बच्चन के व्यक्तित्व की बहुत बड़ी विशेषता कही जा सकती है। निराशा में भी आशा का संचार करनेवाले बच्चन को किंचित पारिवारिक कारणों तथा तत्कालीन सामाजिक – राजनीतिक परिस्थितियों के कारण अध्ययन बीच में ही छोड़ना पड़ा। यहाँ – वहाँ पत्र – पत्रिकाओं में कार्य करते हुए आर्थिक शोषण का शिकार होना, कई नौकरियां बदलना, आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं होने से ट्यूशन करना आदि बच्चन के जीवन की ऐसी स्थितियाँ और घटनाएँ कही जा सकती हैं, जिनसे उनको संघर्ष करने की शक्ति मिलती रही और वे निरंतर अपने व्यक्तित्व को संघर्ष और व्यथा की रगड़ देकर निखारते रहे, चमकाते रहे। आशा–निराशा, सुख–दुख, पीड़ा, व्यथा, वेदना के कई पड़ावों से गुजरता हुआ बच्चन का कविमन निराशा में आशा का मार्ग ढूंढ लेता है और यही है बच्चन की जीवनदृष्टि – "दुख मानव के मन के ऊपर, सब दिन बलवंत नहीं होता / आहें उठतीं, आंसू झरते, सपने पीले पड़ते लेकिन / जीवन में पतझड़ आने से जीवन का अंत नहीं होता।"

बच्चन की आरंभिक कविताओं में निराशा और दुख का सहज संस्फुरण दिखाई देता है। वे सुख के बदले दुःख की कामना करते हुए कहते हैं – 'हमारा यह जर्जर संसार / ढूँढ़ता चिकनी–चुपड़ी राह / मुझे तीखे कांटों की चाह / अड़चन–उलझन–बाधा–संकट की मुझको दरकार / वेदने, बढ़ा–बढ़ा कर हाथ मुझे दे दुःखों का उपहार।

मस्ती और उल्लास भरी भावनाओं की अभिव्यक्ति करनेवाली रचना 'मधुशाला' में भी दुःख, निराशा,संसार की क्षणभंगुरता, मृत्युभय, मानव की परवशता, नियति एवं विडबंना आदि की दयनीय अवस्था का वर्णन दृगत होता है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

'क्षीण–क्षुद्र क्षणभंगुर, जर्जर मानव मिट्टी का प्याला / भरी हुई है जिसके अंदर कटू मधुजीवन की हाला / मृत्यु बनी है निर्दय साकी, अपने शतशत कर फैला / काल प्रबल है पीनेवाला, संसृति है यह मधुशाला।

दुख, निराशा और अवसाद की चरम परिणति बच्चन के जीवन में उस समय दिखाई देती है, जब उनकी पत्नी श्यामा का असमय दुःखद अवसान हो जाता है । अपने प्रिय पात्र जीवन संगिनी के बिछुड़ने की असह्य वेदना ने बच्चन को घोर अवसाद के अंधकार में डुबो दिया। खिन्न हृदय की विकल वेदना जब फूट पड़ी तब उत्कट भावनाओं का सहज उद्रेक 'निशानिमंत्रण' , 'आकुलअन्तर', 'एकांत संगीत' में प्रकट हुआ। इन रचनाओं में वेदना, निराशा, दुख, पीड़ा की जितनी भी मनःस्थितियां हो सकती हैं, सब एक साथ व्यक्त हुई हैं। कवि के अनुसार 'ये तीनों रचनाएँ जीवन के गहन अंधकार में पैठने, उससे संघर्ष करने और उससे बाहर निकलने की भाव – यात्रा हैं। निशानिमंत्रण में बच्चन के जीवन का सम्पूर्ण शोक अनायाश ही व्यक्त हो गया है, जहाँ पीड़ाओं का साम्राज्य नभ–सा विस्तृत हो गया है। कवि का मर्माहत मन गहन व्यथा के शोक– सिंधु में डूब गया है। उसकी निराशा और दीनता अवसाद के अंधकार में घिर कर मर्माहत वेदना के साथ अभिव्यक्ति हुई है– ''तम ने जीवन तरुण के घेरे / टूट गयी इच्छा की कलियाँ / अभिलाषा की कच्ची कलियाँ।''

कल्पनाओं की दुनिया मिट जाए, सपनों का संसार बिखर जाए, सब कुछ समाप्त हो जाए, तब आखिर क्या बचता है? सब मिट गया, सपने टूट गये, अपने बिछुड़ गए, तब वेदना के गहनतम तल पर जीवन में दुखी रहने की स्वीकारोक्ति संभव है – ''उठो मिटा दो आशाओं को, दबी–छिपी अभिलाषाओं को/ आओ सदा दुःखी रहने का जीवन में आदर्श बना लें।''

घोर सन्नाटा, उदासी के पलों में जब जिंदगी वेदनामय हास होती है, तब समय बीतने के साथ–साथ निराशा के गर्त से धीरे–धीरे बाहर निकलने का मार्ग मिलने लगता है। समय बड़े से बड़े दुःख पर मरहम लगाकर जीने का एक नया मार्ग सुझा देता है। बच्चन धीरे–धीरे अवसाद से उबरने लगते हैं। दुःख से बाहर निकलते हुए वे स्वयं को समझाते हैं कि जीवन में कठोर से कठोर सत्य से गुजरना पड़ता है। दारुण से दारुण कष्टों को सहने के उपरांत भी जीना पड़ता है। बड़े से बड़े दुःखों के बीच रहते हुए जीना पड़ता है। बच्चन के काव्यजीवन का यह बहुत बड़ा सत्य और दर्शन है। इसीलिए तो वे कहते हैं – 'साथी सब कुछ सहना होगा / जैसे जग रहता आया है / उसी तरह से रहना होगा।''

वस्तुतः बच्चन के व्यक्तित्व से संवलित एवं संपृक्त उनकी अपनी दृष्टि है, उनका अपना जीवन दर्शन है तथा जीवन और जगत को समझने का उनका अपना नजरिया है। निराशा से आशा, दुःख से सुख, पलायन से स्वीकरण, अनास्था से आस्था और अंधकार से उजाले की ओर बढ़ते रहने का जीवन – दर्शन बच्चन–काव्य में स्थल–स्थल पर विवृत हुआ है। कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी कवियों में बच्चन का अपना एक सुनिश्चत और महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपनी कविताओं तथा चारखंडों में अपनी आत्मकथा के कारण आधुनिक हिन्दी कविता में बच्चन का स्थान बहुत ऊंचा है। हालावाद के प्रवर्तक के रूप में बच्चन का महत्त्व अक्षुण्ण है। आत्मपरक – वैयक्तिक अनुभूतियों के मार्मिक विरही कवि के रूप में बच्चन हिंदी जगत में सदैव स्मृत रहेंगे।

16.5 शमशेरबहादुर सिंह

'दूसरा सप्तक' के प्रमुख कवि के रूप में ख्यात शमशेरबहादुर सिंह आधुनिक हिन्दी कविता के ऐसे सशक्त हस्ताक्षर कहे जा सकते हैं, जिनकी कविताओं की रेंज बहुत बड़ी है। इसीलिए नई कविता के कवियों में उनकी अलग पहचान है, अलग प्रतिष्ठा है। 'दूसरा सप्तक' में सम्मिलित कवि के रूप में शमशेर जी प्रयोगवादी कवि हैं, जहां उनकी परंपरा 'अज्ञेय' से संबद्ध है। उनकी काव्ययात्रा छायावादी काव्य आंदोलन के कमोबेश अंतिम वर्षों से आरंभ होकर प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद की परिधि का स्पर्श करती हुई, नई कविता के पड़ाव पर अपना आश्रय तलाश करती है। वैयक्तिक अनुभूतियों से संपृक्त रूमानियत से संवलित प्रेम कविताओं से आरंभ करनेवाले कवि शमशेर निराला और पंत से बेतरह प्रभावित हैं, ऐसा वे स्वयं स्वीकार करते हैं। बावजूद इसके वे छायावादी नहीं हैं। शिवदानसिंह चौहान के संपर्क में आने के बाद वे मार्क्सवादी सिद्धांतों से प्रभावित होकर, प्रगतिवादी विचारधारा की ओर मुड़ते हैं। यद्यपि उन्होंने अनेक प्रगतिवादी कविताओं की रचना की है, तथापि वे मूलतः प्रयोगशील कवि के रूप में प्रयोगवादी कवि कहे जा सकते हैं। एक ऐसा प्रयोगशील कवि जो अपनी रचनाओं में मानवीय सरोकारों से अनजान और विमुख नहीं है। वैविध्यपूर्ण रचनाशीलता के कारण शमशेर की कविताओं की भावभूमि बहुत विस्तृत है, जहां उन्हें किसी वाद की सीमा में कठोरता से बांधा नहीं जा सकता। वे एक ऐसे कवि हैं, जिन पर राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर के अनेक कवियों, दार्शनिकों, चित्रकारों, संगीतकारों, आदि का प्रभाव है, जिसके कारण उनके अनुभव का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसी प्रभाव और अनुभव के आधार पर शमशेर ने अपनी कविता की भावभूमि का निर्माण किया है। अपनी वैयक्तिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनुभूतियों की सूक्ष्मतर गहन अभिव्यक्ति करते समय वे प्रायः दुरूह से दुरुहतर भी होते जाते हैं। कविता की इस बुनावत में क्लिष्टता और दुरूहता के कारण भी आधुनिक हिंदी कविता में शमशेर अलग से पहचाने गए। उदाहरण के लिए उनकी एक कविता की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

''शिला का खून पीती थी
वह जड़
जो कि पत्थर थी स्वयं।''

शमशेरबहादुर सिंह का जन्म 13 जनवरी, 1911 को देहरादून के एक सम्पन्न मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। आरंभिक शिक्षा देहरादून में पूरी करने के उपरांत वे उच्च शिक्षा के लिए इलाहाबाद गए जहाँ उन्होंने सन् 1933 में बी.ए. की परीक्षा इलाहबाद विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। इलाहाबाद के साहित्यिक परिवेश में रहते हुए शमशेर ने निःसंदेह अपनी रुचियों का परिष्कार किया। परिणामतः वे साहित्य के साथ–साथ चित्रकारी और पेंटिंग की ओर भी मुड़ें। पेंटिंग की तो उन्होंने विधिवत शिक्षा भी प्राप्त की।

इलाहाबाद के साहित्यिक वातावरण में शमशेर का रुझान कविता लेखन की ओर हुआ। आरंभ उन्होंने रूमानी कविताओं और गजलों से किया। हिंदी में गजल की जिस रवायत के लिए हम दुष्यंतकुमार का नाम लेते हैं, उसकी शुरुआत शमशेरबहादुर से होती है। दुश्यंत ने शमशेर का ससम्मान उल्लेख इस दिशा में अपने पूर्ववर्ती गजलकारों के रूप में किया है। शमशेर न केवल उर्दू अच्छी तरह से जानते थे, बल्कि उसकी काव्य परम्परा से भी पूरी तरह अभिज्ञ थे। उनकी अनेक कविताओं पर उर्दू कविता का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए उनकी कविता की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

''मुझको मिलते हैं अदीब बहुत,
लेकिन इन्सान के दर्शन हैं मुहाल।''
या
''इल्मो–हिकमत, दीनों – ईमा, मुल्को दौलत, हुस्नो–इश्क,
आपको बाजार से जो कहिए ला देता हूं मैं।''

शमशेरबहादुर सिंह बहुत दिनों तक इलाहबाद में ही रहकर साहित्य–साधना करते रहे। कुछ दिनों तक वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पेंटिंग की कक्षाएं भी लेते रहे। 'कहानी' और 'नया साहित्य' जैसी महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादक – मंडल से संबद्ध होकर शमशेर ने पत्र–पत्रिकाओं के संपादन का अनुभव भी प्राप्त किया। साहित्य साधना के साथ–साथ, चित्रकला के क्षेत्र में भी उन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित की। चित्रकला का प्रभाव भी उनकी बहुत सी कविताओं पर दिखाई देता है। चित्रात्मकता एवं कलात्मकता के विशेष आग्रह के कारण ही शमशेर की कुछ कविताओं में शिल्पगत दुरूहता परिलक्षित होती है। यह जटिलता और दुरूहता कहीं – कहीं पाठकों के लिए सहज संवेद्य न होकर उनकी उपेक्षा भी कर जाती है।

'अज्ञेय' के संपादन में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' (1951 ई.) में सम्मिलित होने से पूर्व शमशेरबहादुर सिंह साहित्य–सर्जन में पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुके थे। अपनी वैयक्ति अनुभूतियों में रूमानियत का सम्यक् सत्कार करनेवाले, शमशेर वैचारिक धरातल पर मार्क्सवादी सिंद्धांतों से खासे प्रभावित रहे, हालाँकि संस्कारात उनकी व्यक्तिवादिता भी स्पष्टतया दृष्टिगत होती है।

साहित्य सर्जन, संपादन, चित्रांकन आदि के अनवरत क्रम में शमशेरबहादुर सिंह कमोबेश बारह वर्षों (सन् 1965 – 1977) तक दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रोजेक्ट 'उर्दू–हिंदी कोश' से संबद्ध रहे। साहित्य क्षेत्र में नागार्जुन शमशेर, त्रिलोचन की त्रिमूर्ति बहुत चर्चित और सम्मानित मानी जाती रही है। शमशेर की ख्याति, प्रसिद्धि, क्षमताओं एवं साहित्यिक उपलब्धियों के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए मध्यप्रदेश सरकार ने उन्हें विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में स्थापित 'प्रेमचंद सृजनपीठ' का अध्यक्ष बनाया, जहां वे सन् 1981 – 95 तक रहे। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में शमशेरबहादुर सिंह अपनी एक शिष्या रंजना अरगड़े के आग्रह पर उनके साथ गांधीनगर (गुजरात) चले गए। रंजना जी ने साहित्य और कला के साथ–साथ उनके चित्रों को भी बहुत सहेजकर सुरक्षित रखा। रंजना जी के साथ रहते हुए ही सन् 1993 में शमशेर जी ने अंतिम सांसें लीं।

शमशेरबहादुर सिंह की रचनाओं में 'कुछ कविताएँ', 'कुछ और कविताएँ' 'चुका भी हूँ नहीं मैं' 'बात बोलेगी हम नहीं', विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिनमें 'चुका भी हूं मैं, पर' साहित्य अकादमी पुरस्कार (सन् 1977) प्राप्त हो चुका है। उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त 'उदिता', इतने पास अपने', 'दोआब', 'काल तुझसे होड़ है मेरी' उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शमशेरबहादुर सिंह अपनी कविताओं में नए – नए प्रयोगों के कारण अपने समकालीन कवियों में अलग से जाने – पहचाने गए और इस कारण वे लोकप्रिय भी रहे।

शमशेरबहादुर सिंह ने मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर प्रगतिवादी कविताएं भी लिखी हैं। छायावादी रोमेंटिक भावधारा के प्रभाव से रूमानी कविताओं की ओर भी वे आकृष्ट हुए। छायावादोत्तर वैयक्तिक चेतना से पूर्ण आत्मपरक प्रेम कविताओं से प्रभावित होकर उन्होंने आत्मपरक प्रेम कविताओं का भी प्रणयन किया है। चित्रकला और संगीत के प्रभाव में ऐसी कविताएँ भी उन्होंने लिखी हैं, जिन पर चित्रात्मकता एवं खंडित बिंबों के सहारे सहज संवेद्य न होनेवाली दुरूह काव्य सृष्टि का आरोप भी है। प्रयोगशील तो वे हैं ही। शमशेर की अधिकतर कविताओं में नित नूतन प्रयोग दृष्टिगत होते हैं। उन्होंने गजलों की ओर भी स्वयं को मोड़ा।

शमशेर जी की प्रगतिवादी विचारधारावाली कविताएं अधिकाशंतः उनकी काव्य प्रतिभा से मेल नहीं खातीं। वे कविताएं, ऐसा प्रतीत होता है कि, सायास रची गई हैं, अनायास नहीं। यद्यपि मार्क्सवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक साहित्यकारों के लिए शमशेर जी की उन कविताओं की उपयोगिता और प्रासंगिकता कम नहीं है, तथापि वे कविताएँ कहीं कहीं पार्टी के मेनीफेस्टो या फिर नारे जैसी प्रतीत होती हैं। उदाहरण के लिए उनकी कविता 'वाम वाम वाम दिशा 'समय साम्यवादी', या फिर, लेकर सीधा नारा नामक कविता –

''लेकर सीधा नारा,
कौन पुकारा ?
अंतिम आशाओं की संख्याओं से
मैं समाज तो नहीं,
न मैं कुल जीवन।
कण समूह में हूं मैं केवल
एक कण
एक सहारा।''

बावजूद इसके शमशेर जी अपनी अनेक प्रगतिवादी कविताओं में सामाजिक सरोकारों से जुड़ते हैं। उनकी अनेक कविताओं में सामाजिक सचाई उजागार हुई है। आमजन की भावनाओं को स्वर देने में भी उनकी कविता पीछे नहीं है। 'बात बोलेगी हम नहीं, भेद खोलेगी बात हीं' की उद्‌घोषणा करनेवाले शमशेर जी बहुत क्रांतिकारी स्वर में अपनी बात कहते हैं।

''सरकारें पलटती हैं
जहां हम दर्द से करवट बदलते हैं।
हारे अपने नेता भूल जाते हैं, हमें जब,
भूल जाता है जमाना भी उन्हें, हम भूल जाते हैं उन्हें खुद।

इन्कलाब आता है उनके दौर को गुम करने सामाजिक सरोकारों से अपनी संबद्धता के क्रम में शमशेर जी की राय है – कवि का कर्म अपनी भावनाओं में अपनी प्रेरणाओं में अपने आंतरिक संस्कारों में, समाज सत्य के मर्म को ढालना – उसमें अपने आपको पाना है, और उस पाने को अपनी पूरी कलात्मक क्षमता से पूरी सचाई के साथ व्यक्त करना है, जहाँ तक वह कर सकता हो।''

अपनी प्रगतिवादी सोच में शमशेरबहादुर सिंह महज कल्पनाओं में खोकर रह जानेवाले कवि नहीं हैं, न ही शब्द जाल में उलझाकर महज आंदोलन खड़ा करने के हिमायती हैं। वे परिवर्तन की आकांक्षा से समाज को बदलकर रख देना चाहते हैं। उनका मानना है कि समस्या का समाधान कल्पना से नहीं ठोस यथार्थ की जमीन पर उतरने से ही मिल सकता है –

''हकीकत को लाए तखेयुल से बहार
मेरी मुश्किलों का जो हल कोई लाए''

सही मायने में शमशेर जी की कविताओं की वास्तविक भावभूमि उनकी निजी अनुभूतियों से संपृक्त आत्मपरक अभिव्यक्ति से संवलित है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया – ''मेरी असली जमीन तो रोमानी ही थी, रोमानी बनी रही।'' उनकी इस आत्मस्वीकृति के परिप्रेक्ष्य में कहा जाए, तो वे मूलरूप से प्रेम, प्रकृति और सौंदर्य को व्यापक फलक से निहारनेवाले कवि हैं। वे छायावाद की सौंदर्यचेतना से प्रभावित तो हैं, पर वे यथार्थबोध को अस्वीकार नहीं करते। सौंदर्य के प्रति शमशेरजी का सहज आकर्षण उसके नित नूतन स्वरूप की ओर बहुत स्वाभाविक रूप में दिखाई देता है। वे सौंदर्य को नष्ट नहीं होने देना चाहते –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"लौट आ ओ,
फूल की पंखुड़ी
फिर फूल में लग जा।"

प्रेम के साथ प्रकृति का मेल शमशेर जी की कविताओं को नूतन भावबोध से संवलित कर एक अलग सौंदर्य की सृष्टि करता है। इस रूप में प्रेम और प्रकृति को देखने का उनका अपना नजरिया है –

"एक पीली शाम
पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुख कमल
कृश, क्लांन, हारा सा ....
अब गिरा, अब गिरा
वह अटका हुआ आँसू
सांध्य तारक सा
अतल में ।"

प्रेम – प्रकृति चित्रों में नवीन उपमाओं नवीन बोध के मध्य प्राकृतिक सौंदर्य के विविधवर्णी स्वरूप को शमशेर जी ने बहुत सूक्ष्मदृष्टि से देखने का प्रयास किया है। उन्हें कहीं इंद्रधनुषी छटा दिखाई देती है, कहीं नींद भरी आलस की भोर के दर्शन होते हैं। चुंबन की पुचकारियों से खिलती हुई कलियों का रूप सौंदर्य उन्हें आकृष्ट कर लेता है। यकीनन ऐसे प्रकृति चित्रों में शमशेर जी का मानवीय दृष्टिकोण परिलक्षित होता है–

"नींद भरी आलस की भोर का
कुंज गदराया है,
यौवन के सपनों से
अभी अनजान मानो
चुंबन की मीठी पुचकारियाँ
खिला रही कलियों को, फूलों को हँसा रहीं।"

इस तरह के अनगिनत प्रेम–प्रकृति के चित्र शमशेर की कविताओं में बिखरे पड़े हैं।

शमशेरबहादुर सिंह उर्दू की काव्य परंपरा से भी स्वयं को बखूबी जोड़ते हैं। वे उर्दू की मिजास से अच्छी तरह परिचित हैं। इसी कारण वे खड़ीबोली के सहज सरल रूप और लहजे के समर्थक हैं। शमशेर जी हिंदी के आरंभिक गजलकारों में सम्मिलित किए जाते हैं। गजल लेखन के क्षेत्र में वे उर्दू – हिंदी के भेद को स्वीकार नहीं करते।

शमशेर ने सामाजिक सचाई और मानवीय अनुभूतियों को गजल के माध्यम से बहुत खूबसुरती के साथ व्यक्त किया है। उनके इन्सानी पक्ष को उनके ही एक शेर में देखें –

"और तो कुछ न किया इश्क में पड़कर दिल ने
एक इन्सान से इन्सान वफा का बांधा।"

शमशेर की गजलों में सामाजिक सरोकारों के साथ अंतरराष्ट्रीय फलक से जुड़ने की कोशिश दिखाई देती है। वे सियासी हालत पर खुलकर अपनी बात कहते हैं –

"हद्दे पाकिस्तान में सी.आई.ए. की साजिशें
सरहदी फौजों को हमलावर बनाना देखिए
परचमे इस्लाम के हैं साथ अमरीकी निशान
हो गया कुर्बान डालर पर जमाना देखिए।"

वस्तुतः शमशेरबहादुर सिंह आधुनिक हिंदी कविता में नई कविता के एक ऐसे महत्त्वपूर्ण कवि कहे जा सकते हैं, जिन्होंने अपने व्यापक सोच एवं विस्तृत काव्य फलक से अपना एक अलग स्थान सुनिश्चित किया है।

16.6 जगदीश गुप्त

'नई कविता' आंदोलन के समर्थ पैरोकार जगदीश गुप्त आधुनिक हिंदी काव्य के ऐसे प्रमुख हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने 'नई कविता' आंदोलन को बल एवं समर्थन देने के लिए सन् 1954 में रामस्वरूप चतुर्वेदी के साथ मिलकर 'नई कविता' नामक महत्त्वपूर्ण पत्रिका का संपादन किया । 'नई कविता' आंदोलन के इतिहास में इस पत्रिका का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्थान 'मील का पत्थर' की तरह है । 'नई कविता' के लिए जगदीश गुप्त द्वारा किए गए प्रयास की सराहना करते हुए 'अज्ञेय' ने कहा था–''नई कविता के वास्तविक प्रणेता तो जगदीश गुप्त ही हैं'' हालांकि नई कविता की मूल प्रवृत्तियाँ पहले से ही प्रकाश में आने लगी थीं और 'प्रतीक', 'पाटल', 'नए पत्ते' और दूसरा सप्तक से 'नई कविता' का स्वरूप स्पष्ट होने लगा था, फिर भी 'नई कविता' पत्रिका ने नई कविता के समस्त सम्भावित मानदंडों को सुनिश्चित करने में बहुत बड़ी भूमिका का निर्वाह किया । 'नई कविता' के माध्यम से 'नई कविता' को लेकर होनेवाली बहसों–मुबाहिसों को एक सही दिशा में ले जाने का महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ । प्रयोगवाद और नई कविता की प्रवृत्तियों के मध्य जो पार्थक्य था, वह भी इस पत्रिका के माध्यम से स्पष्ट हुआ । इस पत्रिका के जरिए संभवतः यह धारणा प्रतिपादित हुई कि बनावट और बुनावट में प्रयोगवादी कविता या दूसरे सप्तक की कविता ने जो सफर तय किया है, नई कविता उससे आगे की कविता है।

जगदीश गुप्त ने 'नई कविता' में न केवल 'नई कविता' के प्रमुख कवियों की महत्त्वपूर्ण कविताओं को प्रकाशित किया, वरन् उसकी संतुलित एवं सम्यक् समीक्षा करते हुए उसके महत्त्व एवं स्वरूप को भी स्पष्ट किया । जगदीश गुप्त ने 'नई कविता' पत्रिका का प्रकाशन जिस उद्‌देश्य को लेकर किया था, वह जब पूरा होने लगा और 'नई कविता' सर्वत्र महत्त्व पाने लगी तो पत्रिका का प्रकाशन बंद कर दिया गया । ऐसा वे स्वयं स्वीकार करते हैं–

''उसका प्रकाशन 'नई कविता' के आंदोलन के अंतर्गत किया गया था । जब नई कविताएँ प्रायः सभी पत्रिकाओं में छपने लगीं, तो सन् 1968 में 'नई कविता' का प्रकाशन बंद कर दिया गया ।''

'नई कविता' के एक समर्थ कवि के रूप में जगदीश गुप्त ने अपनी अलग पहचान स्थापित की थी । वे बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी साहित्यकार कहे जा सकते हैं । उनका साहित्यिक व्यक्तित्व विविध दिशाओं का स्पर्श करता है । कविता लेखन के साथ–साथ वे आलोचनाएँ भी लिखते थे । 'नई कविता' और 'निकष' के अनेक अंकों में उनकी आलोचनाएँ प्रकाशित हुईं। 'हिंदी और गुजराती कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन' तथा 'नई कविताः स्वरूप और समस्याएँ' उनकी महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक कृतियाँ हैं, जिनके माध्यम से उनका महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व उभरता है । जगदीश गुप्त साहित्य के अतिरिक्त चित्रकारी भी करते थे । चित्रकला में उनकी विशेष रुची थी । वे साहित्य और चित्रकला दोनों में कोई भेद नहीं करते थे–

''मैं साहित्य और चित्रकला को भिन्न वस्तुएँ नहीं मानता । साहित्य में जिस सत्य को ढूंढने और प्रस्तुतः करने का प्रयास किया जाता है, उसी की झलक चित्रकला में प्रस्तुत की जाती है । मुझे साहित्यिक लेखन और चित्र निर्माण एक–दूसरे के पूरक लगते हैं और दोनों में मुझे बराबर का सुख मिलता हैं । ''

साहित्य और कला में समन्वय स्थापित करने वाले जगदीश गुप्त का जन्म सन् 1924 में शाहाबाद (उ.प्र.) में हुआ था । उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. तथा डी.फिल. हिंदी साहित्य में किया । तत्पश्चात् वे वहीं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए । वे अध्यापन कार्य में निरंतर लीन रहकर साहित्य सर्जन–पथ पर चलते रहे । बाद मे प्रोफेसर एवं अध्यक्ष होकर सेवानिवृत्त हुए और स्थायी रूप से इलाहाबाद में ही रहने लगे ।

जगदीश गुप्त के प्रकाशित काव्य संग्रहों में 'नाव के पांव', 'शब्द दंश', हिमबिद्ध', 'युग्म', 'शंबूक', 'छंदशती', 'गोपा–गौतम' और 'बोधिवृक्ष' के नाम सम्मिलित हैं । इनके अतिरिक्त अनेक आलोचनात्मक पुस्तकें समीक्षात्मक निबंध–लेख, चित्रकला की पुस्तकें, पत्रिकाएँ संपादन आदि उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के साक्षी हैं।

जगदीश गुप्त ने अपने काव्य सर्जन का आरंभ ब्रजभाषा से किया । छायावाद एवं छायावादोत्तर काव्य रचना की विविध स्थितियों–परिस्थितियों से गुजरते हुए वे 'नई कविता' के पड़ाव तक पहुँचे थे । काव्ययात्रा में आनेवाले विविध पड़ावों के कारण उनकी रचनाओं में दो दृष्टियाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं । एक ओर उनकी कविता में यथार्थ दृष्टि, सामयिक जीवन की जटिलताएँ और विसगतियाँ मौजूद हैं, तो दूसरी ओर रोमेंटिक प्रवृत्तियों से भी वे बहुत प्रभावित हैं । इसी तरह भाषिक संरचना के क्रम में एक ओर वे ब्रजभाषा में छंदोबद्ध काव्य रचना के आग्रही है, तो दूसरी ओर नई कविता में खड़ीबोली, मुक्तछंद का भी समर्थन करते हैं । यह विरुद्धों का सामंजस्य जगदीश गुप्त के काव्य सर्जन की विशेषता है । मध्यकालीन रूझानों के बावजूद वे नवीनता के भी विशेष समर्थक हैं।

ब्रजभाषा में काव्यरचना के पीछे जगदीश गुप्त का अपना तर्क है, अपना नजरिया है–''आधुनिक जीवन की व्यंजना के लिए खड़ी बोली अधिक उपयुक्त है,पर वैष्णव भक्ति की व्यंजना के लिए ब्रजभाषा से बेहतर माध्यम हो नहीं सकता।''

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं–

''कुछ अनुभव ऐसे है जिन्हें ब्रजभाषा में व्यक्त करना आवश्यक हो जाता है, जैसे भक्तमन की संवेदनाएँ । मैं खड़ीबोली और ब्रजभाषा दोनों को दो अलग मनःस्थितियों का व्यंजना के लिए सफल माध्यम मानता हूँ ।

यह जानना कितना दिलचस्प है कि जगदीश गुप्त एक ओर तो 'नई कविता' के कवि होने के साथ–साथ उसके आंदोलनकर्त्ता, पुरस्कर्त्ता, प्रबल समर्थक थे, दूसरी ओर ब्रजभाषा की परंपरा के छंदबद्ध कविता के कवि । नई कविता का समर्थन करते हुए उन्होंने जहाँ छंदहीनता को महत्त्व दिया, वहीं ब्रजभाषा में लिखते हुए छंदबद्धता को समर्थन दिया । परंपरा ओर आधुनिकता दोनों का निर्वाह करनेवाले जगदीश गुप्त का साहित्यिक व्यक्तित्व अद्‌भुत है।

'नई कविता' के क्षेत्र में जगदीश गुप्त का योगदान अविस्मरणीय हैं । उन्होंने नई कविता में सत्यान्वेषी दृष्टि का ऐसा व्यापक धरातल तैयार किया, जिस पर नई कविता का निर्भीक और सर्वभौम स्वरूप स्पष्ट हुआ । सिद्धांतों के प्रति समर्पण, निष्ठा और आस्था रखते हुए जगदीश गुप्त ने नई कविता को प्रतिष्ठित करते हुए उसे विभिन्न अर्थछवियों से न केवल संवलित किया, वरन् उसका स्वरूप स्पष्ट करने के लिए उसे विभिन्न पारिभाषिक शब्दों से परिपूर्ण बनाने का प्रयास किया । नई कविता के लिए उनकी स्थापनाओं में 'लघुमानव', 'अर्थ की लय', 'सह अनुभूति', 'क्षण का महत्व' आदि ऐसे महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं जिनके माध्यम से नई कविता के स्वरूप को व्यापकता प्राप्त हुई और उसे समझने में सहायता मिली ।

अपनी कविताओं में प्रकृति की मोहक छवियों को चित्रित करनेवाले जगदीश गुप्त मनुष्य के आंतरिक संघर्ष को भी सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति देनेवाले कवि हैं । वे कविता को मानवीय चेतना की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति का सहज एवं सशक्त माध्यम मानते हैं । चित्रकला में विशेष अभिरुचि के कारण उनकी कविताओं में भी चित्रों के बिम्ब परिलक्षित होते हैं । वे शब्द और रेखाओं को एक साथ अर्थ प्रदान करनेवाले कवि हैं, जिनका 'नई कविता' के लिए विशिष्ट योगदान है । नई कविता के आस्तित्व को स्वीकार न करनेवाले 'अज्ञेय' ने भी बाद में स्वीकार किया कि नई कविता और उसके जनक डॉ. जगदीश गुप्त हैं ।

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने जगदीश गुप्त का मूल्यांकन करते हुए कहा है–

''जिस प्रकार कवि गुरु रवीन्द्र ने अपनी जटिल एवं अमूर्त भावनाओं को अपेक्षाकृत अस्पष्ट चित्रों के माध्यम से व्यक्त किया था, कुछ–कुछ उसी प्रकार से जगदीश गुप्त ने भी अपने विचार समूह के उस भाग को, जो सरलता से उनके साहित्य को अपना माध्यम नहीं स्वीकार कर सका, अपने स्पष्ट एवं साफ–सुथरे चित्रों के सहारे प्रकट किया है ।''

जगदीश गुप्त की कविताओं में गहरी मानवीय संवेदनाएँ बहुत स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हुई हैं–

''आकांक्षा
शब्द को देती है अर्थ
तुम्हारे शब्दों को क्या हो गया है ?
या तो तुम तुम्हीं नहीं रहे
या उनका अर्थ खो गया है ।''

उनकी कविताएँ स्वाभिमान और सम्मान की कविताएँ हैं, जहाँ वे अपनी आकांक्षा प्रकट करते हुए कहते हैं–

''मुझे लक्ष्य वेध काम्य,
बाण और वाणी में
देखता हूँ क्रिया साम्य
मै कवि हूँ स्वाभिमानी
शब्दों में नया और सच्चा
अर्थ भरना चाहता हूँ,
खोखली ध्वनियों की
बेरहम जंजीर से बंधकर
कुत्ते की मौत
नहीं मरना चाहता ।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जगदीश गुप्त की कृति 'युग्म' स्त्री–पुरुष के सह–संबंधों पर आधारित हैं । 'शंबूक' में मानवीय चेतना की व्यापक अभिव्यक्ति हुई है । उनकी काव्य प्रतिभा का मानदंड 'बोधिवृक्ष' और 'गोपा–गौतम' से सुनिश्चित होता हैं ।

'गोपा–गौतम' जगदीश गुप्त की बहुत महत्त्वपूर्ण और चर्चित रचना है, जिसमें गौतम की पत्नी गोपा का आंतरिक संघर्ष चित्रित है। मैथिलीशरण गुप्त के 'यशोधरा' खंडकाव्य में वर्णित गौतम की पत्नी के आदर्शवादी रूप से आगे बढ़कर उसमें उसकी मनःस्थितियों का चित्रण किया गया हैं । इस कृति के संबंध में जगदीश गुप्त का कथन है–

''मुझे लगा कि कवियों ने, विशेषतः मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' में गौतम की पत्नी के आदर्शवादी रूप को अधिक चित्रित किया है, पर उसके अंतर्द्वंद्व और उसकी पीड़ा को अनदेखा कर दिया । इतिहास बताता है कि सिद्धार्थ अपने विवाह के ग्यारहवें वर्ष में पिता बने, पर पुत्र जन्म को अनिष्टकारी मानकर उसे उन्होंने राहू माना और तभी राहुल नाम रखा । फिर सिद्धार्थ अपनी पत्नी और पुत्र को सदा के लिए छोड़कर गौतम बनने चले गए । नारी और पुरुष के संबंधों के मार्मिक पक्ष के चित्रण की दृष्टि से मुझे यह प्रसंग 'प्रबंध काव्य' के योग्य लगा ।''

समग्रतः कहा जा सकता है कि जगदीश गुप्त नई कविता के ऐसे समर्थ कवि हैं, जिनकी रुचि साहित्य के अतिरिक्त चित्रकला में भी है । वे मानवीय चेतना और आंतरिक अनुभूतियों को संवेदना के गहरे धरातल पर उतारनेवाले महत्त्वपूर्ण कवि हैं ।

16.7 कुँवर नारायण

'तीसरा' सप्तक में सम्मिलित कुँवर नारायण 'नई कविता' के उन महत्त्वपूर्ण और उल्लिखित कवियों में माने जाते हैं, जिन्होंने मूल्यसंकट को नजरअदांज करते हुए, सतत् मानवीयमूल्यों को तलाशने में विश्वास प्रकट किया है । अपनी रचनाओं में सदैव वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समर्थन करनेवाले कुँवर नारायण वास्तव में एक चिंतक कवि कहे जा सकते हैं, जिनकी कविताओं में आधुनिक गहन भावबोध के साथ–साथ वैज्ञानिकबोध का व्यापक आधार ग्रहण किया गया हैं । आधुनिकता से संवलित उनका यह भावबोध किसी–न–किसी रूप में उनकी कविताओं में समाया रहता है ।

विचार और चिंतन के व्यापक धरातल पर अवस्थित कुँवर नारायण की कविताओं में वैज्ञानिक दृष्टिसंपन्न विचारों की स्वतंत्रता परिलक्षित होती है । उनकी यह वैचारिक स्वतंत्रता उनके काव्य–सर्जन के प्रत्येक स्तर पर दृष्टिगत होती है । कुँवर नारायण का मानना है कि कविता में विचार का प्रवाह कविता को कलात्मक और वैज्ञानिक दृष्टिसंपन्न बनाने के लिए नितांत आवश्यक है । विचार और चिंतनसंपन्न कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण कुँवर नारायण की पहचान 'नई कविता' के विचारशील कवि के रूप में है, जो अपनी कविताओं में मनुष्य जीवन से संयुक्त कुछ महत्त्वपूर्ण एवं यथार्थ– बुनायादी प्रश्नों को उठाते है । वे मनुष्य को यथार्थ धरातल पर खड़े होने के लिए प्रेरित करते हैं, तथा जीवन में यथार्थवादी होकर कर्म एवं श्रम के महत्त्व को स्वीकार करते हैं–

'' कर्मरत हो
स्वप्न मत देखो
कहीं उन्माद रह न जाए भौरों का,
निरर्थक गीत उद्दीपन ।''

'नई कविता' के विचारक–चिंतक कवि कुँवर नारयण का जन्म 19 सितंबर, 1927 को फैजाबाद (उ.प्र.) में हुआ। अँगरेजी साहित्य में एम. ए. परीक्षा उर्त्तीण करने के बाद उन्होंने बहुत समय तक देश–विदेश में भ्रमण किया। स्वतंत्र रूप से लेखनकार्य करते हुए कुँवर नारायण वर्तमान में लखनऊ में स्थायी निवास करते हैं ।

अपनी रचनाओं में सुविचारित एवं वैज्ञानिक सोच के कारण कुँवर नारायण 'नई कविता' के प्रमुख एवं अग्रणी कवि कहे जाते हैं । उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियों में 'चक्रव्यूह' (सन्1956, पहला काव्य संग्रह), परिवेशःहम तुम'(1961), 'आत्मजयी'(1965), 'अपने सामने'(1979) के नाम उल्लेखनीय हैं । इनके अतिरिक्त उनका एक कहानी संग्रह 'आकारों के आसपास'(1971) भी प्रकाशित है । 'आत्मजयी' कुँवर नारायण की एक प्रबंधात्मक रचना है, जिसकी विषयवस्तु कठोपनिषद् की कथा पर आधृत है । उसका प्रमुख पात्र 'नचिकेता' कुँवर नारायण की रचना 'आत्मजयी' में आज के आधुनिक मनुष्य का प्रतीक है, जो मनुष्य–जीवन से जुड़े अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों से टकराता और जूझता है।

कुँवर नारायण की अनेक कविताओं का भारत तथा विदेश की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी उनकी रुचि साहित्यसर्जन के अतिरिक्त नाटक, सिनेमा , संगीत एवं चित्रकला में भी रही है। 'युग चेतना' नामक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका के संपादक के रूप में कुँवर नारायण की साहित्यिक सेवाएँ बहुत

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उल्लेखनीय कही जा सकती हैं। 'आजकल' 'छायानट' तथा 'नया प्रतीक' जैसी पत्रिकाओं के संपादन में भी उनका सहयोग रहा ।

अपनी साहित्यिक उपलब्धियों एवं विशिष्टता के कारण अनेक संस्थाओं द्वारा वे सम्मानित एवं पुरस्कृत भी हुए। जिनमें 'हिंदुस्तानी अकादमी पुरस्कार', उत्तर प्रदेश सरकार का प्रेमचंद पुरस्कार, कुमारन आसन पुरस्कार(केरल), तुलसी पुरस्कार (म.प्र.) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

कुँवर नारायण की कविताओं में यत्रतत्र दुरूहता एवं उलझाव के बावजूद वे कविताएँ मनुष्य जीवन के विविध पक्षों, समस्याओं एवं ज्वलंत प्रश्नों को बहुत व्यापक रूप में प्रस्तुत करती हैं । 'चक्रव्यूह' आज के मनुष्य की स्वाभाविक मनोदशा को व्यक्त करनेवाली बहुत समर्थ रचना है, जिसमें उसकी स्वाभाविक नियति का उद्घाटन हुआ है–

''मैं नवागत वह अजित अभिमन्यु हूँ ।
प्रारब्ध जिसका गर्भ ही से हो चुका निश्चित,
अपरिचित जिंदगी के व्यूह में फेंका हुआ उन्माद
बाँधी पंक्तियों का तोड़
क्रमशः लक्ष्य तक बढ़ता हुआ । ''

समाज की अनेक समस्याओं में उलझे हुए आज के मनुष्य की यह स्वाभाविक स्थिति उसे चिंतातुर और प्रश्नाकुल–संशंकित बनाए रहती है । जीवन चक्रव्यूह में उलझा हुआ वर्तमान मनुष्य इसे अपनी नियति मानकर चलता है ।

'आत्मजयी' कुंवर नारायण की संभवतः सबसे चर्चित और महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसमें उन्होंने कठोपनिषद् की कथा को प्रतीक रूप में ग्रहण करते हुए उसे समसामयिक संदर्भों में आधुनिक मनुष्य को केन्द्र में रखकर प्रस्तुत किया है । यम्–नचिकेता की कथा का आधार ग्रहण करने के बावजूद वह आज के आधुनिक मनुष्य की जीवन–जटिलताओं और प्रश्नों को समसामायिक संदर्भों से जोड़नेवाली कृति है, जहाँ नचिकेता का परिवेश अभिमन्यु के चक्रव्यूह से कम जटिल और उलझा हुआ नहीं है ।

'आत्मजयी' मे नचिकेता जीवनमूल्यों की तलाश करता हुआ अपने ढँग से व्यूह को तोड़कर लक्ष्य तक पहुँच जाता है। बावजूद इसके यह विचारणीय प्रश्न है कि नचिकेता का लक्ष्य क्या है ? उसकी परिस्थितियाँ क्या हैं ? उस लक्ष्य तक पहुँचने का उपाय क्या है ? सबसे बढ़कर उसकी प्रासंगिकता क्या है ? नचिकेता तो अपने आस्तित्व के प्रति ही शंकाकुल है। मृत्यु निश्चित है और इस निश्चितता में व्यक्ति बिल्कुल अकेला हैं । यह अकेलापन उसे कितना विवश और निरीह बना देता है–

''क्योंकि व्यक्ति मरता है
और अपनी मृत्यु में वह
बिल्कुल अकेला है
विवश
असांत्वनीया''

नचिकेता अपनी निजी सुख–सुविधाओं से आगे जाकर किसी ऐसे मूल्यबोध की तलाश में है, जहाँ मरणशील होते हुए भी मनुष्य किसी अमर अर्थ में जी सकता है। यह प्रश्न आस्तित्व एवं अस्तित्व के संकट का है । नचिकेता के पिता भौतिक सुखसुविधाओं के आग्रही हैं, जबकि नचिकेता आत्मा के सत्य तक उसकी सार्थकता तक पहुँचना चाहता है। वह मृत्यु के बोध से जीवन बोध का साक्षात्कार करता है । नचिकेता आज के ऐसे मनुष्य का प्रतीक बन कर 'आत्मजयी' में उपस्थित है, जहाँ एक विचारशील और विवकेशील मनुष्य के मन में जीवन की सार्थकता का प्रश्न बार–बार उठता रहता है । वाजश्रवा के क्रोध के उपरांत नचिकेता के प्रश्न बहुत करुण और मार्मिक बन जाते हैं –

''वे जिनसे पाया
नगण्य सुख–साधन कुछ,
दान मिला
दान से अधिक एहसान मिला,
वे जिनको प्यार दिया जीवन को खाली कर,
उन्होंने दया की मुझ पर उपकार किया ।
वे सब कुछ समृद्ध रहे अपने में,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लेकिन मैं रीत गया आत्मा को व्यय करके
बदले में एक कुंठा संचय करके ।''

शंकाकुल नचिकेता ऐसे में जिज्ञासु हो उठता है कि आखिर उसका अस्तित्व क्या है–

''धरा–धाम–सखा बंधु
पिता, नाम, वर्तमान
मुझमें हैं–मुझसे हैं– मेरे हैं
अनजाने,पहचाने,माने,बेमाने
सब मेरे हैं,
लेकिन मैं क्या हूँ ? मैं क्या हूँ ?
मैं क्या हूँ ?

नचिकेता द्वारा आत्महत्या का प्रयास और उसका बच जाना फिर अचेतावस्था में अतीत और भविष्यबोध की अवस्थाओं से गुजरते हुए, अंततः वह मुक्ति के सोपान तक पहुंच जाता है ।

वस्तुतः 'आत्मजयी' आज के मनुष्य की विषमता एवं त्रासदपूर्ण जीवन का आख्यान है, जहाँ वह जीवनमृत्यु के बीच जूझता रहता है । न तो उसे जीवन से ही मुक्ति मिलती है और न तो वह मृत्यु से ही छुटकारा पाता है । वह तो बस इन्हीं प्रश्नों में उलझकर रह जाता है कि जीवन क्या है, ईश्वर कहाँ है–

''जीवन क्या है ?
मुक्ति क्यों ?
मुक्ति कैसे ?
ईश्वर कहाँ ?''

समग्रतः 'आत्मजयी' में नचिकेता के माध्यम से आस्था की खोज करते हुए जीवन के इस बुनियादी प्रश्न को, सार्थकता के प्रश्न को व्यापक दृष्टिकोण के साथ उठाया गया है । अपनी इस कृति के माध्यम से कुंवर नारायण आधुनिक हिंदी काव्यजगत् में बहुत चर्चित और मान्य हुए । हालांकि आलोचकों ने 'आत्मजयी' की विभिन्न दृष्टियों से आलोचना भी की है, फिर भी आख्यानपरक प्रबंधात्मकता में 'आत्मजयी' नई कविता की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है ।

कुँवर नारायण की अन्य प्रमुख रचनाओं में जहां 'परिवेश :हम तुम' में चक्रव्यूह से बाहर निम्न स्तर जीवन के सर्जनात्मक लक्ष्य की ओर संकेत करने का उपक्रम है, वहीं 'अपने सामने' समसामयिक संदर्भों से जुड़ने के कारण बहुत सार्थक और प्रासंगिक रचना के रूप में समादृत है । इस तरह विचार,चिंतन और बौद्धिकता का आधार ग्रहण कर कविताओं में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनानेवाले कुंवर नारायण 'नई कविता' दौर के विशिष्ट रचनाकार हैं।

16.8 नरेश मेहता

आध्यात्मिक चेतना–संपृक्त, मानवतावादी दृष्टि से संवलित, नरेश मेहता नई कविता के समर्थ कवि हैं, जिनकी पहचान दूसरे सप्तक (सन् 1951) के प्रमुख कवि के रूप में स्थापित हुई। बदलती हुई परिस्थितियों में बदलाव एवं युग संदर्भो से जुड़ने की आकांक्षा के कारण नरेश मेहता ने प्रयोगशील दृष्टि को स्वीकार कर आगे बढ़ने का निश्चय किया । वे मानवीय संवेदना से गहरे सरोकारवाले नवीनता के आग्रही कवि कहे जा सकते हैं । प्रकृति के साथ–साथ आध्यात्मिक चेतना को अपनी कविताओं में अपनानेवाले नरेश मेहता ने वेद, उपनिषद् के कतिपय सुंदर आख्यानों को प्रतीकात्मक रूप से अपनी रचनाओं में पिरोने का सफल प्रयास किया है। नई कविता के कवियों में बिंब और प्रतीकों की दृष्टि से जितना नयापन और टटकापन नरेश मेहता की रचनाओं में दृष्टिगत होता है, उतना अन्य किसी कवि में नहीं ।

प्राकृतिक सौंदर्य एवं रोमानी भाव से संवलित रचनाओं में नरेश मेहता ने बहुत प्रभावी चित्र प्रस्तुत किए हैं, मानवीय–कारण के साथ रोमेंटिक भावकल्पना के चित्रों में उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति देखते ही बनती हैं–

''बरस रहा आलोक दूध है
खेतों खलिहानों में
जीवन की नव किरन फूटती
मकई के धानों में
सरिताओं में सोम दुह रहा, वह अहीर मतवाला।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रगति एवं प्रयोग के नवीन तत्त्वों को ग्रहण कर ही नई कविता आगे बढ़ी । नरेश मेहता की कविताएँ इसका सशक्त प्रमाण हैं । वे छायावाद, प्रयोगवाद सरीखे काव्यांदोलन' की भागमभाग की स्थिति से बचते हुए 'गुटबंदी और अवसरवादिता' से अलग स्वतंत्र रूप से नए–नए प्रयोगों को अपनाने का आग्रह करते हैं।

दूसरा सप्तक में वे एक जगह लिखते हैं – ''पिछली अपनी छायावादी एवं रहस्यवादी कविताओं को मैं कविता नहीं मानता, क्योंकि किसी भी प्रकार के प्रभाव से लिखी कविता को द्वितीय श्रेणी का काव्य कहना होगा, और यह द्वितीय श्रेणीवाली बात मुझे नहीं पसंद है । साहित्य में नए प्रयोगों के द्वार बंद नहीं हुए हैं। हिंदी में प्रयोगों की आवश्यकता दिन–पर–दिन बढ़ती जा रही है। विगत, अनुकरणीय नहीं हो सकता । हाँ, शोभालंकार बनकर रह सकता है । नया तो मेरा युग है, मेरी प्रकृति है तथा सबसे नया मैं हूँ ।''

दूसरा सप्तक में नरेश मेहता द्वारा दिये गए उपर्युक्त वक्तव्य के माध्यम से हम उनकी मान्यताओं को बखूबी समझ सकते हैं ।

नरेश मेहता का जन्म 15 फरवरी, 1922 को मालवा (शाजापुर), मध्यप्रदेश के ब्राह्मण परिवार में हुआ था । उज्जैन के माधव कॉलेज से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् वे उच्चशिक्षा के लिए काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणासी चले गए, जहाँ से उन्होंने एम.ए. हिंदी की परीक्षा उर्त्तीण की । नरेश मेहता को पारिवारिक संस्कार का उच्चस्तरीय वातावरण तो मिला था, साथ ही वाराणासी में अध्ययन करते हुए उन्हें आचार्य केशवप्रसाद मिश्र, पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र तथा आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जैसे मनीषियों के सानिध्य में अपने साहित्यिक संस्कारों को विकसित करने का अवसर प्राप्त हुआ । राष्ट्रप्रेम की उत्कट् भावना के कारण छात्र आंदोलन में सक्रिय सहभागिता निभाने में भी जोर–शोर से हिस्सा लिया । एक लंबे अर्से तक वे कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी से भी जुड़े रहे ।

नरेश मेहता की जागरूकता एवं साहित्यिक अभिरुचि का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि कम्युनिस्ट पार्टी से संबद्ध रहते हुए उन्होंने दिल्ली में ट्रेड यूनियन के एक साप्ताहिक का संपादन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'कृति' जैसी मासिक साहित्यिक पत्रिका के संपादन का दायित्व भी सम्भाला । वे आकाशवाणी सेवा में विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए सन् 1959 में सेवा से पृथक् होकर स्वतंत्र लेखन से जुड़ गए । अंततः उन्होंने इलाहाबाद को अपना स्थायी निवास बनाया, जहाँ वे इलाहाबाद के लूकरगंज मुहल्ले में रहते थे ।

नरेश मेहता का संस्कारित अभिजात्य एवं सुरुचिपूर्ण जीवनशैली उनके काव्य–सर्जन पर भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है । एक तरफ उनकी रचनाओं में मालवा की संस्कृति रची बसी है, तो दूसरी ओर बनारस का रंग भी दिखाई देता है । ''दूसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य में उन्होंने कहा है कि– ''वे 'आग' लिखना चाहते है, किंतु उनका व्यक्तित्व आग लिखने से मना करता है ।''

नरेश मेहता नए प्रतीकों एवं नए बिंबों के बहुत समर्थ कवि कहे जा सकते हैं । अपनी सांस्कृतिक विरासत से गहरे प्रभावित उनकी अनेक आरंभिक कविताओं में, वैदिक ऋचाओं में अवस्थित बिंबों को बहुत प्रभावी एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिली है, बिंबों का यह नयापन और टटकापन बहुत कम कवियों में दृष्टिगत होता है। 'सरिताओं में सोम दुह रहा वह अहीर मतवाला', 'इंद्र हमारे रक्षक होंगे, खेतों और खलिहान', 'रैण डूंगरी उतर गए सप्तर्षि अपने वरुण देश में' जैसी कविताएँ इसका प्रमाण हैं।

नरेश मेहता का रचना संसार बहुत विस्तृत है । 'वन पाखी सुनो', 'बोलने दो चीड़ों को', 'मेरा समर्पित एंकात प्रार्थना पुरुष', उत्सवा तुम मेरा मौन हो', 'आखिर समुद्र से तात्पर्य', पिछले दिनों नंगे पैरों', 'संशय की एक रात', 'महाप्रस्थान' 'प्रवाद पर्व' 'शबरी' उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं । इनमें 'संशय एक की रात', 'महाप्रस्थान,' 'प्रवाद पर्व', 'शबरी' और 'प्रार्थना पुरुष' उनके आख्यानक काव्य हैं । 'स्शय की एक रात' नाट्य शैली मे लिखी गई रचना है ।

नरेश मेहता कला या साहित्य को जीवन से अलग करके नहीं देखते । उन्होंने साहित्य को व्यक्ति द्वारा वृहत् की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया है । वे समाज के कल्याणकारी तत्त्वों को युग की बदलती हुई परिस्थितियों के मध्य नवीन के आलोक में प्रस्तुत करना चाहते हैं । इसलिए वे परंपरागत मान्यताओं एवं जड़ता को अस्वीकार करते हुए आगे बढ़ते है । नरेश मेहता काव्य की बहुआयामी शक्ति को धर्म और दर्शन के साथ तादात्मीकरण करने के पक्ष में हैं । उनका मानना है कि इसके बिना मानवीय चेतना का ऊर्ध्वगामी होना संभव नहीं । उन्हीं का कथन है– ''जांगलिकता से सांस्कृतिकता की ओर, देह से मन की ओर, जड़त्व से चेतनत्व की ओर मानवीय यात्रा संपन्न हुई । इसका एकमात्र प्रमाण काव्य है।''

नरेश मेहता की अधिकतर कविताओं को समीक्षात्मक दृष्टि से मूल्यांकित करें, तो काव्य सर्जन के एक बड़े भाग में प्रकृति–सौंदर्य एवं रोमेंटिक प्रवृत्तियों की बहुलता दृष्टिगत होती है । कुछ कविताएँ तो छायावादी काव्य सौंदर्य की झलक प्रस्तुत करती हैं, जिनमें लोकजीवन और लोकसंस्कृति का परिवेश भी परिलक्षित होता है–

"भिनसारे चक्की के संग
फेंक रही गीतों की किरनें
पास हृदय छाया लेटी है
देख रही मोती के सपने,
गीत न टूटे जीवन का यह कंगन बोल रहे।"

नरेश को मनुष्य की शक्ति में अटूट आस्था है । जीवन में निरंतर चलते रहना, सतत् गतिशील बने रहना प्रगति एवं विकास का द्योतक है । निरंतर गतिशील बने रहना, मनुष्य की जीवंतता का सबूत है। यह जरूरी है कि हम पुरातन, जीर्णशीर्ण मान्यताओं को अस्वीकार कर, नित नूतन मान्यताओं को ग्रहण करें । परिवर्तित होते जीवनमूल्यों को स्वीकार करना आवश्यक है । इसलिए नरेश मेहता अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हुए कहते हैं–

"मानव जिस ओर गया
नगर बने, तीर्थ बने
तुमसे है कौन बड़ा ?
गगन–सिंधु मित्र बने,
भूमि का भोगो सुख, नदियों का सोम पियो
त्यागों सब जीर्ण बसन, नूतन के संग–संग चलो।'

यहाँ छायावादी कवि पंत की 'द्रुत झरो' कविता का अनायास स्मरण हो जाना स्वाभाविक है।

लोकजीवन से गहरी संपृक्तता नरेश मेहता की कविताओं को एक अलग भावभूमि पर स्थापित करती है। लोकजीवन में मिलन और विद्रोह के न जाने कितने भावुक पक्ष कवि को प्रेमाभिव्यक्ति का अवसर देते हैं। फागुन का महीना मन में अजीब–सी उमंग भर देता है । ऐसे में विरही प्रिया का मन कितना मिलनातुर और उत्सुक होता हैं यह नरेश मेहता से अच्छा कौन जान सकता है–

"कागा बोले मोर अटरिया
इस पाहुन बेला में तूने
चौमासा क्यों किया पिया ?
क्यों किया पिया ?
यह टेसू–सी नील गगन मे हलद चाँदनी उग आई री
उग आई री
पर अभी न लौटे उस दिन गए सवेर के
पीले फूल कनेर के ।"

नरेश मेहता की कविताओं में बार–बार नवीनता को ग्रहण कर उसे आत्मसात करने का सुंदर संदेश विवृत हुआ है। उज्ज्वल भविष्य के लिए पुरातन का परित्याग और नित नूतनता का स्वीकरण आवश्यक है। भारतदेश का, संसार का, कल्याण इसी में छिपा है कि हम नवीनता के आलोक में निर्माण करना सीखें–

"नव निर्माण तुझे करना है
नहीं चाहिए जीर्ण पुरातन
बासी लहरों से/सरिता का कभी नहीं शृंगार हुआ है
जीर्ण पूज्य है /वर्तमान मेरी बांहे हैं।"

पुनः छायावादी कवि प्रसाद की रचना कामायनी की निम्नलिखित पंक्तियों का स्मरण हो रहा है–

"प्रक्रति के यौवन का शृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल ।"

'संशय की एक रात' नरेश मेहता की बहुत महत्त्वपूर्ण रचना है, जिसमें राम के मन में उठनेवाले अंतर्द्वंद्व को बहुत सहजता के साथ चित्रित किया गया है ।

वस्तुतः नरेश मेहता का काव्यसर्जन बहु आयामी एवं विस्तृत भावभूमि पर अवस्थित है । नई कविता के प्रमुख कवि के रूप में नरेश मेहता की पहचान एक ऐसे कवि के रूप में है, जो अपनी सांस्कृतिक जडों से पोषण प्राप्त कर नवीनता का सम्यक् सत्कार करता है और दोनों में समन्वय करते हुए अपनी रचनाओं को नवीन उद्भावनाओं से संपन्न बनाता है। यही नवीनता एवं प्रयोगशीलता उन्हें नई कविता में एक महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी बनाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

16.9 सारांश

इस इकाई के माध्यम से आपने आधुनिक हिंदी काव्य के कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण कवियों के विषय में जानकारी प्राप्त की, जिन्होंने अपनी काव्यप्रतिभा और सर्जनात्मकता से विभिन्न कालखण्डों में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई ।यहाँ 'द्रुतपाठ' की आवश्यकता एवं अपेक्षा के अनुरूप उन कवियों से संबंधित सामान्य जानकारी प्रस्तुत कर दी गई है, उसके अलावा संबंधित कवियों के काव्यसौंदर्य, उनकी काव्यसंवेदना ओर रचनात्मकता पर भी विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध करवा दी गई है, ताकि विधार्थी उन कवियों से संबंधित प्रश्नों का सटीक उत्तर दे सकें । प्रस्तुत इकाई का सारांश निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है –

- 'द्रुतपाठ' में सम्मिलित कवियों के विवेचन का उद्देश्य आधुनिक हिंदी काव्य के कतिपय विशिष्ट कवियों की सामान्य जानकारी देना है।
- 'द्रुतपाठ' में सम्मिलित कवि आधुनिक हिंदी की काव्ययात्रा में विभिन्न पड़ावों के महत्त्वपूर्ण कवि हैं, जिनका हिंदी कविता में कई तरह से विशेष योगदान है।
- 'द्रुतपाठ' के अंतर्गत जगन्नाथदास 'रत्नाकार', हरिवंशराय 'बच्चन', शमशेरबहादुर सिंह, जगदीश गुप्त, कुँवर नारायण, नरेश मेहता जैसे ख्यातिलब्ध कवियों से संबधित विवरण, विवेचन, विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।
- जगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्विवेदीयुगीन कवि हैं । द्विवेदीयुग में खड़ीबोली की व्यापक स्वीकार्यता के बावजूद जगन्नाथदास रत्नाकर ने ब्रजभाषा में काव्यरचना की क्लासिकल परंपरा का निर्वाह करते हुए आधुनिक हिंदी काव्य को 'उद्धव शतक' के रूप में सर्वोत्तम काव्यकृति प्रदान की है ।
- 'उद्धव शतक' का सूरदास की 'भ्रमरभीत' परंपरा में भी बहुत सम्मानित और ऊँचा स्थान है, जिसमें गोपियों के अकाट्य तर्क एवं मार्मिक उद्‌गार अभिव्यक्त हुए हैं।
- 'रत्नाकर' की अन्य रचनाओं में 'गंगा लहरी' का भी उल्लेखनीय स्थान है।
- 'रत्नाकर' प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के प्रकाशन वर्ष (सन् 1900) में संपादक मंडल के सदस्यों में सम्मिलित थे ।
- 'रत्नाकर' के 'उद्धव शतक' मे ब्रजभाषा की उच्चस्तरीय काव्य परपरा का निर्वाह तो मिलता ही है, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में समसामयिक संदर्भो से जोड़कर 'रत्नाकर' ने उसे और भी प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण बना दिया है ।
- ब्रजभाषा का माधुर्य, कथन की सहज, स्वाभाविक भंगिमा एवं गोपियों के मार्मिक उद्‌गार 'उद्धव शतक' को विशिष्ट रचना का अधिकारी बनाते हैं ।
- 'द्रुतपाठ' के अंतर्गत सम्मिलित हरिवंशराय 'बच्चन' आधुनिक हिंदी कविता के ऐसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं, जिन्होंने छायावादी काव्य में व्यक्त आंतरिक अनुभूतियों एवं वैयक्तिकता को यथार्थ के धरातल पर प्रतिष्ठित किया है । छायावाद की अतिकल्पना और अतिभावुकता को यथार्थपरक, आत्मपरक शैली में प्रस्तुत कर बच्चन जीवन की सचाइयों एवं अनुभूतियों को बहुत स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करते हैं।
- 'बच्चन' छायावाद और 'प्रगतिवाद' को जोड़नेवाली कड़ी हैं ।
- बच्चन 'मधुशाला', जिस पर' उमर खैयाम की रुबाइयों का प्रभाव है, से साहित्य जगत् में एकदम से चर्चित हो गए ।
- 'निशानिमंत्रण', 'आकुल अंतर', 'एंकात संगीत', 'व्याकुलविश्व' बच्चन की अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं।
- 'बच्चन' का काव्य उनके जीवन के अनुभूत सत्य को उजागर करता है ।
- 'बच्चन' की 'आत्मकथा' हिंदी आत्मकथा साहित्य में उत्कृष्ट रचना मानी जाती है।
- शमशेरबहादुर सिंह अपनी कविताओं की व्यापक रेंज की वजह से नई कविता में अपना अलग स्थान और महत्त्व रखते हैं।
- 'दूसरा सप्तक' के महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में शमशेरबहादुर सिंह प्रयोगशील कवि माने जाते हैं।
- छायावादी शैली के रूमानियत से आरंभ कर शमशेर जी प्रगतिवाद और प्रयोगशील कविता की ओर जुड़ते हैं ।
- मानवीय सरोकारों से जुड़े शमशेर जी चित्रकारी एवं गज़लों के लिए भी पहचाने जाते हैं ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- 'कुछ कविताएँ', 'कुछ और कविताएँ', 'चुका भी नहीं हूँ मैं', 'बात बोलेगीः हम नहीं', उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं।
- जगदीश गुप्त की पहचान आधुनिक हिंदी कविता के क्षेत्र में परंपरा और आधुनिकता का समन्वय करने वाले कवि के रूप में है।
- 'नई कविता' के लिए जगदीश गुप्त का विशेष योगदान है । 'नई कविता' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने 'नई कविता' आंदोलन को सकियता से आगे बढ़ाया ।
- जगदीश गुप्त कवि होने के साथ–साथ अच्छे चित्रकार भी रहे हैं ।
- 'युग्म' ,'बोधिवृक्ष','शंबूक', गोपा–गौतम', 'नाव के पाँव' तथा 'हिमबिद्ध' उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।
- कुंवर नारायण 'तीसरा सप्तक' के प्रमुख कवियों में हैं ।
- वे विचारशील चिंतक कवि के रूप में जाने जाते हैं, जिनकी कविताओं में वैज्ञानिकबोध विवृत हुआ है ।
- 'आत्मजयी' उनका प्रसिद्ध प्रबंध काव्य है, जिसमें नचिकेता आज के आधुनिक मनुष्य का प्रतीक है ।
- नरेश मेहता 'दूसरा सप्तक' के महत्त्वपूर्ण एवं प्रमुख कवि के रूप में जाने जाते हैं ।
- नरेश मेहता प्रयोगशील कवियों में अपनी अलग पहचान रखते हैं ।
- नरेश मेहता की कविताओं में वैदिक ऋचाओं के बिंब आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में बहुत टटके रूप में प्रयुक्त हुए हैं।
- लोक जीवन से गहरी संपृक्तता नरेश मेहता की कविताओं में अलग रंग भरती है।
- 'संशय की एक रात', 'बनपाखी सुनो', 'बोलने दो चीड़ो को' उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं ।

16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. बच्चन सिंह
2. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास– डॉ. बच्चन सिंह
3. हिंदी साहित्य का इतिहास– डॉ. नगेंद्र
4. नई कविता और अस्तित्ववाद– डॉ. रामविलास शर्मा
5. कविता के नए प्रतिमान– डॉ. नामवर सिंह
6. नए कवि (भाग–1–4)– डॉ संतोष तिवारी

16.11 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न

1. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का साहित्यिक मूल्यांकन कीजिए ।
2. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का परिचय देते हुए 'उद्धव शतक' के आधार पर उनकी काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए ।
3. हरिवंशराय 'बच्चन' का साहित्यिक परिचय दीजिए ।
4. बच्चन के काव्य का मूल्यांकन कीजिए ।
5. शमशेरबहादुर सिंह का परिचय देते हुए, उनका साहितियक महत्त्व स्पष्ट किजिए ।
6. 'नई कविता' के क्षेत्र में शमशेरबहादुर सिंह के योगदान का मूल्यांकन कीजिए ।
7. 'नई कविता' के लिए जगदीश गुप्त के योगदान और महत्त्व को स्पष्ट कीजिए ।
8. जगदीश गुप्त का काव्यगत मूल्यांकन कीजिए ।
9. कुँवर नारायण का साहित्यिक परिचय देते हुए 'आत्मजयी' के संदर्भ में उनका मूल्यांकन कीजिए ।
10. नरेश मेहता के कवि व्यक्तित्व का आलोचनात्मक परिचय दीजिए ।
11. नरेश मेहता प्रयोगशील कवि हैं, उदाहरण देकर स्पष्ट क्रीजिए ।
12. 'नई कविता' में नरेश मेहता का योगदान स्पष्ट कीजिए ।

लघूत्तरीय प्रश्न

1. जगन्नाथदास रत्नाकर का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
2. 'उद्धव शतक' का महत्त्व स्पष्ट कीजिए ।
3. बच्चन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।
4. बच्चन की प्रमुख कृतियों का उल्लेख कीजिए ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. छायावादोत्तर कवियों में बच्चन का महत्त्व समझाइए ।
6. शमशेरबहादुर सिंह पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए ।
7. शमशेरबहादुर सिंह की रचनाओं का परिचय दीजिए ।
8. नई कविता और शमशेरबहादुर सिंह विषय पर संक्षिप्त निबंध लिखिए ।
9. नई कविता के क्षेत्र में जगदीश गुप्त का योगदान समझाइए ।
10. जगदीश गुप्त की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
11. कुँवर नारायण का संक्षेप में परिचय दीजिए ।
12. 'आत्मजयी' को संक्षेप में समझाइए ।
13. कुँवर नारायण का साहित्यिक योगदान स्पष्ट कीजिए ।
14. कुँवर नारायण की रचनाओं के नाम लिखिए ।
15. नरेश मेहता का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।
16. नरेश मेहता के साहित्यिक महत्त्व को स्पष्ट कीजिए ।
17. नरेश मेहता की प्रयोगशीलता पर एक लघुनिबंध लिखिए ।
18. नरेश मेहता की रचनाओं का परिचय दीजिए ।

अतिलघूत्तरीय

1. 'रत्नाकर' का पूरा नाम लिखिए ।
2. 'उद्धव शतक' किसकी रचना है ?
3. 'उद्धव शतक' किस परंपरा का काव्य है ?
4. 'रत्नाकर' की अन्य प्रमुख रचना कौन–सी है ?
5. 'उद्धव शतक' की महत्त्वपूर्ण विशेषता क्या है ?
6. 'रत्नाकर' किस पत्रिका के संपादक मंडल में थे ?
7. हरिवंशराय 'बच्चन' का संबंध किस शहर से है ?
8. 'बच्चन' की सर्वाधिक चर्चित कृति कौन सी है ?
9. 'बच्चन' किस धारा के कवि हैं ?
10. हिंदी कविता में बच्चन को किस आंदोलन का प्रवर्तक माना जाता है ?
11. बच्चन की आत्मकथा के पहले भाग का क्या नाम है ?
12. 'बच्चन' के साहित्य की मूल संवेदना क्या है ?
13. बच्चन की 'मधुशाला' पर किस रचनाकार का प्रभाव है ?
14. शमशेरबहादुर सिंह कौन–से सप्तक के कवि हैं ?
15. शमशेरबहादुर सिंह का काव्यसर्जन आधुनिक हिंदी काव्य के किन–किन पड़ावों का स्पर्श करता है ?
16. शमशेर जी की रुचि साहित्य के अतिरिक्त किस में है ?
17. शमशेर जी किसके प्रभाव से प्रगतिवादी विचारधारा की ओर जुड़े ?
18. शमशेर बहादुर सिंह के साथ उनके समकालीन अन्य किन–किन कवियों के नाम आते हैं ?
19. शमशेर जी की दो प्रमुख रचनाएँ कौन–सी हैं ?
20. जगदीश गुप्त किस धारा के कवि हैं ?
21. जगदीश गुप्त किस विश्वविद्यालय से संबद्ध थे ?
22. जगदीश गुप्त किस महत्त्वपूर्ण पत्रिका के संपादक थे ?
23. 'नई कविता' नामक पत्रिका का प्रकाशन कब और कहाँ से हुआ ?
24. कुँवर नारायण की प्रमुख रचना कौन–सी है ?
25. कुँवर नारायण किस सप्तक के कवि हैं ?
26. कुँवर नारायण किस पत्रिका के संपादक थे ?
27. नरेश मेहता किस सप्तक के कवि हैं ?
28. 'दूसरा सप्तक' कब प्रकाशित हुआ ?
29. नरेश मेहता की दो प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए ।
30. नरेश मेहता को किस तरह का कवि माना जाता है ?

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परिशिष्ट

आधुनिक काल (1850 ई. से ......)
(हिंदी कविता की विकासयात्रा)

भारतेंदु युग (1850–1900 ई) पुनर्जागरण काल/ सुधारवादी युग	द्विवेदी युग (1900–1920 ई) पूर्वस्वच्छंदताकाल/ आदर्शवादी युग	छायावादी युग (1920–1940 ई.) स्वच्छंदतावादी युग/ रोमेंटिक काव्यधारा	प्रगतिवाद (1940–1950 ई.) यथार्थवादी युग/समाजपरक यथार्थवाद	कविता 1960 ई. के बाद	सन् 1960 के बाद प्रमुख काव्य आन्दोलन / प्रमुख कवि
(खड़ीबोली के पुरस्कर्ता, आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माता) बदरीनारायणचौधरी 'प्रेमघन' अंबिकादत्त व्यास, जगमोहन सिंह, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरणगोस्वामी, सुधाकर द्विवेदी, राधाकृष्णदास, रामकृष्ण वर्मा, **भाषा** ब्रज, आरंभिक खड़ीबोली **प्रवृत्तियाँ** राष्ट्रवाद, सुधारवाद, श्रृंगार, भक्ति, प्रकृति, प्राचीन–अर्वाचीन परंपरा–प्रगति का संगत उत्कर्ष, लोकजीवन पर शुभ प्रभाव ।	श्रीधर पाठक (खड़ीबोली के प्रथम कवि, स्वच्छंदतावादी) अयोध्यासिंहउपाध्याय 'हरिऔध' (खड़ीबोली के प्रथम महाकाव्यकार), जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (आधुनिक काल में ब्रजभाषा के सर्वोच्च कवि 'उद्धव शतक' के प्रणेता) मैथिलीशरण गुप्त (राष्ट्रकवि, भारत भारती के प्रणेता, साकेत के रचयिता) रामनरेश त्रिपाठी (स्वच्छंद काव्यधारा के कवि) गयाप्रसादशुक्ल 'सनेही' गोपालशरण सिंह रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' नाथूरामशंकर 'शर्मा' सियारामशरण गुप्त मुकुटधर पांडेय (छायावाद के प्रवर्तक) लोचनप्रसाद पांडेय सत्यनारायण 'कविरत्न' (भ्रमरदूत के रचयिता) ाषा प्रायः सभी कवियों द्वारा आरंभ में ब्रज, बाद में खड़ीबोली, **प्रवृत्तियाँ** आदर्शवाद राष्ट्रवाद, प्रकृति, परंपरा और प्रगति का उत्कर्ष, भावी स्वच्छंदतावाद की पृष्ठभूमि, लोकप्रिय एवं व्यापक सर्जन	जयशंकर प्रसाद (छायावाद के प्रथम महत्त्वपूर्ण कवि) कामायनी के रचयिता सूर्यकांतत्रिपाठी 'निराला' (प्रगतिवाद–प्रयोगवाद के प्रेरक) सुमित्रानंदन पंत (प्रकृति के कवि) महादेवी वर्मा (विरह–वेदना की कवयित्री) रामकुमार वर्मा भगवतीचरण वर्मा **राष्ट्रीय सांस्कृति काव्यधारा/ आत्मपरक वैयक्तियथार्थ** माखनलाल चतुर्वेदी (एक भारतीय आत्मा नाम से लेखन) बालकृष्णशर्मा 'नवीन' सुभद्राकुमारी चौहान हरिवंशराय 'बच्चन' (हालावाद के प्रवर्तक) रामेश्वरशुक्ल 'अंचल' रामधारीसिंह 'दिनकर' **भाषा** परिनिष्ठित/परिमार्जित खड़ीबोली **प्रवृत्तियाँ** स्वच्छंदतावाद स्वच्छंदतावादी आदर्श, प्रतीकवाद उदार नारीचेतना, राष्ट्रीयता, सौंदर्य–प्रेम, नारी संवेदन, आत्मपरक वैयक्तिक यथार्थ नव्य शैली–शिल्प खड़ीबोली का सर्वश्रेष्ठ काव्यसर्जन	गजाननमाधव 'मुक्तिबोध' रामविलास शर्मा नागार्जुन केदारनाथ अग्रवाल शिवमंगलसिंह 'सुमन' त्रिलोचन शास्त्री प्रभाकर माचवे शमशेरबहादुर सिंह **प्रवृत्तियाँ** सामाजिक यथार्थ, राष्ट्रीय चेतना वर्गचेतना–सामाजिक वैषम्य साम्राज्यवाद का विरोध, पुरातनता का विरोध, नवीनता का आग्रह शोषित के प्रति सहानुभूति नए युग, नए मानव की कल्पना नारी स्वातंत्र्य/जनक्रांति का आह्वान, व्यंग्य बोध/सपाट–खुरदरी भाषा **प्रयोगवाद/नई कविता** **(1943 से 1960 ई.)** सच्चिदानंदहीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' (प्रवर्तक) नरेश मेहता शमशेरबहादुर सिंह रघुवीरसहाय भवानीप्रसाद मिश्र/किर्ति चौधरी शकुंतला माथुर/अजित कुमार धर्मवीर भारती/सर्वेश्वरदयाल सक्सेना कुँवरनारायण/श्रीकांत वर्मा जगदीश गुप्त/केदारनाथ सिंह विजयदेवनारायण साही **उपलब्धियाँ** लघुमान की स्थापना, क्षण का महत्व, अर्थ की लय, आदि **प्रवृत्तियाँ** बौद्धिकता/अहंवाद/उलझी संवेदनाएँ व्यक्तिवादिता/नवीन प्रतीक–बिंब–नवीन उपमान /नवीन भाषा–शिल्प/नवीन छंद आधुनिक भावबोध/आत्मसत्य की उपलब्धि क्षण अनुभूति की अभिव्यक्ति/नैराश्य–पीड़ाबोध मृत्युबोध, व्यंग्यपरकता, इत्यादि	**प्रमुख कवि–** सुदामापांडेय 'धूमिल' (समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर) लीलाधर जगूड़ी चंद्रकांत देवताले विनोदकुमार शुक्ल कुमारविमल अरुणकमल मंगलेश डबराल राजेश जोशी उदयप्रकाश असद जैदी अशोक वाजपेयी ऋतुराज/विष्णुखरे/ विजेंद्रप्रताप शुक्ल, ज्ञानेंद्रपति, इकबाल रब्बी, अब्दुल बिस्मिल्लाह एवं अन्य **नवगीत** शंभुनाथ सिंह, रमेश रंजक, केदारनाथ सिंह, मोहो बी.ए., रामदरश मिश्र, ठाकुरप्रसाद सिंह, रवीन्द्र भ्रमर, गोपालदास नीरज, बालस्वरूप राही, रामावतार त्यागी, चन्द्रसेन विराट, ठाकुरप्रसाद सिंह, उमाकान्त मालवीय, कैलाश गौतम, माहेश्वर तिवारी, वीरेन्द्र मिश्र, रमानाथ अवस्थी, बुद्धिनाथ मिश्र, किशन सरोज आदि	**समकालीन कविता** (सुदामापांडेय 'धूमिल') **अकविता** (श्यामपरमार – प्रवक्ता, जगदीशचतुर्वेदी, मुद्राराक्षस, रवींद्रनाथ त्यागी, अतुल भारद्वाज, गंगाप्रसाद विमल, तारा निक्कू, राजीव सक्सेना, सौमित्रमोहन आदि) **भूखी पीढ़ी और बीट कविता** (राजकमल चौधरी, मलय चौधरी, केसनीप्रसाद चौरसिया) **श्मशानी पीढ़ी** (निर्भयमलिक, सकलदीप सिंह) **ताजी कविता** (लक्ष्मीकांत वर्मा) **अस्वीकृत कविता** (घनश्याम रंजन, श्रीरामशुक्ल, सुशीलकुमार, बजरंग विश्नोई, सतीशजमाली, शरद, नीलम, शेषमणि पांडेय, इरीश भादानी आदि) **युयुत्सावादी कविता** – (शलभश्रीरामसिंह, चंद्रमौलि उपाध्याय, राजीव सक्सेना, रामाश्रय, सविता आदि) **साठोत्तरी कविता** – (सलिल गुप्त, सुरेश सलिल, ललित शुक्ल, चंद्रेश गुप्त, बैजनाथ, जीवनशुक्ल) **सहजकविता** – (रवीन्द्र भ्रमर, अजयकुमार) **सनातन सूर्योदयी नूतन कविता** – (वीरेन्द्रकुमार जैन) **प्रतिश्रुति पीढ़ी** – (मृत्युंजय उपाध्याय, निरंजन महखर, श्यामसुन्दर घोष, कुमारेंद्र पारसनाथसिंह, जुगमिंदर तायल, अजीत पुस्कल, रणजीत, राजीव सक्सेना) **अन्य आन्दोलन** सीमांतक कविता, सकविता, शिविर कविता, अन्यथावादी कविता, क्षुत्कातर कविता, उत्कविता, समाहारात्मक कविता, विद्रोही कविता, अधुनातन कविता, अत्याधुनिक कविता, नूतन कविता, निर्दिशायामी कविता, लिंगावादलमोतवादी कविता, एब्सर्ड कविता, कोलाज कविता, साम्प्रतिक कविता, दीपांतर कविता, अति कविता, अगली कविता, प्रतिबद्ध कविता, नंगी कविता, गलत कविता, शनिश्चरी कविता, धिक्कारवादी कविता, शुद्धकविता, कैप्सूल कविता, विचार कविता, आज की कविता, आविकय कविता, आदि। **अधुनातन कवि** दुष्यंतकुमार, कैलास वाजपेयी, रामकुमार कुंभज, मणिमधुकर, मलयज, देवेन्द्रकुमार, वेणुगोपाल, आलोकधन्वा, आदि। **प्रवृत्तियाँ** • मनुष्य जीवन की विषमताओं एवं जटिलताओं की समसामयिक अभिव्यक्ति। • विविध आंदोलनों के माध्यम से नाम की चाह। • मोहभंग, विद्रोह का स्वर, आक्रोश व्यंग्य, सपाट बयानी, अतियथार्थप्रियता आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूं–341306 (राज.)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

एम.ए. हिन्दी (पूर्वार्द्ध)

प्रथम पत्र : आधुनिक हिन्दी काव्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. नन्दलाल कल्ला**
पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

2. **प्रो. वेदप्रकाश शर्मा**
पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज)

3. **प्रो. जगमालसिंह**
पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
मेघालय विश्वविद्यालय, मेघालय (आसाम)

4. **डॉ. ममता खाण्डल**
सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, किशनगढ़ (राज.)

5. **प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी**
निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)

6. **प्रो. समणी ऋजुप्रज्ञा**
आचार्या, जैन विश्वभारती संस्थान,
लाडनूँ (राज.)

लेखक

डॉ. शम्भूनाथ तिवारी

संपादक

डॉ. वेद शर्मा

कापीराइट

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 700

प्रकाशक

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं–341 306 (राज.)

Printed at

M/s Nalanda Offset,
G1/232, RIICO Industrial Area, Heerawala Ext., Konota, Jaipur (Raj.)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

स्नातकोत्तर (एम.ए.) पूर्वार्द्ध

विषय – हिन्दी साहित्य

पाठ्यक्रम

प्रथम प्रश्नपत्र – आधुनिक काव्य

समय : 3 घंटे **पूर्णांक : 80+20**

प्रस्तावित कवि / कविताएं / पाठ्यग्रन्थ

जयशंकर प्रसाद – **कामायनी** – (केवल श्रद्धा, लज्जा एवं इड़ा सर्ग)
मैथिलीशरण गुप्त – **साकेत** – (केवल नवम सर्ग)
रामधारीसिंह 'दिनकर' – **कुरुक्षेत्र** – (केवल तृतीय सर्ग)
सूर्यकान्तत्रिपाठी 'निराला' – **राम की शक्ति पूजा**
सच्चिदानन्दहीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' – **नदी के द्वीप, असाध्य वीणा, मैंने देखा एक बूंद, सांप**
आचार्य महाप्रज्ञ – **ऋषभायण** – (चौथा सर्ग)
द्रुतपाठ – जगन्नाथदास 'रत्नाकर', हरिवंशराय 'बच्चन', शमशेरबहादुर सिंह, जगदीश गुप्त, कुँवरनारायण, नरेश मेहता।

सहायक पुस्तकें –

कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन – द्वारकाप्रसाद सक्सेना।
नई कविता नए धरातल – हरिचरण शर्मा
हिन्दी के प्रतिनिधि आधुनिक कवि – द्वारकाप्रसाद सक्सेना।
कविता के नए प्रतिमान – नामवरसिंह ।
अधुनातन कवि – रामप्रसाद मिश्र।
युगचरण दिनकर – सावित्री सिन्हा।
निराला की काव्य साधना – रामविलास शर्मा।
आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास – डॉ. बच्चनसिंह
हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – डॉ. बच्चनसिंह

अंक विभाजन –

1.	3 व्याख्याएं	3 x 8	=	24
2.	2 निबन्धात्मक / आलोचनात्मक प्रश्न	2 x 10	=	20
3.	5 लघूत्तरीय प्रश्न	4 x 4	=	16
4.	20 अतिलघूत्तरीय प्रश्न	20 x 1	=	20

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अनुक्रमणिका

संवर्ग–1 : आधुनिक काल एवं आधुनिक हिन्दी काव्य		
इकाई – 1	आधुनिक काल – सामान्य परिचय	1
इकाई – 2	आधुनिक हिन्दी काव्य की विकासयात्रा	7
संवर्ग–2 : आधुनिक काल के अंग		
इकाई – 3	भारतेंदु युग : राष्ट्रीय सामाजिक चेतना का युग	12
इकाई – 4	द्विवेदी युग : परिष्कार एवं आदर्शवादी भावनाओं का युग	18
इकाई – 5	छायावाद : आधुनिक हिन्दी कविता का पूर्ण विकास	27
इकाई – 6	प्रगतिवाद : ययार्थवादी दृष्टि का काव्य	38
इकाई – 7	प्रयोगवाद : नवीन उद्‌भावनाओं का काव्य	45
इकाई – 8	नई कविता : आधुनिक हिन्दी काव्य का विस्तार	53
इकाई – 9	साठोत्तरी कविता : मोहभंग एवं विद्रोह का स्वर	61
संवर्ग–3 : आधुनिक काल के प्रमुख कवि		
इकाई – 10	मैथिलीशरण गुप्त **साकेत** (नवमसर्ग)	71
इकाई – 11	जयशंकर प्रसाद **कामायनी** (श्रद्धा, लज्जा एवं इड़ा सर्ग)	119
इकाई – 12	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' **राम की शक्तिपूजा**	184
इकाई – 13	रामधारीसिंह 'दिनकर' **कुरुक्षेत्र** (तृतीय सर्ग)	207
इकाई – 14	सच्चिदानंदहीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' **नदी के दीप, असाध्य वीणा, मैंने देखा एक बूँद, साँप**	236
इकाई – 15	आचार्य महाप्रज्ञ **ऋषभायण** (चौथा सर्ग)	266
संवर्ग–4 : द्रुत पाठ		
इकाई – 16	**द्रुतपाठ** – जगन्नाथदास 'रत्नाकर', हरिवंशराय बच्चन, शमशेरबहादुर सिंह, जगदीश गुप्त कुंवरनारायण, नरेश मेहता।	292

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्नपत्र – परिचय

एम.ए. (हिन्दी – पूर्वार्द्ध) के प्रथम प्रश्नपत्र के रूप में प्रस्तुत पुस्तक खण्ड के अन्तर्गत आधुनिक काव्य पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। आधुनिक काव्य के पाठ्यक्रम के अनुरूप विषय पर विस्तार से पाठ्यसाम्रगी का बोधगम्य विवेचन – विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक काव्य का सामान्य परिचय देते हुए, आधुनिक काव्य की विकासयात्रा को विस्तृत रूप से प्रस्तुत करते हुए, प्रत्येक कालखण्ड की प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार करने का उद्देश्य विद्यार्थियों को इस अंश से संबंधित व्यापक सूचनाएं देना है। सम्पूर्ण पाठ्यसामग्री को अध्ययन की सुविधा से कुल सोलह इकाइयों में विभाजित किया गया है, जो निम्नवत् हैं–

संवर्ग–1 : आधुनिक काल एवं आधुनिक हिन्दी काव्य

इकाई – 1 : आधुनिक काल – सामान्य परिच्य

इकाई – 2 : आधुनिक हिन्दी काव्य की विकासयात्रा

संवर्ग–2 : आधुनिक काल के अंग

इकाई – 3 : भारतेंदु युग : राष्ट्रीय सामाजिक चेतना का युग

इकाई – 4 : द्विवेदी युग : परिष्कार एवं आदर्शवादी भावनाओं का युग

इकाई – 5 : छायावाद : आधुनिक हिन्दी कविता का पूर्ण विकास

इकाई – 6 : प्रगतिवाद : ययार्थवादी दृष्टि का काव्य

इकाई – 7 : प्रयोगवाद : नवीन उद्भावनाओं का काव्य

इकाई – 8 : नई कविता : आधुनिक हिन्दी काव्य का विस्तार

इकाई – 9 : साठोत्तरी कविता : मोहभंग एवं विद्रोह का स्वर

संवर्ग–3 : आधुनिक काल के प्रमुख कवि

इकाई – 10 : मैथिलीशरण गुप्त **साकेत** (नवम सर्ग)

इकाई – 11 : जयशंकरप्रसाद **कामायनी** (श्रद्धा, लज्जा एवं इड़ा सर्ग)

इकाई – 12 : सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' **राम की शक्तिपूजा**

इकाई – 13 : रामधारीसिंह 'दिनकर **कुरुक्षेत्र** (तृतीय सर्ग)

इकाई – 14 : सच्चिदानंदहीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' **नदी के दीप, असाध्य वीणा मैंने देखा एक बूँद,साँप**

इकाई – 15 : आचार्य महाप्रज्ञ **ऋषभायण** (चौथा सर्ग)

संवर्ग–4 : द्रुत पाठ

इकाई – 16 : **द्रुतपाठ** – जगन्नाथदास 'रत्नाकर', हरिवंशराय बच्चन, शमशेरबहादुर सिंह, जगदीश गुप्त कुंवरनारायण, नरेश मेहता।

उपर्युक्त इकाइयों के माध्यम से विषय–विवेचन के साथ विषय–संबंधित अन्य पक्षों को विस्तार से समझाया गया है।

इकाई–1 में हिन्दी साहित्य के इतिहास का कालविभाजन प्रस्तुत कर, आधुनिक काल के नामकरण का औचित्य आदि पर विचार किया गया है। हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल खड़ीबोली गद्य एवं पद्य की नवीन प्रवृत्तियों के कारण विशेष उल्लेखनीय कहा जा सकता है। गद्य की नवीन प्रवृति आधुनिक काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना होने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसका काल को गद्यकाल की संज्ञा दी थी। बावजूद इसके पद्य रचना की दृष्टि से भी गह कालखण्ड बहुत उल्लेखनीय है। प्रस्तुत इकाई में आधुनिक काव्य की पृष्ठभूमि पर विचार किया गया है।

इकाई–2 में आधुनिक हिन्दी काव्य के विकास पर व्यापक विचारविमर्श किया गया है। आधुनिक परिवेश में बदली हुई परिस्थितियों के कारण आधुनिक काल अपने पूर्ववर्ती कालों से एकदम अलग है। ऐसी परिस्थिति में भारतेंदु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी कविता के अग्रदूत बने। साहित्यकार से बड़े साहित्य निर्माता के रूप में हिन्दी के लिए भारतेंदु की सेवाएं अतुलनीय हैं। आधुनिक हिन्दी की नींव भारतेंदु ने रखी। इसलिए वह पूरा कालखंड 'भारतेंदु युग' के नाम से जाना जाता है। भारतेंदु युग से आरंभ होकर आधुनिक हिन्दी कविता का विकास द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, साठोत्तरी कविता आदि आंदोलनों के रूप में हुआ। इन पड़ावों से गुजरती हुई हिन्दी कविता – धारा आज भी उसी वेग से सतत प्रवहमान है। इस इकाई में आधुनिक हिन्दी काव्य की विकासयात्रा के विभिन्न पड़ावों को संक्षेप में व्याख्यायित किया गया है।

इकाई–3 आधुनिक हिंदी कविता के प्रथम चरण 'भारतेंदु युग' के विवेचन – विश्लेषण से संबंधित है। 'भारतेंदु युग' आधुनिक हिंदी काव्य की भूमिका है। आधुनिक हिन्दी साहित्य की लगभग समस्त विधाओं में सर्जन करते हुए भारतेंदु ने खड़ीबोली में काव्य सर्जन का मार्ग प्रशस्त किया। वे खड़ीबोली हिंदी कविता के जन्मदाता हैं। वे आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माता कहे जाते हैं। अपने युग का नेतृत्व करने के कारण इस युग का नामकरण भारतेंदु के नाम पर 'भारतेंदु युग' किया गया है, जो सर्वथा उपयुक्त एवं सटीक है। इस इकाई के माध्यम से आधुनिक हिंदी कविता के इस प्रथम चरण पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इस काल की समस्त प्रवृत्तियों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत इकाई के माध्यम से किया गया है।

इकाई–4 में आधुनिक हिंदी कविता के द्वितीय चरण, अर्थात द्विवेदी युग की प्रमुख प्रवृत्तियों के संबंध में विचार विमर्श किया गया है। आरंभ करने की दृष्टि से 'भारतेंदु युग' निःसंदेह आधुनिक काव्य का प्रस्थान बिंदु है, पर उसका विस्तार और विकास द्विवेदीयुग में हुआ। भाषा परिष्कार के साथ–साथ आदर्शवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति द्विवेदीयुगीन कविता की प्रमुख विशेषता है। इस युग में कविता के क्षेत्र में खड़ीबोली को समुचित प्रतिष्ठा मिली। श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' मैथिलीशरण गुप्त खड़ीबोली कविता की दृष्टि से द्विवेदी युग की उपलब्धि हैं। राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रगौरव आदि की दृष्टि से यह युग जनभावनाओं की व्यापक अभिव्यक्ति करता है। इस इकाई के माध्यम से 'द्विवेदी युग' का समुचित आंकलन करने का प्रयास किया गया है।

इकाई–5 आधुनिक हिन्दी कविता के सबसे प्रौढ़ एवं विकसित युग 'छायावाद' के मूल्यांकन से संबद्ध है। छायावाद, जिसे पूर्व में 'रहस्यवाद' के पर्याय के रूप में जाना जाता रहा, रोमेंटिक भावनाओं से ओतप्रोत वैयक्तिक आंतरिक अनुभूतियों की सफल अभिव्यक्ति के कारण आधुनिक हिन्दी कविता में विशिष्ट महत्त्व और स्थान रखता है। काव्यकला की दृष्टि से छायावादी कविता उत्कृष्ट है। प्रकृति प्रेम, नारी सौंदर्य, प्रेम, मानवतावादी भावनाएं आदि छायावाद की प्रमुख विशेषताएं हैं। इसकाल खंड ने हिंदी कविता को जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांतत्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत एवं महादेवी वर्मा जैसे काव्य रत्न दिए हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण काव्यांदोलन का सम्पूर्ण मूल्यांकन इस इकाई के माध्यम से किया गया है, जहां इसकाल की प्रमुख विशेषताओं को उदाहरण सहित स्पष्ट करने का प्रयास है।

इकाई–6 में आधुनिक हिंदी कविता एवं यथार्थदृष्टि संपन्न आंदोलन 'प्रगतिवाद' के विवेचन – विश्लेषण से संबंधित है। प्रगतिवाद छायावादी कविता की अतिकल्पनाशीलता, अतिभावुकता अतिरूमानियत और अतिआंतरिकता की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रतिक्रिया स्वरूप सामने आया। कार्लमार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद दर्शन पर आधारित समाजवादी – जनवादी दृष्टि संपृक्त प्रगतिवादी कविता ने वर्ग संघर्ष के सिद्धांत को स्वीकार करते हुए आम आदमी के पक्ष में अपनी पक्षधरता स्पष्ट की। जनचेतना को जाग्रत करने तथा जन भावनाओं को उद्वेलित करने में इस आंदोलन की प्रभावी भूमिका रही। इस दृष्टि से प्रस्तुत इकाई में इस यथार्थवादी काव्यांदोलन को जांचने – परखने का प्रयास किया गया है।

इकाई–7 प्रयोगशील विचारधारावाले कवियों की भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करनेवाले महत्त्वपूर्ण काव्यांदोलन 'प्रयोगवाद से संबंधित है। प्रगतिवादी कविता को 'नारा' और 'शोर' की संज्ञा देनेवाले प्रयोगवादियों ने 'अज्ञेय' के नेतृत्व में अपना आन्दोलन सक्रिय किया। 'तार सप्तक' के प्रकाशन के साथ ही प्रयोगवाद का आरंभ माना जाता है, जिसके सभी सात कवि कविता में अपने नित नवीन प्रयोगों के कारण अलग से जाने – पहचाने गए। इस इकाई के माध्यम से प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों के आलोक में 'प्रयोगवाद' पर सम्यक् प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

इकाई–8 में प्रयोगवाद के ही अगले पड़ाव, जिसे 'अज्ञेय' ने 'नई कविता' के नाम से पुकारे जाने का आग्रह किया, की महत्त्वपूर्ण एवं प्रमुख प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। हालांकि प्रयोगवाद एवं नई कविता के मध्य एकदम से कोई विभाजक रेखा खींचना मुश्किल है, फिर भी प्रयोगवाद से जुड़े सारे कवि अपने को आगे नई कविता का कवि घोषित करते हैं, उनकी कविताओं में कुछ ऐसी नवीनताएं एवं विशेषताएं हैं जो उन्हें प्रयोगवादी दृष्टि से पृथक करती हैं। दूसरे अर्थों में नई कविता को प्रयोगवाद की विकसित अवस्था कहा जा सकता है। इस तरह प्रस्तुत इकाई के माध्यम से नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

इकाई–9 में सन् 1960 के बाद आधुनिक हिंदी कविता में आए परिवर्तनों को रेखांकित करने का प्रयास है। साठोत्तरी काव्य आंदोलनों में नामगणना के आधार पर इतने ढेर सारे आंदोलन उभर कर सामने आए कि उन्हें 'आंदोलन के लिए आंदोलन' कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा। ऐसे ही तमाम आंदोलनों में से कुछ प्रमुख आंदोलनों का परिचय करवाने की दृष्टि से इस इकाई में उनका परिचयात्मक – समीक्षात्मक उल्लेख किया गया है।

इकाई–10 और उससे आगे की इकाइयों में पाठ्यक्रम के अनुरूप निर्धारित आधुनिक काल के महत्त्वपूर्ण कवियों एवं उनकी विशिष्ट महत्त्वपूर्ण कविताओं के परिप्रेक्ष्य में विचार किया गया है। इस दृष्टि से इकाई – 10 के अन्तर्गत आधुनिक हिन्दी काव्य के सबसे व्यापक एवं रामकथा को विस्तार देकर उसे लोकप्रिय बनानेवाले राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त से संबंधित पाठ्यसामग्री प्रस्तुत की गई है। 'साकेत' की रचना के माध्यम से गुप्त जी ने 'महाकाव्यकार' के रूप में व्यापक ख्याति अर्जित की। 'साकेत' का 'नवमसर्ग' साकेत का मेरुदंड तथा गुप्त जी की अक्षयकीर्ति का आधार भी है। 'नवमसर्ग' के परिप्रेक्ष्य में गुप्त जी की काव्यकला का विस्तृत विवेचन इस इकाई का प्रतिपाद्य है।

इकाई–11 छायावाद के आधार स्तंभ एवं प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद के विवेचन – विश्लेषण से संबद्ध है। 'कामायनी' जिसे छायावाद का उपनिषद कहा जाता है, प्रसाद की काव्यप्रतिभा का प्रतीक काव्य है। 'कामायनी' का काव्यत्व प्रसाद की काव्यप्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन है। वस्तुतः कमायनी के कुछ महत्त्वपूर्ण सर्गों, श्रद्धा, लज्जा एवं इड़ा, से संबंधित इस अध्याय में विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

इकाई–12 छायावादी कविता में नव्यता एवं मौलिकता के वाहक छायावादी कवियों में सबसे प्रखर एवं जाज्वल्यमान कवि सूर्यकांतत्रिपाठी 'निराला' तथा उनकी श्रेष्ठ कविता 'राम की शक्तिपूजा' पर केंद्रित है। 'राम की शक्ति पूजा'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आधुनिक हिंदी कविता में युगांतरकारी परिवर्तन की सूचना देनेवाली कविता है। 'लंबी कविता' की भूमिका प्रस्तुत करने के कारण यह कविता अपना विशिष्ट महत्त्व रखती है। इस इकाई में इस दृष्टि से 'राम की शक्ति पूजा' पर विशेष सामग्री प्रस्तुत की गई है।

इकाई–13 में सांस्कृतिक चेतना के सर्वाधिक जागरूक ऊर्जावान कवि रामधारीसिंह 'दिनकर' एवं उनकी विशिष्ट रचना 'कुरुक्षेत्र' का परिचय करवाया गया है। 'कुरुक्षेत्र' में महाभारत की कथा को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में बहुत प्रासंगिक एवं प्रामाणिक तौर पर प्रस्तुत किया गया है। 'कुरुक्षेत्र' का तृतीय सर्ग भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को युद्धनीति एवं धर्मनीति की शिक्षा देने के कारण बहुत महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है। इस दृष्टि से इस इकाई में अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

इकाई–14 में प्रयोगवादी कविता के प्रवर्तक सच्चिदानंदहीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कतिपय महत्त्वपूर्ण कविताओं पर महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है, जिनमें 'अज्ञेय' की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं क्लासिकल कविता 'असाध्य वीणा' भी सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त इकाई में 'नदी के दीप', 'मैंने देखा एक बूंद' और 'साँप नामक' कविताएं सम्मिलित हैं।

इकाई–15 में 'तेरापंथ' के प्रवर्तक युगांतरकारी संत आचार्य तुलसी के योग्यतम उत्तराधिकारी, प्रखर वक्ता, धर्मनीति के आख्याता और दर्शन निष्णात संत आचार्य महाप्रज्ञ की काव्यप्रतिभा से परिचय करवाने का प्रयास किया गया है। आचार्य महाप्रज्ञ एक उच्चकोटि के संत होने के साथ–साथ, दार्शनिक एवं उत्कृष्ट कवि भी हैं। उनके द्वारा प्रणीत 'ऋषभायण' नामक महाकाव्य उनकी काव्यप्रतिभा का सहज प्रस्फोट है। इस इकाई में 'ऋषभायण' के चतुर्थ सर्ग का विवेचन – विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिससे हमें आचार्य श्री की काव्यप्रतिभा से परिचय होने का अवसर मिल सके।

इकाई–16 में कतिपय अन्य महत्त्वपूर्ण आधुनिक कवियों पर अपेक्षित पाठ्यसामग्री प्रस्तुत की गई है। इकाई का उद्देश्य उन महत्त्वपूर्ण कवियों पर बोधपरक परिचयात्मक प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करना है, जिससे विद्यार्थियों को उनका सामान्य परिचय प्राप्त हो सके।

●

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun